॥ श्री ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

९९

सोमेश्वरकृत

मानसोल्लास : एक सांस्कृतिक अध्ययन

लेखक —

डॉ० शिवशेखर मिश्र

एम० ए० (संस्कृत, अँग्रेजी तथा भारतीय संस्कृति),

एल एल० बी०, पी एच० डी०, डी० लिट्०

संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ





चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

१९६६

प्रकाशक चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
सस्करण प्रथम, सवत् २०२३
मल्य २५-००

Post Box 69, Varanasi (India)
1966
Phone 3076

प्रधान कार्यालय—
चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस
गोपाल मन्दिर लेन,
पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी-१

THE

VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA

99

९९

SOMES'VARA'S
MĀNASOLLĀSA . A CULTURAL STUDY

By

Dr SHIVA SHEKHAR MISHRA

M A (Sans , Eng , Sans Cul), LL B Ph D D Litt

Sanskrit Department Lucknow University Lucknow

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1966

Thesis approved for the Ph D Degree in Sanskrit
by the University of Lucknow

First Edition
1966
Price 25-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Antiquarian Book Sellers
P O Chowkhamba, Post Box 8 Varanasi-1 (India)
Phone 3145

समर्पण

जिनके चरणो मे बैठ बैठ कर

सस्कृत एव सस्कृति

का पाठ पढा

उन्हीं सौजन्यमूर्ति

पूज्यपाद गुरुदेव

प्रो० को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर

के करकमलो मे

सादर एव सप्रेम

' MĀNASOLLĀSA, A SĀNSKRITIK STUDY"

I have gone through the pages of the above thesis with great interest and attention It deals with the contents of Mānasollāsa, the encyclopaedic compilation of Raja Someśvara III of the Western Chalukya dynasty Being a work of the 12th century (1129 A D) it gives a faithful and detailed picture of the Social life of India before the advent of the Muslim invaders

The thesis is divided into several chapters describing at length the Sanskaras the concept of state and kingship and the various forms of amusement, entertainment and games prevalent in those days

Under certain heads the writer has summed up practically the whole of contemporary social life based on the contents of Someśvara s work out studied in respect of each important detail independently in comparison with the data furnished by other sources of knowledge These sources comprise Sanskrit texts of different ages together with relevant modern works and Journals Besides the printed editions of the time, the candidate has utilised MSS of the work available in different Indian Libraries

On reading the thesis carefully I am inclined to think that it is a valuable contribution, original and critical, to the cultural life of India during the pre muslim period of its history It is written in Hindi, in a graceful style far from the laxities and faults of loose penmanship

I therefore recommend to the University that the Doctorate Degree, for which the candidate has supplicated, be awarded to him in recognition of the merit of his thesis

2 A Sigra
Banaras
13–5–57

Gopinath Kaviraj

प्राक्कथन

गुप्त साम्राज्य की इतिश्री हो जाने के अन तर भारतवष मे अनेक स्वत त्र राज्यो की स्थापना विभिन्न राजवशो द्वारा हुई। इन्ही राजवशो मे पश्चिमी चालुक्यो अथवा सोलकियो के अत्यन्त प्रतिभाशाली एव विस्तृत राज्य की स्थापना हुई। यद्यपि इस राजवश का विस्तृत प्राचीन इतिहास उपलब्ध नही है तथापि इस वश मे अनेक ऐसे प्रतिभावान् राजा हुए जिनका यश आज भी महत्वपूण ग्र थो के पृष्ठो मे अकित है। मानसोल्लास इसी कोटि के श्रेष्ठ ग्र थो मे विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। मानसोल्लास के रचयिता महाराज सामेश्वर तृतीय इसी पश्चिमी चालुक्य वश के ख्यातनामा एव विद्वान् शासक थे।

मानसोल्लास भारतीय सस्कृति का एक अनुपम, श्रेष्ठ एव अनूठा ग्रन्थ है। यह ग्र थ विशुद्ध हि दू सस्कृति का अन्तिम पृष्ठ है। चालुक्य वश के राजा मुसलमाना के सम्पक से पूणतया अछूते रहे। मुसलमानो की सस्कृति का विकास हाने के पूर्व ही इस राजवश का अवसान हो गया था। १२०० ई० के लगभग जब चालुक्य वश के अतिम सम्राट् सोमेश्वर चतुथ राज्य कर रहे थे उसी समय यादवो ने इनके राज्य के उत्तरी भाग तथा होयसलो ने दक्षिण भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था और इस प्रकार चालुक्य वश की राज्य श्री सदैव के लिए कातिविहीन हो गई।[1]

अत मानसोल्लास की रचना मुसलमानी सस्कृति के अभ्युत्थान के पूव ही सम्पन्न हो चुकी थी। यदि इस ग्र थ को विशुद्ध हिन्दू सस्कृति का अन्तिम उपहार कहे तो अत्युक्ति न होगी।

मानसोल्लास का वण्य-विषय बडा व्यापक और अत्यधिक उपयोगी है। सामा यरूप से लेखक की दृष्टि राजजीवन और राजनीति पर ही केन्द्रीभूत

1 "These places passed into the hands of the Hoyasalas and of the Yadavas about 1200 or even earlier with the territories surrounding them and the Chalukyan empire thus came to an end having been absorbed on the north by the Yadava empire and on the south by the empire of the Hoyasalas'

Indian Antiquary Vol 48–The Chronology of the Western Chalukyas–P 6

रही है परन्तु फिर भी ज्ञान विज्ञान के अनेकानेक प्रसगो की ओर भी उसने समान रूप से ध्यान दिया है। राजनीति और राजजीवन के वर्णन के साथ ही साथ महाराज सोमेश्वर ने ज्योतिष, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, पाकशास्त्र आदि विज्ञानो एव वास्तु, चित्र, सगीतादि ललित कलाओ का विस्तृत एव महत्वपूर्ण विवेचन किया है। सगीत, पशुचिकित्सा आदि पर सोमेश्वर की यह रचना प्रामाणिक ओर उपयोगी मानी जाती है। कुछ लोगो ने इसका आभार स्वीकार भी किया है।

महाराज सोमेश्वर के अध्ययन, चिन्तन और सामान्य ज्ञान की व्यापकता को देखकर कभी कभी आश्चर्य होता है। इस प्रकार मानसोल्लास का एक एक विषय अपनी अलग अलग विशेषता रखता है और स्वतन्त्र अध्ययन का साधन है।

आश्चर्य का विषय है कि इतना महत्वपूर्ण ग्रन्थ होते हुए भी इसका अभी तक सुचारु रूप से अध्ययन नही हुआ है। इतना ही नही सस्कृत साहित्य के अधिकाश इतिहासो मे इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ तथा इसके रचयिता सोमेश्वर के नाम तक का उल्लेख नही हुआ है। कतिपय विद्वानो ने तो केवल इस ग्रन्थ के नाम का ही उल्लेख कर दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी अभाव की पूर्ति करने का एक प्रयास है। ग्रन्थ मे मानसोल्लास पर सागोपाग विचार किया गया है। साथ ही यह भी प्रयत्न किया गया है कि ग्रन्थ की समस्त विशेषताए इसके माध्यम से पाठको तक पहुच जायँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्ययन ६ अध्यायो मे सम्पन्न हुआ है —

१—मानसोल्लास की रचना एव काल निर्णय
२—सोमेश्वर तथा सस्कार
३—सोमेश्वर तथा राज्यशास्त्र
४—सोमेश्वर तथा उपभोग
५—सोमेश्वर तथा विनोद
६—सोमेश्वर तथा क्रीडाए।

सस्कृत साहित्य के कतिपय विद्वानो का मत है कि मानसोल्लास के रचयिता महाराज सोमेश्वर नही थे, वरन् उनकी राजसभा के किसी एक अथवा अनेक विद्वान पडितो द्वारा यह ग्रन्थ लिखा गया था। प्रस्तुत अध्याय मे लेखक ने तर्कपूर्ण ढग पर इस बात की स्थापना की है कि मानसोल्लास की रचना चालुक्य वशीय सोमेश्वर तृतीय ही ने की। लेखक ने अपने इस मत के समर्थन मे प्रमाणो का भी उल्लेख किया है। यह लेखक का सर्वथा मौलिक प्रयास है।

कालनिणय प्रकरण मे अ तस्साक्ष्य तथा बहिस्साक्ष्य प्रमाणो के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि मानसोल्लास की रचना महाराज सोमेश्वर ने शक सम्वत् १०५१ अर्थात् सन् ११२९ ई० मे की थी।

द्वितीय प्रकरण का शीषक है—सोमेश्वर तथा सस्कार। महाराज सोमेश्वर एक धमपरायण राजा थे और प्रत्येक काय म धम का ही आश्रय ग्रहण करना उनको मा य था। मानसोल्लास के पुत्रोपभोग प्रकरण के अन्तगत सोमेश्वर ने बालक के सस्कारो का वणन किया है और उ हे उचित रीति से वैदिक विधान द्वारा मनाने का आदेश दिया है। यद्यपि सोमेश्वर ने इन सभी सस्कारो के सम्ब ध मे स्मृति, पुराण, धमसूत्र तथा गृह्यसूत्रादि का ही आधार ग्रहण किया है, तथापि उ हे गीत, वाद्य नृत्यादि के साथ पारिवारिक एव तत्कालीन सामाजिक रीति रिवाजो के द्वारा मनाने का आदेश देकर उ हे नवीनतम रूप प्रदान किया है। यह सोमेश्वर की अपनी विशेषता है। इसी का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत ग्र थ के द्वितीय अध्याय मे किया गया है। इस अध्याय की सामग्री लेखक के व्यापक अध्ययन और मौलिक चि तन का फल है।

तृतीय अध्याय की सामग्री दो खण्डो मे विभाजित है —

(१) राज्य–प्राप्ति के उपाय
(२) राज्य का स्थिरीकरण

प्रथम खण्ड मे राज्य–प्राप्ति के बीस उपायो का उल्लेख है। इसके अ तगत राजा के दो प्रकार के कतव्यो पर प्रकाश डाला गया है—

(१) निषिद्धाचरण
(२) विहित कतव्य

इनका आचरण शासक की आत्मसम्पत् का द्योतक है। सोमेश्वर की नीति राजा को लौकिक ऐश्वय के साथ ही साथ पारलौकिक आन द को प्रदान करने वाली है।

इसी तृतीय अध्याय का द्वितीय खण्ड राज्य के स्थिरीकरण से सम्बन्धित है। यद्यपि सोमेश्वर ने राजनैतिक सिद्धा तो की अभिव्यक्ति म स्मृति पुराण, नीतिशास्त्र एव अथशास्त्र का आश्रय ग्रहण किया है, फिर भी इन सिद्धा तो क ग्रहण करने की विधि म उनकी मौलिकता झलकती है। उक्त शास्त्रो का पूण-रूपेण अध्ययन करके उनके सिद्धान्तो को तत्कालीन समाज की कसौटी पर कसकर उ होने उसके अनुकूल राजनीति के सूत्रो का सृजन किया। इनकी राजनीति तद्विषयक शास्त्रो का सार अश है और साथ ही साथ उसमे राजा के हृदय की नीति झलकती है। यही उनकी राजनीति की विशेषता है। लेखक ने सोमेश्वर द्वारा प्रतिपादित सप्तप्रकृति राज्य, शक्तित्रय, षाड्गुण्य तथा उपाय-

चतुष्टय सम्ब धी सिद्धा तो का विवेचनात्मक अध्ययन किया है। यह अध्याय पूण रूप से मौलिक है।

चतुथ अध्याय राजा के व्यक्तिगत जीवन मे सम्बधित बीस प्रकार के उपभोगो पर प्रकाश डालता है। राजजीवन का प्रभाव जन–जीवन पर पडना अनिवाय है। अत इनका अध्ययन उतना ही महत्वपूण एव आवश्यक है जितना अ य किसी विषय का। ये सभी उपभोग विशेष रूप से राजा के शृङ्गार, भोजन, स्वास्थ्य तथा मनोरजन के साधन हैं। दैनिक कृत्यो मे भी मनोरजन एव सौ दय का दशन करना इस अध्याय का मुख्य लक्ष्य है। इस परिच्छेद की सामग्री पूणरूप से लेखक के मौलिक अध्ययन का परिणाम है।

पञ्चम अध्याय मे बीस प्रकार के विनोदो का वणन है। य विनोद राजा के साथ ही साथ जनसाधारण के भी मनोरजन के साधन थे। इनमे शस्त्र, शास्त्र, गजवाह्याली, तुरगवाह्याली, अक, मल्ल, कुक्कुट, लावक, मेष, महिष, पारावत, सारमेय, श्येन, मत्स्य, मृगया, गीत, वाद्य, नृत्य, कथा तथा चमत्कृत ये बीस प्रकार के विनोद हैं। इन विभि न विनोदा के सम्ब ध म लेखक ने जो अ ययन प्रस्तुत किया है वह पूणतया मौलिक है।

षष्ठ अध्याय मे बीस क्रीडाओ का उल्लेख है जिनमे राजा स्वय भाग लेता था। ये क्रीडाए दो भागो मे विभक्त हो सकती है–एकागी क्रीडाए एव सामूहिक क्रीडाए। विनोद एव क्रीडाओ का यह प्रामाणिक ग्रथ है। इनमे से कुछ के प्रसग अ य ग्रन्थो मे प्राप्त होते हैं कि तु उनका विशद वणन कही उपलब्ध नही होता। लेखक ने इन क्रीडाओ की विवेचना सविस्तार की है। यह परिच्छेद लेखक की मौलिक गवेषणा का फल है।

प्रस्तुत ग्रथ की रचना श्रद्धेय गुरुवर प्रोफेसर के० अ० सु० अय्यर के सरक्षण और निर्देशन मे हुआ है। यह ग्र थ उ ही की प्रेरणा और आशीर्वाद का फल है। निराशा और कठिनाइयो के क्षणो मे उ ही की सहायता से काय अग्रसर हुआ। उ ही की प्रेरणा से लेखक प्रत्येक पग पर आगे बढ सका है। लेखक उनके प्रति श्रद्धा से अवनत है।

मानसोल्लास की छपी प्रतियो मे केवल बीस उपभोगो एव १५ विनोदो का वणन है। अ तिम पाच विनोद तथा २० क्रीडाएँ अप्रकाशित हैं। मानसोल्लास की अप्रकाशित प्रतियो को प्राप्त करने मे लेखक को अनेक कठिनाइयो का अनुभव करना पडा। इसके लिए लेखक को विश्वभारती, शा तिनिकेतन, बगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी लायब्रेरी, मद्रास के गवनमेट ओरिय टल मैनस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, गवनमेट ओरियण्टल इस्टीट्यूट, बनारस के गवनमेट सस्कृत कालेज की लायब्रेरी, महाराज जयपुर का पोथीखाना, टैगोर लायब्रेरी

लखनऊ, कलकत्ता विश्वविद्यालय लायब्रेरी आदि स्थानो पर जाना पडा। इस शुभ प्रयास मे लेखक को एक स्थान पर सफलता मिली तो चार स्थानो से निराश लौटना पडा।

भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना मे मानसोल्लास की दो हस्तलिपिया देवनागरी लिपि मे प्राप्त हुई। उनमे एक पूर्ण और दूसरी अपूर्ण है। उपर्युक्त सभी हस्तलिपियो का पूर्ण विवरण ग्रथ सूची मे हुआ है। गीत, वाद्य, नृत्य, कथा तथा चमत्कृत विनोदो तथा बीस क्रीडाओ का अध्ययन मानसोल्लास की भाडारकर इन्स्टीट्यूट पूना की पूर्ण हस्तलिपि के आधार पर किया गया है। यह हस्तलिपि अत्यन्त अशुद्ध तथा स्थान स्थान पर रिक्त प्रसगो से पूर्ण है। लेखक ने उन सभी का पूर्णरूपेण मनन कर उसके श्लोको को अन्तिम अवस्था तक शुद्ध करने का प्रयत्न किया है। इन उक्त विनोदो एव क्रीडाओ मे जो उल्लिखित उद्धरण हैं वे हस्तलिपि के ही शुद्ध किए हुए श्लोक हैं। यदि इन उद्धरणों मे यत्र तत्र कोई त्रुटि रह गई हो तो लेखक उसके लिए क्षमाप्रार्थी है। यह खेद का विषय है कि क्रीडाओ पर प्राप्त होने वाला इतना विस्तृत एव सुन्दर साहित्य अप्रकाशित होने के कारण अन्धकार के गर्त मे पडा था। क्रीडा का प्रसग वास्तव मे सोमेश्वर के क्रीडा प्रेम को प्रदर्शित करता है। इन क्रीड़ाओ मे तिमिर, फणीन्द्र, सस्यक्षेत्र, ज्योत्स्ना आदि क्रीडाओ के नामो का भी उल्लेख कही नही हुआ है। इस प्रसग मे लेखक ने पुराण साहित्य, वात्स्यायन के कामसूत्र, बौद्ध साहित्य तथा अन्य क्रीडा एव मनोरजन सम्बन्धी ग्रथो की छानबीन कर उसी से मिलती जुलती विभिन्न नामो वाली, कुछ समानता रखने वाली क्रीडाओ के प्रसगो द्वारा उक्त क्रीडाओ का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है।

—शिवशेखर मिश्र

विषय सूची

पचम अध्याय सोमेश्वर तथा विनोद

षष्ठ अध्याय सोमेश्वर तथा क्रीडाएँ

परिशिष्ट



सोमेश्वरकृत—

मानसोल्लास : एक अध्ययन

प्रथम अध्याय

मानसोल्लास की रचना एवं काल का निर्णय

मानसोल्लास के रचयिता सोमेश्वर

मानसोल्लास की रचना के सम्बन्ध मे अनुक्रमणिका में निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है—

> चालुक्यवशतिलक श्रीसोमेश्वरभूपति ।
> कुरुते मानसोल्लास शास्त्र विश्वोपकारकम् ॥[1]

इसके अनुसार चालुक्यनरेश महाराज सोमेश्वर मानसोल्लास के रचयिता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विंशति के अन्तिम श्लोक मे अनेक विशेषणो के साथ उस विंशति के रचयिता चालुक्यकुलोत्पन्न सोमेश्वर देव के नाम का उल्लेख है। यत्र तत्र बीच मे भी उनके नाम के प्रसग आए है।[3]

इन प्रसगो को देखने के पश्चात् मानसोल्लास के रचयिता के विषय मे लेश मात्र सन्देह नहीं रह जाता। फिर भी यह आरोप लगाया जाता है कि मानसोल्लास के रचयिता स्वय महाराज सोमेश्वर न थे वरन् इसकी रचना उनकी सभा के किसी विद्वान एव सुशिक्षित व्यक्ति ने की जो राजा के परिवार, उसकी आवश्यकताओं आदि से भली भाँति परिचित था।[4] इस आरोप का मुख्य कारण यह बतलाया जाता है कि ग्रन्थ के रचयिता के नाम के साथ जो अनेक विशेषणों का प्रयोग हुआ है, विशेषत जो सोमेश्वर ने सागर की तुलना अपने से की है,[5] यह कोई भी कवि अपने मुख से नहीं कर सकता।

सस्कृत के अन्य उच्च कोटि के ग्रन्थो का यदि सूक्ष्मावलोकन किया जाय तो यह आरोप निर्मूल सिद्ध होगा। नैषधीयचरित के रचयिता श्रीहर्ष द्वारा प्रत्येक सर्ग के अन्त मे अपने लिए प्रयुक्त विशेषणो को देखकर हम इसी प्रकार उक्त महाकाव्य को श्रीहर्ष की रचना मानने मे सन्देह करने लगेगे। श्रीहर्ष ने

---

१ मानसोल्लास अनुक्रमणिका श्लोक ९।

२ वही १।२०।३०८, २।२०।१३००, ३।२०।१८२० इत्यादि।

३ वही २।३।२७१, २।४।४२३, ३।१।९२६ इत्यादि।

४ वही (गायकवाड सीरीज बडौदा), खड १, भूमिका, पृ० ६।

५ वहीं २।४।३७१।

नैषध मे अपने को जितेन्द्रिय,[१] अमृत की वृष्टि करने वाले काव्य का रचयिता आदि विशेषणों से विभूषित किया है। इसके अतिरिक्त श्रीहर्ष ने अन्य कवियो को चट्टान के तुल्य तथा अपने को क्षीरसमुद्र के तुल्य माना है।[३]

इसी प्रकार 'शिक्षक सर्ववस्तूना' तथा 'जगदाचार्यपुस्तक'[५] शब्दो द्वारा अपनी रचना को ससार की सर्वश्रेष्ठ रचना बताने की उक्ति पर भी सोमेश्वर के इस ग्रन्थ के रचयिता होने मे सन्देह किया जा सकता है किन्तु यह भी आरोप निराधार ही है क्योकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है श्रीहर्ष ने भी अपने काव्य को अमृत की वर्षा करने वाला बतलाया है।[६]

सोमेश्वर ने न केवल मानसोल्लास की वरन् अन्य ग्रन्थो की रचना करके भी अपनी कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। पत्तन भडार मे विक्रमाकाभ्युदय नामक ग्रन्थ की अपूर्ण हस्तलिपि उपलब्ध है जिसके रचयिता महाराज सोमेश्वर बतलाए जाते है।[७] इसके अतिरिक्त सगीतरत्नावली नाम के एक सगीत विषयक ग्रन्थ के रचयिता भी महाराज सोमेश्वर माने जाते हैं।

एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि मानसोल्लास मे जो सोमेश्वर ने विविध विषयों पर प्रकाश डाला है, इन समस्त विषयो के सम्यक् ज्ञान के लिए उन्होंने भिन्न भिन्न विशेषज्ञों की सहायता ली होगी। यह बात भी अधिक

---

१ श्रीहष कविराजराजिमुकुटालकारहीर सुत
श्रीहीर सुषुवे जितेन्द्रियचय मामल्लदेवी च यम।
नैषध १।१४५

२ यत्काव्य मधुवर्षिर्धषितपरास्तर्केषु यस्योक्तय
श्रीश्रीहषकवे कृति कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम।
नैषध २२।१४९ ४

३ दिशि दिशि गिरिग्रावाण स्वा वम तु सरस्वती
तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम ।
स परमपर क्षीरोदन्वान् यदीयमुदीयते
मथितुरमत खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम्॥ नैषध २२।१४९ २

४ मानसोल्लास अनुक्रमणिका श्लोक १०।

५ वही।

६ नैषध, २२।१४९ ४।

७ मानसोल्लास (गायकवाड सीरीज, बडौदा) प्रथम खण्ड, भूमिका, पृ० ६, टिप्पणी।

८ O C Gangoly—"Ragas and Raginis" P 20

९ अभिलषितार्थचिंतामणि (मैसूर, १९२६) भूमिका, पृ० २३।

सगत नहीं जान पडती क्योंकि मानसोल्लास मे जितने भी विषयो का वर्णन मिलता है वे सब राजजीवन से सम्बन्धित है। अधिकाश विषयों का तो सोमेश्वर को व्यक्तिगत एव व्यावहारिक ज्ञान तथा अनुभव था। सगीत का वह स्वय प्रेमी था और जैसा ऊपर कहा जा चुका है एतद्विषयक उसने अन्य ग्रन्थ भी लिखा है। उपभोग, विनोद तथा क्रीडाये, जो ग्रन्थ का अधिकाश भाग घेरती है, उसके दैनिक जीवन से सम्बन्धित है। राजनीति तो राजा का प्राण ही है। कुछ विषयों का ज्ञान उसने तद्विषयक प्रामाणिक ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा अर्जित किया था। कही कहीं पर उन ग्रन्थों का आभार प्रदर्शित भी किया है। उदाहरणार्थ इष्टापूर्ताध्याय मे मयशास्त्र, मत्स्यपुराण आदि का अनुसरण करने का आदेश दिया है।[1] इसी प्रकार मन्त्रशक्ति के प्रकरण में शुक्र एव चाणक्य को प्रमाण माना है।[2] पुराणों और स्मृतियो का सोमेश्वर ने विशेष अध्ययन किया था और उनके निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण भी करता था जैसा कि आगे के पृष्ठो के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

इसके अतिरिक्त मानसोल्लास मे अनेक वर्णन ऐसे प्राप्त होते है जिनको सिवाय राजा के अन्य व्यक्ति नही लिख सकता। प्रेमक्रीडा[3] तथा रतिक्रीडा[4] के प्रकरण में राजा के प्रेम एव सम्भोग का विस्तृत वर्णन सिवाय राजा के अन्य व्यक्ति लिखने का साहस नहीं कर सकता।

अत स्पष्ट है कि मानसोल्लास के रचयिता स्वय महाराज सोमेश्वर ही थे, अन्य व्यक्ति नहीं।

कालनिर्णय

सस्कृत के अधिकाश महाकवियों ने अपनी रचनाओ मे अपने जीवनकाल एव ग्रथो की रचना की तिथियों का उल्लेख नही किया है, जिससे सस्कृत के पाठकों का ज्ञान उनके काल के विषय में शून्य रहता है। उनके समक्ष वास्तव मे यह एक बडी समस्या उपस्थित हो जाती है क्योंकि वे उस कवि की रचना के काल एव तत्कालीन समाज के विषय मे उचित रूप से ज्ञान नही कर पाते।

---

१ विश्वकर्ममतेनापि मयशास्त्रानुसारत।
मत्स्यप्रोक्तविधानेन पिंगलामतमानत॥

मानसोल्लास १।११।७६

२ गुरुशुक्रमतेऽप्येष चाणक्यादिमते तथा।

वही २।९।६९८

३ वही ५।१९।

४ वही ५।२०।

किन्तु यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि सोमेश्वर के मानसोल्लास के विषय मे यह कठिनाई अधिक नही पडती, क्योकि मानसोल्लास मे प्राप्त अन्त-साक्ष्य प्रमाणो द्वारा ही रचनाकाल का निर्णय हो जाता है। प्रथमत तो ग्रथ के रचनाकाल के विषय मे सोमेश्वर ने स्वय लिखा है—

षोडशभिर्हता षष्टि प्रभवाद्यब्दसयुता।
तानैरपि समायुक्ता शकभूपोद्गता समा ॥
एकपचाशदधिके सहस्रे शरदा गते ।
शकस्य सोमभूपाले सति चालुक्यमण्डने ॥[1]

इस श्लोक के आधार पर निम्नलिखित रीति से मानसोल्लास की रचना के समय का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है—

१६×६० = ९६० (षोडशभिर्हता षष्टि)
९६० + ४२ = १००२ (प्रभवाद्यब्दसयुता)
तान = ४९
१००२ + ४९ = १०५१ (तानैरपि समायुक्ता)

इस प्रकार १०५१ शक सवत् प्राप्त हुआ।

१०५१ + ७८ = ११२९ ई०

अभिलषितार्थचितामणि[3] (मैसूर की प्रति) मे निम्नलिखित गणित प्राप्त होता है—

१६ × ६० = ९६०
प्रभव से सौम्य तक = ४२
दाव = ४८
अत ९६० + ४३ + ४८ = शक १०५१

यद्यपि उपर्युक्त गणित का फल शक सवत् १०५१ ही आता है, जो सोमेश्वर ने स्वय दे दिया है। इसमे दाव = ४८ तथा प्रभव से सौम्य की गणना = ४३ त्रुटिपूर्ण है।

मानसोल्लास (गायकवाड सीरीज, बडौदा, १९२५) के प्रथम खण्ड मे

---

१ मानसोल्लास २।२।६१–६२।

२ प्रभव से सौम्य तक गणना करने पर ४२ सख्या प्राप्त होती है (देखिए-सूर्यसिद्धान्त–अध्याय १)।

मानसोल्लास की रचना का काल सौम्य सवत्सर था—

सौम्य सवत्सरे मानसोल्लास २।२।६४।

३ अभिलषितार्थ० पृ० ४२ टिप्पणी।

१०५२ शक (११३१ ई०) समय दिया हुआ है।[1] यह भी त्रुटिपूर्ण है जैसा उपर्युक्त गणित से स्पष्ट है।

इस मुख्य अन्त साक्ष्य प्रमाण के अतिरिक्त अन्य अन्त साक्ष्य प्रमाण भी मानसोल्लास मे प्राप्त होते है जिससे उपर्युक्त काल निर्णय की पुष्टि होती है। भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट से प्राप्त मानसोल्लास के तृतीय खण्ड की हस्तलिपि मे सोमेश्वर ने अपने को विक्रमादित्य का पुत्र माना है—

विक्रमादित्यपुत्रेण सोमभूपेन भाषितम्।[2]

इतिहास इस बात का साक्षी है कि चालुक्यनरेश विक्रमादित्य षष्ठ के बाद उनके पुत्र सोमेश्वर तृतीय (सन् ११२७ ई०) सिंहासनारूढ हुए जिन्होने मानसोल्लास अथवा अभिलषितार्थचिन्तामणि नामक ग्रन्थ की रचना की।

मानसोल्लास के पुत्रोपभोग प्रकरण मे नामकरण सस्कार के सम्बन्ध मे सोमेश्वर ने लिखा है कि क्षत्रिय के बालक का नाम राजवश के अनुरूप सिह, मल्ल, बाहु, पाल, वर्म, सन, चन्द्र इत्यादि उपनामों से सुशोभित होना चाहिए—

सिह मल्ल तथा बाहु पाल वर्म पराक्रमम्।
सेन चन्द्र तथा दिव्यसत्त्व केसरिण रथम्॥[4]

इस श्लोक मे आये हुए पाल, वर्म तथा सेन शब्दो से पाल, वर्म तथा सेन राजवशों की ओर सकेत प्रतीत होता है। इन राजवशो से सोमेश्वर भली भाँति परिचित थे। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि महाराज सोमेश्वर के पिता विक्रमादित्य षष्ठ ने उत्तरा-पूर्वाय देशों की विजय यात्रा की थी। उसमे वे बगाल के पाल तथा सेन राजाओ के सम्पर्क में आए।[5] कामरूप मे ग्यारहवी शताब्दी मे ब्रह्मपाल के पुत्र रत्नपाल का बडा प्रभुत्व था। इसके अतिरिक्त कामरूप के प्रसिद्ध शासक भास्करवर्मन् का नाम उन्होने सुना ही होगा। इस प्रकार सोमेश्वर पाल, वर्म तथा सेन उपनामों को धारण करनेवाले राजाओं के पराक्रम को देख सुन चुके थे।

उपर्युक्त अन्त साक्ष्य प्रमाणों के अतिरिक्त अनेक बहि साक्ष्य प्रमाण भी प्राप्त होते है जिनसे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। सोमेश्वर के समय का

---

१ मानसोल्लास प्रथम खण्ड भूमिका प० ६।

२ वही ४।२०।१६४ चमत्कृतविनोद।

३ आर० जी० भाण्डारकर—अरली हिस्ट्री आफ दी डकन।

४ मानसो० ३।१२।१२६४।

५ आर० एस० त्रिपाठी—हिस्ट्री आफ ऐन्शे ट इण्डिया पृ० ३६३–६४।

६ वही पृ० ३५१–५२।

एक प्राचीन कन्नड का शिलालेख प्राप्त होता है जिसकी तिथि साधारण सवत्सर फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी तथा दिन रविवार दिया है।[१] साधारण सवत्सर सौम्य सवत्सर के पश्चात् आता है। अत यह शिलालेख सम्भवत शक १०५२ अथवा ईसवी ११३० के समय का होगा।

इसी प्रकार अन्य शिलालेख प्राप्त होते है। उनमे से एक अब धारावार जिले की सीमा के अन्तर्गत लक्ष्मेश्वर के कचेरी नामक स्थान मे सुरक्षित है। यह भूलोकमल्ल सोमेश्वर तृतीय के राज्यकाल के तीसरे वर्ष अर्थात् शक सवत् १०५१ का है।[३]

धारावार जिले के हागल तालुका मे नरेगल स्थान के सर्वेश्वर के मन्दिर में एक लेख प्राप्त होता है जिसमे दो तिथिया प्राप्त होती है। द्वितीय तिथि शक सवत् १०५३ है जो सोमेश्वर तृतीय के राज्यकाल का पचम वर्ष है।[४]

अरलेश्वर नामक स्थान पर कदम्बेश्वर के मन्दिर के द्वार के एक स्तम्भ के लेख के अनुसार सोमेश्वर के शासनकाल का दसवा वर्ष शक सवत् १०५८ है।[५]

मद्रास प्रेसीडेन्सी मे कृष्णा जिले के नरसरावुपेट तालुका के नादेण्डला नामक स्थान पर मूलस्थानेश्वर के मन्दिर के एक शिलालेख के अनुसार शक सवत् १०५० सोमेश्वर तृतीय के शासनकाल का द्वितीय वर्ष है।[६]

इन प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सोमेश्वर का शासनकाल शक सवत् १०४९ से १०५८-५९ अर्थात् सन् ११२७ ई० से ११३८ ई० तक रहा और मानसोल्लास की रचना उन्होने शक सवत् १०५१ अर्थात् सन् ११२९ ई० में की जो उनके शासनकाल का तीसरा वर्ष था। इन तीन वर्षों में उन्होंने पूर्ण रूप से अपनी शासनसत्ता स्थिर कर ली होगी। इतिहास इनके समय की विशेष घटनाओं का उल्लेख नहीं करता जिससे उनके इस साहित्यिक कार्य में विघ्न पडता।

---

१ इण्डियन ऐंटीक्वेरी—जिल्द १०, पृ० १३२।

२ सूर्यसिद्धान्त अध्याय १।

३ इण्डियन ऐन्टीक्वेरी—जिल्द २२, पृ० २९७।

४ वही।

५ वही।

६ वही।

द्वितीय अध्याय

सोमेश्वर तथा संस्कार

हमारे धर्मशास्त्रो का मुख्य ध्येय व्यक्ति और समाज के अभ्युदय और नि श्रेयस की प्राप्ति रहता आया है—

यतोऽभ्युदयनि श्रेयससिद्धि स धर्म ।[1]

व्यक्ति और समाज के अभ्युदय से तात्पर्य दोनों की सर्वाङ्गीण लौकिक उन्नति से है और नि श्रेयस का अर्थ आत्यन्तिक आत्मिक विकास से। धर्म शास्त्रों में सस्कारो का विस्तृत उल्लेख मिलता है। सस्कारों द्वारा मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियों का विकास होता है और ये मनुष्य के आन्तरिक विकास के बाह्य प्रतीक है जिनके द्वारा व्यक्ति अपने को सामूहिक जीवन के उपयुक्त बनाता है। सस्कृत मनुष्य को समाज में एक नियत पद प्राप्त होता है। इस प्रकार सस्कार द्वारा व्यक्ति और समाज दोनों का विकास होता है।

मनुस्मृति के अनुसार गभाधान, जातकर्म चूडाकरण तथा मौजीबन्ध सस्कारों में किये हुए होमों से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के गर्भ और बीज के दोषादि की शुद्धि होती है—

बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते ।[2]

इसके अतिरिक्त वेदाध्ययन, व्रत, होम, इज्याकर्म, पुत्रोत्पादनादि तथा पच महायज्ञो एव यज्ञो से ब्राह्मी तनु प्राप्त होता है—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनु ॥[3]

याज्ञवल्क्य ने गभाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन तथा जातकर्म सस्कारों का उल्लेख करने के पश्चात् कहा है कि इनके करने से बीज और गर्भ की अपवित्रता दूर होती है—

---

१ कणाद—वैशेषिक सूत्र १।१।२, वैशेषिकदशनम—विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित, बनारस १९१९।

२ मनुस्मति २।२७।

३ वही २।२८।

एवमेन शम याति बीजगर्भसमुद्भवम् ।

कुछ सस्कार आ या त्मिक तथा सास्कृतिक महत्व रखते हैं यथा उपनयन । उपनयन सस्कार द्वारा वैदिक अध्ययन के लिए द्वार खुल जाता है और कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हो जाते है, यद्यपि साथ हा साथ कुछ विशेष कर्तव्यो का भी पालन करना पडता है । नामकरण, अन्नप्राशन आदि कुछ ऐसे सस्कार है जिनके द्वारा पारस्परिक प्रेमप्रदर्शन तथा उत्सवादि करने का अवसर प्राप्त होता है । अन्त में विवाह द्वारा दो व्यक्तियो का मिलन होता है जिससे समाज का विकास होता है ।

महाराज सोमेश्वर ने सस्कारो को शास्त्रोक्त विधान के साथ साथ उत्सवादि के साथ मनाने का उल्लेख किया है । यद्यपि उन उत्सवादि का सम्बन्ध राजजीवन से है किन्तु राजजीवन का कुछ अश तो जनजीवन मे होता ही है । उन उत्सवों को प्रत्येक व्यक्ति यथासाध्य मना सकता है । अन्तर केवल मात्रा का हो सकता है । राजा यदि पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर रत्न हीरकादि लुटा सकता है तो निर्धन व्यक्ति भी यथाशक्ति अपनी अल्प धनराशि से अपनी मनोकामना पूर्ण कर सकता है । इसके अतिरिक्त पुत्र के जन्म पर पिता को तो आनन्द होता ही है, साथ ही वह समाज का एक अग बन जाता है । अत समाज को भी उसके जन्म पर उतना ही आनन्द होता है । इसी कारण पिता अपने सम्बन्धियो, मित्रो, पास-पडोस के लोगो को एकत्र करके उत्सव मनाता है और समाज नवागन्तुक पुत्र को समाज के सदस्य के रूप मे स्वीकार करता है । इस प्रकार सोमेश्वर ने सस्कारा के निरूपण मे शास्त्र और लोकाचार दोनो का सामजस्य स्थापित किया है ।

सस्कारो की सख्या

महाराज सोमेश्वर ने सस्कारों के विषय मे कोई निश्चित सख्या नहीं दी है किन्तु मानसोल्लास के पुत्रोपभोग प्रकरण में निम्नलिखित सस्कारों का उल्लेख किया है—

गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूडाकरण, मौञ्जीबन्ध अथवा व्रतबन्ध, विद्यारम्भ, गोदान, समावर्तन तथा विवाह ।

सस्कारों की सख्या के विषय में धर्मग्रन्थों में बडा मतभेद है । इनकी सख्या ९ या १० से लेकर ४० अथवा उससे भी अधिक मिलती है । इनमे से आठ सस्कार ऐसे हैं जो लगभग सभी मे मिलते हैं । वे इस प्रकार हैं—

१ याज्ञवल्क्यस्मृति १।१३ ।

गभाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल तथा उपनयन।

इन आठ सस्कारो के अतिरिक्त अन्य सस्कारों के विषय मे भेद है। गौतम के धर्मसूत्र[1] मे ४० सस्कारो का उल्लेख है। उनमे उपर्युक्त ८ सस्कारो के अलावा ४ वेदव्रत,[2] स्नान अथवा समावर्तन, विवाह, पचमहायज्ञ,[3] सात पाकयज्ञ,[4] सात हविर्यज्ञ तथा सात सोमयज्ञ है।

वैखानस स्मार्त सूत्र मे १८ शारार सस्कार तथा २२ यज्ञों का उल्लेख है। शारीर सस्कारो मे कुछ ऐसे सस्कार भी सम्मिलित है जिनका उल्लेख अन्यत्र कहा नहीं मिलता है, यथा उत्थान, प्रवासागमन तथा पिण्डवर्धन। २२ यज्ञो को एक मानकर ७ पाकयज्ञों, ७ हविर्यज्ञों तथा ७ सोमयज्ञो का उल्लेख किया गया है।

अगिरस ने २५ सस्कार माने है। वे इस प्रकार है—

गभाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म अथवा कर्णवेध, नामकरण, विष्णुबलि, निष्क्रमण अन्नप्राशन, चौलकर्म अथवा कर्णवेध, उपनयन, ४ वेदव्रत, समावर्तन, विवाह, महायज्ञ, पार्वण श्राद्ध तथा ७ पाकयज्ञ।

आश्वलायन ने भी इन्हीं २५ सस्कारो को माना है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति तथा विष्णुधर्मसूत्र मे सस्कारो की कोई निश्चित सख्या नही दी गइ है। केवल इतना सकेत प्राप्त होता है कि ये सस्कार निषेक (गभाधान अथवा चतुथाकरण) से लेकर श्मशान (अन्त्येष्टि, अवसान) तक है।

अधिकाश धर्मग्रथों मे षोडश मुख्य सस्कार माने गये है किन्तु इन सोलह सस्कारो के विषय मे भी मतभेद है। उदाहरणार्थ जातूकर्ण्य का उद्धरण देते हुए मित्रमिश्र ने निम्नलिखित १६ सस्कार गिनाये है —

---

१ गौतम धमसूत्र ८।१४-२४।

२ महानाम्नी व्रत, महाव्रत, उपनिषदव्रत तथा गोदान—आश्वलायनस्मति।

३ देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ भूतयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ।

४ अष्टका, पावणीस्थालीपाक, श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री तथा आश्वयुजी।

५ अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दशपूणमास आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबध तथा सौत्रामासी।

६ अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशिन, वाजपेय, अतिरात्र तथा आप्तोर्याम।

७ आधानपुसुसीमन्तजातनामान्नचौलका ।
मौंजी व्रतानि गोदानसमावत्तविवाहका ॥

गभाधान, पुसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, मोजी (उपनयन), व्रत (चार), गोदान, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि। व्यास मुनि[१] ने भी १६ सस्कार माने है किन्तु उनका सूची इससे कुछ भिन्न है। साधारणतया ये सोलह सस्कार इस प्रकार है—गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, विष्णुबलि, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, वेदव्रत, चतुष्टय, समावर्तन तथा विवाह।

सस्कारो का विभाजन

सस्कार दो प्रकार के है—मलापनयन और अतिशयाधान[3]। मलापनयन का अर्थ है मल का साफ करना। जिस प्रकार चूने द्वारा दर्पण का मैल साफ किया जाता है उसी प्रकार इन सस्कारो द्वारा मनुष्य की शुद्धि होती है। गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौलकर्म ये आठ मलापनयन सस्कार है। ये पिता द्वारा सम्पादित होते है। अत इन्हें पितृकर्तृका भी कहते हैं।[४] अतिशयाधान सस्कार आचार्य द्वारा सम्पादित होते है। अत ये आचार्यकर्तृका भी कहे जाते है। किसी वस्तु को चमकीला व सुन्दर बनाने की क्रिया को अतिशयाधान कहते है। कर्णवेध, उपनयन, व्रतादेश, वेदस्वाध्याय, केशान्त, स्नान, विवाह, अग्निपरिग्रह ये आठ अतिशयाधान सस्कार हैं।

निष्क्रमण सस्कार को छोडकर महाराज सोमेश्वर ने सभी मलापनयन सस्कारों का उल्लेख किया है। अधिकाश धर्मग्रन्थों के अनुसार निष्क्रमण सस्कार बालक के जन्म से चौथे मास में मनाया जाता है।[५] इस सस्कार का मुख्य उद्देश्य बालक को सूर्य के दर्शन कराकर उसका दैवी शक्ति से सम्बन्ध जोडना है। अतिशयाधान सस्कारों मे से सोमेश्वर ने कर्णवेध, उपनयन,

---

अन्त्य चैतानि कर्माणि प्रोच्यन्ते षोडशैव तु।

मित्रमिश्र—वीरमित्रोदय सस्कारप्रकाश पृ० १३५

१ व्याससहिता १।१३–१५।

२ तत्र सस्कारा। गर्भाधान विवाहाश्चेत्यावश्यका।
षोडश प्रधाना सस्कारा। स्मृत्यर्थसार पृष्ठ ३।

३ स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज—सस्कृति-विमर्श। हिन्दू सस्कृति अक, गोरखपुर। पृ० ३५।

४ ब्रह्मपुराणम्। गर्भाधानादिसस्कर्ता पिता श्रेष्ठतम स्मृत।
मित्रमिश्र—वीरमित्रोदय, सस्कारप्रकाश, पृ० १६५।

५ पा० गृ० सू० १।२२, मनु० २।३४, याज्ञ० स्मृ० १।१२।

केशान्त अथवा गोदान, स्नान अथवा समावर्तन तथा विवाह सस्कार लिए है।

हारीत ने दो प्रकार के सस्कार माने है—ब्राह्म तथा दैव । गर्भाधान आदि सस्कार, जिनका उल्लेख स्मृतियो मे मिलता है, ब्राह्म सस्कार की कोटि मे गिने जाते है। इनको करने से मनुष्य सस्कृत होकर ऋषियो की समानता को प्राप्त होता है और उन्ही के लोक मे रहता है—

तथा हारीत । द्विविध सस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्च । गर्भाधानादिस्माता ब्राह्म । ब्रह्मसस्कारसस्कृत ऋषीणा समानता सलोकता सायुज्य गच्छति।

दैव सस्कारो के अन्तर्गत पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा सोमयज्ञ आते हैं । इनके करने से मनुष्य देवो के लोक को प्राप्त कर उनकी समानता तथा सामीप्य को प्राप्त करता है—

पाकयज्ञहविर्यज्ञसौम्याश्चेति दैवा । दैवेनोत्तरेण सस्कृतो देवाना समानता सलोकता सायुज्य गच्छति । इति ।[१]

महाराज सोमेश्वर ने मानसोल्लास के पुत्रोपभोग प्रकरण मे गर्भाधान से विवाह तक जिन सस्कारो का उल्लेख किया है वे ब्राह्म सस्कार की कोटि मे आते हैं। उन सस्कारों की सूची में उन्होंने दैव सस्कारों का उल्लेख नही किया है। प्रथम विंशति के इष्टापूर्त प्रकरण मे उन्होंने दैव सस्कारों मे गिनाये हुए पाच यज्ञो तथा ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु उनका सस्कारों से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है जैसा उपर्युक्त कई धर्म शास्त्रों मे हुआ है। सोमेश्वर ने इन्हें इष्ट के अन्तर्गत माना है।

ऋतु सगमन तथा गर्भाधान

सस्कारों के क्रम के विषय मे बडा मतभेद है। गृह्यसूत्रों मे दो प्रकार का क्रम मिलता है। अधिकाश गृह्यसूत्रों मे सस्कारों की सूची विवाह से आरम्भ होती है और समावर्तन पर समाप्त होती है। हिरण्यकेशि, भारद्वाज तथा मानवगृह्यसूत्रों में सस्कारो का आरम्भ उपनयन से किया गया है। स्मृतियों मे अधिकाशत गर्भाधान सस्कार ही सर्वप्रथम लिया गया है । महाराज सोमेश्वर ने भी यही क्रम अपनाते हुए अपनी सूची का आरम्भ गर्भाधान से किया है।

वैखानस स्मार्तसूत्र मे गर्भाधान के पूर्व ऋतुसगमन नाम के एक सस्कार का उल्लेख है।[२] सूत्रकार ने इसका दूसरा नाम निषेक भी दिया है—

---

१ स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० १३ ।

२ वैखानस स्मार्तसूत्र १।१ ।

ऋतौ सगमन निषेकमित्याहु[१]।

मनुस्मृति,[२] याज्ञवल्क्यस्मृति[३] तथा विष्णुधर्मसूत्र[४] मे गभाधान तथा निषेक एक ही माने गये हैं। शाखायन गृह्यसूत्र[५], पारस्कर गृह्यसूत्र तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[७] मे गभाधान के स्थान पर चतुथाकर्म या चतुथाहोम नामक सस्कार का उल्लेख है। बौधायन गृह्यसूत्र[८], काठक गृह्यसूत्र[९] तथा गौतम धर्मसूत्र[१०] ने गभाधान शब्द का उल्लेख किया है।

सोमेश्वरदेव ने इस सस्कार का कोई नाम नही दिया है। सर्वप्रथम "ऋतुकालमनुल्लङ्घ्य पुत्राथा सङ्गमाचरेत्"[११] पक्ति से ऋतुसगमन नाम अधिक उपयुक्त लगता है किन्तु इनका 'ऋतुसगमन' वैखानस स्मार्तसूत्र के 'ऋतुसगमन" की भाति गर्भाधान से भिन्न सस्कार नही है क्योंकि सोमेश्वर ने स्मृतियो मे वर्णित गभाधान सस्कार की क्रियाओ का ही उल्लेख किया है। अत 'गर्भाधान' नाम देना ही उपयुक्त होगा।

मानसोल्लास के अनुसार पुत्र की कामना करनेवाला पुरुष ऋतुकाल (१ से १६ दिन तक) मे अपनी पत्नी के साथ सभोग करे किन्तु विशेष रूप से द्वितीया तथा चतुथा तिथि को छोड दे क्योकि ये वजित तिथिया है। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार गभाधान सस्कार स्त्री के ऋतु से पवित्र होने के चौथे दिन करना चाहिए। उस दिन प्रात काल पितृयज्ञ मे पिण्डका यज्ञ कर मध्यम पिण्ड पत्नी को पुत्र की इच्छा से खिलाए। तत्पश्चात् रात्रि के समय प्रजापति, अश्विन, ब्रह्म आदि देवताओं की स्तुति करके "असिंचतु प्रजापतिर्द्धाता गर्भं दधातु ते। गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि प्रथुष्टुक। गर्भ तेऽश्विनौ

---

१ वै० स्मा० सू० ६।२।
२ मनुस्मति २।१६ और २६।
३ याज्ञवल्क्यस्मति १।१० और ११।
४ विष्णु धमसूत्र २।३ तथा २७।१।
५ शाखायन गृह्य० १।१८–१९।
६ पा० गृ० सू० १।११।
७ आपस्तम्ब गह्य० ८।१०–११।
८ बौधायन गृह्य० ४।६।१।
९ काठक गृह्य० ३०।८।
१० गौतमधमसूत्र ८।१४।
११ अभिलषिताथचिन्तामणि ३।१२।१३०२।
१२ वै० स्मा० सू० ६।२

देवावाधत्ता ''[1] आदि मन्त्र पढकर मेधावी गर्भ धारण करवाने की इच्छा से स्त्रीप्रसग करे। फिर भी यदि गर्भ धारित न हो तो चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र मे रहने पर भटकटैया के श्वेत पुष्प को पानी मे पीसकर रात्रि के समय पत्नी की दाहिनी नाक मे "अस्याऽह बृहत्या पुत्र पितुरिव नाम"[2] यह मन्त्र पढकर निचोडे। ऐसा करने से पत्नी अवश्य ही उत्तम गर्भ को धारण करती है।

महाराज सोमेश्वर का कथन है कि रजोदिन से सोलह दिन तक अथात् ऋतुकाल मे सम रात्रियो मे सभोग करने से पुत्र तथा विषम रात्रिया मे सभोग करने से कन्या उत्पन्न होती है। अत विषम रात्रियों को छोड देना चाहिए—

समासु रात्रिष्वन्यासु भक्तिमान् पुत्रवाञ्छया।
विषमासु भवेत्कन्या तस्मात्ता परिवर्जयेत॥[3]

किन्तु द्वितीया तथा चतुथा तिथियों को यत्न से छोड देना चाहिए। इसके अतिरिक्त रक्त की अधिकता से कन्या तथा शुक्र के आधिक्य से पुत्र उत्पन्न होता है—

रक्ताधिक्याद्भवेत्कन्या शुक्राधिक्याद्भवेत्सुत।[4]

अत शुक्र की वृद्धि के लिए पौष्टिक भोजन करना चाहिए—

तस्माच्छुक्रस्य वृद्ध्यर्थं वृष्य भुञ्जीत भोजनम्।[5]

ये प्रसग कवि के ज्योतिष एव वैद्यकसम्बन्धी ज्ञान को प्रकट करते है।

सोमेश्वर ने इस सस्कार के सम्बन्ध में केवल वैज्ञानिक एव व्यावहारिक पक्ष का अनुसरण किया है। वैद्यक सम्बन्धी प्रसग देकर उन्होंने स्वस्थ सन्तान की उत्पत्ति पर ध्यान दिया है। स्वस्थ सन्तान परिवार की समृद्धि मे सहायक होती है। अस्वस्थ सन्तान भारस्वरूप हो जाती है। ज्योतिष का विचार सन्तान तथा परिवार के अभ्युदय के लिए किया जाता है। परिवार के अभ्युदय से समाज का अभ्युदय होता है। इस प्रकार गर्भाधान सस्कार पर व्यक्ति तथा समाज का अभ्युदय निर्भर है।

गर्भ को धारण करने के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने स्त्री के शारीरिक लक्षणो का वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भ धारण कर लेने पर स्त्री का

१ पा० गृ० सू० १।१५।
२ वही।
३ अभिलषितार्थचिन्तामणि। ३।१२।१३०५।
४ वही ३।१२।१३०६।
५ वही ३।१२।१३०७।

कपोल मण्डल पाण्डुवर्ण का हो जाता है, उसके चूचुक कृष्णवर्ण के हो जाते है तथा उदर प्रदेश भी थोडा उन्नत हो जाता है।[1]

पुसवन

भारतीय सस्कृति के अन्तर्गत पुत्र परिवार का बहुत ही पवित्र एव श्रेष्ठ अग माना गया है क्योकि पुत्र का ही आश्रय लेकर नरक मे पडे पितृगण मुक्त होते है। महाराज सोमेश्वर ने भी पुत्र को पितरो को नरक से मुक्त कराने का कारण माना है। पुत्र ही पिता के पितृऋण को चुकाने मे समर्थ होता है। इसी कारण पत्नी के गर्भ धारण करने के पश्चात् माता पिता की यही तीव्र आकाक्षा होती है कि गर्भ मे स्थित जरायु को वह पुत्र रूप मे प्राप्त करे और इसीलिए पुसवन सस्कार किया जाता है।

मानसोल्लास के अनुसार श्रवण, मृगशीर्ष, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु तथा मूल ये पुस नक्षत्र है। इन्ही मे गर्भ से तीसरे मास के लगने पर पुसवन सस्कार करना चाहिए। साथ ही साथ यह ध्यान रहे कि रविवार, मगलवार तथा बृहस्पति का दिन हो।[3]

पुसवन सस्कार का उल्लेख प्राय सभी गृह्यसूत्रो मे मिलता है किन्तु इसके क्रम और विस्तार के विषय मे बडा मतभेद है। आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि तथा भारद्वाज गृह्यसूत्रों मे पुसवन सस्कार का उल्लेख सीमन्तोन्नयन के बाद मिलता है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र के अनुसार पुसवन सस्कार तब करना चाहिए जब गर्भ प्रकट होने लगे। शाखायन गृह्यसूत्र[4] के अनुसार इस सस्कार का सम्पादन तिष्य नक्षत्र अथवा श्रावण मे करना चाहिए। भारद्वाज गृह्यसूत्र[5] के अनुसार यह तिष्य, हस्त, अनुराधा, उत्तरा अथवा प्रोष्ठपदा मे होना चाहिए। पारस्कर तथा बैजवाप के अनुसार जब चन्द्रमा पुस नक्षत्र मे हो तब यह सस्कार करना चाहिए। रत्नकोष के अनुसार हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरस् तथा पुष्य ये पुस नक्षत्र है। सस्कारमयूख मे नारदीय० के आधार पर रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा

---

१ जाते गर्भे भवेत् स्त्रीणा पाण्डुर गण्डमण्डलम।
कुचयोश्चूचुक कृष्ण जठर किञ्चिदुन्नतम ॥
अभिलषित० ३।१२।१३०७–८

२ विष्णुरुद्रसमाभास नरकत्राणकारणम।
पुत्र गात्रात्समुत्पन्नमीक्ष ते पुण्यभागिन ॥
मानसोल्लास ३।१२।१२७७–७८

३ मानसोल्लास ३।१२।१२५१।

४ शाखा० गृ० सू० १।२०।

५ हिर० गृ० सू० १।२२।

तथा उत्तराभाद्रपदा ये पुस नक्षत्र माने गए है। वशिष्ठ के अनुसार स्वाती, अनुराधा तथा अश्विनी भी पुस नक्षत्र हैं। हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र[1] के व्याख्याकार मातृदत्त का कथन इस प्रकार है—"अश्वयुक्पुनर्वसू तिष्यो हस्त शतभिषक् प्रोष्ठपदा इति पुनामधेयानि नक्षत्राणि।"

पारस्करगृह्यसूत्र में दूसरे अथवा तीसरे मास मे इस सस्कार को करने का आदेश दिया गया है। इस अवसर पर स्त्री को स्नान कराकर श्वेत तथा नवीन वस्त्र पहना कर रात्रि के समय न्यग्रोध (बरगद) की जड तथा टहनियों को पानी मे पीसकर पत्नी की दाहिनी नाक मे निचोडे। इसके करने से गर्भ मे स्थित जरायु अवश्य हा पुत्र रूप मे परिणत हो जाता है।

बरगद की जडो एव टहनियो को पीसकर इसलिए नाक मे डाला जाता है कि बरगद म सोमाश अधिक होता है और यह सोमाश पुत्र प्राप्ति मे सहायक होता है। बरगद के स्थान पर कुछ आचार्यों का मत है कि कुशकण्टक तथा सोमलता को पीसकर नाक मे डाले। कुश के ऊपर के हिस्से मे सोम का अश अधिक रहता है। यदि पिता वीर्यवान् पुत्र की इच्छा करे तो इस अवसर पर पत्नी की गोद मे जल से पूर्ण सकोरा अथवा कछुए की पीठ के ऊपर का हिस्सा रखे और उसके गभाशय को छूकर "सुपर्णोऽसीति प्र।ग्विष्णु क्रमेभ्य"[3] यह मन्त्र जपे। इस प्रकार करने से पुत्र वीर्यवान् तथा मेधावी होता है।

सस्कारसम्बन्धी क्रियाओं के विषय मे महाराज सोमेश्वर का कथन है कि दूसरे मास के म य में घी से युक्त जौ स्त्री को चटाए और वेदमत्र का उच्चारण करे।[4] वाजसनेयी सहिता के अनुसार इस समय हिरण्यगर्भ मन्त्र का उच्चारण होता है।[5] यह पुत्रोत्पत्ति से सम्बन्धित मन्त्र है। यह सस्कार गर्भ के हिलने डुलने के पूर्व ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त बृहदारण्यक उपनिषद् मे भी जो पुत्र मत्र का उल्लेख है उसके द्वारा भी पुत्रप्राप्ति हो सकती है।

सोमेश्वर ने इस सस्कार की विधियों का विशेष विवरण न देकर केवल निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान दिया है —

१ नक्षत्र, वार आदि का विचार,
२ पत्नी को घृतयुक्त जौ चटाना,
३ वेद मन्त्र का उच्चारण।

सीमन्तोन्नयन

महाराज सोमेश्वर ने इस सस्कार को बहुत महत्व दिया है। यह बडे

१ हिर० गृ० सू० १।१।५।   २ पा० ग० १।१६।
३ वा० स० १२।४–५।   ४ मानसोल्लास ३।१२।१२५२।
५ वा० स० २१।१३।

समारोह के साथ मनाया जाता है। नाना प्रकार के मगल गानो तथा वाद्यों की ध्वनि से समस्त वातावरण पूरित रहता है। ब्राह्मण तथा निर्धनों को पर्याप्त धन दिया जाता है और इस प्रकार समाज के प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति इस अवसर के आनन्द का लाभ उठाता है।

इस सस्कार का उल्लेख सभी धर्मग्रन्थो ने किया है। याज्ञवल्क्य[1] ने इस सस्कार के लिए केवल सीमन्त शब्द का प्रयोग किया है। गोभिल,[2] मानवगृह्यसूत्र[3] तथा काठकगृह्यसूत्र[4] ने इसका नाम सीमन्तकरण दिया है। जैसा कि इस सस्कार के नाम से स्पष्ट है, पत्नी के केशो (सीमन्त) को ऊपर कर यह सस्कार किया जाता है—"सीमन्तम् ऊर्ध्वं विनयति"।[5]

मानसोल्लास में गर्भधारण के छठे अथवा आठवे मास मे पुस नक्षत्र मे इसके करने का विधान है।[6] याज्ञवल्क्यस्मृति[7] तथा पारस्करगृह्यसूत्र[8] मे भी इस सस्कार का यही समय दिया हुआ है। आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार इसका विधान चौथे, लौगाक्षि के अनुसार तीसरे, आपस्तम्ब के अनुसार चौथे, बैजवाप के अनुसार चौथे, पाचवे अथवा छठे, शाखायन के अनुसार सातवे, काठकगृह्यसूत्र में तीसरे, मानवगृह्यसूत्र मे तीसरे, छठे अथवा आठवे, हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र[9] में चौथे, गोभिल[10] के अनुसार चौथे या छठे, खादिर के अनुसार चौथे, छठे या आठवे, पारस्कर के अनुसार छठे या आठवे, विष्णुधर्मसूत्र में छठे[11] या आठवे, वैखानस के अनुसार आठवे तथा वेदव्यास के अनुसार आठवे महीने में इसका विधान है। शख का आधार लेकर स्मृतिचन्द्रिका[12] ने लिखा है कि गर्भ के हिलने डुलने के समय से लेकर बच्चा होने तक यह सस्कार कर डालना चाहिए। इतना मतभेद होने के कारण स्मृतिचन्द्रिकाकार ने लिखा है कि अपने अपने गृह्यसूत्र के अनुसार इस सस्कार का सम्पादन करना चाहिए।

पारस्करगृह्यसूत्र के अनुसार जब चन्द्रमा पुस नक्षत्र मे होता है तब तिल तथा मूग को मिलाकर उनका स्थालीपाक बनाकर अग्नि के पश्चिम की ओर

---

१ याज्ञ० स्म० १।११। २ गोभिल० २।७।१।
३ मानव ग० सू० १।१२।२। ४ काठक गृ० सू० ३१।१
५ पा० ग० सू० १।१७। ६ मानसोल्लास ३।१२।१२५३–५४।
७ याज्ञ०—"षष्ठे अष्टमे वा सीमन्त"।
८ पा० ग० सू० "अथ सीमन्तोन्नयन गभमासे षष्ठेऽष्टमे वा" १।१७।
९ हिर० ग० सू० २।१। १० गोभिल० २।७।२।
११ वि० ध० सू० २७।३। १२ स्मतिचन्द्रिका १, पृ० १७।

बैठकर प्रजापति का हवन किया जाता है। तत्पश्चात् स्त्री के केशों को ऊपर कर (दो युग्म) बिना पके हुए गूलर के फलों के गुच्छों, तीन दर्भ के मूठों, तीन स्याही के काटों, वीरतर लकडी के खूटे तथा चरखे में लगे हुए तकुवे को लेकर स्त्री के केशों के चारो ओर तीन बार कच्चे धागे से बाँध कर 'ॐ भू भुव स्व' यह महाव्याहृति मत्र पढे।[१] यह सब कार्य उसका पति ही करता है। इसमे जितनी वस्तुयें है सभी आसुर प्राण वाली है। यह सस्कार छठे अथवा आठवे माम मे इसलिए किया जाता है कि छठे अथवा आठवे मास में ही बालक मे प्राण सचरण होता है। कभी कभी बालक में माता के प्राण का तथा माता मे बालक के प्राण का सचार होने लगता है। इससे गर्भपतन हो जाने का भय रहता है। इन्द्रविद्युत् (देवप्राण) का प्रसार उस मास में शिखा के द्वारा ही स्त्री मे होता है और यही गर्भपात का कारण बन जाता है। इसी कारण शिखा मे आसुर प्राण वाली वस्तुओ को छुआ देने से इन्द्रविद्युत् मूर्च्छित पड जाता है और गर्भ पतन का भय नहीं रहता।

सोमेश्वर ने उदुम्बर फल से गुथी हुई माला द्वारा स्त्री के कण्ठ को विभूषित करने का आदेश दिया है। पश्चिमी भारत मे अब भी लोग आठवे मास मे एक सस्कार करते है जिसको मराठी मे आठगुलम् कहते है। इस अवसर पर वे उदुम्बर को माला धारण कराते है। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने स्याही के पुच्छ से निकले काटों के अग्रभाग को शिर पर रखकर स्त्री के केशो को ऊपर करके उसका सीमन्तोन्नयन करने की विधि बतलाई है। इस प्रकार आसुर प्राण के सचार द्वारा इन्द्रविद्युत् को मूर्च्छित कर गर्भपात के भय का निवारण किया है।

इस धामिक कृत्य के पश्चात् सोमेश्वर ने अष्टमगल नाम के महान् उत्सव को मनाने का आदेश दिया है। मगल ध्वनियों में उन्होंने सर्वप्रथम वीणावादियो द्वारा सोमराग का गायन आवश्यक बतलाया है। इस सोमरोग के विषय मे मानसोल्लास में कहा गया है—

अवरोहे सगन्धार सोमरागस्तु षाडव ।

किन्तु सगीतरत्नाकर में इस सोमराग के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

---

१ तिलमुद्गमिश्रं स्थालीपाकं श्रपयित्वा प्रजापतेहुत्वा पश्चादग्नेभद्रपीठ उपविष्टाया युग्मेन सटालुग्रप्सेनौदुम्बरेण त्रिभिश्च दर्भपिञ्जूलैस्त्रेण्या शलल्या वीरतरशकुना पूर्णपात्रेण च सीमन्तमूर्ध्व विनयति भूर्भुव स्वरिति, प्रतिमहाव्याहृतिभिर्वा—पा० गृ० सू० १।१७।

षड्जे षाड्जीभव षड्जग्रहाशान्त्यनिगोत्कट ।
सोमराग स्मृतो वीरे तारे मध्यस्थमध्यम ॥[1]

स्वरमेलकलानिधि के अनुसार इसकी गणना अधम रागो मे की गई है और उसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

सन्यास सग्रहश्चैव साश सम्पूर्ण एव च ।
सोमराग सदा गेयो मन्द्रमध्यमभूषित ॥

लक्ष्यसगीत ने भी इसका उल्लेख किया है—

अवरोहे गसयोगे सोमरागस्य नोद्भव ॥

यह प्रथा शास्त्रो मे वर्णित प्रथा से भिन्न है । हो सकता है कि यह सोमराग का गायन सोमेश्वर की पारिवारिक परम्परा हो । शास्त्रों मे वीणावादियो द्वारा सोम देवता के मन्त्रो के गाने का प्रसग प्राप्त होता है ।[2] इसके अतिरिक्त वे वीणा पर ही किसी महान् प्रतापी राजा की कथा को गाते थे जिसमे वे पवित्र नदी का भी नाम लेते थे जिसके समीप स्त्री रहती हो ।[3]

सोमराग के गायन के अतिरिक्त महाराज सोमेश्वर के अनुसार ब्राह्मणों द्वारा शुभ अक्षर वाले साममन्त्रो का उच्चारण तथा पटहादि का मधुर शब्द होना चाहिए और साथ ही साथ पचमहाशब्दों की ध्वनि होनी चाहिए । पचमहाशब्दों से तात्पर्य पाच भिन्न-भिन्न वाद्यों से उत्पन्न मधुर तथा मगल ध्वनि से है । ये वाद्य सम्भवत भेरी, शख, काहल, मृदग तथा कास्यताल है । इनके माधुर्य की निम्न पक्ति प्रमाण है—

वीणाभेरिमृदगकाहलकलागीत च नृत्य तथा ।[4]

इस प्रकार के अष्टमगलात्मक उत्सव के अन्त मे महाराज सोमेश्वर ने ब्राह्मणो को गो, भूमि, वस्त्र, स्वर्ण आदि देकर उन्हें सतुष्ट करने का उल्लेख

---

१ स० र० अ० २–१६७ ।

२ आश्वलायन–वीणागाथिनौ सशास्ति सोम राजान सगायेताम् इति ।
आपस्तम्ब–गायतमिति वीणागाथिनौ सशास्ति ।
हिरण्यकेशी–सोम एव नो राजा याहुर्ब्राह्मणी प्रजा ।

३ पारस्कर–अथाह वीणागाथिनौ राजान सगायेता यो वाप्य यो वीरतर इति । नियुक्तामप्येके गाथामुपोदाहरन्ति । सोम एव नो राजेमा मानुषी प्रजा । अविमुक्तचक्र आसीरस्तीरे तुभ्यमसाविति या नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति ।

४ शि० मा० पू० स्तोत्र ।

किया है। शास्त्रों में ब्राह्मणभोजन का उल्लेख है। यह प्रसग राजा की दान-शीलता एव ब्राह्मणो के प्रति उसकी श्रद्धा को प्रकट करता है।

जातकर्म

महाराज सोमेश्वर ने पुत्र के उत्पन्न होते ही जातकर्म सस्कार करने का विधान बतलाया है—'सम्पूर्णे नवमे मासे जाते पुत्रे मनोहरे, जातकर्म प्रकुर्वीत ।' वास्तव मे सस्कार की आवश्यकताओं को देखते हुए तथा जैसा इसका नाम जातकर्म है, यह सस्कार जन्म के बाद ही तुरन्त होना चाहिए।

इस सस्कार के समय के विषय में सूत्रों मे थोडा मतभेद है। आश्वलायन[1] के अनुसार माता तथा दाई के अतिरिक्त दूसरे किसी व्यक्ति द्वारा छुए जाने के पूर्व यह सस्कार होना चाहिए। पारस्कर ने[2] नाल कटने के पूर्व इसका विधान बतलाया है। गोभिल[3] तथा खादिर[4] के अनुसार नाल कटने तथा बालक के स्तन स्पर्श करने के पूर्व इस सस्कार का सम्पादन करना चाहिए।

यह बहुत प्राचीन सस्कार ज्ञात होता है। तैत्तिरीयसहिता[5] में पुत्र के उत्पन्न होने पर वैश्वानरेष्टि के करने का आदेश किया गया है—

वैश्वानर द्वादशकपाल निर्वपेत्पुत्रे जाते यस्मिजात एतामिष्टिं निर्वपति पूत एव तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवति।

शतपथ ब्रा० मे नाल कटने के पूर्व एक सस्कार का उल्लेख किया है।[6]

बृहदारण्यकोपनिषद्[7] में जातकर्म का विस्तृत विधान दिया है। उसके अनुसार जातकर्म सस्कार के अन्तर्गत छ क्रियाओं का उल्लेख है—

१–होम, २–पुत्र के दाहिने कान मे तीन बार वाक् शब्द का उच्चारण करना, ३–सोने के चम्मच अथवा अगूठी से दधि, मधु तथा घृत चटाना, ४–बच्चे का एक गुप्त नाम रखना, ५–स्तन स्पर्श कराना, ६–मा को मन्त्रो द्वारा सम्बोधित करना।

शतपथ ब्रा० मे विभिन्न दिशाओं से आए हुए पाच ब्राह्मणों द्वारा अथवा स्वय पिता द्वारा बच्चे के ऊपर सास छोडने की क्रिया का भी उल्लेख है।

गृह्यसूत्रो मे इस सस्कार की विस्तृत क्रियाओ के विषय मे बडा मतभेद है। कुछ में तो उपर्युक्त सातों क्रियाओ का समावेश है। कुछ मे इनमे से एक दो

---

१ आश्व० १।१५।२। २ पार० गृ० सू० १।१६।

३ गोभिल० २।७।१७। ४ खादिर० २।२।३२।

५ तै० स० २।२।५।३–४।

६ Sacred Books of the East (ed by Max Muller) vol. 44 p 129

७ बृहदारण्य० ६।४।२४–२८।

का अभाव है और कुछ में इनके अतिरिक्त दो एक क्रियाओं का उल्लेख है। बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि तथा वैखानस मे बालक को स्नान कराने का विधान है। हिरण्यकेशि तथा वैखानस मे उसे पत्थर पर लिटाने का उल्लेख है। हिरण्यकेशि, पारस्कर तथा भारद्वाजगृह्यसूत्रों मे इस सस्कार का बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है किन्तु आपस्तम्ब, शाखायन आदि मे इसका सक्षिप्त उल्लेख प्राप्त होता है।

सोमेश्वर ने इस सस्कार के विषय मे तीन विशेष क्रियाओ का उल्लेख किया है—

१ सोने की मुद्रिका से मधु और घृत का चटाना।
२ माता के स्तन से दुग्धपान कराना।
३ सुवर्ण द्वारा आभ्युदयिक श्राद्ध का विधान।

इन सब वर्णनों से समय की गति के साथ क्रमश इस सस्कार के महत्व के कम होने का प्रमाण मिलता है, यहा तक कि ग्यारहवी, बारहवी शती म इसका महत्व बहुत कम हो गया। सम्भवत लोगों ने विस्तृत क्रिया द्वारा हानि का ध्यान रखते हुए इनमे आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर लिए होंगे क्योंकि पैदा होने के समय बालक की दशा क्षीण होती है और जरा भी असावधानी से उसे हानि पहुँच सकती है, जैसे पैदा होते ही बच्चे को स्नान कराना अथवा उसे पत्थर पर लिटाना।

इस सस्कार के विषय मे सोमेश्वर केवल 'स्वगृह्योक्तेन कर्मणा'[1] कहकर चुप हो गये है। अन्य सस्कारों की भाँति न तो ज्योतिषादि पर विचार किया है न विशेष क्रियाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है। उन्होंने उत्पन्न हुए बालक को सुवर्ण की मुद्रिका से आलिप्त अनामिका द्वारा घृत तथा मधु चटाने का आदेश दिया है। इससे विदित होता है कि उस समय व्यक्ति अपनी अपनी गृहपरम्परा के अनुसार कार्य करते थे। बृहदारण्यकोपनिषद्[2] मे सोने, के चम्मच से दधि, मधु आदि चटाने का उल्लेख है। शास्त्रों में इसका विस्तार-पूर्वक वर्णन हुआ है। कुछ सूत्रों के अनुसार बालक के उत्पन्न होने पर उसका नाल कटने के पूर्व आयुष्करण तथा मेधाजनन सस्कार होता है जो बालक का पिता उसे दीर्घजीवी एव मेधावी बनाने के ध्येय से करता है। तत्पश्चात् बालक को मन्त्र पढकर माता का स्तनपान कराया जाता है।

सोमेश्वर ने इस अवसर पर आम्युदयिक श्राद्ध करने का आदेश दिया है। अधिकाश सूत्रों के अनुसार आम्युदयिक श्राद्ध किसी शुभ अवसर पर किया

१ मानसोल्लास ३।१२।१२५९। २ बृहदा० ६।४।२४-२८।

जाता है जैसे पुत्रजन्म, चौल, उपनयन, विवाह अथवा पूर्त कर्म (कुआ आदि खुदवाना) के आरम्भ मे। यह श्राद्ध साधारणतया प्रात काल किया जाता है किन्तु पुत्रजन्म के अवसर पर तुरन्त कर डालना चाहिए। सोमेश्वर का भी कथन है कि जातकर्म के अवसर पर प्रात साय सन्ध्याओ तथा रात्रि मे भी इस सुखप्रद श्राद्ध को करना चाहिए। इस श्राद्ध मे ब्राह्मणो के भोजन कराने पर विशेष महत्व दिया जाता है किन्तु ब्राह्मणो की सख्या सम होनी चाहिए। सोमेश्वर का कथन है कि राजा को सुवर्ण द्वारा आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए। सोमेश्वर महादानी राजा था जैसा उसके ग्रन्थ के कई स्थलो पर स्पष्ट है। अत सुवर्ण द्वारा श्राद्ध करने का तात्पर्य ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् सुचारु रूप से दान देने का प्रतीत होता है।

इस प्रकार आभ्युदयिक श्राद्ध करने पर विशेष बल देखकर महाराज सोमेश्वर ने ब्राह्मणादि को भोजन कराकर एक विशेष उत्सव के साथ जातकर्म सस्कार मनाने का उल्लेख किया है।

नामकरण

बालक के जन्म से बारहवे दिन के पश्चात् नामकरण सस्कार करने का प्रसग मानसोल्लास मे प्राप्त होता है। इस सस्कार को करने के लिए मृग, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, रोहिणी, रेवती, स्वाती, मूल, पुष्य, आदि शुभ नक्षत्रों के भी नाम आए है। इन्ही नक्षत्रों मे शुभ दिन, तिथि तथा लग्न देखकर बालक की राशि के अनुकूल इस सस्कार को करना चाहिए।[1] पारस्कर-गृह्यसूत्र में दसवे दिन नामकरण सस्कार करने का विधान दिया हुआ है।[2]

बृहदारण्यकोपनिषद्, आश्वलायन, शाखायन तथा काठकगृह्यसूत्र[3] के अनुसार जन्म के दिन ही बच्चे का नाम रखना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण द्वारा इस मत का समर्थन होता है—

तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्पाप्मानमेवास्य तदपहन्त्यपि द्वितीयमपि तृतीयम्।[4]

महाभाष्यकार पतजलि ने भी इसी मत का प्रसग दिया है।

लोके तावन्मातापितरौ पुत्रस्य जातस्य सवृतेऽवकाशे नाम कुर्वाते देवदत्तो यज्ञदत्त इति। तयोरुपचारादन्येपि जानन्तीयमस्य सज्ञेति।

---

१ मानसोल्लास ३।१२।१२६२–६३।

२ दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति—

पा० गृ० सू० १।२२।

३ काठक गृ० सू० ३४।१।   ४ शतपथ ब्रा० ६।१।३–९।

पारस्कर के अतिरिक्त आपस्तम्ब, बौधायन तथा भारद्वाज ने जन्म के दसवे दिन, याज्ञवल्क्य[1] ग्यारहवे दिन, मनु दसवे अथवा बारहवे दिन जब पुण्य तिथि, मुहूर्त अथवा नक्षत्र हो, बौधायनगृह्यसूत्र दसवे अथवा बारहवे, वैखानस दसवे अथवा बारहवे तथा हिरण्यकेशि ने बारहवे दिन नामकरण करने का आदेश दिया है। गोभिल[2] तथा खादिर के अनुसार जन्म से दस रात्रि, सौ रात्रि अथवा एक वर्ष बाद किसी दिन नामकरण करना चाहिए—'जननादूर्ध्वं दशरात्राच्छतरात्रात्सवत्सराद्वा नाम कुर्यात् ।'[3] 'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे सवत्सरे वा नामधेयकरणम् ।'[4] भविष्यत् पुराण के अनुसार दसवो अथवा बारहवीं रात्रि के पश्चात् अथवा अठारहवे दिन अथवा एक मास के पश्चात् नामकरण करना चाहिए। बाण ने कादम्बरी मे लिखा है कि तारापीड ने अपने पुत्र चन्द्रापीड का नाम जन्म के दसवे दिन शुभ मुहूर्त मे और उनके मन्त्री शुकनास ने अपने पुत्र वैशम्पायन का नाम उसके दूसरे दिन रखा—

प्राप्ते दशमेहनि पुण्ये मुहूर्ते चन्द्रापीड इति नाम चकार।
अपरेद्यु शुकनासोपि वैशम्पायन इति नाम चकार।[5]

सोमेश्वर ने सम्भवत इस सम्बन्ध मे भविष्यत् पुराण को आधार माना है क्योंकि भविष्यत् पुराण के अनुसार बारहवे अथवा अठारहवे दिन के पश्चात् नामकरण हो सकता है। सोमेश्वर द्वारा रचित मानसोल्लास की बडौदा की छपी प्रति में 'द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वं' पाठ मिलता है जिससे बारहवे दिन के पश्चात् नामकरण होना चाहिए किन्तु मैसूर से मुद्रित अभिलषितार्थचिन्तामणि नाम की प्रति मे 'दिवसाष्टादशादूर्ध्वम्' पाठ मिलता है जिसके अनुसार अठारहवे दिन के पश्चात् यह सस्कार होना चाहिए। शुद्ध प्रति के अभाव मे यह कहना कठिन है कि सोमेश्वर को कौन सा दिन मान्य था। सम्भवत अन्य प्रतियों में भविष्यत् पुराण मे उल्लिखित अन्य दिवसों का भी प्रसग हो। किन्तु उपर्युक्त दो प्रसगो से भविष्यत् पुराण का ही आधार स्पष्ट होता है।

पुत्र का नाम रखने के लिए धर्मशास्त्रों मे विधिपूर्वक विधान दिया हुआ है कि बालक का नाम द्वि अक्षर, चार अक्षर वाला घोषवत् हो, विसर्ग अन्त मे हो, कृत्प्रत्ययान्त हो तथा शर्मा, वर्मा, गुप्त क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के नामो के आगे लगा हो।[6] बालिकाओ का नाम सुनने में मधुर हो, मगलकारी

---

१ याज्ञ० स्मृ० १।१२। २ गोभिल० २।८।८।
३ खादिर० २।३।६। ४ अपरार्क।
५ कादम्बरी पूर्वभाग, पैरा ६८।
६ पा० गृ० सूत्र १।२२, आ०गृ०सू० १।१५।४–५, मनुस्मृति २।३१–३३।

हो, दीर्घ स्वर अत मे हो, नाम के आगे देवी लगा हो। सोमेश्वर ने बालक के नाम के आगे सिंह, मल्ल, बाहु, पाल, वर्म, पराक्रम, सेन, चद्र, दिव्यसत्व, केसरी आदि लगाने को बताया है। इन शब्दो से यह विदित होता है कि उन्होंने उसमे वशपरम्परा का आश्रय ग्रहण किया है क्योंकि उनका नाम भी भूलोकमल्ल था जो नाम वशपरम्परा के अनुसार था।

इस सम्बन्ध मे सोमेश्वरदेव ने सम्भवत मनु का कुछ आधार लिया है क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का नाम मगलकारी, क्षत्रिय का बल से युक्त, वैश्य का धन से युक्त तथा शूद्र का दास्य से युक्त होना चाहिए—

मगल्य ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसयुक्त शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्॥[1]

इसके अतिरिक्ति ब्राह्मण के नाम में शर्मा, क्षत्रिय का रक्षायुक्त, वैश्य का पुष्टि से युक्त तथा शूद्र का सेवा से युक्त होना चाहिए—

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसयुक्त शूद्रस्य प्रेष्यसयुतम्॥[2]

इस आधार पर यदि विचार किया जाय तो सिह, मल्ल, बाहु, पाल, वर्म, पराक्रम, सेन, चन्द्र, दिव्यसत्व, केसरी, रथ आदि प्रत्यय बल तथा रक्षा के द्योतक हैं।

महाभाष्यकार ने राजन्य तथा वैश्य के नामों के इन्द्रवर्मन् तथा इन्द्रपालित दो उदाहरण दिए हैं। अपरार्क ने यम के आधार पर ब्राह्मणों के नाम मे शर्म अथवा देव, क्षत्रियों के नाम मे वर्म अथवा त्रात, वैश्यों के भूति अथवा दत्त तथा शूद्रो के नामों में दास जोडने को कहा है—

यम—शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्मा त्राता च भूभुज।
भूतिदत्तश्च वैश्यस्य दास शूद्रस्य कारयेत्॥

पुराणों मे भी इसी प्रकार के नियम मिलते हैं, यथा—

शर्मेति ब्राह्मणस्योक्त वर्मेति क्षत्रसश्रयम्।
गुप्तदासाह्वय नाम प्रशस्त वैश्यशूद्रयो॥[3]

इस सम्बन्ध में स्मृतिचन्द्रिका में बैजावाप का जो मत दिया है उसका पालन मानसोल्लासकार ने किया है, ऐसा प्रतीत होता है। बैजावाप के अनुसार पिता पुत्र का नाम एक अक्षर, दो अक्षर, तीन अक्षर, चार अक्षर तथा असी-

१ मनुस्मृति २।३१। २ वही २।३२।
३ विष्णु पु० ३।१०.९।

मित अक्षर वाला रखता है। किन्तु पहला घोष वर्ण जैसे वर्ग का तीसरा या चौथा अक्षर होना चाहिए और बीच मे अन्तःस्थ जेसे य, र, ल, व होना चाहिए। भूलोकमल्ल नाम पवर्ग के चतुर्थ अक्षर भ से आरम्भ होता है और मध्य मे ल अक्षर मिलता है। इसके अतिरिक्त कुलदेवता, नक्षत्र, अथवा कुल के दूर के पूर्वज के आधार पर नाम रखने की भी स्वतन्त्रता बैजावाप ने दी है। राजा का सो-मे-श्वर नाम इस नियम के अन्तर्गत आ जाता है क्योकि ये अपने कुल मे सोमेश्वर नाम के तीसरे राजा थे। इनके दो पूर्वज इसी नाम से हो चुके थे।

अन्नप्राशन

गोभिल तथा खादिर गृह्यसूत्र मे इस सस्कार का उल्लेख नही है। मानसोल्लास मे बालक का अन्नप्राशन सस्कार छठे मास मे करने का आदेश दिया गया है। अधिकाश स्मृतियों ने छठा मास ही कहा है। मानवगृह्यसूत्र मे पाचवे अथवा छठे मास में तथा काठक में छठे मास मे अथवा दात निकलने पर इसके किए जाने का उल्लेख है। शख के आधार पर अपरार्क का कथन है कि एक वर्ष के अन्त में अथवा कुछ के अनुसार छठे मास के अन्त मे इसका सपादन करना चाहिए—

सवत्सरेऽन्नप्राशनमर्धसवत्सर इत्येके।[१]

सोमेश्वर ने इस सस्कार को रेवती, रोहिणी, हस्त, पुष्य, उत्तरा नक्षत्रों तथा चन्द्रवार एव बृहस्पतिवार को करने का आदेश दिया है।[२] ये सभी नक्षत्र तथा दिन ज्योतिष के विचार से अत्यन्त श्रेष्ठ है। इससे विदित होता है कि सोमेश्वरदेव ज्योतिष के बडे ज्ञाता थे। वे प्रत्येक सस्कार के करने के लिए उसके आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक बल देते थे। व्यावहारिक पक्ष पर उनका अधिक ध्यान न था। उनका विचार था कि शुभ लग्न, तिथि तथा नक्षत्र में सस्कार सम्पादित होने पर बालक के लिए अधिक लाभदायक होते है। इसी कारण प्रत्येक सस्कार के वर्णन के साथ साथ वह उसे सपादित करने के लिए अनेक शुभ नक्षत्रों, तिथि, लग्न एव वारो का नाम गिनाते है जिससे समाज मे प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुविधानुसार सस्कारो को कर सके।

अन्नप्राशन सस्कार की विधि के विषय मे सोमेश्वर ने अधिक वर्णन नही किया है। उनके कथानुसार अन्नप्राशन सस्कार का छठे मास मे सम्पादन धर्मशास्त्रों के आधार पर है।[3] इस अवसर पर बालक को खिलाए जाने वाले

---

१ अपराक, पृष्ठ—२८। २ मानसोल्लास ३।१२।१२६६।

३ याज्ञ० स्म०—षष्ठेऽन्नप्राशनम, ब्रह्मचारिप्रकरण १२ तथा पार० गृ० सू०—षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् १-२४।

अन्न के विषय मे मानसोल्लास मे कुछ भी नही बताया गया है। सम्भवत उनके समय मे बालक को खिलाने के लिए किसी विशेष वस्तु का प्रयोग न होता था। साधारणत खीर का ही प्रयोग होता होगा।

गृह्यसूत्रो[1] मे इस अवसर पर खिलाने के लिए कुछ वस्तुओ का विशेष रूप से प्रयोग करने का आदेश दिया गया है। पारस्करगृह्यसूत्र मे अन्न के साथ साथ बालक को मास खिलाने का आदेश दिया गया है जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की मछली तथा पक्षियों का मास सम्मिलित है। ये सब प्रकार के मास बालक मे किसी शक्ति को उत्पन्न करने के हेतु खिलाये जाते थे—उदाहरणार्थ शुद्ध वाणी के उच्चारण के हेतु भारद्वाज पक्षी का मास, अन्न तथा धनादि के लिए कपिजल पक्षी (मोर, तीतर) का मास, शीघ्रगामी बनने के लिए मछली का मास, दीर्घायु होने के लिए केकडे का मास तथा ब्रह्मवर्चस्-प्राप्ति के लिए आत्या पक्षी का मास एक साथ थोडा लेकर अथवा एक एक बार चटावे।[2] इस सबके चटाने से बालक मे ये सभी गुण आ जाते है।

अन्नप्राशन के समय बालक को अन्न उत्तम वाणी प्राप्त करने के हेतु चटाया जाता है क्योंकि यही वह समय होता है जबसे बालक कुछ अस्फुट शब्दों का प्रयोग करना आरम्भ करता है। इसी कारण इस समय वाग्देवी की ही स्तुति होती है। उनको धेनुरूप मे मानकर बालक के लिए उनसे अन्न, धन, आयु, यश, वाणी प्रदान करने के लिए स्तुति की जाती है।[3] इस अवसर पर बालक को सभी प्रकार के अन्न तथा सुगन्धियुक्त पदार्थ खिलाये जाते है और स्तुति कर बालक के लिए मन्त्र पढे जाते है कि मैं प्राणों से अन्न का, अपान से गन्ध का, चक्षु से रूप का तथा श्रोत्र से यश का अनुभव करू। यह अन्न मेरी समस्त कामनाओं को पूण कर समस्त वस्तुये प्रदान करे।[4] इस प्रकार अन्नप्राशन के अवसर पर चटाया हुआ दुग्धादिपूर्ण अन्न बालक को आयुष्मान्, मेधावी, वाक्पटु तथा ब्रह्मवर्चस् से पूर्ण बनाता है।

सोमेश्वरदेव ने इसी सस्कार के प्रसग मे लिखा है कि शुभ दिन, तिथि

---

१ शा० ग० सू० १।२७।२, आश्व० ग० सू० १।१६।३।

२ भारद्वाज्या माꣳसेन व्वाक्प्रसारिकामस्य कपिञ्जलमाꣳसेनान्नाद्यकामस्य मत्स्यैजवनकामस्य सव्वकामस्यान्नपर्य्याय वा—पा० गृ० सू० १।२४।

३ सा नो म द्रेषमूर्ज दुहाना धेनुर्व्वागस्मानुपसुष्टुततु स्वाहा।

पा० गृ० सू० १।२४।

४ प्राणेनान्नमशीय स्वाहापानेन गन्धानशीय स्वाहा चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा श्रोत्रेण यशोशीय स्वाहेति—पा० गृ० सू० १-२४।

तथा लग्न मे बालक की अस्फुट वाणी को सुने ।[१] इस प्रकार सम्भवत वे भी इसी प्रमाण को मानते है कि अन्नप्राशन के अवसर पर खिलाया जाने वाला अन्न बालक को उत्तम वाणी तथा ज्ञान प्रदान करता है। इसी कारण उन्होने यह सस्कार बृहस्पतिवार तथा चन्द्रवार को करने का आदेश दिया है।[२] बृहस्पति तथा सोम का दिवस ज्योतिष के विचार से विद्याप्राप्ति तथा वाक् विद्वत्ता के लिए अत्युत्तम है।

साथ ही सोमेश्वर ने हृदय तथा मन में उल्लास उत्पन्न करने वाली बालक को क्रीडाओं का विस्तृत उल्लेख किया है।[३] अन्नप्राशन सस्कार के समय तक बालक इतना बडा हो जाता है कि वह टूटे फूटे शब्दो का उच्चारण करने मे समर्थ हो जाता है, घुटने के बल चलने लगता है और नाना प्रकार के हाव भावो द्वारा माता पिता के मन को मोहित करने लगता है।

कर्णवेध

सोमेश्वर ने पहले अथवा दूसरे वर्ष के अन्त मे बालक का कर्णवेध सस्कार करने का आदेश दिया है—

एकद्विवत्सरस्यान्ते कारयेत्कर्णवेधनम् ।[४]

सम्भवत यह उनकी गृह परम्परा का ही प्रभाव विदित होता है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में चूडाकर्म के पूर्व ही कर्णवेध सस्कार होता था। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार कर्णवेध सस्कार तीसरे या पाचवे वर्ष[५] में किया जाता है और इसके पूर्व मे चूडाकरण सस्कार होता है।

अधिकाश प्राचीन स्मृतियो में इस सस्कार का उल्लेख नहीं है। वेदव्यास स्मृति,[६] बौधायन गृह्यशेषसूत्र[७] तथा कात्यायन सूत्र में इसका प्रसग प्राप्त होता है। बौधायन गृह्यशेषसूत्र में इसका विधान सातवे आठवे मास मे किया गया है। बृहस्पति के आधार पर सस्कारप्रकाश[८] मे इसका विधान जन्म से दसवे, बारहवे या सोलहवे दिन अथवा सातवे या दसवे मास मे किया गया है।

स्मृतिचन्द्रिका में कर्णवेध पर सक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है। गृह्यपरिशिष्ट के अनुसार पिता पूर्व की ओर मुख करके सर्वप्रथम पुत्र के दाहिने कान को

---

१ मानसोल्लास ३।१२।१२६७।

२ वारे चेन्दोर्बृहस्पते — मानसोल्लास ३।१२।१२६६।

३ वही ३।१२।१२६८–७७। ४ वही ३।१२।१२७८।

५ अथ कर्णवेधन वर्षे तृतीये पचमे वा—पा० गृ० सू० २।२।

६ वेदव्यासस्मति १–१९। ७ बौ० गृ० शे० सू० १।१२–१।

८ वीरमित्रोदय खण्ड १, सस्कारप्रकाश।

सम्बोधित करके ऋग्वेद के मन्त्र का[1] उच्चारण करता है, फिर बाये कान के साथ यही करता है। यदि लडका चिल्लाता है तो उसे मधु दिया जाता है। इस कृत्य के अन्त में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

वर्तमान समय मे साधारणतया एक स्वर्णकार को बुला लिया जाता है जो कान के नीचे के भाग को नुकीले सोने के तार से छेदकर उस तार को गोल कर देता है। लडकियो का बाया कान पहले छेदा जाता है।

चूडाकरण

मानसोल्लास मे चूडाकर्म सस्कार दो वर्ष के पश्चात् अर्थात् तीसरे वर्ष मे करने का प्रसग प्राप्त होता है—

वत्सरद्वितयादूर्ध्वं चूडा कार्या यथाकुलम्।[2]

किन्तु अपने कुल की रीति के अनुसार भी यह हो सकता था। सोमेश्वर द्वारा कथित यह 'यथाकुलम्' की भावना 'यथामागल्य वा'[3] तथा 'यथाकुलधर्म वा'[4] से मिलती जुलती है। इसके अतिरिक्त मनु ने भी चूडाकर्म के विषय मे कुल की रीति को प्रधानता दी है।[5]

इस सस्कार का उल्लेख प्राय सभी स्मृतियो तथा धर्मसूत्रो मे मिलता है। अधिकाश सूत्रो यथा आपस्तम्ब, गोभिल, हिरण्यकेशि, काठक, खादिर आदि ने तीसरे वर्ष में इस सस्कार के करने का आदेश दिया है। बौधायन गृह्यसूत्र,[6] पारस्कर गृह्यसूत्र,[7] मनुस्मृति तथा वैखानस के अनुसार यह प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में होना चाहिए। आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा वाराहगृह्यसूत्र के अनुसार यह तृतीय वर्ष मे अथवा जिस वर्ष मे कुल की प्रथा हो, होना चाहिए। पारस्कर ने भी कुल परम्परा का उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य ने कोई वर्ष न देकर कुल परम्परा को ही महत्व दिया है। अपरार्क ने यम के आधार पर प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय वर्ष मे इसको करने की अनुमति दी है। शख तथा लिखित सहिता ने तृतीय अथवा पचम वर्ष माना है। आश्वलायन के व्याख्याकार नारायण तथा सस्कारप्रकाश मे उल्लिखित षड्गुरुशिष्य का कथन है कि कुछ लोग उपनयन के अवसर पर यह सस्कार करते थे।

---

१ ऋग्वेद १।८९।८। २ मानसोल्लास ३।१२।१२८०।

३ पा० ग० सू० २।१।

४ आश्व० ग० सू० १।१७।१, या० व० ब्रह्म० प्र० श्लो० १२।

५ मनु० २।३५। ६ बौधा० गृ० सू० २।४।

७ पार० ग० सू० २।१। ८ मनु० २।३५।

९ वैखानस० ३।२३।

इस सस्कार को करने के लिए पुनर्वसु, धनिष्ठा, रेवती, श्रवण, मृग, तीनो उत्तराये, हस्त, चित्रा, पुष्य तथा अश्विन नक्षत्रों का उल्लेख मानसोल्लास मे हुआ है। आपस्तम्ब गृह्य[3] के अनुसार यह सस्कार तब करना चाहिए जब चन्द्रमा पुनर्वसु में हो। मानवगृह्यसूत्र के अनुसार मास की नवमी तिथि को यह सस्कार कदापि न करना चाहिए। मानसोल्लास के अनुसार इसको करने मे शुभ दिन, तिथि तथा लग्न का भी विचार करना चाहिए। गृह्यसूत्रों एव धर्मशास्त्रों मे इतने प्रकार के नक्षत्रों का उल्लेख इस सस्कार को करने के लिए नही हुआ है। स्मृतियो मे इस सस्कार को करने का समय अपने कुल की रीति के अनुसार तीन अथवा पाच वर्ष मे बताया गया है। किन्तु गृह्यसूत्रों में पहले या तीसरे वर्ष मे ही इसे करने का आदेश दिया गया है।[5] इस सस्कार के विषय मे मानसोल्लास मे विस्तारपूर्वक वर्णन नही हुआ है। हा, इसके प्रसग को पढकर ज्योतिष के अनुसार इस सस्कार की उत्तम तिथि का ज्ञान हो सकता है।

उपनयन

चूडाकरण के पश्चात् सोमेश्वर ने गर्भ के आठवे अथवा गर्भ से ग्यारहव वर्ष मे मोजीबन्धन सस्कार करने का आदेश दिया है।[6] 'यज्ञोपवीत,' 'उपनयन' आदि के स्थान पर सोमेश्वर ने 'मोजीनिबन्धन' शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट होता है कि मुजमेखला का बन्धन सम्भवत सभी वर्णों मे प्रचलित था और यह उस अवसर पर विशेषरूप से पहनाई जाती थी। यह बधी हुई मुजमेखला आत्मा के तीनों गुणों की एकता को सिद्ध करती है। इसको पहन कर ब्रह्मचारी में शीघ्र ही इन गुणो का समावेश हो जाता है। इस मौजी निबन्धन के सम्बन्ध में सोमेश्वर ने शास्त्रो मे विहित मेखलाओं का प्रसग नहीं दिया है। सोमेश्वर स्वय क्षत्रिय थे और क्षत्रिय मे इन सभी आत्मिक गुणों का होना आवश्यक है। इसी कारण उन्होंने मौजी मेखला को इतना महत्व दिया है। इसके अतिरिक्त आठ तथा ग्यारह वर्ष पर यज्ञोपवीत सस्कार की अवधि से यह स्पष्ट होता है कि साधारणत इसी आयु पर उस समय समाज में यज्ञोपवीत सस्कार होता होगा।

---

१ उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा।

२ मानसोल्लास ३।१२।१२७९।　　३ आप० गृ० सू० १६।३।

४ मानसोल्लास ३।१२।१२८०।

५ सावत्सरिकस्य चूडाकरण तृतीये वा प्रतिहते—पा० गृ० सू० २।१।१।

६ मानसोल्लास ३।१२।१२८३।

सोमेश्वर ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के लिए विशेष आयु का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। हा, इतना अवश्य लिखा है—'व्रतबन्ध प्रकुर्वात क्षत्रियस्य यथोचितम्।'[1] यह पक्ति उनकी वश-परम्परा की द्योतक है। क्षत्रियों मे सम्भवत ग्यारह वर्ष के बाद भी सस्कार कर दिया जाता था। वैसे यज्ञोपवीत का समय आठ अथवा ग्यारह वर्ष ही था। स्मृतियों तथा गृह्यसूत्रों मे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के उपनयन के लिए विशेषरूप से अवस्था का उल्लेख हुआ है। सभी धर्मशास्त्रों में विशेष रूप से ब्राह्मण का उपनयन आठ वर्ष मे, क्षत्रिय का ग्यारह वर्ष पर तथा वैश्य का बारहवे वर्ष अथवा अपनी कुल परम्परा के अनुसार करने का आदेश है।[2] इसके अतिरिक्त इस अवधि के साथ ही 'यथामागल्य सर्वेषाम्'[3] कहकर सबको अपनी वश परम्परा निभाने की छूट दी गई है। महर्षि मनु ने इन सबसे अलग अवधि बतलाई है। उनके अनुसार पाच वर्ष मे ब्राह्मण के पुत्र का, आठ वर्ष मे क्षत्रिय का तथा ग्यारह वर्ष मे वैश्य के पुत्र का उपनयन होना चाहिए।[4]

उपनयन के समय के विषय मे शास्त्रों मे बडा मतभेद है। सर्वप्रथम तो यही नही निश्चित है कि वर्ष की गणना गर्भ से की जाय अथवा जन्मकाल से। जहा तक वर्ष का सम्बन्ध है, अधिकाश ग्रन्थो मे ब्राह्मण का आठवे तथा क्षत्रिय का ग्यारहवे वर्ष में माना गया है। केवल कुछ शास्त्रों में थोडा अन्तर है। कुछ मत यहा दिए जाते है—

आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार ब्राह्मण का जन्म अथवा गर्भ से आठव वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवे वर्ष, वैश्य का बारहवे वर्ष उपनयन करना चाहिए—

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्।

आपस्तम्ब,[5] शाखायन,[6] बौधायन,[7] भारद्वाज,[8] तथा गोभिल[9] गृह्यसूत्रों

---

१ वही ३।१२।१२८४।

२ गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम ॥
याज्ञ० स्म०, ब्रह्मचारिप्रकरण १४

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भाष्टमे वैकादशे क्षत्रिय द्वादशे वैश्यम।
आश्वलायनगृह्यसूत्र।

३ पा० गृ० सू० २।२।२।

४ मनु० २।३६।

५ आप० गृ० सू० १०।२।

६ शाखा० गृ० सू० २।१।

७ बौधा० गृ० सू० २।५।२।

८ भार० गृ० सू० १।१।

९ गोभिल० २।१०।१।

ने और याज्ञवल्क्यस्मृति[1] तथा आपस्तम्ब धमसूत्र ने स्पष्ट कह दिया है कि वर्षों की गणना गर्भ से करनी चाहिए। महाभाष्यकार का भी मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत गर्भ से आठवे वर्ष मे होना चाहिए। शाखायन मे गर्भ से आठवे या दसवे वर्ष, मानवगृह्य मे सातवे अथवा नवे, तथा काठक गृह्य० म तीनो वणो के लिए क्रमश सातवे, नवे, ग्यारहवे वर्ष का विधान है। कुछ स्मृतियों मे इससे पूर्व अथवा विभिन्न वर्षों मे उपनयन करने का विधान बतलाया है। गौतम के अनुसार ब्राह्मण का उपनयन गर्भ से आठवे वर्ष होना चाहिए किन्तु इच्छित फल के अनुसार पाचवे या नवे वर्ष भी हो सकता है। मनुस्मृति[3] के अनुसार यदि ब्रह्मवर्चस् की इच्छा है तो विप्र का पाचवे वर्ष मे, इसी प्रकार बलार्थी क्षत्रिय का छठे वर्ष तथा कृष्यादि की इच्छा वाले वैश्य का आठवे वर्ष में उपनयन करे। इसी प्रकार वैखानस[4] मे क्रमश गर्भ से पाचवे, आठवे और नवे वर्ष का विधान है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र[5] तथा बौधायन गृह्यसूत्र के अनुसार सातवें, आठवे, नवे, दसवें, ग्यारहवे, बारहव वर्ष का विधान है।

विभिन्न मतों के अनुसार उपनयन के लिए जो विभिन्न वर्ष दिए गए है उनका विभाजन सस्कारप्रकाश मे भलीभाति किया गया है। उसके अनुसार जन्म से आठवे, ग्यारहवे, बारहवे वर्ष मे क्रमश तीनों वणो का उपनयन यह मुख्य समय है। पाचवे से ग्यारहवे वर्ष के बीच का समय गौण समय ब्राह्मणो के लिए तथा ९ से १६ वर्ष के बीच क्षत्रिय के लिए। अन्त मे बारहवे से सोलहवे वर्ष के बीच का समय गौणतर समय ब्राह्मणो के लिए और सोलह वर्ष के बाद गौणतर समय क्षत्रियों के लिए है।

इस प्रकार हम देखते है कि उपनयन के लिए मुख्य समय ब्राह्मणो के लिए आठ वर्ष तथा क्षत्रियों के लिए ग्यारह वर्ष अधिकाश शास्त्रों मे कहा गया है। महाराज सोमेश्वर ने आठ और ग्यारह वर्ष का उल्लेख तो अवश्य किया है किन्तु उन्होंने केवल क्षत्रिय वर्ण का ही नाम लिया है —

वर्षे गर्भाष्टमे वापि गर्भैकादशकेऽपि वा।
व्रतबन्ध प्रकुर्वीत क्षत्रियस्य यथोचितम्॥[6]

यह श्लोक मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक से बहुत कुछ मिलता है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विश॥[7]

---

१ याज्ञ० स्मृ० १।१४। २ आप० धम सू० १।१।१,१९।
३ मनु० २।३७। ४ वैखानस० ७।३।
५ आप० धम० सू० १।१।२१। ६ मानसो० ३।१२।१२८३–८४।
७ मनु० २।३६।

सवप्रथम तो मनु की भाति सोमेश्वर ने वर्षों की गणना जन्म की अपेक्षा गर्भ से की है। दूसरे ८ और ११ की सख्या भी मिलती है। अन्तर इतना है कि मनु ने आठवे वष ब्राह्मण और ग्यारहवे वष क्षत्रिय के उपनयन का विधान किया है और मानसोल्लासकार ने क्षत्रिय के लिए ही ८ वे अथवा ११ वे वर्ष विधान किया है। सम्भवत सोमेश्वर महाराज का भी मनु की भाति विचार रहा हो और मानसोल्लास की अशुद्ध प्रतिया उपलब्ध होने के कारण यह पाठभेद हो गया हो।

मानसोल्लासकार ने उपनयन के लिए अश्विनी, रेवती, मूल, ज्येष्ठा, श्रवणत्रय, हस्तत्रय, पुष्य आदि नक्षत्र तथा भौम, सोम, गुरु तथा शुक्र ये दिन मौजाबन्धन के लिए उत्तम बतलाये है।[1] ये सभी नक्षत्रादि ब्रह्मवर्चस्, प्रकृष्ट भाग्य तथा मेधा प्रदान करनेवाले है। यज्ञोपवीत का यही ध्येय होता है कि बालक मेधावी, उत्तम भाग्यवाला प्रज्ञावान तथा विद्वान् बनकर अपने जीवन सम्बन्धी उत्तर दायित्वों को समझे और उन्हे निबाहता हुआ जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति करे। इन सब प्रसगों से विदित होता है कि वास्तव मे सोमेश्वर ज्योतिष एव नक्षत्रविज्ञान से पूर्ण रूप से परिचित थे। इसी कारण वे प्रत्येक सस्कार करने के लिए ऐसी तिथि, नक्षत्र एव लग्नो का प्रसग देते है जिनमे सम्पादित होकर सस्कार और भी उन्नति प्रदान करे।

सोमेश्वरदेव ने यज्ञोपवीत अथवा उपनयन शब्द न देकर 'मौजीबन्धन'[2] 'व्रतबन्ध'[3] नाम दिए हैं। यहा पर इन दो नामों से दो सस्कारों का सदेह हो सकता है किन्तु तत्सम्बन्धित श्लोकों को ध्यान से पढने पर ज्ञात होता है कि दोनों एक ही सस्कार से सम्बन्धित है अथवा एक ही सस्कार के दो विभिन्न नाम है। इस शका का समाधान काठकगृह्यसूत्र[4] की आदित्यदर्शन की व्याख्या से पूर्ण रूप से हो जाता है जिसमे कहा गया है कि उपनयन, मौजी बन्धन, बटुकरण तथा व्रतबन्ध ये पर्यायवाची शब्द है। मानव तथा काठकगृह्य-सूत्र मे उपनयन की अपेक्षा उपनायन शब्द का भी प्रयोग हुआ है। याज्ञवल्क्य ने 'द्विज' शब्द की परिभाषा देते हुए उपनयन के लिए 'मौजीबन्धन' शब्द प्रयुक्त किया है—

> मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीय मौजिबन्धनात्।
> ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजा स्मृता ॥[5]

---

१ मानसो० ३।१२।१२८१–८३।

२ वही ३।१२।१२८३। ३ वही ३।१२।१२८४।

४ काठक गृ० सू० ४१।१।

५ याज्ञ० स्म० ब्रह्मचारि प्रकरण, श्लोक ३९।

अथात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का एक जन्म माता से तथा दूसरा मौजि बन्धन अथवा उपनयन से गिना जाता है, इसीलिए ये द्विज कहलाते है।

विद्यारम्भ

विद्यारम्भ सस्कार के विषय मे सोमेश्वर ने आद्रा, श्रवण, स्वाती, चित्रा, हस्त, मूल, पर्वात्रय, रेवती, आश्लेषा, पुनवसु, मृगशीर्ष, धनिष्ठा, अश्विनी तथा पुष्य नक्षत्र के अतिरिक्त उसके लिए बुध, गुरु तथा शुक्रवार को श्रेष्ठ माना है।[1] वास्तव मे ये सभी नक्षत्र तथा दिवस विद्यारम्भ के लिए श्रेष्ठ माने गए हैं। इन दिनों में विद्यारम्भ करनेवाला बालक बुध, बृहस्पति तथा शुक्र की भाति विद्वान् हो जाता है। इसी समय से बालक को अनेक विद्याओ एव कलाओ की शिक्षा दी जाती थी किन्तु मानसोल्लास के प्रसगों से विदित होता है कि सम्भवत उस समय मे ब्रह्मचारी गुरु के गृह जाकर वेदाध्ययनादि न करता था वरन् उसे अपने गृह पर ही उपाध्यायो द्वारा शिक्षा दिलवाई जाती थी।[2]

साधारणतया विद्यारम्भ सस्कार का तात्पर्य बालक के उस सस्कार से है जिस समय से उसे अक्षरज्ञान कराया जाता है। कौटिल्य ने बालक के चौल कर्म के सम्पन्न हो जाने के समय से लेकर गोदान सस्कार अथवा विवाह के दिन तक बालक को दी जानेवाली शिक्षा के विषय में लिखा है—

'वृत्तचौलकर्मा लिपिं सख्यान चोपयुजीत। वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षिकी च शिष्टेभ्यो वार्तामध्यक्षेभ्यो दण्डनीति वक्तृप्रवक्तृभ्य। ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदान दारकर्म च।'[3]

इस प्रकार से बालक के चौलकर्म के पश्चात् उसे अक्षर तथा सख्या का ज्ञान कराया जाता था किन्तु उपनयन के पश्चात् आन्वीक्षिकी, वार्ता तथा दण्डनीति का सीखना उसके लिए आवश्यक था। इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने भी रघुवश मे राजा अज की शिक्षा के विषय मे लिखा है—

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रै सवयोभिरन्वित।
लिपेर्यथावद् ग्रहणेन वाङ्मय नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्॥[4]

अर्थात् चूडाकरण के पश्चात् सर्वप्रथम राजा अज ने अक्षरज्ञान प्राप्त किया, तत्पश्चात् सस्कृत साहित्य के अथाह सागर मे अवगाहन किया। बाण की कादम्बरी भी चन्द्रापीड की ६ वर्ष की आयु से लेकर १६ की आयु की शिक्षा

१ मानसो० ३।१२।१२८४–८६।
२ वेदमध्यापयेत्पुत्रमस्त्रविद्या च शिक्षयेत। मानसो० ३।१२।१२८६।
३ कौ० अथशास्त्र १।५। ४ रघुवश ३।२८।

का प्रसग देकर इसी प्रमाण को पुष्ट करती है। चन्द्रापीड ने विद्यामन्दिर मे प्रवेश कर पद, वाक्य, धर्मशास्त्र, राजनीति, व्यायाम, अस्त्रविद्या, रथचर्या, गजतुरगारोहण, वाद्य, गणित, वास्तु, आयुर्वेद, नाटक, कथा, आख्यायिका, काव्य, पुराण, यन्त्र प्रयोग आदि सभी विद्याये एव सभी लिपिया सीखी थी।[१] भवभूति ने उत्तररामचरित मे लव कुश के उपनयन से पूर्व तथा चौलकर्म के पश्चात् वेदों के अतिरिक्त अन्य विद्याओ को सीखने का प्रसग दिया है।

सोमेश्वर ने उपनयन के बाद विद्यारम्भ सस्कार करने को लिखा है जिसके पश्चात् पुत्र को वेदादि का ज्ञान कराया जाता है और अस्त्र शस्त्र की शिक्षा दी जाती है। अत इनके विद्यारम्भ से तात्पर्य अक्षरज्ञान से नही वरन् विशिष्ट ज्ञान से है।

शिक्षा

महाराज सोमेश्वर के समय मे बालको की शिक्षा के विषय मे विशेष ध्यान रखा जाता था। उन्हें वेदों के अध्ययन के साथ ही साथ शस्त्रविद्या की भी शिक्षा दी जाती थी। उनके शस्त्र, शास्त्रविद्या के अभ्यास की परीक्षा अश्वारोहण मे निपुण, विद्वान्, सुशिक्षित तीक्ष्ण बुद्धि वाले उपाध्याय करते थे। ये सभी एक एक करके बालक की परीक्षा लेते थे। इसके अतिरिक्त अन्य कलाकौशल, नीति, श्रुति, तर्क, काव्य तथा व्याकरण आदि शास्त्रों मे भी उसे निपुण बनाया जाता था।[४] धनुर्विद्या, भूमिबल, स्वरशास्त्र तथा अन्य कलाओं की परीक्षा भी उपाध्यायों द्वारा होती थी। बाण को छोडने, चलाने, लक्ष्य पर मारने तथा बाण को खींचने के उत्कर्ष का वे परीक्षा करते समय विशेष ध्यान रखते थे। बालकों को खड्ग, कुन्त, गदा, चक्र, शलि, शूल, कृपाण, लाठी आदि चलाने की भी शिक्षा दी जाती थी। इन सभी अस्त्र शस्त्रो के चालन की परीक्षा उन सभी शस्त्रों के ज्ञाता करते थे जिनके साथ परीक्षा के समय राजा भी विद्यमान रहता था।[७] क्षत्रियो को अश्वारोहण में विशेष रूप से निपुण बनाया जाता था।

इस प्रकार उस समय बालक सभी प्रकार के ज्ञान, विज्ञान, अस्त्र शस्त्र एव कला मे विशारद हो जाते थे। इस प्रकार के निपुण एव पितृभक्ति मे रत बालक के स्पर्श को प्राप्त कर पिता अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता था। इन सब प्रकार की शिक्षाओं मे सोमेश्वर ने क्षत्रियो की शिक्षा का विशेष रूप से

---

१ कादम्बरी, पैरा ६९–७१। २ मानसो० ३।१२।१२८६।
३ वही ३।१२।१२८७–८८। ४ वही ३।१२।१२८९।
५ वही ३।१२।१२९०–९२। ६ वही ३।१२।१२९४।
७ वही ३।१२।१२९६।

विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। क्षत्रियों के पुत्रों के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक थी। उन्हे अश्वारोहण, गजारोहण, वेदादि का ज्ञान, अस्त्र शस्त्र का ज्ञान, नीतिशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था क्योंकि क्षत्रिय बालक ही आगे चलकर राजा के पद से विभूषित होकर सम्पूर्ण राष्ट्र के हर प्रकार के उत्तरदायित्व के भार को वहन करता था। यदि वह इन सभी मे निपुण न होगा तो उसे राज्यकार्य चलाने मे कठिनाई होगी। क्षत्रिय के बालक के शिक्षा प्राप्त कर लेने पर उसका पिता अनेक गज, अश्व, भूमि, ग्राम, धन, वस्त्र, काचन आदि देकर उपाध्यायों को सतुष्ट करता था।[१]

गोदान

यह सम्भवत केशान्त सस्कार का ही दूसरा नाम है। पारस्कर, याज्ञवल्क्य[२] तथा मनु ने केशान्त शब्द का प्रयोग किया है और आश्वलायन, शाखायन, गोभिल आदि गृह्यसूत्रों ने गोदान शब्द प्रयुक्त किया है। मानसोल्लासकार ने इस सस्कार की विस्तृत क्रियाओं का उल्लेख नही किया है किन्तु अन्य शास्त्रो के अनुसार इस सस्कार मे सिर, बगल आदि के बाल मुँडवाए जाते है। शतपथ ब्राह्मण में दीक्षा का उल्लेख करते हुए गोदान शब्द का प्रयोग कान के ऊपरी भाग अथात् सिर के बालों के लिए हुआ है—'गोदान नाम कर्णस्य उपरि प्रदेश'।

'स दक्षिणमेवाग्रे गोदानमभ्युनक्ति।'[3]

महाराज सोमेश्वर ने इस सस्कार के सम्पादन का समय भी नही दिया है किन्तु अधिकाश स्मृतिकारों ने १६ वे वर्ष इसका विधान बतलाया है। शाखायन गृह्यसूत्र[४] के अनुसार १६ अथवा १८ वर्ष का विधान है। मनु के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का क्रमश १६ वे, २२ वे अथवा २४ वे वर्ष गोदान सस्कार करना चाहिए। सोमेश्वरदेव ने सम्भवत मनु को ही प्रमाण माना है क्योंकि जैसा पूर्व में कहा गया है उपनयन सस्कार के सम्बन्ध मे इन्होंने मनु द्वारा कथित ८ और ११ वर्ष की आयु को ही ठीक माना है। इसके अतिरिक्त लघु आश्वलायन स्मृति[५] के अनुसार गोदान सस्कार १६ वे वर्ष अथवा विवाह के समय होना चाहिए। इससे भी उपर्युक्त कथन पुष्ट होता है क्योंकि मानसोल्लासकार ने गोदान और समावर्तन का केवल नामोल्लेख करके विवाह सस्कार का विस्तृत विवेचन किया है। साथ ही साथ 'सम्प्राप्तयौवनान्पुत्रान्कृतगोदान-

---

१ वही ३।१२।१३०४। २ याज्ञ० स्म० १,३६।
३ शतपथ ब्रा० ३,१,२,४। ४ शाखा० गृ० सू० १,२८,२०।
५ लघु आश्व० स्मृ० १४,१।

मगलान्'[1] पक्ति से सिद्ध होता है कि विवाह के ठीक पूर्व यह सस्कार होता था। अत मनु द्वारा कथित क्षत्रिय के लिए २२ व वर्ष की अवस्था मे गोदान सस्कार किया जाना ही सम्भवत मानसोल्लासकार को मान्य था।

अवस्था की गणना कब से की जाय इस सम्बन्ध मे भी बडा मतभेद है। बौधायन धर्मसूत्र[2] ने गर्भ से और अपरार्क ने जन्म से गणना करने का विधान किया है किन्तु मानसोल्लास के सम्बन्ध मे गर्भ से ही गणना करना उचित होगा क्योकि उपनयन के विषय मे मनु की भाति गर्भ से ही सोमेश्वर देव ने वर्षो की गणना की है।

समावर्तन

गोदान क्रिया के पश्चात् बालक का समावर्तन सस्कार होता है किन्तु इसके विषय मे और अधिक वर्णन मानसोल्लास मे नही प्राप्त होता। केवल इतना ही विदित होता है कि समावर्तन से सम्पन्न होने पर काम तथा सुख भोगने के योग्य बालक हो जाता था। इस सस्कार का विस्तारपूर्वक वर्णन धर्मशास्त्रो म दिया हुआ है। धर्मशास्त्रों के अनुसार यह सस्कार गुरुगृह मे गुरु ही सम्पन्न करता था। उस दिन प्रात काल ब्रह्मचारी स्नान कर यज्ञ करता था। गुरु उसे उस दिन नागरिकों की वेशभूषा धारण करवाता था और तब वह गुरु की आज्ञा से अपने घर वापस जाता था। समावर्तन के काल का भी उल्लेख धर्मग्रन्थो मे हुआ है। ब्राह्मण के समावर्तन का काल सालह वर्ष, क्षत्रिय का बाइस वर्ष, वैश्य का चौबीस वर्ष में होता था।[3] किन्तु इसका उल्लेख सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास मे नही किया है। केवल 'सप्राप्तयौवनान् पुत्रान्' कहकर चुप हो जाते है जो गोदान तथा समावर्तन दोनों के लिए उपयुक्त है। इस समावर्तन सस्कार के पश्चात् ही सोमेश्वर ने पुत्र के विवाह सस्कार के सम्पादन का आदेश दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय के समाज मे तथा उनकी वश परम्परा मे धर्मशास्त्रों द्वारा कथित परम्परा का विशेष रूप से ध्यान रक्खा जाता था।

---

१ मानसो० ३।१२।१३०५। २ बौधा० ध० सू० १ २,७।

३ षोडशाद्वर्षाद्ब्राह्मणस्यानतीत कालो भवत्या द्वाविंशाद्राजन्यस्याचतुर्विंशाद्वैश्यस्येति ॥ पा० गृ० २।६।

आश्व०—आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीत काल आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य आचतुर्विंशाद् वश्यस्य। अत ऊर्ध्व पतितसवित्रीका भवति।

याज्ञ०—आषोडशादाद्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात्।

ब्रह्मक्षत्रविशा काल औपनायनिक पर ॥ ब्र० प्र० ३७।

विवाह

विवाह सस्कार का सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इनके द्वारा वर्णित विवाहविधि से यह विदित होता है कि वर के योग्य कन्या से ही पुत्र का विवाह किया जाता था। कन्या के विषय मे मानसोल्लास मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि वह रूप लावण्यवती हो, महाकुल मे उत्पन्न हो, अपनी ही जाति की हो 'समजातिनिरूपिता', उत्तम लक्षणो से युक्त हो, ऐसी ही कन्या के साथ विवाह करना चाहिए।

> रूपलावण्यवर्णाढ्या लक्षणै समलकृता ।
> महाकुलसमुत्पन्ना समजातिनिरूपिता ॥
> विवाहविधिना राजा रत्नभूषणभूषितान् ।
> कुमारान्प्रापयेत्कन्या धर्मार्थसुखमन्दिरम् ॥[1]

कुछ हस्तलिपियो मे 'रूपलावण्यवणाढ्यान्', 'समलकृतान्' आदि पाठ मिलते हैं[2] जिनसे ये कुमारों के विशेषण प्रकट होते है किन्तु प्रसग को देखते हुए वे पाठ अशुद्ध प्रतीत होते है। अभिलषितार्थचिन्तामणि की प्रति मे उत्तम लक्षणो को जानने के लिए विस्तारपूर्वक कन्या के शारीरिक अग प्रत्यग के लक्षणो का तथा नख शिख का वर्णन मिलता है जिसके अनुसार विचारपूर्वक कन्या के सब लक्षणो को देखकर विवाह करना चाहिए। कन्या के लक्षणों के साथ ही साथ पुरुषों के शारीरिक लक्षणो का भी वर्णन इसी बीच मे हुआ है। इस प्रकार विवाह के समय दोनो के लक्षणो को देखकर विवाह होना चाहिए। सोमेश्वर की ये पक्तिया वास्तव मे सोमेश्वर के शरीरविज्ञान के पाण्डित्य को प्रदर्शित करती हैं। मानसोल्लास की प्रति मे कन्या और पुरुष के लक्षणों का उल्लेख नहीं मिलता है।

इसी प्रकार के कन्याविषयक प्रसग अन्य धर्मग्रन्थों मे भी प्राप्त होते है। याज्ञवल्क्य ने कन्या के विषय मे कहा है कि जो रोग से हीन हो, जिसके भाई हो, जो अपने गोत्र और प्रवर की न हो और जो मातृकुल मे पाच पीढी से ऊपर हो और पितृकुल मे सात पीढ़ी से ऊपर हो उसके साथ विवाह करे। दश पुरुष से प्रसिद्ध वेदपाठियों के कुल से कन्या ग्रहण करे किन्तु कुष्ठादि सचारी-रोगयुक्त उत्तम कुल से भी कन्या न ग्रहण करे—

> अरोगिणी भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ।
> पचमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृत पितृतस्तथा ॥

---

१ मानसोल्लास ३।१२।१३०६–७।

२ अभिलषितार्थचिन्तामणि ३।१२।१३६४।

दशपूरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणा महाकुलात् ।
स्फीतादपि न सचारिरोगदोषसमन्वितात् ॥[1]

स्मृतियों मे ऐसे भी प्रसग प्राप्त होते है कि वर्ण की अनुलोमता से ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य की कन्या से, क्षत्रिय क्षत्रिय तथा वैश्य की कन्या से, वैश्य वैश्य का कन्या से ही विवाह कर सकता है। शूद्र केवल अपने वर्ण की ही कन्या से विवाह कर सकता है। शूद्रा के साथ विवाह करना उत्तम वर्ण वालों के लिए वर्जित बताया है।[2] मनु ने भी शूद्रा के साथ विवाह करने का निषेध किया है।[3] किन्तु सोमेश्वर ने अपनी पुस्तक मे जो 'समजातिनिरूपिता'[4] शब्द का प्रयोग किया है इससे विदित होता है कि उस समय के व्यक्ति अपनी अपनी जाति मे ही विवाह कर सकते थे। ब्राह्मण ब्राह्मण कन्या से, क्षत्रिय क्षत्रिय कन्या से, वैश्य वैश्य कन्या से तथा शूद्र शूद्र कन्या से। वास्तव मे यह समजाति का विवाह अत्यन्त उत्तम है। यह विवाह समाज मे वर्ण सकरता को रोकता है जिससे समाज मे शान्ति स्थापित रहती है क्योकि गीता मे वर्णसकर को कुल के नाश का कारण माना गया है।

तत्पश्चात् सोमेश्वर ने विवाह विधि का वर्णन किया है। उनका विवाह का वर्णन वर के कन्या के गृह पहुँच जाने पर ही प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम उन्होने कन्या के गृह मे बने हुए मण्डप तथा वेदी आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। कन्या के घर मे विचित्र चित्रों से चित्रित वितान ऊपर तना होता था। उसमे स्तम्भों पर सुन्दर आवरण रहता था। वह द्वार तोरणों से अलकृत होता था और भूमि गोमय (गोबर) से लिपी हुई होती थी। उसी के बीच में पुष्प की शोभा से सुशोभित मण्डप बना होता था और वेदी बनी होती थी। उसी के मध्य वर विवाह के लिए प्रवेश करता था। सर्वप्रथम नादीमुख श्राद्ध द्वारा कुल देवताओं का पूजन होता था। तत्पश्चात् वर का पूर्णरूप से आदर सत्कार होता था जो शुभ मुहूर्त को देखकर किया जाता था।

नान्दी श्राद्ध को वृद्धिश्राद्ध भी कहते हैं। याज्ञवल्क्य का कथन है कि वृद्धि के अवसर पर अर्थात् किसी मगलमय अवसर पर नान्दीमुख पितरों की पिण्डों से पूजा करनी चाहिए—

---

१ याज्ञ० स्मृ० विवाह प्र०, श्लो० ५३–५४।

२ तिस्रो वर्णानुपूर्वेण द्वे तथैका यथाक्रमम।
ब्राह्मणक्षत्रियविशा भार्या स्याच्छूद्रजन्मन ॥ याज्ञ०वि०प्र० श्लो० ५७।

३ मनुस्मृति ३।१७–१९।   ४ मानसोल्लास ३।१२।१३०६।

५ सकरो नरकायैव कुलघ्नाना कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषा लुप्तपिण्डोदकक्रिया ॥   गीता १।४२।

एव प्रदक्षिगावृत्को वृद्धौ ना दीमुखान् पितृन् ।
यजेत दधिकर्कन्धुमिश्रान् पिण्डान्यवै क्रिया ॥[1]

इसी श्लोक के सम्बन्ध मे मिताक्षरा टीका ने शातातप का उद्धरण देते हुए नान्दीश्राद्ध के तीन अगो का उल्लेख किया है—मातृश्राद्ध, पितृश्राद्ध तथा मातामहश्राद्ध—

मातु श्राद्ध तु पूर्वं स्यात्पितृणा तदनन्तरम् ।
ततो मातामहाना च वृद्धौ श्राद्धत्रय स्मृतम् ॥[2]

भविष्यत्पुराण में इस सम्बन्ध मे दो प्रकार के श्राद्धों का उल्लेख मिलता है—मातृश्राद्ध तथा नान्दीमुखपितृश्राद्ध । पद्मपुराण[4] मे आभ्युदयिक श्राद्ध तथा वृद्धिश्राद्ध को एक ही माना है किन्तु आभ्युदयिक श्राद्ध का क्षेत्र वृद्धिश्राद्ध की अपेक्षा अधिक विस्तृत है क्योंकि आभ्युदयिक श्राद्ध पूर्त काया (कुआ आदि खुदवाना) के अवसर पर भी हो सकता है । महाराज सोमेश्वर ने जातकर्म सस्कार के अवसर पर आभ्युदयिक श्राद्ध करने का आदेश दिया है किन्तु विवाह के अवसर पर नान्दीमुख श्राद्ध का ।

विष्णुपुराण,[5] मार्कण्डेयपुराण,[6] पद्मपुराण,[7] भविष्यपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तर मे नान्दीमुख श्राद्ध का सक्षिप्त विवरण मिलता है । साथ ही श्राद्ध के उपयुक्त विशिष्ट अवसरो का भी उल्लेख है । विष्णुपुराण[10] के अनुसार श्राद्ध के उपयुक्त विशिष्ट अवसर इस प्रकार है—विवाह, गृहप्रवेश, नामकरण, चूडाकरण, सीमन्तोन्नयन, पुत्रजन्म इत्यादि ।

विवाह के समय जो 'मधुपर्केण सम्मान्य' का प्रसग मानसोल्लास में प्राप्त होता है वह गृह्यसूत्रो के प्रसगो से मिलता है । पा० गृह्यसूत्र में भी वर के कन्या के घर जाने पर मधुपर्क से सम्मान करने का प्रसग प्राप्त होता है ।[11] मधुपर्क का प्रसग विशेष रूप से अतिथि को आदरपूर्वक मध्वादि प्रदान करने के रूप मे ही प्राप्त होता है । मधुपर्क का वैभाषिक दृष्टि से यही अर्थ है कि जिस उत्सव

---

१ याज्ञ० स्म० १।२५० ।
२ वही, मिताक्षरा टीका १।२५० ।
३ भविष्यपुराण १।१८५।१५ ।
४ पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ९।१९४ ।
५ विष्णु पु० ३।१३।२–७ ।
६ मार्कण्डेय पु० २८।४–७ ।
७ पद्म पु० सृष्टि खण्ड ९।१९४–१९९ ।
८ भविष्य पु० १।१८५।५–१३ ।
९ विष्णुधर्मोत्तर १।१४२।१३–१८ ।
१० विष्णु पु० ३।१३।५–७ ।
११ मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहित कास्ये काँस्येनार्यस्त्रिस्त्रि प्राह ।
पा० गृ० सू० १।३ ।

पर मधु आदि प्रदान किया जाय। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण मे मधुपर्क के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

'त होवाच कि विद्वानतो दाल्भ्यानामन्त्र्य मधुपर्कं पिबसीति।'[१] निरुक्त[२] मे भी 'जानते मधुपर्कं प्राह' ऐसा प्रसग प्राप्त होता है।

यह मधुपर्क उस ऋत्विक् को भी प्रदान किया जाता था जो यज्ञादि करवाने के लिए चुन लिया जाता था।[३] याज्ञवल्क्य स्मृति मे छ प्रकार के ऐसे व्यक्तियों के प्रसग प्राप्त होते है जो मधुपर्क के योग्य है—

प्रतिसवत्सर त्वर्घ्या स्नातकाचार्यपार्थिवा।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञ प्रत्यृत्विज पुन॥[४]

इसी प्रकार के प्रसग मानव[५] तथा खादिर[६] गृह्यसूत्र मे भी प्राप्त होते है। इनमे ऋत्विक्, आचार्य, राजा, स्नातक तथा अपने प्रिय मित्र के साथ ही साथ वर को भी मधुपर्क प्रदान करने का प्रसग प्राप्त होता है। बौधायन गृह्यसूत्र में—

तथैते अर्घ्या ऋत्विक्, श्वशुर पितृव्यो मातुल आचार्यो राजा वा स्नातक प्रियो वरोऽतिथिरिति॥[७]

प्रसग प्राप्त होता है जिसमे अतिथि का भी नाम आया है। इसी प्रकार का प्रसग गौ०, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, आप० धर्म सू०,[१०] बौधायनधर्मसूत्र,[११] गोभिल गृह्यसूत्र[१२] मे भी प्राप्त होता है। मनु ने मधुपर्क के विषय मे कहा है—

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान्।
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसवत्सरात्पुन॥[१३]

किन्तु राजा और स्नातक यज्ञकर्म मे लगे होने पर ही मधुपर्क के अधिकारी है अन्यथा नही।[१४] महाभारत मे भी मधुपर्क का वर्णन प्राप्त होता है।[१५] कुछ गृह्यसूत्रों में मधुपर्क का दान विवाह सस्कार का ही एक अग माना गया है।

---

१ जै० उ० ब्रा० २८।४। २ निरुक्त १।१६।
३ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत। आ० ग० १।२४।१–४।
४ याज्ञ० स्म० १।९।११०। ५ मानव ग० सू० १।९।१।
६ खा० ग० सू० ४।४।२१। ७ बौ० ग० १।२।६५।
८ गो० ग० ५।२५। ९ आप० ग० १।२।६५।
१० आप० ध० सू० २।३।८।५–६। ११ बौ० ध० सू० २।३।६३–६४।
१२ गो० ग० सू० ४।१०।२३–२४। १३ मनुस्मृति ३।११९।
१४ राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ।
मधुपर्केण सपूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थिति॥ ३।१२०। मनु०
१५ महाभारत सभापर्व ३६।२३–२४।

मधुपर्क के निर्माण के विषय मे भी अनेक स्थलो पर प्रसग प्राप्त होते है। आश्वलायन तथा आपस्तम्ब[1] गृह्यसूत्र मे तो केवल मधु, दधि अथवा स्वच्छ किया हुआ मक्खन तथा दही मिलाकर मधुपर्क बनाने का आदेश दिया गया है, किन्तु पारस्कर गृह्यसूत्र में दधि, मधु तथा घृत को मिलाकर बनाने का प्रसग प्राप्त होता है और कासे के बर्तन मे रखने का आदेश दिया गया है। हारीत गृह्यसूत्र मे दधि, मधु, घृत, जल तथा साथ साथ भूमि का अन्न मिलाकर मधुपर्क बनाने का उल्लेख हुआ है।[3]

कौशिक सूत्र मे ब्राह्म (मधु तथा दधि), ऐन्द्र (पायस की बनी), सौम्य (दधि तथा घृत), मौसल (सुरा तथा घृत-इसका प्रयोग केवल सौत्रामणि तथा राजसूय यज्ञ मे ही प्राप्त होता था), वरुण (जल तथा घृत), श्रावण (तेल तथा घृत), परिव्राजक (तेल तथा उसकी खली) आदि अनेक प्रकार के मधुपर्क बनाने का प्रसग प्राप्त होता है।[6] कुछ गृह्यसूत्रो के अनुसार मधुपर्क मे मास का भी सम्मिश्रण होता है। मानव गृह्यसूत्र[5] का कथन है कि वैदिक काल मे मधुपर्क मे मास भी रहता था। इसी कारण 'माता रुद्राणा ' आदि वैदिक मत्र अनेक गृह्यसूत्रों मे प्राप्त होते है जो गो के प्रति कहे गए है। किन्तु सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास मे मधुपर्क के निमाण के प्रति कुछ भी नही लिखा है। सम्भवत उनके समय मे मधुपर्क दधि घृतादि को ही मिलाकर बनता होगा अन्यथा वे अवश्य ही इस पर प्रकाश डालते।

मधुपर्क ग्रहण करवाने के पश्चात् मानसोल्लास मे वर को श्वेत वस्त्र तथा आभूषणादि पहनाने का विधान दिया गया है। तत्पश्चात् मुद्रिका से अलकृत वर वेदी के समीप जाता था। वही पर जीरकमिश्रित तण्डुल (चावलो) के सात ढेर लगाये जाते थे जिनका परस्पर परिवर्तन वर पूर्वाभिमुख होकर तथा कन्या पश्चिमाभिमुख होकर करती थी। वर कन्या दोनों अपने हाथों मे जीरकमिश्रित तण्डुल लेकर मण्डप में आते थे। उनके मध्य में एक परदा रहता था। शुभ समय आने पर वह परदा हटा दिया जाता था और दोनो अपने हाथों के तण्डुल को गिरा देते थे। इस समय मगलाष्टक का विधान होता था।

---

१ आप गृ० सूत्र १३।१०।

२ मधुपर्क दधिमधुघृतमपिहित कास्ये कास्येनान्यस्त्रिस्त्रि प्राह। १।३ पा० गृ० सू०।

३ हारीत गृ० सू० १।१२।१०-१२।

४ कौशिक सूत्र ९२। ५ मानव गृ० सू० १।९।२२।

६ मानव गृ० सूत्र १।९।२३, पा० गृ० १।३, बौ० गृ० १।२।५०।

यह प्रथा सम्भवत वर्तमान काल मे भी मराठा जाति के राजवशो मे बडौदा मे प्रचलित है। सोमेश्वरदेव कल्याण नगरी के रहने वाले थे। इसलिए उनके यहा प्रचलित विवाह पर दक्षिण की पद्धति का प्रभाव प्रतीत होता है।

कन्या का दाहिना हाथ वर के हाथ मे देकर पाणिग्रहण सस्कार होता है और कन्या धारापूर्वक पति को समर्पित की जाती है। इसी बीच कन्या तथा वर को एक तन्तु द्वारा लपेट दिया जाता है और वे लोग परस्पर पाच बार सूत्र की प्रदक्षिणा करते है। प्रदक्षिणा कर लेने के पश्चात् वह सूत्र सावधानी से उनके पैरों के नीचे से निकाल लिया जाता है। यह धर्मशास्त्रों मे वर्णित परम्परा से कुछ भिन्न है क्योकि शास्त्रों मे सप्तपदी का विधान है। वर तथा कन्या परस्पर सात बार अग्नि की प्रदक्षिणा करते है किन्तु मानसोल्लास मे वर्णित विवाह पद्धति के अनुसार वर-कन्या पाच बार ही सूत्र की प्रदक्षिणा करते है। तत्पश्चात् कुकुम से आलिप्त कङ्कण कन्या के हाथ मे बाधा जाता है और बाद मे ब्राह्मणों के कथनानुसार विवाह होम होता है। इस होम के हो जाने पर कनिष्ठा अगुली को रखकर पत्नी पति के पीछे पीछे चलकर तीन भ्रमण करती है और तण्डुलों के सातों पुजो को लाघकर दोनों आसन पर बैठ जाते है। इस समय पत्नी वर के वाम भाग मे बिठाई जाती है। तब दास दासियो को वस्त्र, रत्न, काचन, भूषण, गज, अश्व, गाय, भैंस आदि देकर सतुष्ट किया जाता है। यह इस बात को प्रकट करता है कि राजवशों में दास दासियों को भी उच्च स्थान प्राप्त था। उनकी प्रसन्नता का भी पूर्ण रूप से ध्यान रखा जाता था। ब्राह्मणो को भी इस अवसर पर वस्त्र, आभूषणादि से प्रसन्न किया जाता था। इसी अवसर पर वाद्यों द्वारा महानाद होता था जो मधुर शखध्वनि से पूर्ण होता था। मगलकारी वाद्यों के शब्द के साथ ही साथ मगलकारी गीतो तथा शुभ फल दायक वेदमत्रों का उच्चारण होता था। वन्दिगणो द्वारा शुभ अक्षरो से पूर्ण जयमाला का गान होता था और वर वधू परस्पर एक दूसरे के गले मे जयमाला डालते थे। सम्पूर्ण वातावरण शुभ निनाद से पूरित हो जाता था। अन्य सभी जनों को अन्न, ताम्बूलादि से प्रसन्न किया जाता था। दास वर्ग को मद्य द्वारा और पशु वर्ग को घास आदि प्रदान कर प्रसन्न किया जाता था।

इस प्रकार चार दिन पश्चात् यह विवाह सस्कार पूर्ण होता था। चौथे दिन वर वधू का रात्रि में शृङ्गार होता था और वर वधू को अपने घर लाने के लिए उद्यत होता था। इस अवसर पर हथिनियों के समूह आते थे जो स्वर्ण घटियों के शब्दो को प्रसारित करती थीं, उनका सिर सिन्दूर से अरुण रहता था तथा वे पुष्प के सदृश श्वेत दातों से युक्त तथा कर्णरूपी चामरो से युक्त होती थीं। ऐसे करिणी-समूहो पर राजपुत्र तथा उसके सेवक जन

चढते थे। उन्ही मे से मुक्ता, पुष्पक आदि धारण करने वाली हथिनी पर यत्नपूर्वक पत्नी को चढाया जाता था और स्त्रिया तथा वेश्याये भी उसके साथ रहती थीं जो समाज में अनिन्दित थी। इस प्रकार से हथिनियो पर चढकर पचमहाशब्दों के नाद से गुजित वातावरण मे वर अपने घर को चलता था। इस अवसर पर पुर की स्त्रियों तथा पुरवासियो द्वारा वर की पूजा होती थी। पत्नी को अपने घर लाकर उसको हथिनी पर से उतार कर दोनों पिता के चरणों में नमस्कार करते थे। इस प्रकार विवाह सस्कार सम्पन्न होता था।

धर्मशास्त्रो के अनुसार हिन्दू विवाह सस्कार के अन्तर्गत विशेष रूप से सात उत्सव आ जाते है—१–कन्यादान, २–विवाह होम, ३–पाणिग्रहण, ४–अग्नि परिणयन, ५–अश्मारोहण, ६–लाजाहोम, ७–सप्तपदी। हिन्दू विवाह मे इन सातो उत्सवों का यही क्रम है। शास्त्रो मे इन सभी अवसरो पर देवताओ की स्तुति, पति पत्नी के प्रति मन्त्रो के उच्चारण एव सम्पूर्ण जीवन के उत्तरदायित्व को दोनों को समझाने का विधान मिलता है। शास्त्रो मे वर्णित विवाह के प्रसग को पढकर ऐसा विदित होता है कि वर कन्या पर विवाह द्वारा एक महान् उत्तर दायित्व डाला जा रहा है। किन्तु सोमेश्वर ने भी उक्त विधानो मे से कन्यादान, विवाह होम, पाणिग्रहण तथा भ्रमण (पचपदी) का उल्लेख किया है।

सोमेश्वर ने इन सबको मनोरजन तथा उत्सव के साथ मनाने का आदेश दिया है। विवाह मे अपनी वश परम्परा की पद्धति का पुट देते हुए उत्साह, राग, रग, वाद्य गीत, नृत्यादि को भी विशेष स्थान दिया है। विवाह के वणन के प्रत्येक स्थल पर इनका वर्णन हृदय को उमगो से भर देने वाला है। विवाह पद्धति पर पूर्णरूपेण उनकी वश परम्परा का प्रभाव दृष्टिगत होता है क्योकि उसका वर्णन सोमेश्वर ने अपनी वश परम्परा के अनुसार ही किया है। मान सोल्लास में वर्णित विवाहहोम की अग्नि ही सम्भवत वैवाहिकाग्नि है क्योकि उसी के समक्ष वर वधू का पाणिग्रहण होता है। इन सभी उत्सवो के अतिरिक्त मानसोल्लास मे वर के विदा होने की विधि भी भिन्न है। इसमे हथिनियों पर वर वधू का वधू के घर से प्रस्थान करना बताया गया है किन्तु धर्मशास्त्रों मे वर वधू का प्रस्थान रथ पर होना बताया गया है।[१]

विवाहविधि के अतिरिक्त समाज में प्रचलित अन्य प्रकार के विवाहों का भी वर्णन सोमेश्वर ने अपने ग्रन्थ में किया है। स्मृति साहित्य में समाज के सुख एव शान्ति की सुरक्षा के लिए आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख हुआ

१ राज्ञो रथाक्षस्य भजे, रथस्य विमोक्षे, यानस्य अधोमुखादिभावे।
पा० गृ० १।१०।१।

है जो क्रमश ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच है।[1] इनका विस्तारपूर्वक वर्णन भी स्मृतियों में हुआ है। इनमे से सोमेश्वर ने केवल ब्राह्म, राक्षस, गान्धर्व, आसुर तथा पैशाच इन पाच विवाहों का वर्णन किया है।[2] जब पिता वर को बुलाकर कन्या को अलकारादि से विभूषित कर वर को देता था तो वह ब्राह्म विवाह कहलाता था। ब्राह्म विवाह का प्रसग मनु ने भी इसी प्रकार दिया है—

> आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
> आहूय दान कन्याया ब्राह्मो धर्म प्रकीर्तित ॥[4]

इसके बाद दैव, आर्ष, प्राजापत्य विवाह सम्भवत उस समय के समाज मे नही प्रचलित थे क्योंकि मानसोल्लास मे इनके नामो का भी उल्लेख नही हुआ है। जिसमे परस्पर अनुराग उत्पन्न हो जाने पर वर कन्या परस्पर मिल जाते थे वह गान्धर्व विवाह था। यह विशेष रूप से क्षत्रिय राजाओ के लिए मान्य था। जब समर मे शूर वीरो को हराकर राजा कन्या का हरण कर लेता था तब वह राक्षस विवाह कहलाता था। यह भी विवाह सोमेश्वर ने राजाओ के लिए अनिन्दित बतलाया है। पिता को धन द्वारा सतुष्ट कर जब कन्या का वरण किया जो जाय वह आसुर विवाह होता था। सम्भवत यह भी समाज मे कुछ अश तक प्रचलित था। इस विवाह को केवल क्षत्रिय जाति के लिए सोमेश्वर ने अनिन्दित बताया है। यहा राजा से नही वरन् 'क्षत्रिय जाति' से तात्पर्य है अर्थात् यदि कोई क्षत्रिय ऐसा विवाह किसी अवस्था मे करे तो वह निन्दित न था क्योंकि आगे चलकर इसी प्रसग मे सोमेश्वर ने ऐसा भी कह दिया है कि पैशाचादि विवाह जो धर्मशास्त्रो मे निन्दित है उन्हें राजा को कभी नहीं करना चाहिए। यह सोमेश्वर की सम्मति धर्मशास्त्रों से मिलती जुलती है क्योंकि धर्मशास्त्रो मे मनु आदि महर्षियों ने इन आठो प्रकार के विवाहो मे ब्राह्म, आर्ष, दैव, प्राजापत्य, गान्धर्व तथा राक्षस विवाह नियम के अनुकूल माना है, किन्तु आसुर तथा पैशाच विवाह को वर्जित बताया है।[6] इसके अनुसार सोमेश्वर ने भी इसी मत को अपनाया है।

---

१ मनुस्मृति ३।२७ ३७, याज्ञ० १।५८, गौतम० ५।६ १५, वशि० १७ ३५।
२ मानसोल्लास—पुत्रोपभोग १५१४—२२।
३ अलकृत्य निजा कन्या पित्रा यत्र निवेद्यते। मा० पु० १५१४।
४ मनु ३।२७।
५ विजित्य समरे शूरान् कन्या यत्र हरेन्नृप। मा० पु० १५७६।
६ न कर्तव्यौ कदाचन—मनु० ३।२४—२५।

तृतीय अध्याय

सोमेश्वर तथा राज्यशास्त्र

(क) राज्यप्राप्ति के उपाय तथा शासक की आत्मसम्पत्

भारत मे राजतन्त्रात्मक शासन प्रारम्भ से ही भारतीय जनता को प्रिय रहा है। इस राजतन्त्रात्मक शासन की धारा भारत के इतिहास मे प्राचीनतम काल से लेकर मुसलमानो के राज्योदय काल तक अबाध गति से प्रवाहित रही। यद्यपि समय के परिवर्तन के साथ साथ कभी कभी राजा की शक्ति के ह्रास के फलस्वरूप गणतन्त्रात्मक शासन की भी झलक दिखलाई पडती है किन्तु उसका राजतन्त्रात्मक शासन से भिन्न एव स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित न हो सका। मानसोल्लास हिन्दू राजतन्त्रात्मक शास्त्र के इतिहास के अन्तिम पृष्ठों में से है, क्योकि मुसल्मानों के आक्रमण से हिन्दू राजाओं की सत्ता उत्तरोत्तर न्यून होती गई।

राजतन्त्रात्मक शासन में राजा को ही सर्वोच्च पद प्राप्त होता है किन्तु राज्य का सर्वप्रमुख एव महत्वपूर्ण अग होने पर भी पाश्चात्य देशों के शासको की भाति भारतीय राजा कभी भी स्वच्छन्दता के साथ प्रजा पर निरकुश शासन करने का अधिकारी नहीं रहा। यदि राजा देश एव अपनी प्रजा का प्राण रहा है तो प्रजा भी उसकी चेतना रही है। प्रजा को सन्तुष्ट करना तथा उसका सुचारु रूप से पालन कर उसे सुखी बनाना ही राजा का सर्वप्रमुख उद्देश्य रहा है। इसी कारण प्राचीन भारतीय राजशास्त्रप्रणेताओं ने राजा की स्वेच्छा चारिता पर नियंत्रण रखने के लिए उस पर कतिपय योग्यताओं एव गुणों की प्राप्ति का प्रतिबन्ध लगा दिया है।

महाराज सोमेश्वर ने अपने ग्रन्थ मानसोल्लास का आरम्भ राज्य प्राप्ति के कारणो अथवा उपायों से किया। इस सम्बन्ध मे उन्होंने बीस उपायों का उल्लेख किया है। ये उपाय कुछ तो निषिद्धाचरण के रूप मे है और कुछ विहित कर्तव्यो के रूप मे। निषिद्धाचरण के अ तर्गत उन्होंने असत्य, परद्रोह, अगम्या आदि का वर्जन शासक के लिए अनिवार्य बतलाया है। विहित कर्तव्यों के अन्तर्गत दान, इष्टापूर्त, गोविप्रतर्पणादि लिया है। महाराज सोमेश्वर द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण शासक के लिए परमावश्यक है। इनका विचार है कि उपर्युक्त आचरण से रहित व्यक्ति शासन का अधिकारी नही हो सकता क्योंकि उन्होंने शुद्धाचरण को ही राज्यप्राप्ति का कारण माना है—

राज्यप्राप्तेनृपकुलभुवामित्युपायोपदेश ।[5]

सोमेश्वर का यह विचार पूर्ण रूप से कौटिल्य के विचारों से मिलता है। कौटिल्य ने इस प्रकार के आचरण को शासक की आत्मसम्पत् के अन्तर्गत लिया है। उनका कथन है कि आत्म सम्पत्ति से युक्त राजा गुणहीन अन्य प्रकृतियों को गुणसम्पन्न कर देता है तथा आत्मसम्पत्तिहीन राजा गुणयुक्त तथा अनुरक्त प्रकृतियों को भी नष्ट कर देता है—

सम्पादयत्यसम्पन्ना प्रकृतीरात्मवान्नृप ।
विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान् ॥[2]

इसीलिए दुष्ट प्रकृतिवाला तथा आत्मसम्पत्ति से हीन राजा चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी होता हुआ भी या तो अमात्यादि द्वारा मार डाला जाता है अथवा शत्रु के वशीभूत हो जाता है—

तत स दुष्टप्रकृतिश्चातुरन्तोऽप्यनात्मवान् ।
हन्यते वा प्रकृतिभिर्याति वा द्विषता वशम् ॥[3]

परन्तु आत्मसम्पन्न तथा नीतिमान् राजा स्वल्पभूमि का शासक होते हुए भी प्रकृति सम्पत्ति से युक्त होने के कारण समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है और कभी क्षीणता को नहीं प्राप्त होता—

आत्मवास्त्वल्पदेशोऽपि युक्त प्रकृतिसपदा ।
नयज्ञ पृथिवीं कृत्स्ना जयत्येव न हीयते ॥[4]

कौटिल्य ने शासक की आत्मसम्पत्ति के अन्तर्गत उसके अनेक गुणों का उल्लेख किया है। उनके कथनानुसार शासक को वाग्मी, प्रगल्भ, स्मृति, मति तथा बल से पूर्ण, उन्नतचित्त, वशी, दूरदर्शी, सुपात्र में दान देनेवाला, काम क्रोधादि से रहित तथा इसी प्रकार के अन्य गुणों से युक्त होना चाहिए। इनसे युक्त राजा आत्मसम्पन्न कहलाता है—

वाग्मी प्रगल्भ स्मृतिमतिवलवानुदग्र स्ववग्रह कामक्रोध लोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीन शुक्ल स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसम्पत् ।

यहा पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि शासक की आत्मसम्पत्ति का उल्लेख कौटिल्य ने सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को दृष्टि में रखकर किया है। सम्राट चन्द्रगुप्त सर्वगुणसम्पन्न शासक थे। उन्हीं को आदर्श मानकर कौटिल्य

१ कौटिलीय अर्थशास्त्र ६।१।१६ । २ वही ६ १।१७ ।
३ मानसोल्लास, १।२०।३०८ । ४ कौटिलीय अर्थशास्त्र, ६।१।१८ ।
५ वही ६।१।६ ।

ने प्रत्येक राजा मे उन गुणों का होना आवश्यक बतलाया है किन्तु सोमेश्वर स्वय राजा थे। उनके समक्ष किसी अन्य आदर्श राजा का दृष्टान्त न था। उनके राजनीति के सिद्धान्तों मे एक शासक की दृष्टि परिलक्षित होती है जब कि कौटिल्य की नीति राज्य के एक मन्त्री की नीति है।

भारतवर्ष मे प्राचीन काल से राजनीति और नीतिशास्त्र मे बडा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। भारत की प्राचीन शासन व्यवस्था मे राजा का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना गया है किन्तु राजा की श्रेष्ठता धमपालन एव शुद्ध आचरण पर निर्भर थी। ऋग्वेद के एक मन्त्र द्वारा स्पष्ट है कि यह भूमि इश्वर द्वारा आर्य्यों को प्रदान की गई है—

अह भूमिमददामार्याय।[१]

आर्य्य शब्द का अर्थ वैदिक साहित्य मे शुद्ध एव दिव्य आचरणवाले व्यक्ति से है। ऋग्वेद के अनुसार दिव्य आचरण वाला व्यक्ति ही पृथ्वी का शासक बन सकता है, चरित्रहीन व्यक्ति नही। अत राजा को 'वृषभो जनाना राजा'[२] कहा गया है। यजुर्वेद मे राजा मे कुछ गुणो का होना आवश्यक बतलाया गया है। उसके अनुसार राजा को जनप्रिय, बलवान, क्रियाशील, ससार को सुख देने वाला, प्रतापशाली तथा परोपकारी होना चाहिए।[३] इसी प्रकार अथर्ववेद मे राजा को सत्य, बल, दृढसकल्प, तप तथा धार्मिक कृत्यों से युक्त कहा गया है।[४]

रामायण और महाभारत मे इस सम्बन्ध मे बहुत से उदाहरण प्राप्त होते है। किष्किन्धाकाड मे लक्ष्मण राजा के गुणों का उल्लेख करते हुए कहते है कि बलशाली, उच्चकुल वाला, दयावान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ तथा सत्यवादी राजा ही ससार में यश का भागी होता है—

सत्त्वाभिजनसम्पन्न सानुक्रोशो जितेन्द्रिय ।
कृतज्ञ सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥[५]

महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि राजा को वसन्तऋतु के सूर्य के समान न तो अधिक मृदु, न अधिक कठोर होना चाहिए—

---

१ ऋग्वेद मण्डल ४ सूक्त २६ मत्र २।

२ ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १७७ मन्त्र १।

३ जनिष्ठाऽउग्र सहसे तुराय मद्रऽओजिष्ठो बहुलाभिमान । यजुर्वेद

४ सत्य बृहत्मुग्र दीक्षातपो ब्रह्मयज्ञ पृथ्वी धारयन्ति । अथववेद

५ किष्किन्धाकाड, सग ३४, श्लोक ७।

तस्मान्नैव मृदुर्नित्य तीक्ष्णो नैव भवेन्नृप ।
वासन्तार्क इव श्रीमान्न शीतो न च घर्मद ॥[1]

महाभारत मे आचरणहीन राजाओ के पदच्युत किये जाने के भी उदाहरण प्राप्त होते है। राजा ययाति के पुत्र यदु तथा राजा सगर के पुत्र असमज का निवासन चारित्रिक दोषो के कारण हुआ।

विष्णुपुराण के अनुसार ऋषियो ने राजा वेन का वध उसका चरित्र भ्रष्ट होने के कारण किया। विष्णुपुराण के अनुसार राजा मे सत्य, दानशीलता, लज्जा, क्षमाशीलता, धर्मज्ञता, कृतज्ञता, दयालुता, प्रियभाषिता, यज्ञपरायणता आदि गुण होने चाहिए।

मनु ने भी राजा के लिए दिव्य आचरण का होना अत्यन्त आवश्यक बतलाया है। मनुस्मृति मे ऐसे कई राजाओं का उल्लेख है जो अविनयशीलता के कारण राज्याधिकार से वचित कर दिए गए। वेन, नहुष, सुदास, यवन, सुमुख और निमि इसी कोटि मे आते है—

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिव ।
सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥

याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा मे कर्तव्यपरायणता, कृतज्ञता, विनयशीलता, त्याग, सत्यवादिता, उदारता आदि गुण होने चाहिए।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे कहा है कि राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए। उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इस षड्वर्ग से बचना चाहिए—

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजय कुर्वीत ।[5]

इस प्रकार प्राचीन भारत में राजनीति तथा नीतिशास्त्र एव धर्म मे बडा सम्बन्ध रहा है। कुछ पाश्चात्य राजनीति के विद्वानों ने भी इस सम्बन्ध को स्वीकार किया है। इस विषय पर अरस्तू तथा प्लैटो नामक पाश्चात्य विद्वान् तथा कौटिल्य के मतो मे बहुत साम्य मिलता है। प्लैटो ने अप्राप्य आदर्शों का उल्लेख किया है। अरस्तू ने आदर्शावस्था से वास्तविकता पर अवतरण की ओर ध्यान आकर्षित किया है और कौटिल्य ने आध्यात्मिक प्रयत्न द्वारा वास्तविकता से आदर्श की ओर आरोहण पर बल दिया है। मैक्यावेली

१ शान्तिपर्व अ० ५६ श्लोक ४० ।

२ वि० पु० खण्ड १ अ० १३ श्लोक ६२ ६३ । ३ मनुस्मृति ७।४१ ।

४ याज्ञवल्क्य १।३०९,३११ । ५ अर्थशास्त्र १।७।१ ।

६ Plato gives a picture of unattainable ideals Aristotle

(Machiavelli) नामक पाश्चात्य विद्वान ने राजनीति का क्षेत्र नीतिशास्त्र तथा धर्म से बिल्कुल पृथक् बतलाया है। यद्यपि वे नैतिक गुणों के महत्व को स्वीकार करते है किन्तु राजनैतिक स्थिति के लिए उनकी अनिवार्यता को स्वीकार नहीं करते।[1]

मानसोल्लास की प्रथम विशति मे वणित नीतिशास्त्र के नियम वास्तव मे सम्पूर्ण विश्व को नीति का पाठ पढाते है। अत सोमेश्वर ने अपनी पुस्तक के लिए जो 'जगदाचायपुस्तक'[2] विशेषण का प्रयोग किया है वह सर्वथा उपयुक्त है।

सोमेश्वर बडा नीतिज्ञ एव न्याय पूर्ण राजा था। अपने दरबार मे अनेक प्रकार के मुकदमो को आये हुये देखकर अथवा अपने समय के राजाओ के अन्यायपूर्ण शासन को देखकर ही सम्भवत उसने प्रथम विंशति मे २० प्रकार के गुणो एव अवगुणो का वर्णन किया है। इस विशति के अन्तर्गत उसने असत्य, परद्रोह, अगम्यागमन आदि ऐसे अवगुणों का वर्णन किया है जिनसे प्रत्येक राजा को दूर रहना चाहिए। इन अवगुणो को पढकर विदित होता है कि सोमेश्वरकालीन समाज मे ये सभी अवगुण सम्भवत अधिकाश रूप मे प्रचलित थे जिनसे खिन्न होकर सोमेश्वर ने उनको रोकने का प्रयत्न किया है। इसी कारण उन्होने प्रथम विशति के प्रारम्भिक भाग में (दोषों के) वर्जन (न करने) का उपदेश दिया है। तत्पश्चात् उन्होंने दान प्रिय वचन, इष्टापूर्त, अशेषदेवताभक्त गोविप्रतर्पणादि का वर्णन किया है। इनमे से असत्यवर्जनादि राजा के लिए अनिवार्य है और दानादि उसकी इच्छा पर निर्भर है। दानादि गुणों को उन्होने प्रत्येक राजा को प्रजा का प्रिय पात्र बनने के लिए अपनाने का उपदेश दिया है। इन गुणों को अपनाकर ही राजा प्रजा का प्रिय पात्र बन सकता है और उसकी नतिक उन्नति भी हो सकती है।

इन प्रसगों को पढकर ऐसा विदित होता है कि आस पास के छोटे-छोटे राजा प्रजा पर विशेष ध्यान न देते थे। उन राजाओ का नैतिक जीवन भी पतनोन्मुख हो रहा था। इसी कारण सोमेश्वर ने उन्हें आचार एव नीति की शिक्षा देने के हेतु इस विशति की रचना की। उनके विचार से प्रजा में शान्ति स्थापित करना राजा का सर्वप्रथम कर्तव्य है।

सोमेश्वर ने केवल अवगुणों के वर्जन एव गुणों के ग्रहण का आदेश देकर

---

talks of the descent of the ideal to the real, and Kautilya of the ascent of the real through spiritual effort to the ideal

—M V Krishna Rao 'Studies in Kautilya', P 169

१ वही PP 73–74 २ मानसोल्लास १।१।१०।

ही अपनी विंशति की समाप्ति नहीं कर दी वरन् उन्होंने प्रत्येक प्रसग को लेकर उसको उचित रूप से परिभाषा देकर तथा उसके फल को बतलाकर तब वर्जन एव ग्रहण का उपदेश दिया है। आगे के पृष्ठो मे प्रत्येक प्रसग पर अलग-अलग सक्षेप में विचार किया जायगा।

(१) निषिद्धाचरण

असत्य वर्जन

असत्यवर्जन का आदेश देते समय महाराज सोमेश्वर ने सर्वप्रथम असत्य की परिभाषा दी है। उनका कथन है कि काम, लोभ, भय आदि के कारण जो झूठ बोलता है उससे उत्पन्न पाप को असत्य कहते है।[१] इसके अतिरिक्त देवता के सम्मुख शपथ खाकर किसी बात को कहकर फिर मोहवश उसका उल्लघन करना भी असत्य कहलाता है—

देवतासन्निधौ वाक्य ब्रूते शपथपूर्वकम्।
तद्यो लघयते मोहात् तच्चासत्य प्रकीर्तितम्॥[२]

वास्तव मे सोमेश्वर की असत्य की यह परिभाषा बडी व्यावहारिक एव व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है। यह परिभाषा राजदरबार मे आए हुए मुकदमों के दृश्य प्रस्तुत करती है। दरबार मे जो मुकदमे आते थे उनमे अधिकाश व्यक्ति काम (किसी उपभोग सम्बन्धी वस्तु के लोभ), लोभ (धन धान्य के लोभ), भय (अपने से बलवान अथवा उच्च पद वाले व्यक्ति के भय), या क्रोधवश (किसी के प्रति द्वेष होने से उत्पन्न हुए क्रोधवश) साक्षिवादन (किसी का साथ देने की प्रतिज्ञा कर व्यर्थ मे झूठ बोलकर उसकी सहायता करना), तथा देवता के समीप (यह जानते हुए भी कि यह सत्य नहीं है फिर भी) शपथ खाकर मोहवश (किसी बडी वस्तु की प्राप्ति के मोह से) मिथ्या भाषण करते थे। इस प्रकार व्यक्तियो के मिथ्या भाषण से न्याय के मार्ग मे बडी रुकावट पडती है।

ये प्रसग सोमेश्वर के समय के न्यायालय का स्पष्ट चित्र उपस्थित करते है कि किस प्रकार व्यक्ति न्यायसभा में आकर झूठी गवाही देते थे। यहा तक कि देवताओं के समक्ष भी झूठी शपथ खा जाते थे जो न्याय के लिए बडा ही हानिकारक है। इन सब प्रसगो द्वारा सोमेश्वर ने अपने समय के सभी राजाओं को यह चेतावनी दी है कि वे ध्यानपूर्वक मुकदमे के प्रत्येक पहलू पर विचार

---

१ कामाल्लोभाद भयात क्रोधात् साक्षिवादात् तथैव च।
मिथ्या वदति यत् पाप तदसत्य प्रकीर्तितम ॥ मानसोल्लास १।१।३५।

२ वही १।१।३६।

विमर्श कर अन्त में अपना न्याय दे। समुचित न्याय होने पर ही प्रजा सुखी रह सकती है। इसके अतिरिक्त ये प्रसग सोमेश्वर कालीन समाज का सजीव चित्र उपस्थित करते हैं।

इस प्रकार के प्रसग धर्मशास्त्रो एव नीति-शास्त्र के ग्रन्था मे भी उपलब्ध होते है। मनु ने विवाद के अठारह मार्गों का उल्लेख किया है,[1] जिनके आधार पर न्यायालय मे विवाद उपस्थित होता था और न्याय करने के लिए वादी तथा प्रतिवादी दोनो पक्षों की गवाही होती थी। सोमेश्वर ने जो देवता के समक्ष शपथ खाने का वर्णन किया है उसका वर्णन शुक्रनीति मे भी हुआ है। शुक्र के निर्णय के दस अगों मे से सुवर्ण, अग्नि, जल आदि भी प्रमाण सिद्ध करने के साधन माने है।[2] वर्तमान काल मे भा न्यायालयो मे गगाजल द्वारा शपथ खिलाने की प्रथा है।

सोमेश्वर का कथन है कि उक्त किसी कारण से किया गया मिथ्याभाषण स्वर्ग मार्ग का बाधक, यश को नष्ट करनेवाला तथा अत्यन्त निन्दित कार्य है। अत मिथ्या भाषण को महान् पाप समझकर उसका त्याग कर देना चाहिए।[3]

असत्य की निन्दा ऋग्वेद मे बहुत का गई है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार महाराज सोमेश्वर ने असत्य भाषण को महापाप बतलाया है उसी प्रकार योगशास्त्र मे भी उसे महापातक कहा गया है—

> एकत्राऽसत्यज पाप, पाप नि शेषमन्यत।
> द्वयोस्तुलाविधृतयोराद्यमेवातिरिच्यते ॥

अर्थात् यदि असत्यजन्य पाप तथा सम्पूर्ण पाप को तुला पर रखा जाय तो असत्यजन्य पाप ही अधिक होगा।

सोमेश्वर ने असत्य को अयश उत्पन्न करने वाला बतलाया है। इस बात की पुष्टि निम्नलिखित पक्तियो से भी होती है—

> नासत्यवादिन सख्य न पुण्य न यशो भुवि।
> दृश्यते नापि कल्याण कालकूटमिवाश्नत ॥[5]

---

१ अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्। मनु ८।३।

२ शुक्रनीति ४।५५९।

३ अस्वर्ग्यमयशस्य च लोकद्विष्ट जुगुप्सितम।
अनृत नितरा पाप तस्मात् तत परिवर्जयेत ॥ मानसोल्लास १।१।३७।

४ अभ्रातरो न योषणो व्यन्त पतिरिपो न जनयो दुरेवा।
पापास सन्तो अनृता असत्या इद पदमजनता गभीरम् ॥ ऋग्वेद ४।५।५।

५ सुभाषितरत्नभाडागारम पष्ठ ८३।

अर्थात् विष को खाने वाले व्यक्ति की भाति असत्यवादी के लिए न मित्रता है, न पुण्य, न ससार मे यश और न कल्याण ही।

केवल यही नही, असत्य भाषण अविश्वास का मूल कारण है। वह कुवासना का घर, समृद्धि को हटाने वाला, विपत्ति का कारण, परवचना से तथा अपराध से पूर्ण और कुशल व्यक्तियों द्वारा वर्जित है—

असत्यमप्रत्ययमूलकारण कुवासनासद्म समृद्धिवारणम्।
विपन्निदान परवचनोजित कृतापराध कृतिभिर्विवर्जितम्॥[1]

यही कारण है कि कुशल शासक होने के नाते महाराज सोमेश्वर ने इसे सर्वथा वर्जित बतलाया है।

परद्रोह-वर्जन

असत्य भाषण के त्याग के पश्चात् महाराज सोमेश्वर ने परद्रोह (दूसरे से द्रोह) को त्यागने का आदेश दिया है। सर्वप्रथम उन्होने परद्रोह की परिभाषा दी है। असत्य की परिभाषा की भाति यह भी व्यावहारिक ज्ञान को स्पष्ट करती है। सोमेश्वर का कथन है कि दूसरों का ताडन (मारना), छेदन (काटना), क्लेशकरण (कष्ट देना), वित्तबन्धन (दूसरे के धन को मार लेना) ही परद्रोह कहलाता है—

ताडन छेदन क्लेशकरण वित्तबन्धनम्।
परेषा कुरुते यत् तु परद्रोह स उच्यते॥[2]

किसी की चुगली करना, दूसरे का प्रपच करना, किसी को गाली देना, ताने सुनाना, दूसरे के मर्म को प्रकट कर देना भी परद्रोह के अन्तर्गत आ जाता है—

पैशुन्य परवाद च गालिदान च तर्जनम्।
मर्मोद्घाट विधत्ते यत् परद्रोह स उच्यते॥[3]

इसके अतिरिक्त जो मूढात्मा व्यक्ति किसी का घर, द्वार, भूमि, खेत, वस्त्र, धन-धान्यादि बलपूर्वक हरण कर लेता है वह व्यक्ति भी परद्रोह ही करता है—

गृहद्वारवसुक्षेत्र वस्त्रधान्य धनादिकम्।
हरते यत् तु मूढात्मा परद्रोह स उच्यते॥[4]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि महाराज सोमेश्वर के दरबार में इन सब प्रकार के मामले निपटारे के लिए आते थे जिनसे दु खी होकर उन्होंने उनका यहा उल्लेख किया है। सोमेश्वर ने पैशुन्य (चुगुलखोरी) को द्रोह का

---

१ वही पृष्ठ ८३। २ मानसोल्लास, १।१।३८।
३ वही १।१।३९। ४ वही १।१।४०।

कारण माना है। मनु ने पैशुन्य तथा द्रोह को क्रोध से उत्पन्न आठ दोषो के अ तर्गत लिया है—

पैशुन्य साहस द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डश्चापि पारुष्य क्रोधजोऽपि गणोऽष्टक ॥[1]

सोमेश्वर के कथनानुसार दूसरो के द्वारा किया हुआ द्रोह अत्यन्त कष्ट प्रद एव दु सह होता है। यह घोर नरक का देने वाला है। इस कारण परद्रोह को त्याग देना चाहिए।

तस्मात् परकृतो द्रोहो यश्चातीव सुदु सह ।
तस्मान्नरकद घोर परद्रोह विवर्जयेत् ॥[2]

सोमेश्वर का विचार था कि राजा को ऐश्वर्यशाली पद प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की बातो से सदैव दूर रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रजा के सुख एव शान्ति की सुरक्षा के लिए उसे चाहिए कि वह इस प्रकार की परद्रोह-सम्बन्धी भावनाओ को जनता मे न फैलने दे।

सोमेश्वर द्वारा कथित परद्रोह को भावनाओ के बहुत से प्रसग मनुस्मृति मे अठारह विवाद एव द्रोह के विषयों के सम्बन्ध मे प्राप्त होते है। मनु द्वारा वर्णित अठारह विवाद के विषयो मे ऋणदान, धरोहर (निक्षेप), बिना स्वामी के वस्तु को बेच लेना, साझे का व्यापार, दिए हुए दान को पुन वापस ले लेना, वेतन न देना, प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण, क्रय विक्रय का विवाद, पशु, स्वामी तथा पशु पालक का विवाद, सीमा विवाद, कठोर वाणी का प्रयोग, मारपीट, चोरी, डाका, पर स्त्री ग्रहण, द्यूतादि आ जाते है। ये सर्वसाधारण अपराध है जिन्हे लोग प्रत्येक देश एव काल में करते है।

अगम्यावर्जन

'अगम्या' शब्द का अर्थ शब्दकोष के अनुसार 'अमैथुनार्हा नारी'[4] अथात् ऐसी स्त्री से है जिसके साथ किसी व्यक्ति को गमन नहीं करना चाहिए। पद्मपुराण के अनुसार पाणिग्रहण द्वारा प्राप्त स्त्री के अतिरिक्त सभी स्त्रिया अगम्या हैं—

यस्तु पाणिगृहीती ता हित्वान्या योषित व्रजेत् ।
अगम्यागमन तद्धि सद्यो नरककारणम् ॥[5]

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी अगम्या स्त्री की इसी प्रकार परिभाषा मिलती है। उसके

१ मनुस्मृति ७।४८।
२ मानसोल्लास १।१।४१।
३ मनुस्मृति ८।४७।
४ शब्दकल्पद्रुम, प्रथम खड।
५ पाद्मोत्तरखड ७५ अध्याय।

अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए केवल उसकी धर्मपत्नी गमन करने योग्य है। अन्य सभी स्त्रिया उस क्षेत्र के बाहर है—

> या या गम्या नृणामेव निबोध कथयामि ते।
> स्वस्त्री गम्या च सर्व्वेषामिति वदन्निरूपिता॥
> अगम्या च तदन्या या इति वेदविदो विदु।[1]

महाराज सोमेश्वर ने ऐसी स्त्रियो की सूची दी है जिनके साथ राजा अथवा किसी भी व्यक्ति को कभी गमन नही करना चाहिए। उसमे पुष्पिता (जिसका ऋतुकाल आरम्भ हुआ हो), पतिता (जो पतित हो), कन्या (अविवाहित लडकी), लिगिता (सन्यासिनी), श्रेष्ठजातिजा (श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न हुई स्त्री), परस्त्री, विधवा, सास, बहिन, तथा पुत्री आ जाती है—

> पुष्पिता पतिता कन्या लिगिना श्रेष्ठजातिजा।
> परस्त्री विधवा श्वश्रू स्वसा च दुहिता तथा॥[2]

इसके अतिरिक्त गुरु तथा ब्राह्मण की पत्नी, पुत्र, मित्र तथा राजा की स्त्री और भृत्य तथा बन्धुजनो की स्त्रियो के साथ भी गमन नही करना चाहिए—

> गुरुब्राह्मणपत्न्यश्च पुत्रमित्रनृपस्त्रिय।
> पत्न्यश्च भृत्यबन्धूनामगम्या परिकीतिता॥[3]

उपर्युक्त स्त्रियों के साथ गमन करना अनायुष्य का करने वाला तथा परलोक मे भी भय देने वाला है। अत उसे त्याग देना चाहिए—

> अनायुष्यकर नृणामगम्यागमन स्मृतम्।
> परलोके च भयद तस्मात् तत् परिवर्जयेत्॥[4]

इस प्रकार के अगम्यावर्जन के प्रसग पुराणो और स्मृतियो मे भी मिलते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे भी गुरुपत्नी, राजपत्नी, पुत्रवधू, पुत्री आदि को अगम्या कहा गया है। इनसे गमन करने वाला व्यक्ति सौ ब्रह्महत्या के पाप का भागी होकर कुम्भीपाक को प्राप्त होता है—

> गुरुपत्नी राजपत्नी सपत्नीमातर प्रसूम्॥
> सुता पुत्रवधू श्वश्रू सगर्भा भगिनी सतीम्।
> सोदरभ्रातृजाया च भगिनीभ्रातृकन्यकाम्॥
>
> एतास्वेकामनेका वा यो व्रजेन्मानवाधम।

---

१ ब्रह्मवैवत प्रकृति खड २७ अध्याय। २ मानसोल्लास, १।१।४२।
३ वही १।१।४३। ४ वही १।१।४४।

स मातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशत लभेत ॥
अकर्म्मार्होऽपि सोऽस्पृश्यो लोके वेदेऽतिनिन्दित ।
स याति कुम्भीपाक च महापापी सुदुष्करम् ॥[1]

पद्मपुराण के अनुसार परस्त्री गमन से मनुष्यो के नित्य, नैमित्तिक, काम्य, याग योग्य व्रतादि, क्षेत्रतीथो मे विचरण, स्वाध्याय, तप, दैव एव पैत्र कर्म्मादि सब निष्फल हो जाते है—

नित्य नैमित्तिक काम्य यागयोग्यव्रतादिकम् ।
क्षेत्रतीर्थाटन तस्मिन् वासो धर्म्मक्रियादिकम् ॥
स्वाध्यायादि तपो दैव पैत्र कर्म्म वरानने ।
यात्येतन्निष्फल सर्वं परस्त्रीगमनान्नृणाम् ॥[2]

इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति के करोड एकादशी व्रत निष्फल हो जाते है और नरक में उसका वास होता है । वह दूसरी योनि को प्राप्त होता है और उसकी कोटि पूजाएँ नष्ट हो जाती है—

परदाराभिगमनात् कोटि एकादशीव्रतम् ।
अपर किमु वक्तव्य निष्फल निरये स्थिति ॥
सत्य सत्य पुन सत्य सत्यमेव ब्रवीमि ते ।
परयोनौ पतन् बिन्दु कोटिपूजा विनाशयेत् ॥[3]

वामन पुराण में परदारोपगमन नरक का कारण बतलाया है और उससे मनुष्य पराभव को प्राप्त होता है । अत धर्मज्ञ व्यक्ति के लिए यह सर्वथा त्याज्य है—

त्याज्य धर्म्मान्वितैर्नित्य परदारोपसेवनम् ।
नयन्ति परदारा हि नरकानेकविंशतिम् ॥
सर्व्वेषामेव वर्णानामेष धर्म्मो ध्रुवोऽन्धक ॥
एव पुरा सुरपते ! देवर्षिरसितोऽव्यय ।
प्राह धर्म्मव्यवस्थान खगेन्द्रायारुगाय हि ।
तस्मात् सुदूरतो वर्जेत् परदारान् विचक्षण ।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञ परदारा पराभवम् ॥[4]

पुराणों की भाति स्मृतियों मे भी अगम्यावर्जन पर अत्यधिक प्रकाश डाला

---

१ ब्रह्मवैवत पुराण प्रकृति खड अध्याय २७ ।
२ पाद्मोत्तरखड अध्याय ७५ । ३ वही ।
४ वामनपुराण अध्याय ६३ ।

अत महर्षि शुक्र ने राजा को आदेश दिया है कि उसे कभी परस्त्रीसम्भोग के विषय मे काम दूसरे का धन अपहरण करने मे लोभ और प्रजा को दड देने मे क्रोध का उपयोग नही करना चाहिए—

परस्त्री-सगमे कामो लोभो नान्यधनेषु च ।
स्वप्रजादडे क्रोधो नैव धार्यो नृपै कदा ॥[१]

महाराज सोमेश्वर अगम्यागमन के सम्बन्ध मे केवल नैतिक उपदेश देकर चुप हो जाते है। वास्तव मे राजा होने के नाते उन्हे दड का विधान करना चाहिए था। सम्भवत ये दोष पास पडोस के राजाओ मे भी वर्तमान थे। मानसोल्लास मे राजा का स्त्री को अगम्या बतलाने से इस बात की पुष्टि होती है क्योकि राजा की स्त्री के साथ गमन करने का साहस अन्य राजा ही कर सकता है, साधारण व्यक्ति नहीं।

अभक्ष्यवर्जन

इस प्रकरण मे सोमेश्वर ने अभक्ष्य और अपेय वस्तुओं का उल्लेख किया है जिनका प्रयोग करना राजा के लिए विशेष रूप से हानिकारक है और नैतिक पतन करने वाला है। अभक्ष्य वस्तुओ के अन्तर्गत लशुन, गाजर (गृजन), प्याज (पलाडु), ग्राम मे उत्पन्न मुर्गा (ग्रामकुक्कुट), जगली सुअर (विड्वराह), कुकुरमुत्ता अथवा धरतीफूल (छत्राक), व्याघ्र, जम्बूक, मार्जार, भेडिया, कौआ, वानर, ऋक्ष, सिंह, गज, ऊँट, कबूतर, शुक, श्येन, हस, उलूक, बक, कोकिल, सारिका, गृध्र, कुत्ता, बकरी और भेड को छोडकर समस्त ग्रामीण पशु, कृमि, कीट, पतग, गिरगिट, मेढक, सर्प, नकुल, छिपकली, मगर तथा शिशुमार है।[२] अपेय वस्तुओं में गौडी, पैष्टी तथा माध्वी नाम की तीन प्रकार की मदिरा, बिना बछडे की गौ का दूध, भेड, ऊँटनी आदि का दूध है।[3]

उपर्युक्त पदार्थों को पाच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ अभक्ष्य शाक, २ अभक्ष्य पशु, ३ अभक्ष्य पक्षी, कीटादि, ४ अपेया सुरा तथा ५ अपेय दुग्ध।

अभक्ष्य शाक

अभक्ष्य शाकों के अन्तर्गत महाराज सोमेश्वर ने लशुन, गृजन, पलाडु

---

१ शुक्रनीति, १।११८। २ मानसोल्लास, १।१।४५ ४९।
३ वही १।१।५०५२।

तथा छत्राक (कुकुरमुत्ता) का नाम दिया है। मानसोल्लास मे इनका प्रसग मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्यस्मृति के प्रसगों से मिलता जुलता है। मनु ने लशुन, गृजन आदि द्विजातियों के लिए वर्जित बतलाया है—

लशुन गृञ्जन चैव पलाण्डु कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥[1]

एक अन्य स्थल पर उन्होंने छत्राक, लशुन, पलाण्डु, गृजन आदि का सेवन करने से द्विज के पतित होने का प्रसग दिया है—

छत्राक विड्वराह च लशुन ग्रामकुक्कुटम्।
पलाण्डु गृञ्जन चैव मत्या जग्ध्वा पतेद द्विज॥[2]

इसी प्रकार का प्रसग याज्ञवल्क्यस्मृति मे मिलता है। याज्ञवल्क्य का कथन है कि यदि कोई पलाण्डु, लशुन, गृञ्जन आदि खाये तो चान्द्रायण व्रत करे—

पलाण्डु विड्वराह च छत्राक ग्रामकुक्कुटम्।
लशुन गृञ्जन चैव जग्ध्वा चान्द्रायण चरेत्॥[3]

शखसहिता के अनुसार लशुन पलाण्डु, गृजनादि के भक्षण करने पर बारह रात्रि तक जल पिये—

लशुनपलाण्डुगृञ्जनकरजकिपाककुम्भीभक्षणे द्वादशरात्र पय पिबेत्।

देवल ने तो यहा तक कह दिया है कि लशुनादि के समान गन्ध, वर्ण, रसादि वाले समस्त पदार्थ द्विजातियों के लिए अभक्ष्य है—

लशुनादिषु ये तुल्या गन्धवर्णरसादिभि।
अभक्ष्यास्ते द्विजातीनाम्

उपर्युक्त प्रसगों में प्रयुक्त गृजन शब्द के अर्थ के विषय में बडा मतभेद है। यह शब्द साधारणतया तीन अर्थों मे प्रयुक्त होता है—१ गाजर, २ शलजम और ३ लहसुन। इनमे से शलजम अर्थ अधिक उपयुक्त है। धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार गृजन वह है जिसके मूल पर शिखा होती है। यह यवनों को बहुत प्रिय है। यह गाठदार मूलवाला होता है। शिखाकन्द, कन्द, डिडीरमोदक इसके अन्य नाम हैं। यह कडुवा, गर्म, दुर्गन्धयुक्त तथा गुल्मनाशक होता

१ मनुस्मृति ५, ५। २ वही ५।१९।
३ याज्ञवल्क्यस्मृति भक्ष्याभक्ष्यप्रकरण।
४ करवीरादि ४ वर्ग, अक १०।

है। इसके अतिरिक्त यह अग्नि को दीप्त कर रुचि बढाता है और हृद्य है तथा वात, पित्त, कफ सम्बन्धी रोगो को नाश करता है—

गृञ्जन शिखिमूल च यवनेष्ट च वर्तुलम्।
ग्रन्थिमूल शिखाकन्द कन्द डिडीरमोदकम् ॥
गृञ्जन कटुकोष्ण च दुर्गन्ध गुल्मनाशनम्।
रुच्य च दीपन हृद्य कफवातरुजापहम् ॥

ऊपर वर्णित गुणों मे से बहुत से जैसे कटुता, दुर्गन्ध, उष्णता, गोल होना आदि गाजर मे नही पाये जाते।

शब्दकल्पद्रुम मे भी गृञ्जन का अर्थ शलगम लिया गया। यथा—

गृञ्जनम् कलो०। मूलविशेष (विषदिग्धपशोर्मांसम्, इति मेदिनी) शलगम इति ख्यात। यवनेष्टम्। शिखाकन्दम्। कन्दम्। कटुत्वम्। उष्णत्वम्। कफवातरोगगुल्मनाशित्वम्। रुच्य, दीपन, हृद्य, दुर्गन्धम् ॥

मेदिनी कोष मे गृजन शब्द का अर्थ विष मे सना हुआ पशुमास है। अमरकोष के निम्नलिखित प्रसग मे गृजन शब्द लशुन का पयायवाची है—

लशुन गृजनारिष्टमहाकन्दरसोनका[1]।

किन्तु उसकी अमरविलोक नाम की टीका के अनुसार लशुन और गृजन मे आकार का भेद होने पर भी रस अथवा स्वाद समान होने के कारण अमरकोष मे इन दोनो को एक माना गया है।

उपर्युक्त सभी मतो का विवेचन करने पर गृजन शब्द का अर्थ बहुत गुणो के मेल के कारण शलजम ही अधिक उपयुक्त जान पडता है। इसके अतिरिक्त मनु, याज्ञवल्क्य, शख, देवल के उद्धृत प्रसगों मे लशुन शब्द का पृथक् प्रयोग हुआ है। अत गृजन का अर्थ लशुन भी नहीं ले सकते।

अभक्ष्य पशु

अभक्ष्य पशुओ मे महाराज सोमेश्वर ने ग्रामकुक्कुट, विडवराह, व्याघ्र, जम्बूक, मार्जार, वृक, वानर, ऋक्ष, सिंह, गज, उष्ट्र, कुत्ता तथा भेड, बकरी को छोडकर समस्त ग्रामज पशु बतलाया है। इस सम्बन्ध में भी सोमेश्वर ने पुराणो और स्मृतियो के सिद्धान्तों को अपनाया है। ग्रामकुक्कुट तथा बिड्वराह का प्रसग मनु आदि ने लशुनादि के साथ दिया है जिनका उल्लेख पहले किया गया है। सम्भवत उसी आधार पर सोमेश्वर ने भी इसका नाम लशुनादि के साथ लिया है।

मार्कण्डेयपुराण[2] में केवल पाच पचनख पशुओं के भक्षण का उल्लेख

---

१ अमरकोश, २, ४ १४८।　　२ मा० पु० ३५।२४।

है। मनुस्मृति के अनुसार श्वाविध (सेह), शल्यक, गोधा, खड्ग, कछुआ तथा खरगोश ये पाच नख वाले पशु तथा ऊट को छोडकर एक ओर दात वाले भक्ष्य हैं, शेष अभक्ष्य—

श्वाविध शल्यक गोधा खड्गकूर्मशशास्तथा।
भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्राश्चैकतोदत ॥[1]

याज्ञवल्क्यस्मृति मे भी केवल सेधा, गोधा (गोह), कच्छप, शल्लक (साही) और खरगोश ये ही पाच नख वाले पशु भक्ष्य बतलाये गये है, शेष अभक्ष्य है—

भक्ष्या पचनखा सेधागोधाकच्छपशल्लका।
शशश्च मत्स्येष्वपि हि सिहतुडकरोहिता ॥[2]

इसी प्रकार गौतम,[3] आपस्तम्ब,[4] वशिष्ठ आदि धर्मसूत्रा मे भी ऐसे प्रसग प्राप्त होते है। इन सभी मे वर्जित पशुओं को खाने से द्विजाति का पतन होने का उल्लेख आया है। शखसहिता के अनुसार गौ, अश्व, गज, ऊट, [5]शशादि को छोडकर पचनख वाले पशु तथा ग्रामकुक्कुट के भक्षण से एक सवत्सर तक व्रत करे—

गामश्व कुञ्जरोष्ट्रौ च सर्वान् पचनखास्तथा।
क्रव्याद कुक्कुट ग्राम्यम् भुक्त्वा सवत्सर व्रतम् ॥

विष्णुसहिता का कथन है कि विड्वराह, ग्रामकुक्कुट, नर तथा गोमास के भक्षण से द्विजातियों को प्रायश्चित्त करके पुन सस्कार करना चाहिए—

विड्वराहग्रामकुक्कुटनरगोमासभक्षणेषु सर्वेष्वेव द्विजातीना प्रायश्चित्तान्ते भूय सस्कार कुर्यात्।

अभक्ष्य पक्षी, कीटादि

अभक्ष्य पक्षियो के अन्तर्गत महाराज सोमेश्वर ने वायस, पारावत, शुक, श्येन, हस, उलूक, बक, कोकिल, सारिका तथा गृध्र लिया है। कीटादि के सम्बन्ध में उनका कथन है कि कृमि, कीट तथा पतगों का भक्षण नहा करना चाहिए—

कृमि कीट पतगाश्च न भक्ष्या परिकीर्तिता।[6]

इसके अतिरिक्त उन्होंने शरट, दर्दुर, सर्प, नकुल, गृहगोधिका, मकर तथा शिशुमार का नाम लिया है—

१ मनुस्मति ५ १८। २ याज्ञ० भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण ७७।
३ गौ० १७।२७ ३१। ४ आप० ५।१७।३५।
५ व० १४।३९ ४०। ६ मानसोल्लास ११।१।४८।

शरटो दर्दुर सर्पो नकुलो गृहगोधिका ।
मकर शिशुमारश्च नैव भच्या प्रकीर्तिता ॥[१]

उपर्युक्त अभक्ष्य पक्षियों का उल्लेख गौतम[२] आपस्तम्ब[३], वशिष्ठ,[४] विष्णु[५] आदि धर्मसूत्रो मे तथा मनु और याज्ञवल्क्यस्मृति मे हुआ है। मनुस्मृति मे कच्चा मास खाने वाले सभी पक्षी, ग्राम में निवास करने वाले पक्षी, परेव, हस, चकवा, सारस, तोता, मैना आदि का भक्षण वर्जित है—

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिन ।
अनिर्दिष्टाश्चैकशफाष्टिट्टिभ च विवर्जयेत् ॥
कलविक प्लव हस चक्राग ग्रामकुक्कुटम् ।
सारस रज्जुबाल च दात्यूह शुकसारिके ॥[६]

याज्ञवल्क्य मे भी इन्हा पक्षियों का भक्षण वजित है—

क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान् ।
सारसैकशफान् हसान्सर्वांश्च ग्रामवासिन ॥
कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान् ।
वृथाकृशरस यावपायसापूपशष्कुली ॥
कलविक सकाकोल कुरर रज्जुदालकम् ।
जालपादान्खञ्जरीटानज्ञाताश्च मृगद्विजान् ॥[७]

इसमे वायस, पारावत, शुक, बाज, हस, बक, आदि पक्षी तथा कृमि कीटादि के नाम आ जाते हैं। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य मे वर्णित बहुत से अभक्ष्य पक्षियों के नाम सोमेश्वर ने नहीं दिए हैं। सम्भवत वे पक्षी सोमेश्वर कालीन समाज मे खाए जाते होंगे।

शखसहिता मे हस, काक, शुक, सारिका आदि का भक्षण करने पर एक मास तक व्रत करने का तथा उन्हे पुन न भक्षण करने का आदेश दिया गया है—

हस मद्गु च काकोल काक च खजरीटकम् ।
मत्स्यादाश्च तथा मत्स्यान् बलाका शुकसारिके ॥

---

१ वही ११।४९ । २ गौ० १७।२९ ३४ ३५ ।
३ आप० धम सू० ५।१७, ३२ ३४ । ४ वशिष्ठ० १४।४८ ।
५ वि० ५१।२९ ३१ । ६ मनुस्मति ५।११ १२ ।
७ याज्ञ० भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण ७२–७४ ।

चक्रवाक प्लव कौल मडूक भुजग तथा ।
मासमेक व्रत कुर्य्यात् भूयश्च तन्न भक्षयेत् ॥

इसी प्रकार विष्णुसहिता के अनुसार यदि कोई शुक, सारिका, कोकिलादि का भक्षण करे तो तीन रात्रि उपवास करे—

कलविकहसमद्गुचक्रवाकरज्जुबालसारसदात्यूहशुकसारिकाभासचाषकाकबलाकाकोकिलखजरीटाशने त्रिरात्रमुपवसेत् ।

अभक्ष्य पक्षियों के अभक्षण के साथ हारीतसहिता में कृमि, कीट, पतगादि के अभक्षण का उल्लेख है । यदि कोई इनका भक्षण करता है तो वह तीन रात्रि गोमूत्र तथा गोमय का आहार करे—

कृमिकीटपिपीलिकाजलौकापतगास्थिप्राशने गोमूत्रगोमयाहारस्त्रिरात्रेण प्रयतो भवेत् ।

पुराणादि मे कुछ व्यक्तियों के लिए मास बिल्कुल वर्जित है । ब्रह्मपुराण के अनुसार मुमूर्षु यति के लिए मास का सर्वथा निषेध किया है—

न भक्ष्य यतिना मास कदाचित्तु मुमूर्षुणा ।

इसी प्रकार भागवत में स्त्रियों के लिए तथा पुरुषमेध करने वालो के लिए मास वर्जित है--

ये त्विह वै पुरुषा पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशव खादन्ति ताश्च ताश्च ते पशव इह ये निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगण सौनिका इव स्वधितिनावदायासृक् पिबन्ति इति ।

इसी प्रकार कुछ विशेष महीने अथवा तिथियों मे मास वर्जित है, यथा कार्तिक में—

न मत्स्य भक्षयेन्मास न कौर्म नान्यदेव हि ।
चडालो जायते राजन् ! कार्तिके मासभक्षणात् ॥[1]

तिथियों मे पर्व, षष्ठी, अष्टमी, पचदशी तथा दोनो पक्षों की चतुर्दशी मास भक्षण के लिए वर्जित है—

स्त्रीतैलमाससभोगी पर्व्वस्वेतेषु मानव ।
विण्मूत्रभोजन नाम नरक प्रतिपद्यते ॥[2]

षष्ठ्यष्टमी पचदशी उभे पक्षे चतुर्दशी ।
अत्र सन्निहित पाप तैले मासे भगे क्षुरे ॥[3]

---

१ आ० त० ना० पु० । २ वि० पु० । ३ स्मति ।

अपेया सुरा

महाराज सोमेश्वर ने गौडी, पैष्टी और माध्वी नाम की तीन प्रकार की सुराओं को अपेय बतलाया है और साथ ही साथ यह भी कहा है कि जितने भी मदनीय पदाथ हैं उन सबको त्याग देना चाहिए।

गौडी सुरा गुडादि से बनाई जाती है। इसमे तीक्ष्णत्व, उष्णत्व, मधुरत्व, वातनाशित्व, पित्तबलकारित्व, दीपनत्व, पथ्यत्व, तथा कान्तितृप्तिकारित्व लक्षण पाए जाते है। माध्वी सुरा मधु आदि से तैयार की जाती है। मधुरत्व, नात्युष्णत्व, पित्तवातनाशित्व, पाण्डुकामलगुल्मार्श प्रमेहशमत्व इसके गुण है। पैष्टी सुरा विविध धान्यो से तैयार की जाती है। इसमें कटुत्व, अम्लत्व, तीक्ष्णत्व, गौडीसमत्व, वातहरत्व, कफकरत्व, ईषत्पित्तकरत्व तथा मोहनत्व गुण पाये जाते है। इनका उल्लेख शब्द कल्पद्रुम में इस प्रकार मिलता है—

धातकीरसगुडादिकृता मदिरा गौडी। तद्गुणा यथा। तीक्ष्णत्वम्। उष्णत्वम्। मधुरत्वम्। वातनाशित्वम्। पित्तबलकारित्वम्। दीपनत्वम्। पथ्यत्वम्। कान्तितृप्तिकारित्व च।

पुष्पद्रवादिमधुसारमयी मदिरा माध्वी। तद्गुणा यथा। मधुरत्वम्। नात्युष्णत्वम्। पित्तवातनाशित्वम्। पाण्डुकामलगुल्मार्श प्रमेहशमनत्व च।

विविधधान्यजाता मदिरा पैष्टी। तद्गुणा यथा। कटुत्वम्। अम्लत्वम्। तीक्ष्णत्वम्। गौडीसमत्वम्। वातहरत्वम्। कफकरत्वम्। ईषत्पित्तकरत्वम्। मोहनञ्च। राजनिघण्टु के मद्यप्रकरण में ऋतुविशेष मे इन सुराओं के पान करने का उल्लेख है। उसके अनुसार गौडी शिशिर मे, पैष्टी हेमन्त और वर्षा में तथा माध्वी शरद्, ग्रीष्म एव वसन्त मे पीना चाहिए—

गौडी तु शिशिरे पेया पैष्टी हेमन्तवर्षयो।
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु माध्वी ग्राह्या न चान्यथा॥

पुराणादि में इन तीनो प्रकार की सुराओं की बडी निन्दा की गई है और ये द्विजातियों के लिए वर्जित कही गई है। पैष्टी के पान के विषय मे भविष्यत्पुराण मे कहा गया है कि इसका पान करने से कठिन से कठिन तप करना पडता है और पुन यज्ञोपवीत सस्कार करने से शुद्धि होती है—

अकामत सुरा पीत्वा पैष्टीं मत्कुलनन्दन।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कृत्वा वै पुन सस्कारत शुचि॥

इसी प्रकार गौडी मदिरा का एक बार अज्ञान से सेवन करने पर भी कठिन तप तथा घृत प्राशन करना पडता है—

सकृत् पीत्वा तथा गौडीमज्ञानात् सुरसत्तम।

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ विहितौ घृतप्राशनमेव च॥ भविष्य

ब्राह्मण यदि अज्ञान से गौडा अथवा मा त्री का पान करे तो कठिन तप करना पडता है—

गौडीमज्ञानत पीत्वा ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रिय ।
तप्तकृच्छ्रन्तु वै कृत्वा पुन सस्कारत शुचि ॥
माध्वी पीत्वा महाबाहो ! अज्ञानाद् द्विजसत्तम ।
शुद्ध्येत तप्तकृच्छ्रेण विकर्माभ्यासनात्तथा ॥
रेतोमूत्रपुरीषाणा गौडीमाध्व्योश्च प्राशने ।
क्रव्यादपशुविष्ठाना सस्काराच्छुद्धिरिष्यते ॥

बृहस्पति का मत है कि गौडी, माध्वी तथा पैष्टी सुरा का पान करने पर ब्राह्मण तप्त कृच्छ्र, पराक तथा चान्द्रायण व्रत का आचरण करे—

गौडी माध्वी सुरा पैष्टी पीत्वा विप्र समाचरेत् ।
तप्तकृच्छ्र पराक च चान्द्रायणमनुक्रमात् ॥

यमसहिता ने इन सुराओ को द्विजातियो के लिए सर्वथा वर्जित बतलाया है—

एका माध्वी च गौडी च पैष्टी च त्रिविधा सुरा ।
द्विजातिभिर्न पातव्या कदाचिदपि कर्हिचित् ॥

मत्स्यसूक्त महातन्त्र मे वर्णित बारह प्रकार की मदिराओ मे पैष्टी सबसे अधम मानी गई है और माध्वी तथा गौडी मध्यम कोटि का मानी गई है। इनके अतिरिक्त अन्य मदिराये उत्तम कोटि की है—

नारिकेल च खार्ज्जूर पानस च तथैव च ।
ऐक्षव मधुक टाक ताल चैव च माक्षिकम् ॥
द्राक्षन्तु दशम ज्ञेय गौड चैकादश स्मृतम् ।
पैष्टन्तु द्वादश प्रोक्त सर्वेषामधम स्मृतम् ॥
मध्यम मधुज गौड शेषञ्चोत्तममिष्यते ।[1]

इनमे से गौडी और पैष्टी सुरा 'हीनसस्कृता' मानी गई है और शूद्र के लिए भी वर्जित है—

शूद्रोऽपि गौडी पैष्टी च न पिबेद्धीनसस्कृताम् ॥[2]

पैष्टी के पान से ब्राह्मण मृततुल्य हो जाता है। माध्वी और गौडी भी उसके लिए वर्जित है। क्षत्रिय और वैश्य के लिए भी गौडी और माध्वी का पान शोभा नही देता—

---

१ श्रीमत्स्यसूक्ते महातन्त्रे चतुर्विंशतिसाहस्रे ३६ पटल ।

२ वही ।

पैष्टीपाने ब्राह्मणस्य मरणान्तिकमुच्यते।
माध्वीगौडीसुरापाने द्वादशाब्द विधीयते॥
इतरेषान्तु पानेन शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु।
राजन्यवैश्ययोश्चापि गौडी माध्वी न शस्यते॥
मोहात् क्षत्रश्च वैश्यश्च पीत्वा कृच्छ्रद्वय चरेत्॥[1]

अपेय दुग्ध

अपेय दुग्ध के अन्तर्गत सोमेश्वर ने बिना बछडे वाली गौ, तथा जिसको ब्याये दस दिन न हुए हों ऐसी गौ, दूसरे बछडे द्वारा लगने वाली गौ तथा जो गाभिन हो (वृषभेण क्रान्ता) ऐसी गौ के दुग्ध का उल्लेख किया है—

अवत्साया पयो धेनोर्दशाहाभ्यन्तरे च यत्।
वत्सान्तरप्रस्रविन्या क्रान्ताया वृषभेण च॥[2]

साथ ही सोमेश्वर ने भेड तथा हस्तिनी का दूध भी अपेय बतलाया है—

आविक कारभ क्षीरमपेय परिकीर्तितम्।[3]

मानसोल्लासकार के ये प्रसग धर्मशास्त्र के प्रसगों से मिलते-जुलते है। मनु ने दस दिन तक प्रसूता, बिना बछडे वाली एव सधिनी गौ तथा भेड का दूध अपेय बतलाया है—

अनिर्दशाया गो क्षीरमौष्ट्रमैकशफ तथा।
आविक सधिनीक्षीर विवत्सायाश्च गो पय॥[4]

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने सधिनी, बिना बछडे वाली तथा जिसको ब्याये दस दिन हुए हो ऐसी गौ तथा भेड आदि का दूध वर्जित बतलाया है—

सन्धिन्यनिर्दशावत्सगोपय परिवर्जयेत्।
औष्ट्रमैकशफ स्त्रैणमारण्यकमथाविकम्॥[5]

मनु और याज्ञवल्क्य ने जो 'सधिनी' शब्द का प्रयोग किया है वह तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है—ब्यायी हुई गौ अथवा एक बार लगने वाली अथवा जो दूसरे के बछडे से दुही जावे। सोमेश्वर ने 'वत्सान्तरप्रस्रविन्या' शब्द सम्भवत 'सन्धिनी' शब्द के तृतीय अर्थ के आधार पर प्रयुक्त किया है।

अगिरिस, यम तथा विष्णु सहिताओं में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। अगिरिस ने दस दिन तक प्रसूता गौ का उल्लेख किया है—

१ वही।
२ मानसोल्लास ३।१।६१।
३ वही ३।१।५२।
४ मनु० ५।८।
५ याज्ञवल्क्य भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण, श्लोक ७०।

गो क्षीरमनिर्दशाया सूतके अजामहिष्योश्च नित्यमपेयमौष्ट्रमेकशफ च स्यन्दिनीना च याश्च वत्सव्यपेता ।

यमसहिता मे अवत्सा तथा अन्य बछडे से लगने वाली गौ का दूध वजित बतलाया है—

वर्जयेद्गोरवत्साया पयश्चैवान्यवत्सया ।
आरण्याना च सर्वेषा वर्जयित्वा तु माहिषम् ॥

भेड के दूध की अपेयता का प्रसग वायुपुराण मे भी प्राप्त होता है, यद्यपि उसमे भैस का दूध भी वजित बतलाया है—

आविक मार्गमौष्ट्र च सर्वमेकशफ च यत् ।
माहिष चामर चैव पयो वर्ज्यं विजानता ॥

अभक्ष्य तथा अपेय पदार्थो के सम्बन्ध मे जो ऊपर तुलनात्मक विवेचन किया गया है उससे पता चलता है कि कुछ पदार्थों को सभी ग्रन्थों ने अभक्ष्य अथवा अपेय बतलाया है किन्तु प्रत्येक मे कुछ विशेष पदार्थ भी पाए जाते हैं। वास्तव मे वस्तुओ की अभक्ष्यता अथवा अपेयता कई कारणो से होती है। वाचस्पत्य के अनुसार यह वस्तु के स्वभाव के अनुसार, समय के अनुसार, देशादि निमित्त के अनुसार अथवा स्वामिविशेषादि के कारण होता है—

स्मृतिनिषिद्धभक्षणे लशुनादौ अभक्ष्यत्वञ्च वस्तुस्वभावकृत, कालकृत, देशादिनिमित्तकृत, द्रव्यान्तरयोगकृत, स्वामिविशेषकृत, चडालादिस्पर्शदर्शनादिदोष कृत, पात्रविशेषपाकादि कृतम्, अधिकारिविशेषकृत चेति तत्तदुपाधिकृतम्, तत्र केषाञ्चित् नञादिना केषाञ्चिच्च तत्तद्भक्षणे प्रायश्चितोपदेशेनाभक्ष्यत्व स्मृत्यादावुक्तम् ।[1]

असूयावर्जन

अमरकोष के अनुसार असूया का अर्थ गुणों में दोष को प्रकट करना अथवा दूसरे के गुण में दोष का आरोप करना है —

गुणेषु दोषाविष्करणम् । परगुणे दोषारोपणम् ।

सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार भी असूया का यही अर्थ है—

असूया परगुणेषु दोषाविष्करणम् ।

इसके अतिरिक्त 'हर्षासूयाविषादा.' आदि के द्वारा असूया की गणना व्यभिचारिभावों के अन्तर्गत की गई है।

महाराज सोमेश्वर के अनुसार दूसरे व्यक्ति की समृद्धि, रूप, शौर्य, उदारता,

---

१ वाचस्पत्यम् प्रथम खड पृ० २७४ ।

कलाकुशलता, शील, सौभाग्य तथा गुणसम्पत्तियो से असहिष्णु होना ही असूया है। उनका कथन है कि इस प्रकार जो दूसरे की समृद्धि आदि को देखकर असहिष्णु होता है वह यमलोक को प्राप्त होता है और जब तक इस ससार मे रहता है तब तक निन्दा का पात्र होता है। इसलिए किसी को असहिष्णु नहीं होना चाहिए।

साहित्यदर्पण मे असूया के लक्षण ठीक इसी प्रकार वर्णित है। साहित्य दर्पणकार के कथनानुसार दूसरे के गुण ऋद्धि आदि के विषय मे औद्धत्य के साथ असहिष्णुता ही असूया है और यह दोषो की घोषणा, भ्रूविभेद, अवज्ञा, क्रोध, इगित आदि द्वारा प्रकट होती है—

असूयान्यगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता ।
दोषोद्घोषभ्रूविभेदावज्ञाक्रोधेगितादिकृत् ॥

मनु का भी कथन है कि ईर्ष्या की उत्पत्ति क्रोध से होती है। इसका स्थान क्रोधजन्य दस अवगुणो मे है—

पैशुन्य साहस द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दडजञ्च पारुष्य क्रोधजो दशको गण ॥[1]

असूया दोष प्रत्येक व्यक्ति के लिए विशेषत राजा के लिए बडा हानिकारक है। राजा तभी तक अपने राज्य मे सफलतापूर्वक राज्य कर सकता है जब तक उसके हृदय मे ईर्ष्या का प्रवेश न हुआ हो। ईर्ष्या सूत्र का प्रवेश होते ही राजा का हृदय मलिन हो जाता है। उसकी ज्ञानेन्द्रियो पर आवरण पड जाता है। हमारे धर्मशास्त्रो ने राजा के सभी गुणो मे सहिष्णुता भी एक महान गुण माना है। इस गुण के वर्तमान होने से दूसरे की समृद्धि को देखकर राजा प्रसन्न ही होता है, दु खी एव ईर्ष्यापूर्ण नहीं। सोमेश्वरदेव ने 'सर्वसत्त्वहितैषिता' कहकर राजा के सहिष्णुत्व को स्वीकार किया है।

पतितसगवर्जन

पतित शब्द का अर्थ उस व्यक्ति से है जो अपने धर्म, शास्त्रविहित कर्म अथवा सदाचारादि से भ्रष्ट हो जाता है—

पतितो भ्रष्टो भवति स्वधर्मात् शास्त्रविहितकर्मण सदाचारादिभ्यो वा य

ऐसे व्यक्ति के लक्षणों का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण म बडे सुचारु रूप से हुआ है। उसके अनुसार जो व्यक्ति अपने धर्म को छोडकर दूसरे धर्म का आश्रय लेता है वही पतित कहलाता है—

---

१ मनु० ७।४८।

स्वधर्म य समुच्छिद्य परधर्म समाश्रयेत् ।
अनापदि स विद्वद्भि पतित परिकीर्तित ॥

महाराज सोमेश्वर ने महापातक दोष से युक्त, धर्मलोपी सन्यासी, चाडाल तथा अन्त्यज जातिया को पतित माना है और कहा है कि उनकी सगति करने वाला व्यक्ति भी पतित हो जाता है—

महापातकदुष्टाना लिगिना धमलोपिनाम् ।
चडालान्त्यजजातीना ससर्गात् पतितो भवेत् ॥[1]

महापातक के सम्बन्ध म मनु का कथन है कि ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी तथा गुरु की स्त्री के साथ गमन ये चार महापातक हैं—

ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनागम ।
महान्ति पातकान्याहु ससर्गश्चापि तै सह ॥[2]

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने भी यही चार महापातक माने हैं—

ब्रह्महा मद्यप स्तेनस्तथैव गुरुतल्पग ।
एते महापातकिनो यश्च तै सह सवसेत् ॥[3]

मनुष्यो के पतित होने का कारण मत्स्यपुराण मे इस प्रकार दिया है—

चाडालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात् साम्यन्तु गच्छति ॥

पतितो की गणना इस प्रकार की गई है—

गराग्निविषदाश्चैव पाषडा क्रूरबुद्धय ।
क्रोधात् प्राय विष वह्नि शस्त्रमुद्‌बन्धन जलम् ॥
गिरिवृक्षप्रपातञ्च ये कुर्वन्ति नराधमा ।
कुशिल्पजीविनश्चैव सूनालङ्कारकारिण ॥

तथा

ब्रह्मदडहता ये च ये च वै ब्राह्मणैर्हता ।
महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिता ॥

ब्रह्मपुराण के अनुसार पतितो का न दाहसस्कार होता है, न अन्त्येष्टि, न अस्थिसचय, न अश्रुपात, न पिड दिया जाता है और न श्राद्धादि किया जाता है—

---

१ मानसोल्लास १।१।५५ । २ मनुस्मृति ११, ५४ ।
३ याज्ञ० स्मति प्रायश्चित्तप्रकरण २७ ।

पतिताना न दाह स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसचय ।
न चाश्रुपात पिंडो वा कार्यं श्राद्धादिक क्वचित् ॥[1]

वराहपुराण मे पतितो के ससर्ग का निषेध किया गया है। उसके अनुसार पतित जन के साथ भोजन, शयन आदि से मनुष्य पतित होता है—

आसन्नशयनाच्चैन भोजनात् कथनादिषु ।
सवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥

पतित व्यक्ति वैदिक कर्मो का अधिकार न रखता हुआ नरक का भागी होता है। यथा—

पतितै सम्प्रयुक्तानामिमा श्रृणुत निष्कृतिम् ।
सवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥
याजनाध्यापनाद्यौनाच्छ्वासपानाशनासनात् ।
यो येन पतितेनैव ससर्गं याति मानव ।
स तस्यैव व्रत कुर्यात् ससर्गस्य विशुद्धये ॥

पतित सग का निषेध करने के साथ सोमेश्वर ने भी पतितो की सगति का फल बतलाया है। उनका कथन है कि पतितो का सग करके व्यक्ति स्वय पतित होकर ससार मे निन्दित तो होता ही है, साथ ही साथ मृत्यु के पश्चात् रौरव नरक को प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे भी इस प्रकार के व्यक्तियो के नरकगामी होने का उल्लेख है। इसी प्रसग मे याज्ञवल्क्य ने २१ प्रकार के नरकों को गिनाया है जिनमें रौरव नरक भी है। अपने कर्मो के अनुसार व्यक्ति इन्ही नरको को प्राप्त होता है। ये २१ प्रकार के नरक इस प्रकार है—

तामिस्र लोहशकु च महानिरयशाल्मली ।
रौरव कुड्मल पूतिमृत्तिक कालसूत्रकम् ॥
सघात लोहितोद च सविष सप्रपातनम् ।
महानरककाकोल सजीवनमहापथम् ॥
अवीचिमन्धतामिस्र कुम्भीपाक तथैव च ।
असिपत्रवनं चैव तापन चैकविंशकम् ॥[2]

मार्कण्डेय पुराण मे पिता पुत्र सवाद नामक अध्याय मे रौरव नरक के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

---

१ ब्रह्मपुराण शुद्धितत्त्व ।

२ याज्ञ० प्रायश्चित्तप्रकरण श्लो० २२,२४ ।

रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृती नर ।
तस्य स्वरूप वदतो रौरवस्य निशामय ॥
योजनाना सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणत ।
जानुमात्रप्रमाणन्तु तत्र श्वभ्र सुदुस्तरम् ॥
तत्रागारचयो येन कृत तद्धरणीसमम् ।
जाज्वल्यताततितीव्रेण तापिताम्बरभूमिना ॥
तन्मध्ये पापकर्माण विमुञ्चन्ति यमानुगा ।
स दह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तेन धावति ॥
पदे पदे च पादोऽस्य शीर्यते जायते पुन ।
अहोरात्रेणोद्धरण पादन्यास स गच्छति ।
एव सहस्र विस्तीर्णे योजनाना विमुच्यते ॥

देवीभागवत पुराण मे भी इसी प्रकार रोरव नरक के स्वरूप का उल्लेख मिलता है यथा—

एतन्ममाहमिति यो भूतद्रोहेण केवलम् ।
पुष्णाति प्रत्यह स्वीयकुटुम्ब कार्यलम्पट ॥
एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह ।
रौरवे नाम नरके सर्वसत्त्वभयावहे ॥
इहलोकेऽमुना ये तु हिंसिता जन्तव पुरा ।
त एव रुरवो भूत्वा परत्र पीडयन्ति तम् ॥
तस्माद्रौरवमित्याहु पुराणज्ञा मनीषिण ।
रुरु सर्पादपि क्रूरो जन्तुरुक्त पुरातनै ॥

रौरव नरक की इस भीषणता का अनुमान करके ही सोमेश्वर ने पतित-सगवर्जन का आदेश दिया है। इसी कारण अनजान में यदि पतितो का सग हो भी जाय तो प्रायश्चित्त द्वारा तुरन्त उसका सशोधन करना चाहिए।

सोमेश्वर द्वारा लिखित इस प्रकार के प्रसग से अनुमान लगाया जा सकता है कि सोमेश्वर वर्णव्यवस्था का पूर्ण पक्षपाती था। वह नही चाहता था कि उसके राज्य मे किसी प्रकार का अनाचार या भ्रष्टाचार फैले।

क्रोधवर्जन

पतितसगवर्जन के पश्चात् सोमेश्वर ने क्रोधवर्जन पर प्रकाश डाला है। क्रोध को उन्होने बुद्धि, आत्मा, कुल, धन तथा धर्म के नाश का कारण बतलाया है—

क्रोधो नाशयते बुद्धिमात्मान च कुल धनम् ।
धर्मनाशो भवेत् कोपात् तस्मात् त परिवर्जयेत् ॥[1]

काम, क्रोध, लोभ और मोह ये मनुष्य के घोर शत्रु माने गए है क्योकि इनसे मनुष्य नष्ट हो जाता है। गीता म क्रोध के विषय मे कहा गया है कि इससे (क्रोध से) मोह, मोह से स्मृतिविभ्रम, स्मृतिविभ्रम से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश होने से व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है—

क्रोधाद्भवति समोह समोहात्स्मृतिविभ्रम ।
स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥[2]

मनुस्मृति मे काम से उत्पन्न दस प्रकार के तथा क्रोध से उत्पन्न आठ प्रकार के दुर्व्यसनों का उल्लेख किया गया है जो मनुष्य के नाश का कारण बनते है। काम से उत्पन्न व्यसनो म आसक्त होने पर राजा धर्म तथा अर्थ से हीन हो जाता है किन्तु क्रोध से उत्पन्न व्यसनो मे लगने पर उसके शरीर का ही नाश हो जाता है—

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपति ।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्या क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥[3]

वास्तव मे, जैसा गीता मे कहा गया है, क्रोध का कारण काम ही है और काम की उत्पत्ति सग से होती है—

सगात् सजायते काम कामात् क्रोधोऽभिजायते ।[4]

क्रोध से आक्रान्त पुरुष युद्ध के अतिरिक्त कुछ नही कर सकता—

न कर्म क्रोधान्ध प्रभवति विधातु रणमृते ।

नीतिशास्त्र के अनुसार क्रोध ससार को अधा, धीर को बधिर, सचेतन को अचेतन कर देता है। क्रोधी पुरुष न किए हुए को देखता है और न अपने हित की बात सुनता है—

अन्धीकरोति भुवन बधिरीकरोति
धीर सचेतनमचेतनता नयेत् क्रुत् ।
कृत्य न पश्यति न चात्महित श्रृणोति ।
धीमानधीतमपि न प्रतिसन्दधाति ॥

---

१ मानसोल्लास १।१।५७ । २ गीता २।६३ ।
३ मनु० ७।४५,४६ । ४ गीता २।६२ ।

क्रोध से उत्पन्न दोषों मे चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दूसरे के कार्य मे दोष लाना, द्रव्यहरण, गाली देना तथा कठोरता ये आठ प्रकार के व्यसन है।[1] अत क्रोध सब प्रकार के दुर्गुणो का मूल है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, क्रोध का हृदय मे समावेश होते ही मनुष्य का ज्ञान आवरण से ढक जाता है। उसकी बुद्धि निष्चेष्ट हो जाती है। क्रोध से पूर्ण व्यक्ति को स्वय अपने को तथा अपनी आत्मा को समझने एव पहचानने की शक्ति नही रह जाती और वह पतनावस्था की ओर अग्रसर होकर अन्धकार के गर्त में गिर जाता है। इसी कारण सोमेश्वर ने क्रोधवर्जन पर इतना बल दिया है।

स्वात्मस्तुतिवर्जन

सोमेश्वर ने आत्मस्तुति को महापाप बतलाया है। मोह से वशीभूत होकर आत्मस्तुति करने वाले व्यक्ति का जीवन भी मरण के सदृश है। वह व्यक्ति दूसरे लोक मे यातना को भोगता है। अत आत्मस्तुति का त्याग करना चाहिए—

आत्मान स्तौति यो मोहाज्जीवन्नपि मृतो भवेत्।
परत्र यातना याति तस्मात्तत् परिवर्जयेत्॥[2]

शार्ङ्गधर पद्धति मे आत्मश्लाघा की बडी निन्दा की गई है। उसके अनुसार मनुष्यो के स्वयवर्णित गुण सौख्य और सौभाग्यकारी नहीं होते है। जिस प्रकार एक सुन्दर स्त्री को स्वय अपने स्तनो के स्पर्श करने मे कोई आनन्द नहीं आता है उसी प्रकार मनुष्य द्वारा स्वय अपने गुणो का बखान करने मे कोई सुख नही। दूसरो के द्वारा वर्णित किए जाने पर दूना सुख प्राप्त होता है—

न सौख्यसौभाग्यकरा गुणा नृणा
स्वय गृहीता सुदृशा कुचा इव।
परैर्गृहीता द्वितय वितन्वते
न तेन गृह्णन्ति निज गुण बुधा॥[3]

इसी प्रकार के प्रसग अन्य स्थलों पर भी मिलते है—

न सुख न च सौभाग्य स्वय स्वगुणवर्णने।
यथैव च पुरध्रीणा स्वहस्तकुचमर्दने॥[4]

---

१ पैशुन्य साहस द्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्।
वाग्दडज च पारुष्य क्रोधजोऽपि गणोऽष्टक ॥ मनु० ७।४८।

२ मानसोल्लास १।१।५८। ३ शा० प० ३००।

४ सुभाषितरत्नभाडारम ८३ २।

तथा

निजगुणगरिमा सुखाकर स्यात्स्वयमनुवर्णयता सता न तावत्।
निजकरकमलेन कामिनोना कुचकलशाकलनेन को विनोद ॥[1]

इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति के गुण दूसरे व्यक्तियो द्वारा कहे जाते हैं वह निर्गुणी होने पर भी गुणवान हो जाता है किन्तु स्वय अपने गुण कहने पर इन्द्र भी लघुता को प्राप्त होता है—

परै प्रोक्ता गुणा यस्य निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
इन्द्रोऽपि लघुता याति स्वयप्रख्यापितैर्गुणै ॥

अत किसी व्यक्ति को अपने गुणो का बखान स्वय न करके उन्हे युक्ति से दूसरों के द्वारा कराना चाहिए—

स्वय तथा न कर्तव्य स्वगुणाख्यापन पुन ।
स्वगुणाख्यापन युक्त्या परद्वारा प्रयोजयेत्॥[2]

राजा के लिए स्वात्मस्तुति विशेष रूप से हानिप्रद है। राजा के हृदय मे यदि आत्मश्लाघा का विचार आ गया तो उसकी पूर्ण उन्नति सदेव के लिए रुक जाती है। आत्मस्तुति करने से हृदय में मोह तथा दर्प की मात्रा की वृद्धि हो जाती है और हृदय मे गर्व तथा मोह की वृद्धि होने पर व्यक्ति को स्वार्थ तथा परमार्थ को सोचने की शक्ति नहा रह जाती। इसी कारण उसका सदैव पतन ही होता रहता है। अत सोमेश्वर ने इसे वर्जित बतलाया है।

(२) विहित कर्तव्य

दान

राजा के लिए दानी होना अत्यन्तावश्यक है। दानी राजा इहलोक तथा परलोक दोनो मे यश प्राप्त करता है। दान की महिमा के विषय म ऋग्वेद मे अनेक दानस्तुतिया प्राप्त होती हैं[3] जिनमे ऐश्वयशाली राजाओ के दान की प्रशसा है। ब्राह्मण,[4] उपनिषद्[5] एव पुराण साहित्य में भी दान के

१ वही ८३ ५।   २ वही ८३ ३।

३ ऋग्वेद १।१२५।५ ७, १।१२६।१ ५, ५।६१, ६।४७।२२ २५, ७।१८। २२ २५, ८।५।३७ ३९, ८।६।४६ ४८, ८।४६।२१ २४, ८।६८।१८ १९, १०।६२।८ ११।

४ ऐ० ब्रा० ३०।९, गा० ब्रा० २५।१४, शत० ब्रा० २।२।१०।६।

५ छा० उप० ४ १ २।

६ अग्नि २०८ २१५ तथा २१७, मत्स्य ८२ ९१ तथा २७४ २८९, वराह ९९ १११।

माहात्म्य का वर्णन हुआ है। दान से सब व्यसनो के नष्ट होने का प्रसग मिलता है। इससे प्राणी वश मे होते है, शत्रुता का अन्त होता है, शत्रु भी बन्धुत्व को प्राप्त होता है—

दानेन भूतानि वशीभवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।

परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैर्दान हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥[1]

यही नही, दान द्वारा पशु, पाषाण तथा वृक्ष भी प्रशसा को प्राप्त होते है। दान गुण ही श्लाघ्य है, अन्य करोडों गुण भी नही--

दानेन श्लाघ्यता यान्ति पशुपाषाणपादपा।

दानमेव गुण श्लाघ्य किमन्यैर्गुणकोटिभि॥[2]

देवल ऋषि ने दान के छ अङ्गो का वर्णन किया है जिनका दान देते समय प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान रखना चाहिए--

१ दाता, २ ग्रहण करने वाला, ३ श्रद्धा, ४ देय वस्तुए जो प्रतिग्रहीता द्वारा उचित रूप से ग्रहण की जायें, ५ उपयुक्त समय, ६ उपयुक्त स्थान।[3]

इनमे से प्रथम चार का मनु ने विशेष रूप से उल्लेख किया है—

श्रद्धयेष्ट च पूर्तं च नित्य कुर्यादतन्द्रित।

श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवत स्वागतैर्धनै॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौतिकम्।

परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तित॥[4]

न्याय से प्राप्त धन देश, काल तथा पात्र के अनुसार देने पर अनन्त कहा जाता है—

देशकाले तथा पात्रे धन न्यायागत तथा।

यद्दत्त ब्राह्मणश्रेष्ठा! तदनन्त प्रकीर्तितम्॥ विष्णुधर्मोत्तरम्।

महाराज सोमेश्वर ने मानसोल्लास मे सर्वप्रथम प्रतिग्रहीता के लक्षणों का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि जो श्रुतियो का ज्ञाता, दरिद्र, शीलाचार से युक्त, पुराणवेद का पडित तथा योग्य कुटुम्बी हो उसको दान देना चाहिए—

---

१ सुभाषितरत्नभाडागारम ६९।२५। २ वही ६९।१४।

३ दाता प्रतिग्रहीता च श्रद्धा देय च धमयुक।
देशकालौ च दानानामगायेतानि षड विदु॥
देवल–दानवाक्या० folio 3a, हेमाद्रि। दान प० १४।

४ मनुस्मति ४।२२६ २२७।

श्रोत्रियाय दरिद्राय शीलाचारयुताय च ।
पुराणवेदविदुषे दान देय कुटुम्बिने ॥[1]

याज्ञवल्क्य का कथन है कि दान सदा सुपात्र को देना चाहिए। यदि कोई अपना कल्याण चाहता है तो कुपात्र को कभी दान न दे—

नापात्रे विदुषा किंचिदात्मन श्रेय इच्छता ।[2]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार केवल विद्या और तप से सुपात्र नही होता। जो विहित कर्म करे तथा जिसमे विद्या और तप पाए जाय वही उत्तम पात्र कहलाता है—

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्र प्रकीर्तितम् ॥[3]

मनु का कथन है कि दान दिए जाने पर प्रतिग्रहीता उपयुक्त होने पर भी उसमे आसक्त होकर दान ग्रहण न करे क्याकि इसके द्वारा ब्राह्म तेज नष्ट हो जाता है—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसग तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्म तेज प्रशाम्यति ॥[4]

अत दान को जो निर्विकार भाव से ग्रहण करे वही श्रेष्ठ प्रतिग्रहीता है। दाता स्वय प्रतिग्रहीता के स्थान पर जाकर दान दे वह उत्तम, उसे बुलाकर दे तो मध्यम और मागने पर दे तो अधम दान कहलाता है—

अभिगम्योत्तम दानमाहूयैव तु मध्यमम् ।
अधम याचमानाय सेवादान तु निष्फलम् ॥[5]

इसके अतिरिक्त प्रतिग्रहीता के घर जाकर दान देने पर अनन्त फल होता है, बुलाकर देने पर हजारगुना तथा मागने पर देने से उसका आधा फल होता है—

गत्वा यद्दीयते दान तदनन्तफल स्मृतम् ।
सहस्रगुणमाहूते याचिते तु तदर्धकम् ॥[6]

कूर्मपुराण मे नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल ये चार प्रकार के दान

---

१ मानसोल्लास १।९।५९ ।
२ याज्ञवल्क्यस्मृति, दानधम प्रकरण २०१ ।
३ याज्ञ० दानधमप्रकरण २०० । ४ मनु० ४।१८६ ।
५ पराशर १।२९ । ६ अपरार्क प० २९१ ।

बतलाए गए है। बिना फल के उद्देश्य से जो नित्य ब्राह्मण को दान दिया जाता है वह नित्य, जो पाप की शान्ति के लिए विद्वानो को दिया जाता है वह नैमित्तिक, जो पुत्र, ऐश्वयादि की कामना से दिया जाता है वह काम्य तथा जो धर्मयुक्त हृदय से दान दिया जाता है वह विमल दान कहलाता है—

नित्य नैमित्तिक काम्य त्रिविध दानमुच्यते।
चतुर्थं विमल प्रोक्त सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥
अहन्यहनि यत् किंचिद्दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलन्तत् स्याद्ब्राह्मणाय च नित्यकम्॥
यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषा करे।
नैमित्तिक तदुद्दिष्ट दान सद्भिरनुत्तमम्॥
अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत् प्रदीयते।
दानन्तत् काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकै॥
यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते।
चेतसा धर्मयुक्तेन दान तद्विमल शिवम्॥

इसी प्रकार गीता मे तीन प्रकार का दान बतलाया गया है—सात्विक, राजस और तामस। सात्विक दान वह है जो बिना प्रत्युपकार की आशा से देश, काल तथा पात्र के अनुसार दिया जाता है—

दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्विक स्मृतम्॥[1]

राजस दान वह है जो फल के उद्देश्य से तथा प्रत्युपकार की आशा से दिया जाता है—

यत्तु प्रत्युपकाराय फलमुद्दिश्य वा पुन।
दीयते च परिक्लिष्ट तद्दान राजस विदु॥[2]

तामस दान वह है जो देश काल का विचार किए बिना तिरस्कार के साथ अपात्रों को दिया जाता है—

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञात तत्तामसमुदाहृतम्॥[3]

मनु ने सोमेश्वर की भाति सुपात्र को दान देने का आदेश दिया है। मनु का कथन है—

---

१ गीता १७।२०। २ वही १७।२१।
३ वही १७।२२।

हिरण्य भूमिमश्व गामन्न वासस्तिलान्घृतम् ।
प्रतिगृह्णन्नविद्वास्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥[1]

अर्थात् यदि कोई कुपात्र (जो वेदादि का ज्ञाता, धर्मयुक्त तथा योग्य नहीं है) सुवर्ण, भूमि, अश्व, गौ, अन्न, वस्त्र आदि का दान ग्रहण कर लेता है तो वह अग्नि मे ईंधन की भाति दग्ध होकर राख के रूप मे परिणत हो जाता है। इसके अतिरिक्त वेदाध्ययन तथा तप से हीन ब्राह्मण को यदि दान दिया जाता है तो दाता भी नष्ट हो जाता है और प्रतिग्रहीता उस दान को ग्रहण कर उसके साथ ही जल मे डूबी पाषाण की नौका की भाति नष्ट हो जाता है।[2] इस कारण न तो दाता को चाहिए कि अयोग्य प्रतिग्रहीता को दान दे और न प्रतिग्रहीता को चाहिए कि उसे ग्रहण करे। मनु के कथन का इसी प्रकार अन्य स्मृतियों मे भी प्रसग प्राप्त होता है।[3] उपयुक्त पात्र को दान न देने से प्रतिग्रहीता अपने साथ दाता को भी नरकगामी बना देता है।[4] वेदपाठी एव श्रोत्रिय का दान देने से अनन्त फल होता है। गौतमस्मृति मे ऐसा प्रसग मिलता है—

समद्विगुणसाहस्रानन्त्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्य ॥[5]

मनु भी श्रोत्रिय तथा शीलाचार से युक्त ब्राह्मण को दान देने मे अनन्त फल बताते है। इसके अतिरिक्त दक्ष ने भी 'सहस्रगुणमाचार्ये'[7] कहकर श्रोत्रिय को दान देना श्रेष्ठ बतलाया है। वेदव्यास ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।[8] अत इन सभी प्रसगों से सोमेश्वर के 'श्रोत्रियाय' तथा 'पुराणवेदविदुषे' शब्द सार्थक हो जाते है।

सोमेश्वर ने जो प्रतिग्रहीता के लिए 'दरिद्रस्य' शब्द का प्रयोग किया है उसका भी प्रतिपादन मनु ने किया है। मनुस्मृति मे ९ प्रकार के स्नातक ब्राह्मणों का वर्णन किया गया है जो दरिद्र है ओर अन्न, धन तथा यज्ञसम्बन्धी दान को ग्रहण करने में समर्थ है।[9] सोमेश्वर ने भी दरिद्र प्रतिग्रहीता को ही दान देना श्रेष्ठ बतलाया है। योग्य कुटुम्बी को भी दान देने का प्रसग मानसोल्लास में प्राप्त होता है।

---

१ मनु० ४।१८८। २ वही ४।१९०।

३ याज्ञ० १।२००-२०२, वशि० ध० सू० ६।३२, उष्णस् १।५२१।

४ मनु० ४।१९२-१९४। ५ गौतम ५।१८।

६ सममब्राह्मणे दान द्विगुण ब्राह्मणब्रुवे।
प्राधीते शतसाहस्रमनन्त वेदपारगे ॥ मनु० ७।८५।

७ दक्षस्मृति ३।२८। ८ वेद व्यास ४।४२।

९ मनु ११।१-३।

दक्ष ने लिखा है कि अपने माता पिता, गुरु, मित्र शुद्ध चरत्र वाले, जिसने दाता पर कुछ कृतज्ञता का प्रदर्शन किया हो, दरिद्र, असहाय, जिनमे विशेष योग्यता हो ऐसे सुपात्रों को दान देने से फल प्राप्त होता है किन्तु कुपात्र को दान देने से दान निष्फल होता है।[1] इसमे सोमेश्वर द्वारा कथित प्रतिग्रहीता के सभी गुण आ गए है।

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने दान देने का फल बतलाया है और साथ ही साथ महादान को भगवान शकर की तुष्टि का कारण माना है। अतएव भगवान शिव की प्रसन्नता के लिए महादान देना चाहिए। सोमेश्वर ने महादान शब्द का प्रयोग कर धन, सोना, रत्न, वस्त्र, शय्या, आसन, गज, अश्व, महिषी, गाय, बलीवर्द, गृह, ग्राम, भूमि, दासी, कन्या, अन्न, जल, तिल, औषधि, डरे हुए को अभयदान आदि देना उत्तम बतलाया है। इस महादान का प्रसग अनेक धर्मग्रन्थों में उपलब्ध होता है। अग्निपुराण के—

कनकाश्वतिला नागा दासीरथमहीगृहा।
कन्या च कपिलाधेनुर्महादानानि वै दश॥[2]

इस प्रसग से विदित होता है कि अग्निपुराण दस प्रकार के महादान मानता है जो क्रमश सुवर्ण, अश्व, तिल, गज, दासी, रथ, भूमि, गृह, कन्या तथा कपिला गौ है। किन्तु मत्स्यपुराण मे सोलह प्रकार के महादानों का उल्लेख हुआ है जो क्रमश तुलापुरुष (किसी पुरुष को सोने से तोल कर फिर उस सोने को ब्राह्मणो को बाट देना), हिरण्यगर्भ, ब्रह्माड, कल्पवृक्ष, गोसहस्र, कामधेनु (अथवा हिरण्य कामधेनु), हिरण्याश्व, हिरण्याश्वरथ (अथवा केवल अश्वरथ), हेमहस्तरथ (अथवा केवल हस्तिरथ), पचलागल, धारादान (अथवा हेमधारादान), विश्वचक्र, कल्पलता (अथवा महाकल्प), सप्तसागर, रत्नधेनु तथा महाभूत घट है।[3]

१ मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीने चोपकारिणि।
दीनानाथविशिष्टेषु दत्त च सफल भवेत्॥
धूर्ते बन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे।
चाटुचारणचौरेषु दत्त भवति निष्फलम्॥ दक्ष ३।१७ १८।

२ अग्निपुराण २०९, २३ २४।

३ आद्य तु सर्वदानाना तुलापुरुषसज्ञितम।
हिरण्यगर्भदान च ब्रह्माड तदनन्तरम्॥
कल्पपादपदान च गोसहस्र तु पचमम्।
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च॥
पचलागलक तद्वद्धारादानन्तथैव च॥

लिगपुराण[1] मे भी १६ प्रकार के महादानो का उल्लेख है किन्तु इनके नाम भिन्न है। 'महादानानि' शब्द का उल्लेख महाभारत के आश्रमवासी पर्व मे हुआ है। बाण ने केवल गोसहस्र को ही साधारणत महादान के अन्तर्गत लिया है।[3]

इसके अतिरिक्त स्मृतियो मे भी दान के लिए देय वस्तुओ मे से कुछ को उत्तम, कुछ को मध्यम तथा कुछ को अधम बतलाया गया है। देवल के कथन को अपरार्क ने इन शब्दो मे अपनी स्मृति मे लिखा है—

अन्न दधि मधु त्राण गोभूरुक्माश्वहस्तिन ।
दानान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानत ॥
विद्या चाच्छादन वास परिभोगौषधानि च ।
दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानत ॥
बहुत्वादर्थजातानाा सख्या शेषेषु नेष्यते ।
अधमान्यवशिष्टानि सर्वदानान्यतो विदु ॥[4]

किन्तु याज्ञवल्क्य ने तीन प्रकार को अलग अलग देय वस्तुओ का प्रयोग करने के स्थान पर—

भूदीपाश्चान्नवस्त्राम्भस्तिलसर्पि प्रतिश्रयान् ।
नैवेशिक स्वर्णधुर्यं दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥[5]

कहकर भूमि, दीपक, अन्न, वस्त्र, तिल, घृत, विदेशो का आश्रय, कन्यादान, सुवर्ण तथा बलीवर्द इन सबके दान को स्वर्गप्राप्ति का हेतु बतलाया है अथात् सभवत उनके अनुसार यह उत्तम दान अथवा महादान है। इसके अतिरिक्त—

हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ॥
द्वादश विष्णुचक्र च तत कल्पलतात्मकम ।
सप्तसागरदान च रत्नधेनुस्तथैव च ।
महाभूतघटस्तद्वत् षोडश परिकीर्तित ॥ मत्स्य पु० २७४ २८९ ।

१ लिंगपुराण २।२८ ।

२ महाभारत आश्रमवासी पव ३।३१, १३।१५ ।

३ दीयमानानेकगोसहस्रशृगखण्डयमान इवापलायत कलि । महादान-विधानकलकलाभिद्रुता इव प्राद्रवन्नुपद्रवा । हषचरित ३।११ पैरा ।

४ अपराक पृ० २८९ पृ० । हेमाद्रि, दान० पृ० १६।

५ याज्ञवल्क्य स्मृ० १।२१० ।

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम् ।
यान वृक्ष प्रिय शय्या दत्त्वात्यन्त सुखी भवेत् ॥[१]

कहकर गृह धान्य, अभय दान, जूता, छाता, माला, चन्दन आदि अनुलेपन, यान (रथ), वृक्ष, किसी प्रिय वस्तु तथा शय्या आदि के दान को अत्यन्त सुख प्राप्ति का हेतु बतलाया है।

इन सब प्रकार के दानो मे गो, भूमि तथा विद्या दान (सरस्वती दान) को अतिदान माना गया है,[२] ऐसा प्रसग प्राप्त होता है। मनुस्मृति के भी—

सर्वेषामेव दानाना ब्रह्मदान विशिष्यते ।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाचनसर्पिषाम् ॥[३]

इस श्लोक से विद्या दान सर्वश्रेष्ठ दान प्रतीत होता है। याज्ञवल्क्य ने भी—

सर्वधर्ममय ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिक यत ।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥[४]

कह कर वेद को सर्वधर्मरूप बतलाकर वेद दान द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति बतलाई है। इसी प्रकार अन्य स्मृतियो[५] मे भी प्रसग प्राप्त होते है।

इस प्रकार सोमेश्वर ने जिन वस्तुओ का दान देने का आदेश दिया है उनमे काचन, रत्न, वस्त्र, गज, अश्व, महिषी, बलावर्द, ग्राम, गृह, दासी, विभूषण, अन्न, तिल आदि वस्तुए उत्तम तथा महादान के अन्तर्गत आ जाती है और रौप्य शय्या, आसन, औषधि, जल, भीत को अभय दान आदि मध्यम श्रेणी के दान है तथा गो, भूमि आदि अतिदान है।

सोमेश्वर ने महादानों को पूर्वोक्त महापातको का नाश करने वाला बतलाया है। इसके अतिरिक्त महादानों से महापुण्यफल की प्राप्ति होती है जैसे गौ का दान देने से स्वर्गरूपी महापुण्य फल की प्राप्ति होती है—

गाव स्वर्गस्य सोपान गाव स्वर्गेऽपि पूजिता ।[७]

महादान देने से महादेव प्रसन्न होते है। महादेव की व्युत्पत्ति ब्रह्मवैवर्त पुराण में इस प्रकार दी है—

---

१ वही १।२११।

२ त्रीण्याहुरतिदानानि गाव पृथ्वी सरस्वती ।
अतिदान हि दानाना विद्यादान ततोऽधिकम ॥ वशिष्ठ० २९।१९।
अतिदानानि सर्वाणि पृथिवीदानमुच्यते । अनुशासन० ६२।२।

३ मनु० ४।२३३। ४ याज्ञ० १।२१२।

५ अत्रि० ३४०, बृहस्पति १८, वशिष्ठ ध० सू० २९।१९।

६ देखिये पतितसगवर्जनाध्याय। ७ अनुशासनपर्व ३३।

ब्रह्मादीना सुराणा च मुनीना ब्रह्मवादिनाम् ।
तेषा च महता देवो महादेव प्रकीतित ॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
तस्या देव पूजितश्च महादेव स च स्मृत ॥[1]

उनकी महिमा का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

स्रष्टु शक्तो हि नष्टु च भ्रूभगलीलया हि य ।
ब्रह्माडनिकर योगाच्च योगी शकरात् पर ॥
दिव्यज्ञानेन य स्रष्टु नष्टु, भ्रूभगलीलया ।
मृत्युकालादिक शक्तो न ज्ञानी शकरात् पर ॥
मम भक्ति च दास्य च मुक्ति च सर्वसम्पदम् ।
सर्वसिद्धि दातुमीशो न दाता शकरात् पर ॥[2]

अन्त में सोमेश्वर ने कहा है कि ससार मे जिसको जो अभीष्ट है तथा अपने घर में जो सुख है वह सब विद्वान को देना चाहिए। इससे अक्षय फल की प्राप्ति होती है—

यद् यस्याभिमत लोके यत् सुख निजमन्दिरे ।
तत् सर्वं विदुषे देय तद्वाञ्छयमिच्छता ॥

प्रिय वचन

सोमेश्वर ने एक यशस्वो राजा के लिए मधुर एव प्रिय भाषण अत्यन्तावश्यक बतलाया है । इतनी बडी जनता पर राज्य करने के कारण राजा को सभी प्रकार के व्यक्तियो से मिलना पडता है । यदि राजा मधुरभाषी न होगा तो व्यक्तियों के हृदय पर विजय प्राप्त करना उसके लिए अत्यन्त कठिन है । इसी कारण सोमेश्वर ने लिखा है—ऋतपूर्ण वचन एव सत्य वचन बोले किन्तु यदि कोई अप्रिय वाणी हितकारी भी हो तो उसे न बोले और न कोई अनृतपूर्ण प्रिय वाणी ही बोले, यही सनातन धर्म है—

ऋत वाच्य प्रिय वाच्य न वाच्य हितमप्रियम् ।
प्रिय च नानृत वाच्यमेष धर्म सनातन ॥[3]

सोमेश्वर का यह कथन अक्षरश मनुस्मृति की निम्नलिखित पक्तियों से मिलता है—

---

१ ब्रह्मवैवत प्रकृतिखड अध्याय ५३ ।

२ ब्रह्मवैवत श्रीकृष्णजन्म खड अध्याय ३६ ।

३ मानसोल्लास १।१०।६४ ।

सत्य ब्रूयात्प्रिय ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रिय च नानृत ब्रूयादेष धर्म सनातन ॥[1]

सोमेश्वर ने सम्भवत इसी श्लोक का अनुकरण किया है। प्रथम पक्ति मे 'सत्य' के स्थान पर 'ऋत' तथा 'हितम्' का प्रयोग किया है और 'ब्रूयात्' के स्थान पर 'वाच्यम्' का। दूसरी पक्ति मे तो केवल 'ब्रूयात्' और 'वाच्यम्' शब्दों का भेद है।

सोमेश्वर ने जो 'ऋत' शब्द का प्रयोग किया है उसको वैदिक काल से ही बडा महत्व प्रदान किया गया है। वैदिक साहित्य मे ऋत शब्द का विशेष रूप से तीन अर्थों में प्रयोग हुआ है –सत्य, पाश एव यज्ञादि की शुद्धता तथा क्रम के रूप मे।[2] इन्हीं तीनों के ऊपर वरुण देवता का नियन्त्रण है। इसी कारण वरुण ऋत के देवता माने गए है।[3] उसी ऋत का प्रयोग सोमेश्वर ने सम्भवत सत्य के अर्थ मे किया है। आगे उन्होंने कहा भी है—

हित ब्रूयान्मित ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् सदर्थवत्।
एव वदति यो नित्य स लोके पूज्यते बुधै ॥[4]

अथात् सदैव हितकारी, प्रिय एव अर्थपूर्ण वाणी बोलनी चाहिए, कटु एव अहितकर वाणी न बोलनी चाहिए क्योंकि जो इस प्रकार से विचार कर वाणी बोलता है वही विद्वानों के द्वारा इस लोक में पूजा जाता है। राजा जनता के हित के लिए ही बनाया जाता है, इसी कारण उसे सदैव ही हितकारी वाणी बोलनी चाहिए किन्तु साथ ही साथ उसे मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। अहितकारी वाणी राजा को कदापि नहीं बोलनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार करने पर राजा प्रजा के हृदय मे कभी स्थान प्राप्त नही कर सकता। किन्तु अच्छी, हितकारी तथा मधुर वाणी बोलने पर वह राजा विद्वानो द्वारा इस लोक मे तो पूजा ही जाता है किन्तु स्वर्ग मे देवताओं द्वारा भी उसकी सराहना एव प्रशसा की जाती है। इसी कारण जो सर्वदा प्रिय वाणी का प्रयोग करता है वही दोनो लोको मे विद्वान है—

बुधस्तु पूज्यते भूमौ विबुधै पूज्यते दिवि।
लोकद्वयबुध स स्याद् य प्रिय वक्ति सर्वदा ॥[5]

सरल, मधुर एव हितकारी वाणी वैसे भी सभी के हृदय को मोहित कर

---

१ मनु० ४।१३८।

२ Ghate—Lectures on Rgveda P 144

३ खाऋतम्न। ऋग्वेद २।२८।५।

४ मानसोल्लास १।१०।६५। २ वही १।१०।६६।

लेती है। धर्मशास्त्रो मे भी मधुर एव हितकारी वाणी की प्रशसा की गइ है। मनु का कहना है कि सदा 'अच्छा' 'बहुत अच्छा' कहे अथवा केवल 'अच्छा' ही कहे किन्तु व्यर्थ मे किसी से झगडा व बैर न करे—

भद्र भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैर विवाद च न कुर्यात् केनचित्सह ॥[1]

मानसोल्लास के उपर्युक्त प्रसग इस बात को प्रकट करते है कि सोमेश्वर बडा ही प्रभावशाली एव यशस्वी राजा था। सम्पूर्ण प्रजा के हृदय मे उसके लिए महान् स्थान था।

इष्टापूर्त

हेमचन्द्र के अनुसार इष्टापूर्त का अर्थ 'यज्ञखातादिकर्म' है। अपरार्क ने महाभारत का उद्धरण देते हुए इष्ट तथा पूर्त की परिभाषा इस प्रकार दी है कि जो कुछ भी एकाग्नि अथवा गृह्याग्नि मे हवन किया जाता है, जो तीन श्रौताग्नि मे हवन किया जाता है तथा श्रौत यज्ञो मे वेदी के अन्दर जो कुछ दान दिया जाता है वह इष्ट है। इसके अतिरिक्त वापी, कूप, तडागादि खुदवाना, अन्नदान, उद्यानादि का निर्माण पूर्त कहलाता है—

एकाग्निकर्म हवन त्रेताया यच्च हूयते।
अन्तर्वेद्या च यद्दानमिष्टमित्यभिधीयते ॥ (महाभारत)
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमाराम पूर्तमित्यभिधीयते ॥[2]

इसके आगे नारद का उद्धरण देते हुए अपरार्क ने आतिथ्य तथा वैश्वदेव को इष्ट के अन्तर्गत तथा पुष्करिणी, वापी, देवालय, अन्नप्रदान, आरामादि का निर्माण पूर्त के अन्तर्गत किया है—

आतिथ्य वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते।
पुष्करिण्यस्तथा वाप्यो देवतायतनानि च ॥
अन्नप्रदानमाराम पूर्तमित्यभिधीयते।[3]

अत्रि[4] ने अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदपालन, आतिथ्य तथा वैश्वदेव को इष्ट माना है—

अग्निहोत्र तप सत्य वेदाना चैव पालनम्।
आतिथ्य वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥

---

१ मनुस्मृति ४,१३९। २ अपरार्क, पृ० २९०।
३ वही। ४ अत्रि स० ४३।

लिखितसंहिता[1] मे भी इसी प्रकार की परिभाषा मिलती है। यम[2] और अग्निपुराण ने इष्ट और पूर्त की परिभाषा अत्रि के ही शब्दो मे दी है।

दान के साथ ही साथ यज्ञ करना तथा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए अन्य साधन जुटाना भी एक योग्य राजा का परम धर्म है। सोमेश्वर देव ने इष्टापूर्त का उल्लेख कर राजाओ को उनके कर्त्तव्यो का ज्ञान करवाया है। इष्टापूर्त बहुत प्राचीन शब्द है। इसका प्रसग ऋग्वेद मे मनुष्य द्वारा किए गए सत्कार्यो तथा यज्ञो द्वारा प्राप्त उत्तम तथा आध्यात्मिक फल के रूप मे प्राप्त होता है—

सगच्छस्व पितृभि सयमेन इष्टापूर्तेन परमेव्योमन्।[4]

यहा पर एक मृत आत्मा को पितरो से तथा यम से मिलकर अपने किए हुए इष्टापूर्त से स्वर्ग मे निवास करने के लिए सम्बोधित किया गया है। इसी प्रकार का एक प्रसग अथर्ववेद मे भी प्राप्त होता है—

इष्टापूर्तं कर्मासुन पितृणाममुदद्दे हरसादैव्येन॥[5]

इसमे भी पितरो के इष्टापूर्त द्वारा शत्रुओं से रक्षा करवाने का प्रसग प्राप्त होता है।

वेदों की ही भाति ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इष्टापूर्त के अनेक प्रसग प्राप्त होते है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस प्रकार का मन्त्र प्राप्त होता है—

इष्ट पूर्तशश्वतीना समाना शाश्वतेन हविषेष्ट्वानन्त लोक परमारुरोह[6]।

जिसके द्वारा इष्टापूर्त कर्म के फल का वर्षों तक अन्त न होने के लिए प्रार्थना की गई है। वास्तव मे इष्टापूर्त ब्राह्मणो के लिए ही होता है क्योंकि इसके द्वारा ब्राह्मण राजा को एक योग्य एव सफल राजा बना देता है।[7]

इष्ट के द्वारा व्यक्ति देवलोक को प्राप्त करता है तथा पूर्त के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।[8] द्विजो (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) को इष्ट तथा पूर्त दोनों प्रकार के कर्मो को करने का पूर्ण अधिकार है किन्तु शूद्र केवल पूर्त (तडाग, बावली, वापी आदि बनवाना) कर्म ही कर सकता है। उसे वैदिक यज्ञादि (इष्ट) करने का अधिकार नहीं है।[9] मनु ने भी इष्ट तथा पूर्त दोनो कर्मों का उचित रूप से पालन करने का आदेश दिया है—

---

१ लिखित० ५। २ यम० ६८ ७०।
३ अग्नि पु० २०९।२३। ४ ऋग्वेद १०।१४।८।
५ अथर्ववेद २।१२।४। ६ तै० ब्रा० २।५।५।
७ वही ३।९।१४। ८ लिखित० १।
९ लिखित० ६।

श्रद्धयेष्ट च पूर्तं च नित्य कुर्यादतन्द्रित ।
श्रद्धाकृते ह्यचये ते भवत स्वागतैर्धनै ॥[1]

सोमेश्वर देव ने भी अपने मानसोल्लास मे इष्टापूर्त के अध्याय मे इष्ट के अन्तर्गत यज्ञ तथा अग्निहोत्रादि एव अग्नि के पूजन को माना है। अग्निहोत्र के अन्तर्गत नृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ तथा पितृयज्ञ इन पाच महायज्ञों के करने का आदेश दिया है।[2] किन्तु उन्होंने प्रात, मध्याह्न तथा साय होम के विषय में कुछ भी नही लिखा है। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर देव का कथन है कि ज्योतिष्टोम आदि से लेकर वाजिमेध तक के यज्ञों को क्रमश यथोक्त विधि के अनुसार शरत्काल तथा वसन्तकाल मे करना चाहिए, किन्तु इन यज्ञों के विषय मे उन्होंने कुछ अधिक प्रकाश नही डाला। इसके बाद उन्होने यज्ञ मे अन्नादि का उपभोग न कराने से राष्ट्र का, मत्र उच्चारण न होने से ऋत्विक् का, दान से हीन यज्ञ के द्वारा यजमान तथा मुख्य ऋत्विक का नाश होना बतलाया है।[4] मानसोल्लास के प्रसगों से विदित होता है कि उस समय वैदिक यज्ञों की परम्परा की ओर लोगो की रुचि कम हो रही थी। अयुत, लक्ष तथा कोटि होम भी शान्ति कर्म अथवा शान्ति करने के लिए करने चाहिए, चाहे उन्हें स्वय करे अथवा शुभ इच्छा से किसी मुख्य ब्राह्मण से करवाए।[5]

इष्ट के पश्चात् राजा के पूर्त सम्बन्धी कर्त्तव्यो पर प्रकाश डाला गया है। इसके अन्तर्गत सोमेश्वर ने कूप, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, तडाग आदि बनवाने का आदेश दिया है और उन सभी के लक्षणो को स्पष्ट किया है, यथा— द्वारहीन जल का सग्रह कूप, एक द्वारवाला वापी, एक भी द्वार न होने पर पुष्करिणी, दीर्घ आकारवाली होने पर दीघिका, तथा जल से पूर्ण तडाग होता है।[6]

सोमेश्वर का कथन है कि जो विधिपूर्वक इष्ट और पूर्त करता है वह दोनों लोकों में शुभ फल को देनेवाली परम सिद्धि को प्राप्त करता है। महाभारत के

---

१ मनु० ४।२२६ २२७ ।

२ नृयज्ञ ब्रह्मयज्ञ च देवयज्ञमत परम।
भूतयज्ञ पितृयज्ञ पच यज्ञान् प्रवतयेत् ॥ मानसोल्लास १।११।६७।

३ ज्योतिष्टोमादिकान् यज्ञान् वाजिमेधावधिस्थितान् ।
शरत्काले वसन्ते च यथोक्तविधिना चरेत् ॥ वही १।११।६८।

४ वही १।११।६९। ५ वही १।११।७०।

६ वही १।११।७१ ७२।

कथनानुसार इष्टापूर्त का फल अवश्य होता है। यदि ऐसा न हो तो न कोई गुरु हो न कोई शिष्य—

इष्टापूर्तफल न स्यात् न शिष्यो न गुरुर्भवेत्।[1]

अशेष देवता भक्ति

सोमेश्वर ने राजा के लिए अपने इष्टदेव के अतिरिक्त अन्य देवों की भी भक्ति करने का आदेश दिया है। इष्टदेव को स्वच्छ जल से अर्घ्य तथा पाद्य देकर मधुपर्क तैयार करे तथा उपयुक्त द्रव्यों से आचमन एव स्नान करावे—

अर्घ्यं पाद्य शुभैस्तोयैर्मधुपर्कं च कल्पयेत्।
तथैवाचमन स्नान तत्तद्द्रव्यसमायुतम् ॥[3]

मत्स्यपुराण म ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि जलपूर्ण पात्र से अर्घ्य देते समय दधि, अक्षत, कुश के सिरे, दुग्ध, दूब, मधु, जौ तथा सफेद सरसों इन आठ पदार्थों मे से समस्त अथवा जितने पदार्थ यथाशक्ति जुटा सके, मिलाना चाहिए।[4] साथ ही यह भी प्रसग मिलता है कि विष्णु की मूर्ति को शख से अर्घ्य देना चाहिए और जल मे चन्दन, पुष्प तथा अक्षत मिलाना चाहिए। विष्णुधर्मसूत्र[5] के अनुसार देवपूजा के निमित्त जल एक रात्रि से पूर्व का नहीं लाना चाहिए अथात् वह उसी दिन का होना चाहिए। आचमन के लिए प्रयुक्त जल मे लौंग, उशीर, कक्कोलादि मिलाना चाहिए। मूर्तियों के स्नान के लिए दुग्ध, दधि, घृत, मधु तथा शक्कर ये पाच द्रव्य अथवा पचामृत इसी क्रम से मिलाना चाहिए—

क्षीरेण पूर्वं कुर्वीत दध्ना पश्चाद् घृतेन च।
मधुना चाथ खडेन क्रमो ज्ञेयो विचक्षणै ॥[6]

इसके पश्चात् इष्ट देवता का मन्त्र ध्यान, जप, होम, मुद्रा तथा विविध प्रकार से अर्चन करके अष्टाग नमस्कार एव स्तुति करके तब उनका विसर्जन करने का आदेश दिया है।

मन्त्रैर्ध्यानैर्जपैर्होमैर्मुद्राभिर्विविधार्चनै ।

---

१ महाभारत ३।३२।३०।

२ मधुपक के सम्बन्ध म सस्कारप्रकरण मे उल्लेख हो चुका है।

३ मानसोल्लास १।१२।१०२।   ४ मत्स्यपुराण २६७।२।

५ वि० ध० सू० ६६।१।

६ पूजाप्रकाश, पृ० ३४ नर्सिह पुराण का उद्धरण।

अष्टागपूर्वक भक्त्या नत्वा स्तुत्वा विसर्जयत् ॥[1]

देवता को नमस्कार दो प्रकार से किया जाता है अष्टागविधि द्वारा अथवा पचागविधि द्वारा। अष्टागविधि म भक्त मूर्ति के सामने जमीन पर इस प्रकार लेट जाता है कि उसकी हथेलिया, पैर, घुटने, स ना तथा मस्तक पृथ्वी का स्पर्श करते है और मन, वाणी तथा नेत्र मूर्ति पर केन्द्रित होते है। पचाग नमस्कार मे भक्त अपने हाथ, पेर तथा सिर से लेट जाता है—

दोर्भ्यां पद्भ्या च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा।
मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाग ईरित ॥[2]
पद्भ्या कराभ्या शिरसा पचागा प्रणति स्मृता ॥[3]

इस प्रकार के पूजन द्वारा अथवा प्रसन्नचित्त होकर जो अपने इष्ट देव का पूजन करता है वह उस पूजा के द्वारा अत्यन्त विशाल राज्य को प्राप्त करता है। इसमे सशय नहीं—

एव य पूजयेद् देवमिष्ट हृष्टमना नर ।
स प्राप्नोति महद्राज्य पूजया नात्र सशय ॥[4]

इस प्रकार सोमेश्वर महाराज ने इष्टदेव के पूजन के विषय में जो लिखा है उसे प्रत्येक राजा को करना चाहिए, किन्तु इष्टदेव के अतिरिक्त राजा को अन्य देवों की भी पूजा एव श्रद्धापूर्वक नमस्कार करना चाहिए। अन्य देवताओ से भी राजा को द्वेष तथा उनकी निन्दा आदि नही करनी चाहिए। प्रत्येक देव तथा देवकुल (मदिर आदि) को देखकर उसी क्षण उन्हें नमस्कार करना चाहिए, उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए—

अन्येषामपि देवाना निन्दा द्वेष च वर्जयेत्।
देव देवकुल दृष्ट्वा नमस्कुर्यान्न लघयेत् ॥[5]

जो राजा यह करता है वह समगति को प्राप्त होता है और सभी देवताओं के प्रसाद से श्रेष्ठ सम्पत्ति को प्राप्त करता है—

एव य आस्तिक भावमाश्रित समता गत ।
सर्वदेवप्रसादेन लभते सम्पद वराम् ॥[6]

हमारे धर्मग्रन्थो में भी ऐसा आदेश दिया गया है कि प्रत्येक धर्म को आदर की दृष्टि से देखना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपने धर्म का आदर कर

---

१ मानसोल्लास १।१२।१०३। २ पूजाप्रकाश प० ८८।
३ वही। ४ मानसोल्लास १।१२।१०४।
५ वही १।१२।१०५। ६ वही १।१२।१०६।

भी अन्य धर्म को हीनता की दृष्टि से देखता है तो वह धर्म उसे नष्ट कर देता है। "धर्म एव हतो हन्ति धमा रक्षति रक्षित" वाली किवदन्ती इन देवताओ के सम्बन्ध मे भी लागू है। इसी कारण सभी देवताओं को श्रद्धा की दृष्टि से नमस्कार करना प्रत्येक राजा के लिए आवश्यक बतलाया है। किसी भी धर्म एव देवता का अनादर करने वाला व्यक्ति नास्तिक माना जाता है और मनु ने ऐसे व्यक्ति को नास्तिक कह कर निन्दा की है। हमारे धर्मशास्त्रों मे राजा दैवी शक्तियो की विभूति माना गया है। अत राजा के लिए किसी भी देवता का अनादर करना शोभा नहीं देता। इसके अतिरिक्त राजा विशाल राज्य का स्वामी होता है। उसका कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए उसे सभी देवी देवताओ की कृपा का आकाक्षा रहती है। थोडा सा अनिष्ट होने पर सम्पूर्ण राज्य के नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। इसी कारण राजा को सब देवताआ की स्तुति करनी आवश्यक है।

गो विप्र-तर्पण

मानसोल्लास मे अशेष देवता भक्ति के पश्चात् गो विप्र तर्पण का वर्णन है जिसमे महाराज सोमेश्वर ने धर्म मे लिप्सा बनाये रखने के लिए दाता को अपनी तथा दूसरों की गौ को सदैव ग्रास देने का आदेश दिया है। इस कार्य से विष्णु भगवान अत्यन्त प्रसन्न होते है। गो का महत्व तो हमारी भारतीय सस्कृति के अन्तर्गत प्रसिद्ध ही है। धर्मग्रन्थ गो के अग प्रत्यग म सब देवताओं का निवासस्थान बतलाते हैं—

> पृष्ठे ब्रह्मा गले विष्णुर्मुखे रुद्र प्रतिष्ठित ।
> मध्ये देवगणा सर्वे रोमकूपे महर्षय ॥
> नागा पुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टौ कुलपर्वता ।
> मूत्रे गगादयो नद्यो नेत्रयो शशिभास्करौ ॥
> येन यस्यास्तनौ वेदा सा धेनुर्वरदास्तु मे ।

गो को "माता रुद्राणा दुहिता वसूना " आदि कहकर सभी देवताओं से उसका सम्बन्ध जोडा गया है।[1] उसे "अघ्न्या इति गवा नाम क एना ह तु मर्हति"[2] कह कर उसके वध का निषेध किया है। प्रजापात ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा तथा भगवान शिव ने भी गो की इस प्रकार स्तुति की है—

> त्व माता सर्वदेवाना त्व च यज्ञस्य कारणम्।

---

१ पा० ग० सू० १।३।४। २ महाभारत अनुशासन पव।

त्व तीर्थं सर्वतीर्थाना नमस्तेऽस्तु सदानवे ॥[१]

वेदों मे तो 'एतद् वै विश्वरूप सर्वरूप गोरूपम्'' कहकर गो के विश्वरूप का वर्णन किया गया है।

गो वास्तव मे बडी ही पवित्र है, वही यज्ञ का कारण भी है क्योंकि यज्ञ के समय अग्नि मे जो आहुतिया दी जाती है उनकी देने वाली मूल कारण गो ही है। इसी कारण गाय 'हविर्दुघा' नाम से भी विभूषित की गई है। उसके गोबर तथा मूत्र से यज्ञवेदी स्वच्छ की जाती है, कडे द्वारा अग्नि प्रज्वलित की जाती है तथा गाय के दुग्ध, दधि, घृत, गोबर तथा गोमूत्र से बना हुआ पचगव्य का प्राशन यज्ञ मे यजमान की शुद्धि के लिए आवश्यक होता है।

गाय की समता करने वाला ससार मे अन्य कोई दूसरा धन नही है। महाभारत मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि गाय के कीर्तन, श्रवण, दान तथा दर्शन आदि से सभी पाप नष्ट हो जाते है।[२] इसी कारण गौ की सेवा पर धर्मशास्त्रो मे विशेष बल दिया गया है। भगवान श्रीकृष्ण तो गो पालक थे ही। उन्होने—

गावो मे अग्रत सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठत ।

गावो मे हृदये सन्तु गवा मध्ये वसाम्यहम् ॥

कहकर अपने को गोमय ही बताया है। ऐसी गाय की सेवा करने से सभी सुख व्यक्ति को प्राप्त हो जाते है। गोसेवा के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

तीर्थस्थानेषु यत् पुण्य यत् पुण्य विप्रभोजने ।
यत् पुण्य च महादाने यत् पुण्य हरिसेवने ॥
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपसु च ।
भूमिपर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत् ॥
तत् पुण्य प्राप्यते सद्य केवल धेनुसेवया ।

गो की सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। गाय के प्रसाद से पुत्र की प्राप्ति भी होती है। इक्ष्वाकु वश के राजा दिलीप को कामधेनु-सुता नन्दिनी की सेवा से ही पुत्र की प्राप्ति हुई थी। प्रारम्भ से ही सभी राजा विशेष रूप से गो सेवा तथा अपने लाभ के लिए गोदान करते थे। श्री रामचन्द्र जी ने स्वय एक खरब गौए दान दी थीं।[३] जिसके राज्य में गौए सुखी होती थीं तथा सख्या मे अधिक होती थीं वही राजा कहलाता था। गो को जो व्यक्ति सतुष्ट नहीं करते वे नरकगामी होते हैं—"यद्गृहे दुखिता गाव स याति नरक नर"। इस प्रकार

---

१ स्कन्द-ब्रह्म धर्मारण्य १०।१८। २ महाभारत अनुशासन पर्व।
३ वा० रा० १।१।९४।

की पवित्र गाय को रसोई मे बनते हुए अन्न का प्रथम ग्रास पुरोडाश के रूप मे दिया जाता है। इसी का समर्थन सोमेश्वर ने भी किया है।[1] सोमेश्वर की पक्तिया गायो के प्रति उनकी श्रद्धा को तथा गायो के प्रति उनके आदर एव सेवाभाव को प्रकट करती है।

गौ के महत्व के साथ ही साथ सोमेश्वरदेव ब्राह्मणों के भी महत्व को नही भूले है। ब्राह्मणों के महत्व को प्रदर्शित करते हुए वे कहते है कि जो दान के द्वारा, मधुर वाक्यो तथा सम्मान द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण को सन्तुष्ट करता है वह व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है।[2] इससे विदित होता है कि सोमेश्वर के समय मे वर्ण व्यवस्था बडी ही सुव्यवस्थित थी। ब्राह्मणों का क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी वर्ण-आदर करते थे और उन्हे सब प्रकार से तुष्ट करने का प्रयत्न करते थे। ब्राह्मणो का महत्व भारतवर्ष मे प्राचीन काल से ही माना गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे ब्राह्मण की उत्पत्ति विश्वपुरुष के मुख से मानी गई है। पुरुष का नाभि के ऊपर का भाग पवित्रतर कहा गया है और मुख प्रदेश तो उससे भी अधिक पवित्र है क्योंकि मनुस्मृति मे इस प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है—

> ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतर पुरुष परिकीर्तित।
> तस्मान्मेध्यतम त्वस्य मुखमुक्त स्वयभुवा॥[3]

इसी कारण ब्रह्मा के उत्तम अग मुख से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण को धम से सम्पूर्ण ससार का प्रभु माना है।[4] पुराणो में भी सृष्टि-रचना के प्रकरण मे वेद, अग्नि, गाय तथा ब्राह्मण की ही रचना सर्वप्रथम इस ससार मे बतलाई गई है और ब्राह्मण वास्तव में समाज के आध्यात्मिक पक्ष के कर्णधार है।
महर्षि वेदव्यास का भी कथन है—

> दुर्वेदा वा सुवेदा वा प्राकृता सस्कृतास्तथा।
> ब्राह्मणा नावमन्तव्या भस्मच्छन्ना इवाग्नय॥

अर्थात् ब्राह्मण किसी प्रकार का भी क्यों न हो उसका अपमान कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि वे भस्म से आच्छादित अग्नि के समान होते है।

पवित्रता के कारण ब्राह्मणों मे सतपनाग्नि की प्रधानता रहती है और उन्हें

---

१ मानसोल्लास १।१३।१०७।

२ दानेन प्रियवाक्येन सम्मानेन द्विजोत्तमान।
तोषयेत्सवभावेन तेनाप्नोति पर पदम॥ वही १।१३।१०८।

३ मनु० १।९२।

४ उत्तमागोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सगस्य धमतो ब्राह्मण प्रभुः॥ १।९३।

भोजन करवा कर, दान देकर सतुष्ट कर देने पर उनकी वह अग्नि शान्त हो जाती है, इससे उस व्यक्ति के किए गए सभी पाप नष्ट हो जाते है। इसी कारण प्रत्येक अवसर पर ब्राह्मण को ही भोजन करवाने का विधान हमारे धर्मशास्त्रो मे दिया गया है। मनु ने ब्राह्मण का ससार में उत्पन्न होना ही श्रेष्ठ बताया है और सम्पूर्ण ससार के पदार्थ उसी के माने है। उसी ब्रह्मोत्पत्ति रूप श्रेष्ठता के कारण ब्राह्मण प्रत्येक वर्ण से प्रत्येक वस्तु ग्रहण करने का अधिकारी है।[1] ब्राह्मण कभी किसी अवस्था मे भी अपवित्र नही होता—

यथा श्मशाने दीप्तौजा पावको नैव दुष्यति।
एव विद्वानविद्वान् वा ब्राह्मणो दैवत महत्॥

इसी कारण ब्राह्मण के अपमान को महान् पाप माना गया है। प्राचीन काल से ही राजा लोग ब्राह्मणों का महान आदर करते आए है। महाभारत[2] मे नीतिज्ञ विदुर जी ने धृतराष्ट्र को राष्ट्र के नाश के आठ निमित्त बतलाकर उनसे बचने का उपदेश दिया है। ये निमित्त ब्राह्मणो से द्वेष करना, उनसे विरोध करना आदि है। इसके अतिरिक्त "क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्" भी ब्राह्मण द्वारा राष्ट्र के नाश को सिद्ध करता है। ब्राह्मण वास्तव मे क्रोध द्वारा ही हानि पहुँचाते है। महाभारत इस बात को स्पष्ट करता है—

मन्युप्रहरणा विप्रा न विप्रा शस्त्रयोधिन।
निहन्युर्मन्युना विप्रा वज्रपाणिरिवासुरान्॥

ब्राह्मणों का अपमान करके ही वातापि महादैत्य ब्रह्मदड द्वारा मारा गया।

इसी प्रकार सोमेश्वर भी ब्रह्मप्रसाद को परमपद की प्राप्ति का कारण मानते हैं। वे ब्राह्मणों का बडा आदर करते थे।

---

१ ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायत।
ईश्वर सवभूताना धमकोशस्य गुप्तये॥
सव स्व ब्राह्मणस्येद यत्किचिज्जगतीगतम।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेद सव वै ब्राह्मणोऽहति॥ मनु० १।९९-१००।

२ अष्टौ पूवनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यत।
ब्राह्मणान् प्रथम द्वेष्टि ब्राह्मणैश्चविरुध्यते॥
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणाश्च जिघासति।
रमते निन्दया चैषा प्रशसा नाभिनन्दति॥
नैनान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
एतान् दोषान्नर प्राज्ञो बुध्येद् बुद्ध्वा विसजयेत्॥ महाभारत।

पितृ-तर्पण

सोमेश्वर ने अन्य सभी प्रसगो के साथ पितृ तर्पण पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला है और पितृ-तर्पण गृहस्थ के लिए अत्यन्त आवश्यक कार्य बतलाया है। इसके करने का विधान मानसोल्लास मे इस प्रकार वर्णित है कि तिल से मिश्रित जल द्वारा पितरों का आवाहन करते हुए श्राद्ध करना चाहिए और गो के दुग्ध से बनी हुई मधुर खीर अथवा मास, घृत, मधु एव अन्य प्रकार के बने हुए सुन्दर अन्न द्वारा उनको भक्षण कराना चाहिए।[1] तत्पश्चात् पितरों को सम्बोधित करते हुए मुख्य ब्राह्मणो को श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर सतुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को श्रद्धा से पवित्र हुए मन से श्राद्ध करना चाहिए। सोमेश्वर महाराज ने पितरों को सम्बोधित करते हुए श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराने को ही श्राद्ध कहा है—

> भोजयेद् द्विजमुख्याश्च पितृनुद्दिश्य भक्तित ।
> श्रद्धा पूतेन चित्तेन श्राद्ध कुर्यादतन्द्रित ॥[2]

इसी प्रकार की श्राद्ध को परिभाषा ब्रह्मपुराण मे भी दी गई है—

> देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।
> पितृनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्त श्राद्धमुदाहृतम् ॥

अर्थात् देश, काल अथवा पात्र मे विधिपूर्वक श्रद्धा से पितरों को सम्बोधित करते हुए जो ब्राह्मणों को भोजनादि दिया जाता है वही श्राद्ध है। याज्ञवल्क्य ने भी श्राद्ध का जो वर्णन याज्ञवल्क्य-स्मृति[3] में किया है उस पर मिताक्षरा की टीका मे इस प्रकार लिखा है—

श्राद्ध नामादीयस्य तत्स्थानीयस्य वा द्रव्यस्य प्रेतोद्देशेन श्रद्धया त्याग ।[4]

इस प्रकार से सभी धर्मशास्त्रों मे श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणो को भोजन कराना अथवा पितरों को सम्बोधित करते हुए ब्राह्मणों को द्रव्य देना ही श्राद्ध माना है।

श्राद्ध की परिभाषा के अतिरिक्त श्राद्ध मे प्रयुक्त होने वाली सामग्री के विषय मे भी सोमेश्वर ने विशेष रूप से वर्णन किया है। मानसोल्लास मे तिलमिश्रित जल का वर्णन हुआ है। श्राद्ध मे प्रयुक्त जल के विषय मे मार्कण्डेय पुराण मे इस प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है—

> दुर्गन्धि फेनिल चाम्बु तथैवाल्पतरोदकम् ।

---

१ मानसोल्लास १।१४।१०९ १० । २ वही १।१४।१११ ।

३ याज्ञवल्क्य स्मृति १।२१७ ।

४ मिताक्षरा टीका, याज्ञ० स्म० १।२१७ ।

न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्त यच्चाप्युपाहृतम् ॥
यच्च सर्वार्थमुत्सृष्ट यच्चाभोज्यनिपानजम् ।
तद् वर्ज्यं सलिल तात सदैव पितृकर्मणि ॥[१]

इसी प्रकार के प्रसग वायु,[२] विष्णु[३] तथा ब्रह्माड पुराण[४] में भी प्राप्त होते है। सोमेश्वर ने जो तिल, दुग्ध, पायस, घृत, तथा मास आदि का वर्णन किया है इनके प्रसग और भी अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं। विष्णु-धर्मसूत्र में—

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलै शाकै श्यामाकै ।
पियगुभिर्नीवारैर्मुद्गैर्गोधूमैश्च मास प्रीयन्ते ॥[५]

मार्कण्डेय पुराण[६] में भी उन वस्तुओ की सूची प्राप्त होती है जिनका प्रयोग श्राद्ध मे होता है—

राजश्यामाकश्यामाकौ तद्वच्चैव प्रशान्तिका ।
नीवारा पौष्कराश्चैव वन्यानि पितृतृप्तये ॥
यवव्रीहिसगोधूमतिलमुद्गा ससर्षपा ।
पियगु कोद्रवाश्चैव निश्पावाश्चातिशोभना ॥[७]

इनमे से बहुत सी वस्तुओं के नाम सोमेश्वर ने मानसोल्लास मे नहीं गिनाए है। सोमेश्वर ने दुग्व के लिए "गव्यक्षीरसमुत्पन्नै"[८] शब्द का प्रयोग किया है। मनु ने—

सवत्सर तु गव्येन पयसा पायसेन च।[९]

तथा याज्ञवल्क्य ने "हविष्यान्नेन वै मास पायसेन तु वत्सरम्"[१०] कहकर गौ के दुग्ध अथवा गौ के दुग्ध मे बनी हुई खीर का ही आदेश दिया है। ब्रह्मपुराण में ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

माहिष चामर मार्गमाविकैकशफोद्भवम् ।
स्त्रैणमौष्ट्रमाविक च दधिक्षीर घृत त्यजेत् ॥[११]

---

१ मार्कण्डेय पुराण २९।१५ १७। २ वायु पुराण ७८।१६।
३ विष्णु पुराण ३।१६।१०।
४ ब्रह्माड पुराण। उपोद्घातपाद १४।२६।
५ विष्णुधमसूत्र ८०।१। ६ माकण्डेय पुराण २९।९ ११।
७ वही २९।९ ११। ८ मानसोल्लास १।१०९।
९ मनुस्मृति ३।२७१। १० याज्ञवल्क्य १।२५८।
११ ब्रह्मपुराण २२०।१६९।

इसी प्रकार के प्रसग मार्कण्डेय,[1] वायु तथा विष्णु पुराण में भी प्राप्त होते हैं।

सोमेश्वर ने मास के प्रयोग मे भी सम्भवत धर्मशास्त्रों का ही आश्रय ग्रहण किया है, किन्तु मास के अतिरिक्त उन्होंने विशेष पशुओं के नाम नहीं गिनाये है जिनके मास का प्रयोग श्राद्ध में होता था। मनु ने तिल, व्रीहि आदि के साथ मास का भी वर्णन किया है—

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा ।
दत्तेन मास तुष्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम् ॥[4]

किन्तु इसके अतिरिक्त मनु[5] ने अनेक प्रकार के पशुओं के मास द्वारा पितरो की तृप्ति का वर्णन किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी विस्तारपूर्वक मृग, शश, महाशल्क, मत्स्य, उरभ्र, आदि अनेक प्रकार के पशुओ के मास द्वारा पितरों की सतुष्टि का आदेश दिया गया है। इसके अतिरिक्त कूर्म,[7] वायु[8] मत्स्य,[9] वष्णु[10] पद्म[11] ब्रह्म[12] आदि पुराणो मे भी श्राद्ध मे प्रयुक्त हुए मास की सूची प्राप्त होती है।

इस प्रकार के श्राद्ध को करने के साथ ही साथ उसके फल पर भी सोमेश्वर ने विशेष रूप से प्रकाश डाला है। इस प्रकार के श्राद्ध को उन्होने सन्तान-वृद्धि करने वाला एव विशाल राज्य का देने वाला माना है। इसके अतिरिक्त पितरों की कृपा से श्राद्ध करने वाला व्यक्ति जो भी मन में इच्छा करता है वह इच्छा उसकी पूर्ण होती है और किसी प्रकार की इच्छा न करने पर परम गति को प्राप्त करता है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे भी—

दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा सन्ततिरेव च।[13]
स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्र बल तथा।
पुत्र श्रेष्ठ च सौभाग्य समृद्धि मुख्यता शुभम् ॥

अरोगित्व यशोवीतशोकता परमा गतिम् ॥[14]

---

१ माकण्डेय पुराण ३२।१७ १९। २ वायु पुराण ७८।१७।
३ विष्णु पुराण ३।१६।११। ४ मनुस्मति ३।२६७।
५ वही ३।२६७ २७२। ६ याज्ञ० १।२५८-२६०।
७ कूम पुराण २।२०।४० ४२, २।२९।२८।
८ वायु पुराण ८३।३९।
९ मत्स्य १७।३१ ३५। १० विष्णु पुराण ३।१६।१ ३।
११ पद्म० सृष्टि० ९।१५८ १६४। १२ ब्रह्म० २२०।२३ ३९।
१३ याज्ञ० १।२४६। १४ याज्ञ० १।२६५ २६६।

कहकर श्राद्ध को सन्तति की वृद्धि, स्वर्ग की प्राप्ति, शौर्य, क्षेत्र बल की प्राप्ति तथा परम पद की प्राप्ति का कारण माना है। इसी प्रकार का वर्णन मनु[1] आदि महर्षियों ने भी अपनी अपनी स्मृतियो मे किया है।

विदेशो मे श्राद्ध

भारत की भाति अन्य देशो मे भी मृतात्माओं के प्रति किसी न किसी रूप में सम्मान प्रकट किया जाता है। उनमे से कुछ प्रथाये अत्यन्त रोचक है। पूवा देशो मे वर्ष मे एक दिन निश्चित कर दिया जाता है और उस दिन सब लोग अपने पूर्वजो की स्मृति मे पूजादि करते है। यह उनके जीवन का एक आवश्यक कार्य समझा जाता है।

चीन और जापान की श्राद्ध-प्रथा

चीन और जापान के लोग निश्चित दिन पर दिवगत आत्मा के प्रति श्रद्धाजलि प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझते है। उनका विचार है कि मृत पुरुष की आत्मा वर्ष मे एक दिन अपने पूर्व गृह में अवश्य जाती है। इस कल्पित दिन को वे बडे समारोह के साथ मनाते है।

उक्त देशवासियो का विचार है कि मृतात्मा रात्रि के समय आती है। अत वे रात को अपना घर खूब सजाते है। घर के एक कमरे मे एक शय्या तैयार की जाती है, नाना प्रकार के भोजन की व्यवस्था की जाती है तथा सुगधित जल रख दिया जाता है जिससे मृतात्मा जब आवे तो उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

सन्ध्या के बाद समस्त व्यक्ति पूव पुरुष के समाधिस्थल पर जाते है। साथ में वे नाना प्रकार के व्यजन सजा कर तथा हाथ मे रग बिरगे कागज के झाड फानूस, लालटेने आदि ले जाते है। समाधिस्थल को अच्छी तरह सजा कर तथा श्रद्धा के साथ भोजनादि चढाकर घर वापस आते है और रात भर जागरण करके उत्सव मनाते है। दीपादि के साथ उत्सव मनाने के कारण वे लोग इस समारोह को "दीपोत्सव" नाम से पुकारते है।

इटली तथा जर्मनी

बहुत से पाश्चात्य देशों के लोगों मे भी यह धारणा पाई जाती है कि मृत पुरुष की आत्मा फिर लौटती है। इटली और जमनी मे पूवा देशों की भाति वर्ष मे एक दिन निश्चित रहता है। उस दिन रात को घर की सब खिडकिया और दरवाजे खुले रखे जाते है। उन लोगो का विचार है कि

१ मनुस्मति ३।२८३।

२ नवनीत (हिंदी डाइजेस्ट), (बम्बई), अप्रैल १९५५, पृष्ठ ५५।

मृतात्मा रात्रि मे एक प्रहर के लिए आती है। वह रात्रि के अन्तिम प्रहर मे आकर सुबह होने के पहले चली जाती है।

सामान्य लोगो का विचार है कि मृतात्मा ऑधी पानी के सहारे पृथ्वी पर आती है। साधारणत जिस ऋतु मे यह दिन निश्चित किया जाता है उसमें ऑधी पानी की अधिकता रहती है। रात्रि के अन्तिम प्रहर मे जब मुर्गे का शब्द सुनाई पडता है तो घर के सब लोग सजे हुए कमरे को ध्यानपूर्वक देखते है। जरा भी हवा चली और खिडकी का परदा अथवा शय्या की चादर उल्टी कि वे तुरन्त समझ लेते है कि अब मृतात्मा आ गई है। उनका विश्वास है कि मृतात्मा अपने पूर्व वास गृह मे आकर फिर समाधिस्थल पर चली जाती है। अत वे केवल अपने घर को सजाते है। समाधिस्थल पर रोशनी नही करते। यह दिन योरोप मे 'आवागमन दिवस' के नाम से प्रसिद्ध है।

वेल्स मे इस दिन लडके तथा लडकियाँ एक खेल खेलती है। बैठक के कमरे मे ये लोग पानी से भर कर एक टब रख देते है और उसमे कई सेव डाल देते है। तब सब लोग एक दूसरे का हाथ पकड कर टब के चारों ओर बैठते हैं। उसके बाद जो बालिका या बालक सबसे पहले दाँतो से जल से सेव निकालता है उसके लिए यह वर्ष बहुत सौभाग्य से पूर्ण समझा जाता है।

अमेरिका मे श्राद्ध प्रथा

अमेरिका के लोग निश्चित दिन को खान पान मे बिताते है और शाम को एक नकाब पहन कर अथवा हाथ मे लेकर घूमते है। तत्पश्चात् सब लोग इकट्ठा होकर मृतात्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। ये लोग न तो घर को सजाते हैं और न मृतात्मा के लिए भोजनादि रखते है।

अतिथि पूजन

पितृश्राद्ध के पश्चात् सोमेश्वर अतिथि पूजन का वर्णन करते है। इस प्रसग के अन्तर्गत सोमेश्वर ने 'अतिथिदेवो भव' की भावना पूर्ण रूप से अकित की है। इस प्रसग में सोमेश्वर ने सर्वप्रथम अतिथि की परिभाषा दी है। उनका कथन है कि जिसका कुल तथा नाम न ज्ञात हो, जो अन्य देश से आया हो, क्षुधा से पीडित हो, धूल आदि से पूर्ण हो, वही विद्वानो के द्वारा अतिथि कहा जाता है—

अज्ञातकुलनामानमन्यदेशादुपागतम्।
क्षुधार्तं पासुकीर्णाङ्घ्रिमतिथि त विदुर्बुधा ॥[1]

मनुस्मृति मे जो अतिथि की परिभाषा दी गयी है उसका भाव भी इसी प्रकार का है—

---

१ मानसोल्लास ३।१९।११४।

एकरात्र तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मण स्मृत ।
अनित्य हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥[1]

अर्थात् जो एक रात ही रहे वही अतिथि होता है क्योंकि वह नित्य नही रहता । याज्ञवल्क्य ने भी—

अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेय श्रोत्रियो वेदपारग ।[2]

कहकर अचानक आये हुए पथिक को ही श्रेष्ठ अतिथि माना है । सोमेश्वर की अतिथि की परिभाषा से भी ऐसा विदित होता है कि अतिथि अपना सम्बन्धी नहीं होता । बिना जाना पहचाना, दूर देश से आया हुआ, क्षुधा से पीडित, धूल से पूर्ण अतिथि का सत्कार करना सोमेश्वर ने परम कर्तव्य बतलाया है, क्योंकि इस प्रकार के अतिथि का सत्कार न करने से अतिथि गृहस्थ के सम्पूर्ण पुण्यो को लेकर चला जाता है और उसका सम्मान एव पूजा करने पर विष्णु भगवान भी प्रसन्न होते है ।[3] अतिथि के विमुख होने को धर्मशास्त्रों मे भी बडा अधर्म माना गया है । मनु ने भी आए हुए अतिथि की आसन, जल, अन्न द्वारा सत्कार करके पूजा करने का आदेश दिया है ।[4] जो गृहस्थ ऐसे अतिथि का पूजन नहीं करता उस अतिथि के विषय मे कहा गया है—

शिलानप्युञ्छतो नित्य पचाग्नीनपि जुह्वत ।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥[5]

अर्थात् वह अतिथि उस गृहस्थ के नित्य शिल (खेत मे पीछे से छूटे हुए अन्न) को बीन कर निर्वाह करने के तथा पञ्चाग्नि (आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिण, श्रोत, आवसथ्य) मे नित्य अग्निहोत्र करने के द्वारा अर्जित हुए सभी पुण्यो को ले जाता है । इसी प्रकार के भाव को सोमेश्वर की "तस्य पुण्यानि सर्वाणि हृत्वा यात्यतिथिर्द्रुतम्"[6] पंक्ति स्पष्ट करती है । आए हुए अतिथि के विमुख हो जाने पर विष्णु देवता अप्रसन्न हो जाते है ।

सोमेश्वर की इन पक्तियों से ऐसा स्पष्ट होता है कि उनके समय मे प्रत्येक गृहस्थ के लिए पञ्च महायज्ञो का सम्पादन करना आवश्यक था चाहे वह राजा हो अथवा रक क्योंकि अतिथि पूजन पचमहायज्ञ (ब्रह्म, देव, पितृ, भूत, नृ) में से नृयज्ञ अथवा अतिथियज्ञ के अन्तर्गत आ जाता है ।

गुरु शुश्रूषा

गुरु शुश्रूषण अध्याय के अन्तर्गत सर्वप्रथम सोमेश्वर ने गुरुओं के भेद

१ मनुस्मृति ३।१०२ ।
२ याज्ञवल्क्य० १।१११ ।
३ मानसोल्लास १।१९।११५ ११६ ।
४ मनुस्मृति ३।९९ ।
५ वही ३।१०० ।
६ मानसोल्लास १।१९।११५ ।

पर प्रकाश डाला है। सोमेश्वर ने जनक (पिता), उपनेता, विद्या प्रदान करने वाले, पोषण करने वाले तथा भय से रक्षा करने वाले इन पाँच व्यक्तियो को गुरु माना है।[1] धर्मशास्त्रों मे पिता, आचार्य, उपाध्याय, ऋत्विक् तथा गुरु ये पाँच प्रकार के गुरु माने गये है।[2] जो बालक को जन्म देता है वह पिता बालक के गुरु के सदृश है। जो द्विज शिष्य का यज्ञविधि से उपनयन सस्कार कर कल्प एव रहस्य (उपनिषद्) के साथ वेद पढाता है वह आचार्य भी शिष्य का गुरु होता है। जो द्विज वेद के एकदेश अथवा एक अग (ज्योतिष, व्याकरणादि) का शिष्य को अध्यापन करा कर वृत्ति के लिए विद्यादान दे वह उपाध्याय भी शिष्य के लिए गुरु के सदृश होता है। शास्त्रोक्त विधि से गर्भाधानादि सस्कार कराकर अन्नद्वारा पोषण कर जो बालक को विद्यादान देता है वह भी बालक का गुरु होता है। इसके अतिरिक्त शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ कराने वाला ऋत्विक् भी गुरु ही होता है।[3] इसी प्रकार का प्रसग याज्ञवल्क्य[4]स्मृति मे प्राप्त होता है।

इन सभी गुरुओं के मध्य सोमेश्वर ने उपाध्याय से उच्च आचार्य को बतलाया है क्योकि आचार्यरूपी पिता यज्ञोपवीत के समय मौजी रूपी माता के बन्धन से बालक का द्वितीय जन्म कराता है। इसके पश्चात् ही तृतीय जन्म यज्ञ की दीक्षा अर्थात् गायत्री मत्र द्वारा होता है।[5] वह भी आचार्य ही करवाता है। इस उपनयन सस्कार रूपी जन्म मे बालक का आचार्य पिता तथा सावित्री माता होती है।[6] इसी कारण उपाध्याय से आचार्य को श्रेष्ठ माना गया है।

---

१ मानसोल्लास २।१९।११७।   २ मनुस्मृति २।१४०-१४४।

३ उपनीय तु य शिष्य वेदमध्यापयेद् द्विज ।
सकल्प सरहस्य च तमाचार्य प्रचक्षते ॥
एकदेश तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुन ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्याय स उच्यते ॥
निषेकादीनि कर्माणि य करोति यथाविधि ।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥
अग्न्याधेय पाकयज्ञानग्निष्टोमादिका मखान ।
य करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥
य आवृणोत्यवितथ ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।
स माता स पिता ज्ञेयस्त न द्रुह्येत्कदाचन ॥ मनुस्मृति २।१४०-४४।

४ याज्ञवल्क्य स्मृति १।३४-३६।   ५ मनु० २।१६९।

६ तत्र यद ब्रह्म जन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥ वही २।१७०।

उपाध्याय तो केवल वृत्ति लेकर वेद के एक अग का ही अध्ययन कराता है, किन्तु आचार्य यज्ञोपवीत कराकर उसे सम्पूर्ण वेद का ज्ञान प्रदान करता है। पिता का स्थान सोमेश्वर ने इस आचार्य से भी अधिक माना है क्योंकि पिता वास्तव मे बालक के निर्माण एव जन्म देने का कारण होता है और माता की श्रेष्ठता पिता से भी अधिक होती है और वह विशेष रूप से गौरव की पात्र है।[1] माता ही बालक के जन्म का कारण तथा कार्य होती है, वही बालक को अपने उदर मे रख कर जन्म देती है।

इसी प्रकार से माता की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए मनु लखते है कि दस उपाध्यायो के गौरव के तुल्य एक आचार्य का गौरव है। सौ आचार्यो की श्रेष्ठता के समान एक पिता है और पिता से सहस्त्रगुना अधिक माता का गौरव है।[2] याज्ञवल्क्य ने भी सबसे श्रेष्ठ माता को ही बताया है।[3]

इसके साथ ही सोमेश्वरदेव ने मन, वचन तथा कम से गुरु की सेवा एव आदर करने का आदेश दिया है। उसकी आज्ञा का उल्लघन न कर सदैव उसकी सेवा मे तत्पर रहने का आदेश दिया है। इस प्रकार से दृढ सकल्प कर कृतज्ञ होकर जो गुरु की सेवा शुश्रूषा करता है उसे महान पुण्य के फल की प्राप्ति होती है।[4] मनु ने भी गुरुसेवा को ही उच्च विद्या प्राप्त करने का हेतु माना है। उनका कथन है कि जिस प्रकार परिश्रमपूर्वक फावडे से धरती को खोदता हुआ व्यक्ति जल प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार गुरु की सेवा कर उनकी कृपा द्वारा श्रेष्ठ विद्या को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। इसी कारण गुरुओं का अपमान व्यक्ति को कभी न करना चाहिए।[7] इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य ने

---

१ आचाय स्यादुपाध्यायादाचार्यादधिक पिता।
पितुरप्यधिका माता गौरवेण विशेषिता॥
मानसोल्लास १।१९।११८।

२ उपाध्याया दशाचाय आचार्याणा शत पिता।
सहस्र तु पितृ माता गौरवेणातिरिच्यते॥ मनु० २।१४५।

३ एकदेशमुपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते।
एते मा या यथापूवमेभ्यो माता गरीयसी॥ याज्ञ० १।३५।

४ मनोवाक्कायकर्मभ्यो गुरुभ्यो हितमाचरेत्॥ मानसोल्लास १।१६।११९।

५ एव शुश्रूषते यस्तु गुरून्नत्वा समाहित।
कृतज्ञो दृढसकल्पस्तस्य पुण्यफल महत्॥ वही १।१६।१२०।

६ यथा खनन्खनित्रेण नरो वायधिगच्छति।
तथा गुरुगता विद्या शुश्रूषुरधिगच्छति॥ मनु० २।२१८।

७ आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूवज।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषत॥ वही २।२२६।

भी गुरु की मन, वचन, कर्म से सेवा करने का आदेश दिया है। सोमेश्वर का कथन याज्ञवल्क्य के कथन से कुछ समता रखता है—

आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत्।
हितं चास्याचरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥[1]

इस प्रकार गुरु की सेवा कर गुरु के समीप उसके बुलाने पर पढने जाने का आदेश महर्षि याज्ञवल्क्य ने दिया है।

ये प्रसग स्पष्ट रूप से इस बात को प्रकाशित करते है कि वर्ण व्यवस्था एव आश्रम व्यवस्था दोनो ही सुव्यवस्थित रूप से स्थापि- थीं। सभी वर्ण ब्राह्मणों का बडा आदर करते थे, यहाँ तक कि गृहस्थ जीवन मे गुरु शुश्रूषा का राजा तक विशेष रूप से ध्यान रखता था।

तप

त्रुटि करना मानव का स्वभाव है, फिर राजा ऐसे ऐश्वर्यशाली पद पर आरूढ होकर व्यक्ति अनेक ऐसे पाप कर डालता है जिनका उसे ज्ञान नही होता। इसी कारण सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में राजा के लिए कुछ तप का विधान किया है। इसके करने से मन की शुद्धि होती है। मनु ने तो इस प्रकार लिखा है कि मनुष्य जैसे जैसे अपने दुष्कृत कर्म की निन्दा करता है वैसे वैसे वह उसके पास से छूटता जाता है। पाप करने के पश्चात् अपने मन मे सन्ताप कर व्यक्ति पाप के भार से मुक्त हो जाता है।[3] तप को प्राचीन काल से ही भारत में महान् स्थान प्रदान किया गया है। ऋग्वेद[4] में भी तप का प्रसग प्राप्त होता है और उसे स्वर्ग की प्राप्ति का साधन माना गया है। छान्दोग्य[5] तथा मुडकोपनिषद् में भी तप तथा यज्ञ के माहात्म्य का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त स्मृतियों में भी तप पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। गौतम स्मृति में तप की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

ब्रह्मचर्यं सत्यवचन सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्राध शायिताऽनाशक इति तपासि ।[7]

१ याज्ञवल्क्य स्मति १।२७।

२ गुरु चवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहित । वही १।२६।

३ यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृत कम गर्हति।
तथा तथा शरीर तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥
कृत्वा पाप हि सतप्य तस्मात्पापात् प्रमुच्यते।
नैव कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु स ॥ मनु० ११।२२९ ३०।

४ ऋग्वेद १०।१५४।२।

५ छान्दोग्य उ० ५।१०।१ २।

६ मुण्डकोपनिषद् १।२।१० ११।

७ गौतम० १९।१५।

सोमेश्वर ने तप के विषय में इस प्रकार वर्णन किया है कि कृच्छ्र तथा चान्द्रायण आदि पुण्य व्रतों को कर विविध प्रकार के कद मूल फल का आहार कर, पत्र, पुष्प द्वारा अक्षत देकर एव पूजन कर, बिना खाए हुए अथवा थोडा खाकर, धूम भक्षण कर (केवल तप के धूम का पान कर), शीत आतप को सब जीवों के हित के लिए सहन करता हुआ ब्रह्मचर्य, तप, इन्द्रिय-निग्रह, जप, ध्यान, मौन, प्राणायाम तथा समाधि द्वारा जो तप कर अपने शरीर को शोषित करता है वह सभी दुष्प्राप्त इच्छाओ एव फलो की प्राप्ति करता है इसमे सशय नहीं ।[१] इस प्रकार तप के अन्तर्गत सोमेश्वर ने व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह, जप, तप ध्यान, मौन, प्राणायाम, समाधि, शीतातप का सहन आदि ले लिया है । राजा के लिए राज्य मे रहकर तो इन सभी अवस्थाओ को करना एव सहन करना सम्भव नही । इससे विदित होता है कि यह प्रसग सोमेश्वर ने सम्भवत राजा के वानप्रस्थाश्रम के समय का दिया है । राजा के पद पर आरूढ होकर वह केवल कुछ थोडी सी अवस्थाओ का ही पालन कर सकता है ।

सोमेश्वर द्वारा कथित यह तप तथा यम नियम धर्मशास्त्रो से मिलते जुलते है । याज्ञवल्क्य ने चान्द्रायण तथा कृच्छ्र एव महाकृच्छ्र व्रतो का वर्णन प्रायश्चित्त के प्रकरण मे किया है ।[२] इसके अतिरिक्त गोवध (उपपातक) के प्रायश्चित्त में भी चान्द्रायण के व्रत का उल्लेख है ।[3] मनु ने चान्द्रायण व्रत का गुरुपत्नीगमन के प्रायश्चित्त मे तथा कृच्छ्र व्रत को सर्प के वध के प्रायश्चित्त मे बताया है ।[४] प्रायश्चित्त के अन्तर्गत किए गए व्रत भी तप के ही अन्तर्गत आ जाते हैं क्योकि इनसे भी मन की शुद्धि तथा शरीर का शोषण होता है । इससे अतिरिक्त वानप्रस्थाश्रम मे भी इन दोनो व्रतों को करने का उल्लेख याज्ञवल्क्य ने किया है ।[५]

सोमेश्वर ने चान्द्रायण एव कृच्छ्र व्रतों का वर्णन किसी पाप के प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में नहीं किया है । इन व्रतों के अन्तर्गत उपवासो को विशेष रूप

---

१ मानसोल्लास १।१६।१२१ १२४ ।

२ याज्ञवल्क्य स्मृति प्रायश्चित प्र० श्लोक ६२ ।

३ उपपातकशुद्धि स्यादेव चान्द्रायणेन वा ।

या० स्म० प्रा० प्र० श्लोक ६५ ।

४ चान्द्रायण वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रिय । मनु० ११।१०६ ।
दानेन बधनिर्णेक सर्पादीनामशक्नुवन् ।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्र द्विज पापापनुत्तये ।। वही ११।१३९ ।

५ याज्ञ० वानप्रस्थ प्र० श्लोक ५० ।

से स्थान प्रदान किया जाता है। उपवास का अर्थ है भोजन तथा जल का निबन्ध, किन्तु साधारणत अल्पाहार एव शाकाहार अथवा फलाहार भी इसी के अन्तगत आ जाते हैं। गृह्यसूत्रों मे उपवास का अर्थ अल्पाहार तथा अल्प जलपान से लिया गया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति शाक, दाल, नमक तथा[1] थोडे मास का भी भक्षण कर सकता है। बृहदारण्यक उपनिषद् मे उपवास का सम्बन्ध तप के साथ स्थापित किया गया है क्योकि वही उपवास महान आत्मा से मिलाने मे समर्थ है।[2] देवल ने उपवास के अन्तर्गत इस प्रकार का वर्णन किया है—

असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात्।
उपवास प्रदुष्येत्तु दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥[3]

किन्तु गरुड,[4] तथा भविष्य पुराण मे उपवास मे पुष्प, आभूषण, सुन्दर वस्त्र, हार आदि के प्रयोग का भी उल्लेख हुआ है। सोमेश्वर ने भी व्रत के समय पुष्प पत्रादि के प्रयोग का वर्णन मानसोल्लास मे किया है। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर का 'शीतातपसहत्ने'[7] पद शिशिर काल मे शीत जल मे तथा ग्रीष्म ऋतु में पचाग्नि द्वारा तप करने की ओर सकेत करता है। मनु ने इस प्रकार के तप का वर्णन वानप्रस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध मे किया है—

ग्रीष्मे पचतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिक ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयस्तप ॥[8]

याज्ञवल्क्य ने भी—

ग्रीष्मे पचाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशय ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते शक्त्या वापि तपश्चरेत्॥[9]

कहकर वानप्रस्थ अवस्था मे ही इन साधनो का वर्णन किया है। याज्ञवल्क्य ने अग्नि तथा उपासना समेत रहने का आदेश दिया है। इसके अतिरिक्त 'सर्व-

---

१ गोभिल ग० सू० १।५।२६, खा० ग० २।१।४ ६, कौशिक सू० १।३१ ३२, काठ० ग० ४६।२।

२ स वा एष महानज आत्मा लभेत वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन। बृहदारण्यक उपनिषद ४।२।२२।

३ देवल as quoted by अपराक प० १९९, स्म० च० २ पृ० ३५५।

४ गरुड पु० १।१२८।६।

५ भविष्य पु० १।१८४।२७।

६ मानसोल्लास १।१७।१२१।

७ वही १।१७।१२२।

८ मनुस्मति ६।२३।

९ याज्ञवल्क्य स्म० वा० प्र० श्लोक ५२।

सत्त्वहिते रत'[१] अर्थात् सब प्राणियो के हित मे रत रहे, ऐसा वर्णन किया है। सोमेश्वर ने भी 'सर्वभूतहितेच्छया'[२] का प्रयोग किया है।

इन सभी साधनों के साथ ही सोमेश्वर ने तप के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह, जप, ध्यान, मौन, प्राणायाम तथा समाधि आदि पर भी अधिक बल दिया है। ये सभी अवस्थाये विशेष रूप से वानप्रस्थ अवस्था को ही द्योतित करती है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे वानप्रस्थाश्रम को व्यतीत करते हुए व्यक्ति के लिए इन्द्रिय निग्रह, वायुभक्षण, ब्रह्मचर्य, यान आदि साधन बतलाए गए है, जो सभी सोमेश्वर के द्वारा कथित नियमो से मिलते है।[३] मनु ने भी इन सभी का वर्णन किया है।[४]

जप का वर्णन विशेष रूप से वेदो मे वैदिक मत्रों के गायन के अर्थ मे हुआ है। हारीत ने वाचिक, उपाशु तथा मानस इन तीन प्रकार के जपो का उल्लेख किया है। इसमे सबसे बाद वाला अधिक श्रेष्ठ है क्योकि हारीत ने इस प्रकार लिखा है—

त्रिविधो जपयज्ञ स्यात्तस्य भेद निबोधत।
वाचिकाख्य उपाशुश्च मानसस्त्रिविध स्मृत ।
त्रयाणा जपयज्ञाना श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरम्॥[५]

स्मृतिचद्रिका में भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है।[६] नृसिह पुराण में भी इन तीनों जपों में उत्तरोत्तर 'त्रिविधो उत्तरोत्तरम्' जप की श्रेष्ठता का उल्लेख हुआ है।[७] लघुहारीत मे वाचिक तथा उपाशु जपो को इस प्रकार बतलाया गया है—

मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिक ।
शनैरुच्चारयन्मन्त्र किंचिदोष्ठौ प्रचालयेत्।
किंचिच्छ्रवणयोग्य स्यात्स उपाशुजप स्मृत ॥[८]

मनु ने भी इस जप एव वेदाभ्यास को इच्छा से किए हुए पाप की शुद्धि

---

१ याज्ञवल्क्य वा० प्र० श्लोक ४८। २ मानसोल्लास १।१७।१२२।

३ याज्ञ० अध्याय ३ वानप्रस्थ प्र० श्लोक ४५–५५।

४ मनु० ६।२०-३०। ५ हारीत० पृ० १८६।

६ उच्चस्त्वेकगुण प्रोक्तो ध्यानाद्दशगुण स्मत ।
उपाशु स्याच्छतगुण सहस्रो मानस स्मृत ।।
स्मृतिचद्रिका १, पृ० १४९।

७ नृसिह पुराण ५८।७८ ७९।

८ लघुहारीत (जीवानद) ४ पृ० १८६।

का कारण माना है ।[1] उन्होंने भी इन्ही तीनो प्रकार के जपों का वर्णन किया है और मानस जप को सहस्रगुना श्रेष्ठ बतलाया है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणै ।
उपांशु स्याच्छतगुण साहस्रो मानस स्मृत ॥[2]

ब्राह्मण के लिए मनु ने जप ही मोक्ष का कारण माना है ।[3] शख स्मृति मे भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है ।[4] किन्तु सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास मे केवल जप का नाम दे दिया है । उसके भेदो पर तथा उसके महत्त्व पर कुछ भी प्रकाश नही डाला है । फिर भी उनके प्रसग को पढ कर ऐसा विदित होता है कि तप के म य जप को वे श्रेष्ठ स्थान देते है ।

जप परमात्मा से मिलने की सबसे समीपस्थ एव महान् अवस्था है क्योंकि जप के लिए तीन वस्तुओ की आवश्यकता होती है—हृदय की पवित्रता, वैराग्य तथा अपने को ईश्वर के हाथों मे समर्पित कर अपने अस्तित्व को खो देना। इन्हीं अवस्थाओं को प्राप्त कर लेने पर ही व्यक्ति जप करने के योग्य होता है। सोमेश्वर ने राजा के सासारिक पक्ष का ज्ञान कराने के साथ ही साथ उसके आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक बल दिया है । इसी कारण जप के पश्चात् वे ध्यान एव मौन अवस्था को लेते है ।

जप के तीसरे भेद मानस जप का अभ्यास करने पर ही व्यक्ति की ध्यानावस्थित अवस्था आती है । जब व्यक्ति स्थितप्रज्ञ हो जाता है तो उसके मस्तिष्क से सभी सासारिक विप्लव दूर हो जाते है और वह पद्मपत्र की भाति ससार मे रहने लगता है । गीता मे इस प्रकार के योगी का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

सुखदु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि ॥[5]
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधी कि प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥[6]

ध्यान के स्थित हो जाने पर व्यक्ति मौन हो जाता है ।

ध्यान तथा मौन के अतिरिक्त प्राणायाम तथा समाधि का वर्णन सोमेश्वर ने किया है । मनु ने प्राणायाम का तप के अन्तर्गत बहुत महत्व दिया है । उनका कथन है—

सव्याहृतिप्रणवका प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहण मासात्पुनन्त्यहरह कृता ॥[7]

---

१ मनु० ११।४६ । २ वही २।८५ । ३ वही २।८७ ।
४ शख० १२।२८ । ५ गीता २ ३८ ।
६ वही २।५४ । ७ मनु० ११।२४८ ।

इसी प्रकार के प्रसग बौधायन धर्मसूत्र,[१] वशिष्ठ,[२] अत्रि[३] तथा शख[४] स्मृतियो मे भी मिलते है कि प्रणव, व्याहृति मत्र तथा सोलह प्राणायाम एक मास में ब्रह्महत्या के भी पाप से मुक्त कर देते है। याज्ञवल्क्य ने भी प्राणायाम का महत्व इस प्रकार बतलाया है—

प्राणायामशत कार्यं सर्वपापापनुत्तये।
उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि॥[५]

अग्निपुराण मे भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है।[६] इसके अतिरिक्त प्राणायाम का महत्व और भी स्थानो पर वर्णित किया गया है।[७] सोमेश्वर ने जो प्राणायाम शब्द का प्रयोग किया है उससे विदित होता है कि प्राणायाम पर विशेष बल दिया गया है।

प्राणायाम के पश्चात् समाधि का वर्णन है। व्यक्ति की समाधिस्थ अवस्था तभी हो सकती है जब उसका सम्बन्ध पारलौकिक जीवन से जुड जाता है। इस प्रकार जो इन सभी उपायों द्वारा अपने शरीर को शोषित कर तप करता है वह अवाछनीय एव दुष्प्राप्त वस्तु को भी प्राप्त करता है।[८] इसके आगे भी सोमेश्वर तप के महत्व एव फल का वर्णन करते हुए कहते हैं—

यद् दूर यद् दुराराध्य यच्च दुर्धरता स्थितम्।
तत् सर्वं तपसा साध्य तपो हि दुरतिक्रमम्॥[९]

अर्थात् जो वस्तु बहुत दूर है, दुराराध्य है, दुर्धर है वह सब तप के द्वारा प्राप्त हो सकती है। सोमेश्वर का उपर्युक्त श्लोक मनु के इस श्लोक से बिलकुल मिलता है —

यद्दुस्तर यद् दुराप यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वन्तु तपसा साध्य तपो हि दुरतिक्रमम्॥[१०]

मनु ने भी तप की बडी प्रशसा मनुस्मृति में की है।[११] तप की प्रशसा करते हुए वे कहते हैं—

तपोमूलमिद सर्वं दैवमानुषक सुखम्।
तपो मध्य बुधै प्रोक्त तपोऽन्त वेददर्शिभि॥[१२]

---

१ बौ० धम सू० ४।१।३१। २ वशिष्ठ० २६।४।
३ अत्रि० २।५। ४ शख० १२।१८ १९।
५ याज्ञ० ३।३०६। ६ अग्नि पु० १७३।२१।
७ मनु० ६।७० ७२। ८ मानसोल्लास १।१७।१२४।
९ वही १।१७।१२५। १० मनु० ११।२३८।
११ वही ११।२३४ २४४। १२ वही ११।२३४।

इस प्रकार सोमेश्वर ने तप का वर्णन कर वानप्रस्थाश्रम सम्बन्धी सभी साधनो एव यम नियमों का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने आश्रम-व्यवस्था को ही मुक्ति का कारण माना है तभी तप के विषय मे उन्होंने इतना बल दिया है।

तीर्थस्थान

सोमेश्वर ने राजा के लिए तीर्थ स्नान भी अत्यन्तावश्यक बतलाया है। तीर्थों के महत्व का वर्णन यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो लगभग सभी जातियो में हुआ है। मुसलमान मक्का मदीना की यात्रा को अत्यन्त पवित्र मानते है क्योंकि वही उनके मोहम्मद की कब्र है। ईसाई धर्म के मानने वाले जेरूसलम को बहुत पवित्र मानते है। बौद्ध मत के मानने वाले लुम्बिनी (जहा बुद्ध का जन्म हुआ था), बोध गया (प्रकाशप्राप्ति का स्थान), सारनाथ (जहा उन्होने धर्म पर प्रथम उपदेश दिया था) तथा कुशीनगर (जहा उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था) आदि स्थानो को तीर्थ के रूप मे मानते है। भारत में तीर्थो को बडा ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और भारत के सभी तीर्थ पवित्र नदी, पर्वत, जगल तथा पवित्र देवताओ के आधार पर ही बने है। टैगोर ने भारतवर्ष के तीर्थों के विषय मे लिखा है—

'India choose her places of pilgrimage wherever there was in nature some special grandeur or beauty so that her mind could come out of its world of narrow necessities and realize its place in the Infinite This was the reason why in India a whole people who once were meat-eaters gave up taking animal food to cultivate the sentiment of universal sympathy for life, an event unique in the history of mankind"[1]

तीर्थ शब्द का प्रयोग ऋग्वेद[2] तथा अन्य सहिताओ मे अनेक स्थान पर हुआ है। तैत्तिरीय सहिता मे यज्ञकर्ता के लिए तीर्थ आवश्यक बतलाया गया है।[3] ऋग्वेद मे एक स्थान पर "सुवास्त्वादि तुग्वनि"[4] का प्रयोग हुआ है। निरुक्त की व्याख्या के अनुसार सुवास्तु का तात्पर्य एक नदी से है, किन्तु तुग्वन शब्द का अर्थ तीर्थ ही माना गया है।[5]

हिन्दू तीर्थों की सख्या निश्चित नहीं है। प्राचीन काल से ही अनेक तीर्थों के नाम प्रचलित है। मत्स्य पुराण मे साढे तीन करोड तीर्थो का उल्लेख हुआ

१ टैगोर साधना (मैकमिलन ऐंड क० लि० १९३०), पष्ठ ९।
२ ऋग्वेद १।१६९।६। ३ तै० स० ६।१।१।१ २।
४ ऋग्वेद ८।१९।३७। ५ निरुक्त ४।१५।

है जो आकाश मे है और पृथ्वी के सब तीर्थ गगा नदी के आसपास ही है। उसमे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

तिस्र कोट्योऽर्धकोटिश्च तीर्थाना वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ॥[1]

वामन पुराण मे भी साढे तीन करोड तीर्थों का प्रसग प्राप्त होता है।[2] ब्रह्मपुराण मे तीर्थों के विषय मे ऐसा कहा गया है—

तस्माच्छृणुध्व वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च।
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तु वर्षशतैरपि ॥[3]

इसके अतिरिक्त नए नए तीर्थ और समय समय पर बढते जाते है इस कारण उनकी गणना करना कठिन है।

इन सभी तीर्थों मे कुछ तीर्थ बडे महत्वशाली है, किन्तु उनकी गणना प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने दृष्टिकोण से करता है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति की स्थानीय भावना भी आ जाती है। सोमेश्वर ने भी जिन तीर्थों की गणना अपने मानसोल्लास में की है उनमे से अधिकाश तीर्थ दक्षिण की सीमा से ही सम्बन्धित है। किन्तु ऐसा नही कि सोमेश्वर ने अन्य तीर्थों का उल्लेख न किया हो। उन्होंने दक्षिण के साथ ही साथ उत्तर, पूर्व एव पश्चिम के भी तीर्थों का उल्लेख किया है। फिर भी वे स्थानीय दृष्टिकोण से वचित न रह सके। तीर्थस्नान के प्रकरण के अन्तर्गत सोमेश्वर ने जाह्नवी, यमुना, नर्मदा, तापी, गौतमी, तुगभद्रा, वजरा, भीमरथी, कृष्णा, वेण्या, बृहन्नदी आदि नदियों तथा पुष्कर, शुक्ल प्रभास, केदार आदि तीर्थों तथा प्रयाग, वाराणसी आदि पवित्र स्थानो का वर्णन किया है।[4] सोमेश्वर ने जिन महानदियो का वर्णन किया है उनका प्रसग वामन पुराण में भी प्राप्त होता है। वामन पुराण[5] मे गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेण्या, सरस्वती, तुगभद्रा आदि नदियों के नाम महानदियो मे गिनाये गए हैं किन्तु नृसिह पुराण में गगा, यमुना, तुगभद्रा तथा कावेरी इन चार ही नदियो को श्रेष्ठ नदियाँ माना है।

सोमेश्वर ने अपनी तीर्थों की सूची में गगा का नाम सर्वप्रथम गिनाया है और "जाह्नवी सरिता श्रेष्ठा"[6] कहकर सब नदियो मे उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की है। वास्तव में गगा को सभी नदियों में श्रेष्ठ माना गया है। याज्ञवल्क्य महर्षि का ऐसा मत है कि वर्षा ऋतु में सभी नदिया अपने ऋतुकाल मे होती है किन्तु

---

१ मत्स्य पुराण ११०।७।
२ वामन पुराण ४६।५३।
३ ब्रह्म पुराण २५।७ ८।
४ मानसोल्लास १।१८।१२६ १३४।
५ वामन पुराण ४६।५३।
६ नृसिह पु० ६६।६।

जाह्नवा सदैव शुद्ध रहती है। कात्यायन भी इसको स्वीकार करते हैं कि श्रावण मास के प्रारम्भ से सभी नदियों का ऋतुकाल प्रारम्भ हो जाता है किन्तु गगा का ऐसा नही होता, इसी कारण यह अधिक श्रेष्ठ मानी गई है। गगा का ऋग्वेद की नदीस्तुति[1] मे भी एक बार नाम आया है परन्तु इसका विशेष रूप से प्रयोग 'गाग्य' के रूप में हुआ है जो उरुकक्ष[3] का विशेषण है। शतपथ ब्राह्मण[4] मे भरत ने गगा यमुना तक विजय करने के प्रसग मे गगा का उल्लेख हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण मे भी गगा का प्रसग है।[5] तैत्तिरीय आरण्यक मे भी गगा का उल्लेख हुआ है और इसके समीप रहने वालो के प्रति श्रद्धा प्रकट की गई है। इसके अतिरिक्त उपनिषदो में भी गगा का प्रसग आया है। वायु पुराण[7] मे गगा के विषय मे महर्षि जह्नु की कथा का प्रसग प्राप्त होता है। इसी प्रकार नारदीय पुराण[8] मे भी महर्षि जह्नु के गगा के जल पीने तथा उसे अपने दाहिने कान से निकाल देने का प्रसग प्राप्त होता है, इसी कारण गगा का नाम जाह्नवी पडा, किन्तु ब्राह्म पुराण[9] मे जह्नु के पेट से गगा का जल निकलने का प्रसग प्राप्त होता है। लुडविग[10] नामक अग्रेज विद्वान् ने गगा को आपया[11] के नाम से माना है। गगा वास्तव मे सभी सरिताओं मे अधिक पुनीत है, इसी कारण सभवत सोमेश्वर ने इसका नाम सर्वप्रथम लिखा है।

सोमेश्वर ने गगा के बाद यमुना तथा नर्मदा को शुभ फल देने वाली बतलाया है। ऋग्वेद मे यमुना का तीन स्थलों[12] पर उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के सातवे मडल[13] में ऐसा प्रसग है कि तृत्सुस् तथा सुदास ने यमुना के समीप स्थित अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। इसके विषय में कुछ अग्रेज विद्वानों[14] का मत है कि यमुना इस प्रसग में परुष्णी अर्थात् रावी नदी का ही दूसरा नाम था। किन्तु तृत्सुओं तथा सुदास का देश क्रमश यमुना और सरस्वती के मध्य पूर्व तथा पश्चिम में स्थित था, इस कारण उनकी यह धारणा निर्मूल है।

१ ऋ० १।७५।५। २ ओल्डेनबर्ग, ऋ० नोटस १।३ ९६
३ ऋ० ६।४५।३१। ४ शतपथ ब्रा० १३।५।४।११।
५ ऐ० ब्रा० ८।२३। ६ तैत्तिरीय आरण्यक २।२०।
७ वायु पुराण ९१।५४ ५८। ८ नारदीय पुराण २।४१।३५ ३६।
९ ब्राह्मपु० ३।५६।४८ और ३।६६।२८।
१० Translation of the Rgveda 3|200।
११ ऋ० वे० ३।२३।४।
१२ वही ५।५२।१७ ७।१८।१९, १०।७५।५।
१३ वही ७।१८।१९।
१४ Hopkins—"India Old and New" P–52।

अथर्ववेद[1] मे यमुना तथा त्रिककुद पर्वत के प्रसग मे आजन (सुमा) नाम मिलता है। शतपथ[2] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[3] मे भरत के यमुना पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त यमुना के तट पर भरत ने कई अश्वमेध यज्ञ किए।[4] इसके अतिरिक्त पचविंश ब्राह्मण[5] मे भी यमुना के माहात्म्य का उल्लेख हुआ है और तौरश्रवस् साम की उत्पत्ति यमुना के तट पर ही बताई गई है। आश्वलायन श्रौतसूत्र मे यमुना के तट पर अवभृथ का प्रसग आया है। पद्मपुराण मे विशेष रूप से यमुना के माहात्म्य का वर्णन है।

भारतवर्ष की अन्य महत्वपूर्ण सरिता नर्मदा है, किन्तु वेदो मे नर्मदा का उल्लेख नही हुआ है। शतपथ ब्रा० मे "रेवोत्तरसमुह पाटव चाक्र स्थपति सृजया अपरुरुधु"[7] ऐसा प्रसग प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि नर्मदा का दूसरा नाम रेवा भी है। नर्मदा का रेवा नाम अमरकोश मे भी प्राप्त होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के एक सूत्र के वार्तिक मे जो 'महिष्मत्' शब्द प्राप्त होता है वह सम्भवत 'माहिष्मत' नगर के लिए प्रयुक्त हुआ है जो नर्मदा के तट पर स्थित है। रघुवश[1] मे माहिष्मती को अनूप की राजधानी बताया गया है, जो रेवा (नर्मदा) नदी के तट पर स्थित थी। महाभारत तथा पुराणो मे भी नर्मदा नदी का वर्णन हुआ है। पद्मपुराण[11] के आदिखड मे तथा मत्स्य[12], कूर्म[13] आदि पुराणो मे नर्मदा की महत्ता का वर्णन है। विष्णु पुराण मे नर्मदा नदी की स्तुति एव वन्दना का इस प्रकार वर्णन हुआ है—

नर्मदायै नम प्रातर्नर्मदायै नमो निशि।
नमोस्तु नर्मदे तुभ्य त्राहि मा विषसर्पत ॥[14]

इसके अतिरिक्त मत्स्य[15] तथा पद्मपुराण[16] में अमरकटक पवत (जहा से नर्मदा

१ अथववद ४।९।१०। २ शत० ब्रा० १३।५।११।
३ ऐ० ब्रा० ३९।९। ४ ए० ब्रा० ३९।९, शत० ब्रा० १३।५।११।
५ पञ्चविंश ब्रा० ९।४।१०। ६ पद्म० ६ अध्याय १९५ १९७।
७ श० ब्रा० १२, ९, ३, १।
८ रेवा तु नमदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका अमर० १।१०।३२।
९ पाणिनि अष्टाध्यायी ४।२।८७।
१० रघुवश ६।४३। ११ पद्मपुराण आदि खड १३ २३, ७३९।
१२ मत्स्य पु० अध्याय १८६ १९४।
१३ कूम पु० उत्तराध अध्याय ४० ४२।
१४ वि० पु० ४।३।१२ १३। १५ मत्स्य० १९४,४५।
१६ पद्म० आदिखड २१।४४।

निकलती है) से लेकर सागर (जहा नर्मदा गिरती है) तक १० करोड तीर्थों का वर्णन हुआ है। कूर्म पुराण[1] ने उतने ही स्थान मे ६० करोड ६० हजार तीर्थों का उल्लेख किया है। किन्तु सोमेश्वर ने इस विषय पर कुछ भी नही कहा। वे केवल नर्मदा शुभा ही कहकर चुप हो गए है। नारदीय पुराण[2] ने ४०० मुख्य तीर्थों को बतलाया है जो नमदा के दोनों तटों पर स्थित हैं। पुराणो म नमदा के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनि सृता।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥[3]

इसके अतिरिक्त विस्तार मे भी यह नदी बहुत बडी है

योजनाना शत साग्र श्रूयते सरिदुत्तमा।
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता ॥[4]

नर्मदा मे कपिला[5] विशल्या, एरडी[7], इक्षुनदी,[8] कावेरी[9] आदि नदिया गिरती है, किन्तु इस विषय मे सोमेश्वर ने कुछ भी नही लिखा।

नर्मदा के बाद सोमेश्वर ने अपने तीर्थस्नान के अध्याय में तापी नदी का वर्णन किया है। यह दक्षिण की प्रसिद्ध नदी है और सोमेश्वर के राज्य की सीमा में ही है। यह नदी विन्ध्य पर्वत से निकल कर सूरत के समीप अरब सागर मे गिरती है। मत्स्य,[10] ब्रह्म,[11] वायु[12] तथा अग्नि[13] पुराण मे तापी के नाम का उल्लेख हुआ है। मत्स्य पुराण[14] मे तापी के विषय मे एक ऐसी कथा मिलती है कि तापी नदी का ही नाम सभवत तापी है और यह मूल तापी से भिन्न नदी है। मत्स्य पुराण[15] के आदिपर्व के अध्यायों मे तापी (तापी) को सूर्य की कन्या बताया गया है जिसके साथ सोमवण राजा ने विवाह किया था और उनके कुरु नामक एक पुत्र भी हुआ था।

---

१ कूर्म पु० २।४०।१३। २ नारदीय पु० उत्तरार्ध।
३ मत्स्य० १९०।१७, कूर्म० २।४०।५।
४ कूर्म० २।४०।१२, मत्स्य० १८६।२४ २५।
५ मत्स्य० १८६।४०। ६ मत्स्य० १८६।४६, पद्म० २।१३।३५ ३९।
७ मत्स्य० १९१ ४२ ४३, पद्म० १।१८।४४।
८ मत्स्य० १९१।४९, पद्म० १।१८।४७।
९ मत्स्य० १८९।१२ १३, पद्म० १।१६।६। १० मत्स्य पुराण ११४।२७।
११ ब्रह्म० २७।३३। १२ वायु पुराण ४५।१०२।
१३ अग्नि पुराण १०९।२२। १४ मत्स्य० २२।३२ ३३।
१५ वही आदिपर्व १७१।१७३।

मार्कण्डेय पुराण[1] मे राजा सूय की पुत्री के ही नदी बन जाने का प्रसग मिलता है और वही सभवत तासी अथवा तापी सरिता है। इसके अतिरिक्त नासिक के एक शिलालेख मे[2] तथा अन्य स्थलो[3] पर इसके नाम का उल्लेख हुआ है। पयोष्णी तथा तापी दक्षिण की दो विभिन्न नदिया है ऐसा पुराणो मे प्रसग प्राप्त होता है। पयोष्णी बरार की वर्तमान पूणा नदी है जो गविल गढ की पहाडियो से निकल कर तापी मे गिरती है। इसके अतिरिक्त तीर्थप्रकाश में तापी नदी का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। सोमेश्वर ने तापी नदी को बडी ही पुण्य वाली "तापी तरगिणी पुण्या"[7] माना है। इन शब्दो से स्पष्ट इनका स्थानीय प्रभाव झलकता है।

तापी के पश्चात् गौतमी का प्रसग है। गौतमी गोदावरी नदी का प्राचीन नाम है। वैदिक साहित्य म इस नदी के विषय मे कोई भी प्रसग नही प्राप्त होता। बौद्ध साहित्य में बावरी के सम्बन्ध मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि वह महाकोशल तथा पसेनदी का पुरोहित था और अस्सक के क्षेत्र मे गोदावरी नदी के तट पर स्थित अलका के समीप रहता था। उसने अपने अनेक शिष्य बुद्ध के पास भेजे थे।[8] पाणिनि की अष्टाध्यायी[9] के वार्तिक मे 'सख्याया नदीगोदावरीभ्या च' का प्रयोग हुआ है। इतिहास तथा पुराणों मे भी गोदावरी नदी का उल्लेख हुआ है। महाभारत में ऐसा प्रसग गोदावरी के विषय मे आया है—

> यस्यामाख्यायते पुण्या दिशि गोदावरी नदी।
> बह्वारामा बहुजला तापस्माचरिता शिवा॥[1]

रामायण मे राम के पचवटी के निवास के प्रकरण मे गोदावरी का प्रसग आया है—

---

१ माकण्डेय पुराण १०५।२६।

२ Usavadata s Nasik Inscription No 10

३ Bombay Gazetteer Vol 16, p 569

४ विष्णु पु० २।३।११, वामन० १३।२८, नारदीय० २।६०।२९, भागवत० १०।७९।२०, पद्म० ४।१४।१२, ४।१६।३।

५ Imperial Gazetteer of India Vol XX, p 412

६ मित्रमिश्र वीरमित्रोदय तीर्थप्रकाश, पृ० ५४४ ५४७।

७ मानसोल्लास १।१८।१२६।

८ Sacred Books of the East, Vol X, part 2, p p 184 and 187

९ पाणिनि ५।४।७५। १० महाभारत वनपत्र ८८।२।

इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदक ।
देशो बहुमृग श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुत ॥

गोदावर्या समीपे च मैथिली तत्र रस्यते ॥[1]

पुराणो मे भी इसके विषय में अनेक प्रसग प्राप्त होते है। ब्रह्म पुराण मे गोदावरी के लिए गौतमी नाम प्रयुक्त हुआ है—

विन्ध्यस्य दक्षिणे गगा गौतमी सा निगद्यते ।
उत्तरे सापि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते ॥[2]

कुछ विद्वानो का इस विषय मे मतभेद है किन्तु तीथसार मे ६० श्लोक ऐसे है जो ब्रह्म पुराण मे ही है और अनेक अध्यायों से लिए गए है। ऋषि गौतम जिस प्रकार से गगा को शिव की जटाओ से गणेश की सहायता से निकालकर अपने आश्रम तक लाए थे उसका पूर्ण वर्णन पुराणो मे प्राप्त होता है। सभवत इसी कारण इसका नाम गौतमी पडा।[4] उनमे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि गोदावरी का ही गौतमी नाम है। ब्रह्म पुराण ने दडकारण्य की भूमि को धर्म तथा मुक्ति का मूल बीज बतलाया है और गौतमी के चारों ओर की भूमि को बहुत ही पवित्र बतलाया है क्योकि इसमें ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

धर्मबीज मुक्तिबीज दडकारण्यमुच्यते ।
विशेषाद्गौतमीश्लिष्टो देश पुण्यतमोऽभवत् ॥[5]

नारदीय पुराण मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि जब गौतम ने तप किया था तब १२ वर्ष तक जल नही बरसा। इस पर सब ऋषियो ने उनसे प्रार्थना की कि वे गगा को अपने आश्रम के समीप लाकर प्रात काल शालि बोकर मध्याह्न मे उसे काटें जिससे सभी खूब अन्न प्राप्त कर सके। जब तक पर्याप्त मात्रा मे अन्न न हो जाय तब तक वह इसी प्रकार करते रहे। उनके तप से प्रसन्न होकर जब शिव जी उनके समीप आए तो उन्होंने उनसे अपने आश्रम के समीप निवास करने के लिए आग्रह किया। उसी समय से उस पवत का नाम त्र्यम्बक पड गया जिस पर गौतम का आश्रम था। वराह पुराण भी इस बात को पुष्ट करता है कि गौतम ऋषि अपने तप के बल से जाह्नवी को दडकारण्य में लाए। वही बाद मे गोदावरी नदी हो गई।[7]

१ रामायण ३।१३।१३ और २१। २ ब्रह्म पु० ७८।७७

३ ब्रह्म पु० अ० ८९, ९१, १०६, १०७, ११६, ११८, १२१, १२२, १२८, १३१, १४४, १५४, १५९ और १७२।

४ वही अध्याय ७४ ७६। ५ वही १६१।७३।

६ नारदीय पुराण उत्तराध ७२। ७ वराह पु० ७१।३७ ४४।

गोदावरी के माहात्म्य का तथा उसके किनारे पर स्थित तीर्थों का भी पुराणों मे विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है । ब्रह्म पुराण मे ऐसा प्रसग है—

तिस्र कोट्योऽर्धकोटी च योजनाना शतद्वये ।
तीर्थानि मुनिशार्दूल सम्भविष्यन्ति गौतम ॥[1]

उन तीर्थों मे त्र्यम्बक[2] कुशावर्त, जनस्थान,[4] गोवर्धन,[5] प्रवरासगम,[6] निवासपुर[7] आदि मुख्य है । निवासपुर के लिए ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

शिवशक्त्यं र्यतस्तस्मिन्निवासोऽभूत्सनातन ।
अतो वदन्ति मुनयो निवासपुरमित्यद ॥[8]

कूर्म पुराण गोदावरी के माहात्म्य को प्रदर्शित करता हुआ उस पर स्थित अनेक तीथा की सूची के साथ साथ गोदावरी के तट को श्राद्ध करने का सबसे पवित्र स्थान बतलाता है ।[9] गोदावरी के तट पर अनेक प्रसिद्ध मदिर भी है । इसी कारण इसे मुक्ति का स्थान माना है । सोमेश्वर ने भी इसे "गौतमी पापनाशनी"[10] कहकर सम्बोधित किया है ।

गौतमी के बाद सोमेश्वर ने भगवान के चरणो से उद्भूत, रमणीय श्रीपर्वत के उत्सग मे विचरण करने वाली तुगभद्रा नदी का वर्णन किया है । यह सोमेश्वर महाराज की कल्याण नगरी मे ही बहने वाला नदी है । मत्स्य[11] ब्रह्म,[12] तथा वायु[13] पुराण में तुगभद्रा के सह्य पर्वत से निकलने का प्रसग प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त नृसिह[14] तथा भागवत पुराण[15] मे भी इसका वर्णन हुआ है । महाभारत मे तुगभद्रा का उल्लेख है ।[16] कल्पतरु[17] में तुगभद्रा पर बहुत कुछ प्रकाश डाला गया है । विल्हण कृत 'विक्रमाकदेवचरित' मे तीव्र दाह ज्वर के कारण विक्रमादित्य के पिता आहवमल्ल (सोमेश्वर प्रथम) का तुगभद्रा में डूबने का प्रसग प्राप्त होता है ।[18] सोमेश्वर ने अन्य सभी नदियों

---

१ ब्रह्म पुराण ७७।८९ ।
२ वही ७९।६ ।
३ वही ८०।१३ ।
४ वही ८८।१ ।
५ वही अध्याय ९१ ।
६ वही अध्याय १०६ ।
७ वही १०६।५३ ५४ ।
८ वही ।
९ कूर्म पु० २।२०।२९ ३५ ।
१० मानसोल्लास १।१८।१२६ ।
११ मत्स्य० ११४।२९, २२।४५ ।
१२ ब्रह्म० २७।३५ ।
१३ वायु० ४५।१४ ।
१४ नृसिह पुराण ६६।६ ।
१५ भागवत पुराण ५।१९।१८ ।
१६ महा० वन पव १९।१८ ।
१७ कल्पतरु, पृ० २५४ ।
१८ विक्रमाकदेव चरित ४।४४ ६८ (Vide also Epigraphica Indica Vol XII, p 294) ।

से तुगभद्रा का अधिक वर्णन किया है और उसकी प्रशसा भी अधिक की है और उसके लिए 'तुगभद्रा सदा भद्रा दर्शनात् पापनाशिनी',[1] का प्रयोग किया है। यह पक्ति सोमेश्वर के स्थानीय प्रभाव को द्योतित करती है।

तुगभद्रा के पश्चात् वजरा का वर्णन मानसोल्लास मे हुआ है। इस नदी के विषय मे अधिक प्रसग नही प्राप्त होते। सभवत यह गोदावरी के दक्षिण तट पर बहती है। ब्रह्म पुराण[2] मे वजरा नदी का प्रसग प्राप्त होता है। सभवत यह वर्तमान काल की मजरा नदी का ही प्राचीनतम रूप रहा होगा जो नन्दर (Nander Distt) जिले मे गोदावरी नदी से मिलती है। मैसूर के 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' नामक सस्करण मे वजरा का पजरा[3] नाम उपलब्ध होता है किन्तु वह त्रुटिपूर्ण है। उसका वास्तविक नाम वजरा ही है।

भीमरथी नदी भीम नदी से मिलती-जुलती है जो सह्य पर्वत से निकल कर कृष्णा नदी के मुहाने पर मिलती है। भीमरथी नदी के प्रसग कुछ पुराणों मे प्राप्त होते है। मत्स्य, ब्रह्म पद्म,[6] वायु,[7] वामन[8] पुराणों मे इसका नाम मिलता है। महाभारत[9] मे भी भीमरथी नदी का उल्लेख हुआ है। कीर्ति वर्मन द्वितीय[10] (७५७ ई०) के Vakkaleri Plate मे तथा अन्य स्थलों[11] पर इसका उल्लेख हुआ है। सोमेश्वर ने भीमरथी नदी के साथ भीम नदी का उल्लेख अपने मानसोल्लास मे नहीं किया।

कृष्णा नदी भी दक्षिण की प्रसिद्ध नदियों में से है। यह महाबलेश्वर के समीप सह्य पर्वत से निकल कर अरब सागर मे बकोट के समीप गिरती है। इस नदी का प्रसग पुराणों म अधिकता से मिलता है। ब्रह्म,[12] पद्म[13], वामन[14] आदि पुराणो मे इसका विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है।

वेण्या भी दक्षिण की एक नदी है जो सह्य पर्वत से निकल कर कृष्णा नदी मे गिरती है। इसका पुराणो मे अनेक स्थान पर उल्लेख हुआ है। वामन,[15]

---

१ मानसोल्लास १।१८।१२७। २ ब्रह्म पुराण १५९।४५।

३ अभिलषितार्थचिन्तामणि १।१।१२४।

४ मत्स्य पुराण ??।४५, ११४।२९। ५ ब्रह्म० २७।३५।

६ पद्म १।२४।३२। ७ वायु पुराण ८७।३।

८ वामन पुराण १३।३०। ९ महाभारत भीष्म पर्व ९।२०।

१० Epigraphica Indica, Vol V, p p 200 204

११ महा० भीष्म पर्व ९।२०। १२ ब्रह्म० ७७।५।

१३ पद्म० ६।१३।२५। १४ वामन० १३।३०।

१५ वामन० ७८।७।९०।२, १३।३०।

भागवत,[1] वायु[2] तथा पद्म[3] पुराण मे वेण्या नदी एक विशेष नदी बतलाई गई है और महादेव ही वेण्या नदी हो गए थे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है। महाभारत के एक स्थल पर[5] "गोदावरी च वेण्या च कृष्णवेण्या तथापि च" ऐसा प्रसग प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि वेण्या नदी कृष्ण वेण्या नदी से अलग है। इन नदियो के अतिरिक्त बृहन्नदी भी दक्षिण भारत का एक नदी है जो सम्भवत वर्तमान काल का महानदी का ही प्राचीन रूप है। यह बगाल की खाडी मे गिरती है। सोमेश्वर ने इन सभी नदियो को "मलापहारिणी" बतलाया है। सोमेश्वर ने इस प्रकार से जितना नदियो का वर्णन अपने मानसोल्लास मे किया है उनमे से अधिकाश नदिया दक्षिण की ही है। नदियों के विवरण के साथ ही साथ उन्होने अन्य नदियो, सागर, सर, ह्रद, देवखात, कुण्ड, कूप तथा गिरिस्रोतो को तीर्थ के अन्तर्गत बतलाया है किन्तु उनके नाम नही गिनाए।

इसके पश्चात् वे तीर्थो का वर्णन करते है, जिसके अन्तर्गत उन्होने पुष्कर, शुकर, प्रभास तथा केदार आदि तीथा का वर्णन किया है।[7] पुष्कर तीर्थ अजमेर से ६ मील की दूरी पर स्थित है। पुष्कर नगर, झील तथा स्थान तीनों ही तीर्थयात्रा के लिए उत्तम है। नारदीय पुराण मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि यहा पर ब्रह्मा के अनेक मदिर बने हुए है तथा ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ तीन प्रसिद्ध कुण्ड है। पद्म पुराण मे भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है। वामन[10] तथा ब्रह्माड[11] पुराण मे भी मध्यम पुष्कर का उल्लेख हुआ है और कनिष्ठ पुष्कर मध्यम पुष्कर से डेढ योजन दूर है, ऐसा भी प्रसग प्राप्त होता है।[12] इसके अतिरिक्त पद्म पुराण[13] ब्रह्मा के द्वारा बनाए हुए कमलो (पुष्कर) द्वारा जिस प्रकार से इसका नाम पुष्कर पडा उसका भी वर्णन हुआ है। पवित्र सरस्वती यही से बह कर सागर की ओर जाती है।[14] ब्रह्माड पुराण[15] मे वीर परशुराम के अपने शिष्यों के साथ १०० वष यही तप करने का प्रसग

१ भागवत० ५।१९।१८। २ वायु० ४५।१०४।
३ पद्म० ६।११३।२५। ४ वही।
५ महाभारत अनुशासन पव १६५।२२।
६ मानसोल्लास १।१८।१२९। ७ वही १।१८।१३०।
८ नारदीय पुराण २।७१।१२। ९ पद्म पुराण ५।२८।५३।
१० वामन पुराण २२।१९, ६५।३१। ११ ब्रह्माड पुराण ३।३४।११।
१२ वही ३।३५।३९। १३ पद्म पुराण ५।१५।६३ और ८२।
१४ वही ५।१९।३७। १५. ब्रह्माड पुराण ३।३४।७।

प्राप्त होता है। पुष्कर मे एक स्थान पुष्कर सेतु है जहा तीन तालाब बने हुए है।[१] वायु[२] तथा कूर्म पुराण[३] अन्य स्थलो मे पुष्कर तीर्थ को श्राद्ध करने के लिए बडा ही पवित्र माना है। विष्णु धर्म सूत्र[५] मे भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है। पद्म पुराण के अन्तर्गत पुष्कर तीथ को ब्रह्मा की पाच वेदियों मे से एक वेदी माना है। पाणिनि[७] की अष्टाध्यायी मे भी पुष्कर का प्रसग आया है और उसे 'वणादिगण' के अन्तर्गत माना है।

पुष्कर नगर के विषय मे Alberuni s India मे जो वर्णन प्राप्त होता है वह पुष्कार के मदिरो एव तीर्थों पर प्रकाश डालता है—

> Outside the town in three places they have constructed ponds which stand in high veneration and are places of worship [८]

पुष्कर मे पाच मदिर बहुत प्रसिद्ध है जो कि अपने वर्तमान रूप मे खडे है। उनका प्राचीन रूप मुगल काल के अन्तिम बादशाह औरगजेब द्वारा नष्ट कर दिया गया।

यद्यपि यह तीर्थ सोमेश्वर की राज्य सीमा के समीप ही स्थित है किन्तु फिर भी उन्होने पुष्कर तीर्थ के विषय मे कोई विशेष प्रकार का वर्णन नहीं किया है। केवल 'पुष्कराणि च पुण्यानि'[९] कह कर चुप हो गए है। सोमेश्वर ने पुष्कराणि शब्द का प्रयोग बहुवचन मे किया है। इससे विदित होता है कि सभवत उनका आशय पुष्कर मे स्थित सभी उन छोटे तथा बडे तीर्थों से है जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

शुक्ल तीर्थ नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर स्थित है। इसके विषय में मत्स्य पुराण मे निम्नलिखित प्रसग प्राप्त होता है—

> **शुक्लतीर्थ महापुण्य नर्मदाया व्यवस्थितम्।**
> **चाणक्यो नाम राजर्षि सिद्धि तत्र समागत ॥[१०]**

---

१ Usavadata s Nasik Inscription, No 10

२ वायु० ७७।४० ३ कूम पुराण २।२०।३४।

४ Bombay Gazetteer, Vol 17, p 570

५ विष्णु धमसूत्र ८५।१ ३। ६ पद्म पुराण ५।१५।१५०।

७ पाणिनि ४।२।८२।

८ Alberuni s India translated by Dr E C Sachau, Vol II, p 147

९ मानसोल्लास १।१८।१३०। १० मत्स्य पुराण १९२।१४।

पद्म पुराण[1] मे भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है किन्तु उसमे 'चाणिक्यो' का पाठ हुआ है। सभवत चाणक्य के सिद्धि प्राप्त करने के कारण ही शुक्ल तीर्थ इतना प्रसिद्ध है। यह तीर्थ बडौच (Broach) से १० मील उत्तर पूर्व[2] मे स्थित है। इसी प्रकार की कथा स्कन्द तथा कूर्म[3] पुराण तथा अन्य स्थलो[4] पर भी प्राप्त होती है जो चाणक्य की सिद्धि प्राप्ति से ही सम्बन्धित है।

शुक्ल तीर्थ भी एक प्रसिद्ध तीर्थ है जो दक्षिण मे स्थित है। सोमेश्वर ने शुक्ल तीर्थ को अत्यन्त सुखदायक बतलाया है।[5] किन्तु उन्होने न तो इसके विषय मे और कुछ लिखा न इसके समीप स्थित भृगु तीर्थ तथा जमदग्नि आदि तीर्थों का ही उल्लेख किया है। धर्मशास्त्रो मे इन तीर्थो के महत्व का बहुत वर्णन हुआ है—

उपासते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वर ।
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सद्य पापात्प्रमुच्यते ॥
तत्र स्नात्वा दिव यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवा ॥[6]

ततो गच्छेय राजेन्द्र नर्मदोदधिसगमम् ।
जामदग्न्यमिति ख्यात सिद्धो यत्र जनार्दन ॥[7]

किन्तु सोमेश्वर ने इन तीर्थों के नाम तक की गणना नही की। सभवत उनके समय मे ये तीर्थ इतने प्रसिद्ध न रहे होगे।

प्रभास तीर्थ, जिसका मानसोल्लास मे वर्णन हुआ है, सौराष्ट्र मे समुद्र के तट पर (द्वारिका के समीप) स्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ है और यह सोमनाथ के मदिर के कारण बहुत प्रसिद्ध है जो बारह ज्योतिर्लिंगो मे से एक है यद्यपि आजकल वह अपनी जीर्ण अवस्था मे है क्योकि महमूद गजनवी ने उसे तोड डाला था। पुराणो मे प्रभास तीर्थ का बहुत उल्लेख हुआ है। स्कन्द पुराण[8] मे इसकी प्राचीनता पर प्रकाश डाला गया है। उसमे तीर्थ के अनेक प्राचीन

१ पद्म पुराण १।१९।१३ १४, १।१९।२ ३५ ।

२ स्कन्द पुराण १।२।३ ५ ।

३ कूर्म० २।४१।६७ ८२ ।

४ Imperial Gazetteer of India, Vol 23, p 128, Bombay Gazetteer, Vol XI, p p 568–69

५ शुक्लतीर्थं सुखप्रदम् मानसोल्लास १।१८।१३० ।

६ मत्स्य पुराण १९३।४९ ५० और ५२ ।

७ वही १९४।३४ ३५ ।

८ स्कन्द पुराण ७।१।२।४४ ५३ ।

नाम मिलते है। कूर्म,[1] नारदीय तथा गरुड पुराण[3] मे इसके माहात्म्य का वर्णन है। वामन पुराण मे ऐसा उल्लेख है कि सरस्वती नदी समुद्र मे इसी के समीप गिरती है। प्रभास तीथ की पवित्रता पर अनेक स्थलो[5] पर प्रकाश डाला गया है। प्रभास तीर्थ को देवपत्तन के नाम से भी सम्बोधित किया गया है।[6] इसके अतिरिक्त प्रभास तीर्थ मे एक राजकुमार ने आठ ब्राह्मणों का विवाह कराया था—'प्रभासे पुण्यतीर्थे'।[7] महाभारत मे भी इस प्रभास तीर्थ का अनेक स्थान पर उल्लेख हुआ है। प्रभास तीर्थ का सम्बन्ध महमूद गजनवी के जीवन से बहुत है क्यो क इसने अनेक बार यहा आक्रमण किया। इसी कारण इसका प्रसग महमूद गजनवी के जीवनचरित म प्राप्त होता है। सोमेश्वर ने 'प्रभास' प्रथित' शब्दों का प्रयोग किया है। इससे विदित होता है कि यह प्रभास तीर्थ उनके समय मे बडा ही प्रसिद्ध था और पवित्र माना जाता था।

प्रभास के पश्चात् सोमेश्वर ने केदार तीर्थ का वर्णन किया है। केदार को बनारस के आठ शिव तीर्थो मे से एक माना गया है। किन्तु एक केदार तेहरी गढवाल मे स्थित है और केदारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। यह समुद्र की सतह से ११७५० फि० ऊँचाई पर स्थित है।[9] केदार के विषय मे पाच केदार के प्रसग प्राप्त होते है—केदारनाथ, तुगनाथ, रुद्रनाथ, मध्यमेश्वर तथा कल्पेश्वर[10]। मत्स्य,[11] कूर्म,[12] अग्नि[13] आदि

---

१ कूर्म पुराण २।३५।१५ १७। २ नारदीय पुराण २।७०।१ ९५।

३ गरुड पुराण १।४।८१। ४ वामन पुराण ८४।२९।

५ Usavadata s Inscription at Nasik
vide also Bombay Gazetteer, Vol 16, p 669,
vide Epigraphica Indica Vol I p 271 and p 283,
vide Citra Prasasti of Saraigadeva dated Sainvat 1343
(1287 A D)

६ Epigraphica Indica, Vol I, p 271

७ Usavadata's Inscription

८ महाभारत वनपर्व ८२।५८, १३०।७, ८८।२०, ११८।१५, ११९।३, आदिपर्व २१८।२ ८ शल्यपर्व ३५।४२।

९ विष्णु धर्मसूत्र ८५।१७।

१० Vide U P Gazetteer Vol 36, p 173

११ मत्स्य पुराण १८१।२९।

१२ कूर्म पुराण १।३५।१२ और २।२०।३४।

१३ अग्नि पुराण ११२।५, लिंग पुराण १।९२।७।

पुराणों में भी केदार का प्रसग प्राप्त होता है और इसे श्राद्ध करने का सबसे पवित्र स्थान माना गया है। कुछ विद्वानो का मत है कि यह काश्मीर मे स्थित है और विजयेश्वर के एक कोस नीचे स्थित है।[1] नारदीय पुराण इसे गया के समीप बतलाते है।[2] महाभारत[3] मे भी केदार का उल्लेख हुआ है। सोमेश्वर ने केदार तीर्थ को क्लेशनाशक बतलाया है किन्तु उनका तात्पर्य किस केदार से है यह स्पष्ट नहीं है। सम्भवत उनका आशय नारदीय पुराण मे वर्णित केदार तीर्थ से है जो गया के पास है क्योंकि उन्होने जिन तीर्थों का वर्णन किया है उनमें से अधिकाश दक्षिण मे ही स्थित है।

इन तीर्थों के पश्चात् सोमेश्वर प्रयाग तथा काशी तीर्थो का वर्णन करते हैं जो भारत के महान तीर्थ माने जाते है। हिन्दू तीर्थों मे प्रयाग, काशी तथा गया ये सर्वश्रेष्ठ तीर्थ माने जाते है और ये तीनो अपनी प्रसिद्धि के कारण त्रिस्थली के नाम से प्रसिद्ध है। नारायण भट्ट[4] ने (१५८० ई०) बनारस मे 'त्रिस्थलीसेतु' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमे उन्होने प्रयाग, काशी तथा गया तीनों का विस्तृत वर्णन किया है। प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन ऋग्वेद के खिल सूक्त[5] में किया गया है जो निम्नलिखित है—

सितासिते सरिते यत्र सगते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्व विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्व भजन्ते॥

त्रिस्थलीसेतु[6] इसे आश्वलायन शाखा के अन्तर्गत आई हुई श्रुति बतलाता है किन्तु तीर्थचिन्तामणि[7] इसे ऋग्वेद का ही सूक्त बतलाता है। इस सूक्त के अनुसार जो गगा तथा यमुना (सित तथा असित) के सगम पर स्नान करता है वह स्वर्ग प्राप्त करता है और जो अपने शरीर को यहा समाप्त कर देता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है। मत्स्य[8], कूर्म[9], पद्म[10] तथा स्कद[11] पुराण प्रयाग को

---

१ Haracarita Cintamani of Jayadratha 8।69

२ नारदीय पुराण २।४६।४६।

३ महाभारत वनपर्व ८७।२५।

४ नारायण भट्ट born in 1513 A D wrote this in about 1580 A D

५ ऋग्वेद १०।७५।

६ त्रिस्थलीसेतु, पृ० ३। ७ तीर्थचिंतामणि, प० ४७।

८ मत्स्य पुराण, अध्याय १०३ से ११२।

९ कूर्म पुराण १।३६ ३९। १० पद्म पुराण १।४० ४९।

११ स्कद पुराण काशीकाड ७।४५ ६५।

बहुत ही पवित्र स्थान होने का उल्लेख करते है। महाभारत के एक स्थल पर यह प्रसग प्राप्त होता है—

दश तीर्थसहस्त्राणि तिस्त्र कोव्यस्तथापरा ।
समागच्छन्ति माध्या तु प्रयागे भरतर्षभ॥
माघमास प्रयागे तु नियत सशितव्रत ।
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मल स्वर्गमाप्नुयात् ॥[१]

इसी प्रकार महाभारत के अन्य स्थलों[२] पर भी प्रयाग का वर्णन हुआ है। वाल्मीकि रामायण में प्रयाग का केवल थोडा प्रसग प्राप्त होता है।[३]

सोमेश्वर ने प्रयाग के लिए 'तीर्थराज'[४] शब्द का प्रयोग किया है और उसे इच्छित फल का देने वाला बतलाया है। प्रयाग के लिए तीर्थराज शब्द का प्रयोग अनेक स्थलो पर हुआ है। तीर्थराज का अथ है तीथा का राजा। पद्म पुराण मे 'स तीर्थराजो जयति प्रयाग' का प्रयोग हुआ है।[५] मत्स्य तथा स्कन्द पुराण भी इसो प्रसग को प्रकट करते है। प्रयाग को त र्थराज कहने का यही अ भप्राय है कि प्रजापति ब्रह्मा ने जब यज्ञ किया था तब यह प्रयाग ब्रह्मा के यज्ञ की वेदी के मध्य मे पडा था। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा ने कुरुक्षेत्र मे उत्तर वेदी तथा पूर्व की ओर गया मे पूर्व वेदी बनाई थी। प्रयाग मे गगा, यमुना तथा सरस्वती तीनों धाराये मिलकर दो धाराओं मे परिणत हो जाती है इसी से इसका नाम त्रिवेणी तथा सगम पडा। मत्स्य पुराण में ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसकीर्तनादपि ।
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नर पापात् प्रमुच्यते ॥[६]

कूर्म[७] तथा अग्नि पुराण मे भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है। कूर्म पुराण मे इसे प्रजापति का क्षेत्र कहा गया है। मत्स्य[१०] तथा नारदीय[११] पुराण भी इसे प्रजापति का क्षेत्र मानते है।

---

१ महाभारत अनुशासनपव २५।३६ ३८।

२ महाभारत वनपव ८५।६९ ९७। ३ रामायण २।५४।६।

४ 'प्रयागस्तीथराजश्च—मानसोल्लास १।१८।१३१।

५ पद्म पुराण ६।२३।२७ ३५।

६ मत्स्य० १०४।१२। ७ कूर्म० १।३६।२७

८ 'स्तवनादस्य तीथस्य' अग्नि पुराण १११।६ ७।

९ एतत प्रजापते क्षेत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुतम ।
अत्र स्नात्वा दिव यान्ति ये मतास्तेऽपुनभवा ॥ कूर्म पुराण १।३६।२०

१० मत्स्य० १०४।५, १११।१४।

११ नारदीय पुराण उत्तर० ६३।१२७ २८।

प्रयाग मे विष्णु सदैव अपनी योगमूर्ति मे प्रतिष्ठित रहते है।[१] रुद्र भी यहाँ निवास करते है। जब उन्होंने अपने त्रिनेत्र से ससार को भस्मीभूत किया था उस समय प्रयाग नही भस्म हुआ था। इसी कारण मत्स्य पुराण मे प्रयाग को त्रिदेवो का निवास स्थान बतलाया गया है—

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति ॥
वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति ।
माहेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वर ॥
ततो देवा सगधर्वा सिद्धाश्च परमर्षय ।
रक्षन्ति मडल नित्य पापकर्मनिवारणात् ॥[२]

कूर्म[३] तथा पद्म पुराण[४] मे भी इसी प्रकार से समानता रखनेवाले श्लोक मिलते है। मत्स्य पुराण मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि जो व्यक्ति एक मास तक सासारिक प्रलोभनों एव मैथुनादि क्रिया से विरक्त रहकर प्रयाग मे निवास कर देवता एव पितरों का पूजन करता है वह अपने इच्छित फल को प्राप्त करता है।[५] सोमेश्वर ने भी प्रयाग के विषय मे 'चिन्तितार्थप्रदायक' शब्द का प्रयोग कर उसे बडा महत्त्वशाली तीर्थ बतलाया है।[६] इसी प्रकार अर्घ्य तथा अनर्घ्य तीर्थों का भी प्रसग दिया है जो सभी देवताओं के समूह से सेवित है।[७] अर्घ्य तीर्थ का प्रसग गरुड पुराण मे प्राप्त होता है।[८]

प्रयाग के पश्चात् सोमेश्वर ने वाराणसी (बनारस, काशी) तीर्थ का वर्णन किया है। बनारस भारत के सभी तीर्थों मे बडा तथा पवित्र तीर्थ माना जाता है क्योंकि यह धर्म एव अध्ययन दोनों दृष्टिकोणो से उत्तम है। सर्वप्रथम इस नगरी का नाम काशी पडा किन्तु प्राचीन बौद्ध साहित्य मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि बुद्ध के समय मे बनारस भी चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, कौशाम्बी आदि नगरो की ही भाति प्रसिद्ध नगर था।[९] इसके अतिरिक्त काशी १६ जनपदों मे से थी[१०] जिसकी राजधानी वाराणसी थी। प्रारम्भिक जातकों मे ऐसा

१ नारदीय पुराण ६५।१७। २ मत्स्य पुराण १११।४ १०।
३ कूर्म० १।३६।२३ २६। ४ पद्म० आदिखड ४१।६ १०।
५ मत्स्य पुराण १०४।१८। ६ मानसोल्लास १।१८।१३१।
७ वही। ८ गरुड पुराण १।८१।७।
९ महापरिनिब्बानसुत्त (S B E Vol XI, p 90) तथा महासुदस्सन सुत्त, पृ० २४७।
१० अगुत्तर निकाय १।२१३, ४।२५२।२५५।२५६।

प्रसग प्राप्त होता है कि वाराणसी राजधानी के सुरन्धन, सुदस्सन, ब्रह्मवद्धन पुप्फवटारम्भ आदि अनेक नाम थे। यद्यपि बुद्ध ने गया मे ज्ञान प्राप्त किया था किन्तु उनको उपदेशो के लिए बनारस ही आना पडा।[2] बनारस के राजा ब्रह्मदत्त का भी अनेक जातकों मे नाम आया है। सौ ब्रह्मदत्त तथा सौ काशीय राजाओ का उल्लेख पुराणो मे प्राप्त होता है। अश्वघोष ने अपने बुद्ध चरित मे लिखा है—

वाराणसी प्रविश्याथ भासा सम्भासयञ्जिन।
चकार काशीदेशीयान् कौतुकाक्रान्तचेतस॥[4]

यहाँ सर्वप्रथम वे बणारा के समीप के वृक्ष के नीचे गए। यही बणारा सभवत वरणा थी। इसी कारण इसका वाराणसी नाम पडा।

वाराणसी का सम्बन्ध वरणावती नदी[5] से भी हो सकता है किन्तु यह अधिक उपयुक्त नही क्योकि इसका वास्तविक नाम वरणावती न होकर वरणा था। पुराणों म भी वाराणसी नगर का उल्लेख हुआ है। नारदीय पुराण मे इस नगर का वाराणसी नाम के साथ अविमुक्त' नाम भी प्रयुक्त हुआ है।[7] अग्नि पुराण मे वाराणसी नगर का प्रसग प्राप्त होता है। पुराणो के अतिरिक्त रामायण म भी वाराणसो नाम आया है।[9] विष्णु पुराण मे काशी, वाराणसी, 'अविमुक्त' तीन नामो का प्रयोग हुआ है।[10] वास्तव मे यहाँ पर बहनेवाली दो धाराओ वरणा तथा असी के कारण इस क्षेत्र का नाम वाराणसी पडा—

वरणा च नदी नासी मध्ये वाराणसी तयो[11]

किन्तु वास्तव मे नासी का उपयुक्त नाम असी है। वरणा तथा नासी के विषय मे ऐसा कहा जाता है—

सर्वानिन्द्रियकृतान्दोषान्वारयतीति वरणा भवति।
सर्वानिन्द्रियकृतान्पापान्नाशयतीति तेन नासी भवतीति।[12]

---

१ जातक ४।११९।१२०।
२ S B E Vol XI, p 153, महावग्ग S B E, Vol 17, p-21
३ मत्स्य० २७३।७२ ७३।
४ बुद्ध चरित १५।१०१।
५ अथववेद ४।७।
६ वैदिक इन्डेक्स।
७ नारदीय पु० पूर्वार्ध ६।२५।
८ अग्नि पु० ११२।३।
९ वाल्मीकि रामायण उत्तर० ३८।१८।
१० विष्णु पु० ५।३५।१४, २१,२५,३०,३९।
११ अग्नि पु० ११२।६।
१२ जाबालोपनिषद, द्वितीय पैरा।

वाराणसी के विषय मे सोमेश्वर ने 'महापुण्या'[1] शब्द का प्रयोग सभवत इसी कारण किया है। जाबालोषनिषद् मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि अत्रि द्वारा आत्मा के ज्ञान के विषय मे पूछने पर याज्ञवल्क्य ने उनसे कहा कि व्यक्ति अविमुक्त मे पूजन एव ध्यान करे और "अभिमुक्तकी वरणाया नास्या च मध्ये प्रतिष्ठत इति" कहकर उसकी स्थिति बतलाई है। इसका अविमुक्तक नाम इस इस कारण पडा कि शिव जी इसे प्रलय काल मे भी नष्ट नहीं कर सके—

मुने प्रलयकालेपि न तत्चेत्र कदाचन।
विमुक्त हि शिवाभ्या यदविमुक्त ततो विदु ॥[3]

लिग पुराण मे अविमुक्त के सम्बन्ध मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है –

अविशब्देन पापस्तु वेदोक्त कथ्यते द्विजै।
तेन मुक्त मया जुष्टमविमुक्तमतोच्यते॥[4]

सोमेश्वर ने वाराणसी के प्रसग मे 'महादेवानषेविता'[5] का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है जो महादेव जी से सेवित हो। वास्तव मे यह नगरी शकर जी को बहुत प्रिय है। लिग पुराण मे अविमुक्त के लिए आनन्दवन का भी प्रयोग किया गया है क्योंकि यह शिव जी की प्रसन्नता का कारण है। यह शकर जी को पार्वती जी के ही समान प्रिय है—

यथा प्रियतमा देवि मम त्व सर्वसुन्दरि।
तथा प्रियतर चैतन्मे सदानन्दकाननम्॥[6]

इसी कारण महादेव जी का यहा सदेव निवास रहता है। यहा मरने से व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त करता है। जब महादेव जी मन्द्र पर्वत पर निवास करने के लिए जाने लगे तो काशी को न त्याग सकने के कारण वे अपना लिंग वहीं पर छोड गए।[7]

वाराणसी के लिए स्कन्द पुराण मे 'महाश्मशान'[8] शब्द का प्रयोग हुआ है। वाराणसी के मणिकर्णिका घाट पर अनेक शवदाह होते हैं। यह गगा के ही तट पर है अत अपवित्र होने पर भी पवित्र माना जाता है। जिस प्रकार श्मशान मे शव को लाकर लिटाया जाता है (श्मशब्देन शव प्रोक्त

---

१ 'वाराणसी महापुण्या' मानसोल्लास १।१८।१३२।
२ जाबालोपनिषद् द्वितीय पैरा। ३ स्कन्द पु० काशी० २६।२७।
४ लिंग पु० (पूर्वार्ध) ९२।१४३। ५ मानसोल्लास १।१८।१३२।
६ लिंग पुराण काशीखण्ड ३२।१११।
७ स्कन्द पुराण काशीखण्ड ३९।७४। ८ स्कन्द पुराण ३०।१११।

शान शयनमुच्यते), उसी प्रकार ससार के प्रलय काल के पश्चात् समस्त भूत एव तत्व शव के रूप मे यही आकर लेटते हे। इसी कारण यह महाश्मशान माना गया है।[1] यहा पर रुद्र देवता सदैव निवास करते है—

> वाराणसीति काशीति रुद्रावास इति द्विज ।
> महाश्मशानमित्येव प्रोक्तमानन्दकाननम् ॥[2]

वाराणसी के विषय मे पद्म पुराण मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि इसके पश्चिम की ओर गोकर्णेश्वर, पूर्व मे गगा की पवित्र धारा उत्तर मे भारभूत तथा दक्षिण मे ब्रह्मेश्वर स्थित है।[3] इसी प्रकार का प्रसग स्कन्द पुराण मे भी प्राप्त होता है—

> पूर्वतो मणिकर्णीशो ब्रह्मेशो दक्षिणे स्थित ।
> पश्चिमे चैव गोकर्णो भारभूतस्त्वथोत्तरे ॥
> इत्येतदुत्तम क्षेत्रमविमुक्त महाफलम् ।[4]

नारदीय पुराण में वाराणसी के विषय मे ऐसा उल्लेख हुआ है कि यह दो योजन की विस्तृत नगरी है जो एक योजन पूर्व से पश्चिम तक तथा एक योजन उत्तर से दक्षिण तक फैली है। महादेव जी ने इसके विस्तार को वरणा तथा असि के मध्य बताया है, जो बाद म सूख गई।[5] इसके प्रभाव का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। इसी कारण सोमेश्वर देव ने भी 'महाप्रभाव सयुक्ता' का प्रयोग किया है।

सोमेश्वर ने अपनी पुस्तक मे वाराणसी को 'महापातकनाशिनी'[7] बताया है। यहा पर आकर व्यक्ति अपने समस्त पापो से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इसका वर्णन तो पूर्व मे ही हो चुका है किन्तु महाभारत मे वाराणसी के विषय मे ऐसा भी प्रसग प्राप्त होता है—

> अविमुक्त समासाद्य तीर्थसेवी कुरूद्वह ।
> दर्शनाद्देवदेवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥[8]

---

१ स्कन्द पुराण काशी खण्ड ३०।१०३ ४।
२ वही ३०।१११।
३ पद्म पुराण पाताल खण्ड quoted by त्रिस्थलीसेतु, पृ० १०१।
४ स्कन्द पुराण काशी खण्ड ७४।४५ ४६।
५ नारदीय पुराण उत्तरार्ध ४८।१८ १९।
६ मानसोल्लास १।१८।१३२। ७ वही।
८ महाभारत वनपर्व ८४।७९ ८०।

अथात यहा रहकर, स्नान कर, देवो देवताओ के दर्शन कर व्यक्ति ब्रह्महत्या आदि महापातको से भी मुक्त हो जाता है।

मत्स्य पुराण मे वाराणसी के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

जन्मान्तरसहस्रेण यत्पाप पूर्वसचितम् ।
अविमुक्त प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ॥
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वै वर्णसकरा ।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये सकीर्णा पापयोनय ॥
कालेन निधन प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ।
चन्द्रार्धमौलिन सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजा ।
शिवे मम पुरे देवि मोदन्ते तत्र मानवा ॥[१]

जो भी पापी, शठ, अधार्मिक व्यक्ति वाराणसी मे प्रवेश करता है वह भी अपने सभी पापो से मुक्त हो जाता है, यहातक कि अनजान मे भी किए गए सभी स्त्री पुरुषों के पाप यहा आकर क्षय को प्राप्त होते है।[३] इसी कारण सभवत सोमेश्वर ने भी काशी के लिए 'महापातकनाशिनी' शब्द का प्रयोग किया है।

यद्यपि काशी के तीन नामो काशी, वाराणसी तथा अविमुक्त का ऊपर उल्लेख किया गया है किन्तु सोमेश्वर ने उन तीनों मे वाराणसी शब्द का इसी कारण विशेष रूप से प्रयोग किया है कि तीर्थस्नान के अध्याय के अन्तर्गत उसी शब्द का प्रयोग[४] अधिक उपयुक्त है जो नदियों से सम्बद्ध हो। काशी का वाराणसी नाम वरणा तथा असी नदी से ही सम्बद्ध है।

इन सब तीर्थो का वर्णन कर लेने पर सोमेश्वर सरस्वती, यमुना, जाह्नवी तथा नर्मदा के स्नान के महत्व का वर्णन करते है। सरस्वती मे तीन बार स्नान करने पर, यमुना मे पाच बार तथा जाह्नवी मे स्नान करने पर तुरन्त तथा नर्मदा के दर्शन कर लेने से ही सब पाप नष्ट हो जाते है।[४] इस श्लोक को सभवत सोमेश्वर ने पुराणो के ही आधार पर लिखा है। मत्स्य पुराण मे भी कुछ का प्रसग प्राप्त होता है—

त्रिभि सारस्वत तोय सप्ताहेन तु यामुनम् ।
सद्य पुनाति गागेय दर्शनादेव नार्मदम् ॥[५]

सोमेश्वर ने यमुना मे पाच दिन स्नान करने पर पापो के क्षय होने का उल्लेख किया है किन्तु और सब जगह एक सप्ताह तक यमुना मे स्नान करने पर पवित्र

१ मत्स्य० १८७।१७ २१, पद्म० १।३३।१७ २०।

२ मत्स्य० १८३।११। ३ नारदीय पु० (उत्तर०) ४८।३३ ३४।

४ मानसोल्लास १।१८।१३३। ५ मत्स्य पुराण १८६।११।

होने का प्रसग प्राप्त होता है। गगा की प्रधानता सभी स्थानों पर मानी गई है। भविष्यत् पुराण भी गगा के दर्शन, स्पर्श आदि से पुनीत होने को बताता है।

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात् तथा गगेति कीर्तनात्।
स्मरणादेव गगाया सद्य पापै प्रमुच्यते॥[1]

स्कन्द पुराण मे तो गगा के स्मरण मात्र से ही मुक्ति मानी गई है—

गच्छस्तिष्ठञ्जपन्ध्यायन् भुञ्जन् जाग्रत् स्वपन्वदन्।
य स्मरेत् सतत गगा सोऽपि मुच्येत बन्धनात्॥[2]

इसी प्रकार गगा मे स्नान करने तथा उसका जल पान करने से—

अवगाह्य च पीत्वा तु पुनीत्यासप्तम कुलम्।[3]

सात कुलो तक पुनीत हो जाने का उल्लेख है।

नर्मदा को सभी स्थानो मे पवित्र माना गया है, इसी कारण उसके दर्शन से ही मुक्ति मानी गई है। नर्मदा की पवित्रता के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

पुण्या कनखले गगा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।
त्रिभि सारस्वत तोय सप्ताहेन तु यामुनम्।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥[4]

इसके अतिरिक्त नर्मदा की भगवान रुद्र की देह से निसृत होने का उल्लेख हुआ है—

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनि सृता।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥[5]

वायु पुराण नर्मदा को पितरों की दुहिता मानता है—

पितृणा दुहिता पुण्या नर्मदा सरिता वरा।
तत्र श्राद्धानि दत्तानि अक्षयाणि भवन्त्युत॥[6]

---

१ भविष्यत् पुराण quoted by तीर्थचिन्तामणि प० १९८।

२ स्कन्द पुराण काशीखण्ड पूर्वार्ध २७।३७।

३ मत्स्य पु० १०४।१४ १५। ४ मत्स्य पुराण १८६।१० ११।

५ मत्स्य० १९०।१७, कूर्म० २।४०।५, पद्म० आदि० १७।१३।

६ वायु पुराण ७७।३२।

इसी कारण सभवत सोमेश्वर ने भी 'दर्शनादेव नर्मदा'[१] का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त यह पक्ति उनके स्थानीय प्रभाव को भी द्योतित करती है।

इस प्रकार तीर्थ मे स्नान कर व्यक्ति पापो से छूट जाता है और अपने ईप्सित फल को प्राप्त कर राजा की भाति प्रसन्न होता है। सोमेश्वर का 'महेन्द्रवत्'[२] शब्द सभवत इस बात को द्योतित करता है कि जो इन्होने तीर्थस्थानो का वर्णन किया है वह राजा के लिए ही विशेष रूप से आवश्यक नही वरन् सम्पूर्ण जनता के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इस प्रसग से सोमेश्वर की तीर्थो के प्रति श्रद्धा भी प्रकट होती है।

दीनानाथार्त-बन्धु भृत्य पोषण

तीर्थस्नान के अध्याय के पश्चात् सोमेश्वर ने दीन, अनाथ, आर्त, बन्धु तथा भृत्य का पोषण करना राजा का परम कर्तव्य बतलाया है। इस प्रकरण मे महाराज सोमेश्वर दीन की रक्षा करने के पूर्व दीन की परिभाषा देते हुए कहते है कि जो दरिद्रता के कारण दीन होकर किसी वस्तु की इच्छा से 'दो' ऐसे कृपण वचन बोलता है वही दीन है।[३] दीनता का वास्तविक अर्थ हीनता है। जब व्यक्ति किसी वस्तु का आकाक्षा करता है और वह वस्तु उसके पास नही होती तो वह अपने को हीन समझने लगता है और जब वह किसी से वह वस्तु मागने की इच्छा करता है तो कृपण एव हीन बनकर याचना करता है। यही दीन का लक्षण है। दया से आर्द्र हृदय वाले राजा को चाहिए कि ऐसे दीन को धमार्थ की स्पृहा से मनोवाछित द्रव्य दे। शार्गंधरपद्धति में भी याचक को 'दो'[४] ऐसे वचन बोलने वाला कहा है। इसके अतिरिक्त 'न तु मान परित्यज्य देहि देहीति भाषितम्' तथा 'ददामीत्यक्षरैर्दातु' आदि का आश्रय लेने वाला दीन तथा याचक होता है।

दीन के पश्चात् सोमेश्वर ने अनाथ की रक्षा करने के उपदेश के साथ साथ उनका लक्षण इस प्रकार दिया है, कि माता, पिता, मित्र, बन्धु, बान्धव तथा स्वामी से हीन व्यक्ति को अनाथ कहते है। वास्तव मे ससार मे जिसका

---

१ मानसोल्लास १।१८।१३३। २ वही १।१८।१३४।

३ वही १।१९।१३५।

४ "देहीति वक्तुकाम शागधरपद्धति" ३९२, ७३।१३।

५ माता पित्रोर्विहीनस्तु रहितो मित्र बान्धवै ।
विगत स्वामि बन्धूनामनाथ परिचक्ष्यते ।।
मानसोल्लास १।१९।१३७

कोई नहीं होता उसी को अनाथ कहते है। अनाथ शब्द का अर्थ ही है नाथ से हीन। नाथ का अथ है स्वामी अथवा भरण पोषण करनेवाला। ऐसे अनाथो की सेवा करना राजा का परम कर्तव्य है।

अनाथ के बाद आर्त व्यक्ति की रक्षा का वर्णन किया गया है। आर्त का अर्थ है जो दु खी हो, रोगी हो अथवा हीन हो। ऐसे व्यक्ति की सोमेश्वर महाराज ने यन्त्र, तन्त्र, क्रिया द्वारा तथा पान, अन्न, शय्या, आसन द्वारा सहायता करने का आदेश दिया है।[1] आर्ता का अधिकाशत पीडितो से ही अर्थ लिया है इसी कारण इनकी सहायता के प्रकरण मे राजा ने अनेक प्रकार की औशधियो, अन्न एव उपचारों का वर्णन किया है।

आर्तों के बाद बान्धवो का उल्लेख है। अपने बन्धु बान्धवो को भी सन्तुष्ट रखना राजा का कर्तव्य है। पिता के सम्बन्ध से उद्भूत, माता के सम्बन्ध से उद्भूत तथा अपने सम्बन्ध से सम्बन्धित व्यक्ति बान्धव है। माता के सम्बन्धी, पिता के सम्बन्धी तथा विवाह के पश्चात् से बने हुए अपने सम्बन्धी बान्धव कहलाते है।[2] विवाहादि उत्सव मे, आपत्ति म, अकाल मे, राज्य के पल्टने मे, राजद्वार मे तथा श्मशान मे साथ रहने वाले व्यक्ति भी बान्धव बतलाये गए है।[3] ऐसे बान्धवो के साथ सोमेश्वर ने मधुर बचन बोलने का तथा यथायोग्य समान आसन देने का आदेश दिया है और सुवर्ण, वस्त्र एव भूषण के सविभाग द्वारा उन्हे सन्तुष्ट करना आवश्यक बतलाया है।[4] बान्धवो का स्थान समानता का ही होता है इसी कारण उन्हे समान आसन प्रदान करने का आदेश दिया है।

भृत्यों का लक्षण सोमेश्वर ने इस प्रकार दिया है—वेतन लेनेवाले, किकर, दासा, दास, कर्मकर तथा जो बुद्धि एव खडग की सहायता लेते हो वे भृत्य है।[5]

इन सबका सम्यक् प्रकार से रक्षण तथा भरण पोषण कर दान एव सम्मान द्वारा उन्हे सन्तुष्ट करना चाहिए। ऐसा कर्म राजा के लिए दोनों लोको मे

१ मानसोल्लास १।१९।१३८।

२ वही १।१९।३०१।

३ उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धव ॥

हितोपदेश मित्रलाभ ७३।

४ मानसोल्लास १।१९।३०२

५ वैतना किंकरा दास्यो दासा कमकरास्तथा।
बुद्धिखडगसहायाश्च भत्यास्ते परिकीर्तिता ॥

वही १।१९।३०३

सुख देने वाला होता है।[1] सोमेश्वर ने जो भृत्यो का उल्लेख किया है उसमे सात प्रकार के भृत्यो का वर्णन किया है। १ वैतन (जो मासिक अथवा वार्षिक बधा हुआ वेतन पाता हो), २ किकर (जो भृत्य भृति कार्य तो करता हो किन्तु साथ ही साथ उसे कुछ सम्मान भी प्राप्त हो), ३ दास (जो नित्य कर्म के लिए निम्न जाति का व्यक्ति हो), ४ दासी (निम्न जाति की स्त्री जिसका सम्पर्क विशेष रूप से स्त्रीजनो से ही होता था), ५ कर्मकर (जो थोडी देर के लिए एक निश्चित भृति करवाकर कार्य करते थे), ६ बुद्धि की सहायता से भृति कर्म करने वाले (बुद्धिसहाय) और ७ वे भृत्य जो खड्ग तथा अस्त्र शस्त्र की सहायता से भृति काय करते थे (खड्गसहाय)।

भृत्यों की भृति पर भृति के ज्ञाताओ ने बहुत कुछ लिखा है। शुक्र ने भी भृत्यो के तीन प्रकारो का वर्णन किया है जो सोमेश्वर के भृत्यो से मिलते जुलते है किन्तु उनके नाम भिन्न प्रकार के है। एक निश्चित भृति करवाकर जो भृत्य थोडी देर के लिए कार्य करता था उसे कार्यमाना भृति कहते है। उसका वर्णन शुक्र ने इस प्रकार किया है—

अय भारस्त्वया तत्र स्थाप्यस्त्वेतावती भृतिम्।
दास्यामि कार्यमाना सा कीर्तिता तद्विदेशकै ॥[2]

सभवत सोमेश्वर द्वारा कथित कर्मकर भृत्य इसी से मिलते जुलते है। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने जो वेतन लेने वाले भृत्यो का वर्णन किया है शुक्र ने उन भृत्यों की भृति को कालिका भृति कह कर उसका निम्नप्रकार से प्रसग दिया है—

वत्सरे वत्सरे वापि मासि मासि दिने दिने।
एतावती भृति तेऽह दास्यामीति च कालिका ॥[3]

इस भृति में भृत्य बधा हुआ वेतन निश्चित समय पर पाता था। तत्पश्चात् शुक्र ने एक प्रकार की कार्यकालमिता[4] भृति का वर्णन किया है जिसमें एक निश्चित कार्य पूर्ण करना पडता है। अत भृत्य इसमे अवश्य ही शारीरिक

---

१ एतषा रक्षण सम्यक् तथा भरणपोषणम।
दान सम्मानन कार्यं लोकद्वयहितैषिणा ॥
वही १।१९।३०४।

२ शुक्र० २।३८६। ३ वही २।३८७।

४ एतावता कायमिद कालेनापि त्वया कृतम्।
भतिमेतावती दास्ये कायकालमिता च सा ॥ वही २।८८।

बल के साथ बुद्धिबल का भी प्रयोग करते है। सोमेश्वर के बुद्धिसहाय भृत्य इसी प्रकार के प्रतीत होते है।

शुक्र न मन्द, म यम तथा श्रेष्ठ इन तीन प्रकार के भृत्यों का वर्णन किया है।[1] यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो सोमेश्वर के भृत्य भी तीन प्रकार के ही प्रतीत होते है। वेतन, बुद्धि तथा खड्गसहाय भृत्य श्रेष्ठ प्रकार के, किंकर मध्यम प्रकार के तथा दास, दासी एव कर्मकर मन्द प्रकार के भृत्य प्रतीत होते है। सभी प्रकार के भृत्यो का पूर्णरूपेण भरण पोषण राजा को करना चाहिए, ऐसा आदेश सोमेश्वर ने राजा के लिए दिया है। राजा को चाहिए कि उनकी रक्षा करे, उन्हे दान दे, उनका सम्मान करे। शुक्र ने भी भृत्य को ठीक समय पर वेतन देकर उन्हे कोमल वचनो से शान्त रखने, अधिक वेतन देकर सुख पहुचाने, हसी की बात से प्रसन्न रखने, सुन्दर वस्त्र तथा सुस्वादु भोजन देकर, आभूषण देकर, छत्र चमरादि देकर, किन्ही को सत्कार से तथा किन्हीं को क्षमा से, किसी को समान आसन, किसी को आधा आसन तथा किसी को दूर आसन देकर तथा किन्ही भृत्यों के किए गए उपकारो की प्रशसा करके राजा को चाहिए कि वह भृत्यो को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करे। सेवको द्वारा भी राजा के सम्मान की एव यश की वृद्धि होती है। राजा को सदैव भृत्यों पर कृपालु रहना चाहिए तथा भृत्य के गुण, बुद्धि, अवस्था तथा वर्ण का ध्यान रखकर

१ स्वीया तथा च सामान्या परकीया तु स्त्री यथा।
त्रिविधो भतकस्तदवदुत्तमो मध्यमोऽधम ।। वही ४।१३०६।

२ भत्य प्रशिक्षयेन्नित्य शत्रुत्व त्वपमानत।
भतिदानेन सपुष्टा मानेन परिवर्धिता ।।
सान्त्विता मदुवाचा ये न त्यजत्यधिप हि ते।
यथा गुणा स्वभत्याश्च प्रजा सरजयेन्नप ।।
शाखाप्रदानत काश्चिदपरा फलदानत।
अ या सुचक्षुषा हास्यैस्तथा कोमलया गिरा ।।
सुभोजनै सुवसनैस्ताम्बूलैश्च धनैरपि।
काश्चित्सुकुशलप्रश्नैरधिकारप्रदानत ।।
वाहनाना प्रदानेन योग्याभरणदानत।
छत्रातपत्रचमरदीपिकाना प्रदानत ।।
क्षमया प्रणिपातेन मानेनाभिगमेन च।
सत्कारेण च ज्ञानेन ह्यादरेण शमेन च ।।
प्रेम्णा समीपवासेन स्वार्धासनप्रदानत।
सपूर्णासनदानेन स्तुत्योपकारकीतनात् ।। वही २।४०८ ४१४।

परित्याग को महान पाप मानते है और उसका प्रायश्चित्त एक वर्ष तक जौ खाकर करने को बताते हैं—

शरणागत परित्यज्य वेद विप्लाव्य च द्विज ।
सवत्सर यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥[1]

यहा तक कि मनु ने शरणागत का प रत्याग करने वाले व्यक्ति के साथ निवास करने का भी निषेध किया है—

शरणागतहन्तृश्च स्त्रीहन्तृश्च न सवसेत् ।[2]

शरण मे आए हुए जाव को अभयदान प्रदान करना महापुण्य एव महा दान माना गया है—

न भूप्रदान न सुवर्णदान न गोप्रदान न तथान्नदानम् ।
यथा वदन्तीह महाप्रदान सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥[3]

अथात् भूमिदान, सुवर्णदान, गोदान तथा अन्नदान से भी अधिक महत्वशाली अभयदान है। इसके अतिरिक्त सब मनोरथो को पूर्ण करने वाले अश्वमेध यज्ञ से प्राप्त हुए फल के बराबर फल शरण मे आए हुए की रक्षा करने से माना गय है।[4]

इसके अतिरिक्त प्राचीन धमग्रन्थो में भी शरणागत-पालन पर अधिक बल दिया गया है। पुराणों मे राजा शिवि आदि अनेक ऐसे राजाओं के प्रसग प्राप्त होते है जिन्होंने शरणागत की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

सोमेश्वर देव ने शरणागत उसी को बताया है जो अत्यन्त भयभात होकर भागा हुआ हो और अपने प्राणो की रक्षा का उत्कट इच्छा प्रकट करता हो क्योकि व्याघ्र, सिंह, गज, चोर यह चारों ही व्यक्ति के लिए भयानक एव प्राण घातक जीव है। इनसे अचानक सम्पर्क हो जाने पर व्यक्ति भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा के लिए भागता है चाहे वह सफल हो या न हो। इस कारण उस व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए और यदि प्राणो को देकर भी उसकी रक्षा करनी पडे तो करनी चाहिए। ऐसे शरणागत पालक को सभी सम्मान देते है और उसका यश भी फैलता है। यह प्रसग इस बात को स्पष्ट

१ मनु० ११।१९८ ।

२ वही ११।१९० ।

३ हितोपदेश सधि प्र० श्लोक ५६ ।

४ सवकामसमद्धस्य अश्वमेधस्य यत्फलम् ।
तत्फल लभते सम्यग्रक्षिते शरणागते ॥ वही श्लोक ५७ ।

करता है कि सोमेश्वर दीन तथा शरण मे आए हुए व्यक्ति की प्रत्येक प्रकार से रक्षा करता था और उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता था।

(ख) राज्य का स्थिरीकरण

१ सोमेश्वर तथा सप्तप्रकृति राज्य

राज्य को प्राप्त करने के उपायो के वर्णन के पश्चात् महाराज सोमेश्वर उसको स्थिर करने के भी बीस साधनो का उल्लेख करते है क्योकि राज्य को प्राप्त करने के साथ ही साथ उसकी सुचारु रूप से रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य है। इन बीस साधनों के अन्तर्गत राज्य की सप्त प्रकृतियाँ, तीन शक्तिया, छ गुण तथा चार उपाय आते है।

राजनीति सम्बन्धी विषयो मे सोमेश्वर ने अधिकाशत कौटिल्य के अर्थशास्त्र का ही आधार लिया है जैसा कि आगे के पृष्ठो मे किये गये तुलनात्मक अध्ययन से विदित होगा किन्तु कौटिल्य तथा सोमेश्वर के राजनीति सम्बन्धी दृष्टिकोणों मे थोडा अन्तर विदित होता है जिसके कारण कही-कही पर मतभेद स्पष्ट रूप से दिखलाई पडता है। कौटिल्य की राजनीति पूर्णरूप से सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की राज्यसीमा का विस्तार करने के उद्देश्य पर आधारित है। अत वह मुख्यत युद्ध सम्बन्धी परिस्थितियों की दृष्टि से प्रतिपादित की गई है। सोमेश्वर की राजनीति के सिद्धान्त राज्य को स्थिर एव दृढ करने के प्रयत्नों से पूर्ण है क्योकि उन्होने राजनीति सम्बन्धी प्रकरण को 'स्थैर्यकारणविंशति' शीर्षक दिया है।[१] इससे विदित होता है कि सोमेश्वर की राजनीति शान्तिकालीन राजनीति है। सम्भवत इसी कारण जहा पर उन्हें कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अनुपयुक्त प्रतीत हुए वहा उन्होने राजनीति के अन्य आचार्यों का सिद्धान्त अपनाया है अथवा देश एव काल का विचार करते हुए अपने स्वतन्त्र सिद्धान्तो को प्रस्तुत किया है। अत मानसोल्लास की प्रथम दो विंशतियाँ मध्यकालीन भारत के राजनैतिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध मे प्रामाणिक आधार मानी जा सकती है।

सोमेश्वर के अनुसार स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग तथा बल ये राज्य की सात प्रकृतिया अथवा अग है—

स्वाम्यमात्य सुहृत् कोश राष्ट्र दुर्ग-बलानि च ॥[२]

प्रकृति शब्द राजनीति में अन्य अर्थों मे भी प्रयुक्त होता है। मनु ने इसे मडल के अग के अर्थ में प्रयुक्त किया है—

---

१ मानसोल्लास २।१।१ तथा २।२०।१३०० ।

२ वही अनुक्रमणिका श्लोक २० ।

एता प्रकृतयो मूल मडलस्य समासत ॥[1]

शुक्रनीतिसार[2] मे यह शब्द मन्त्रियो के अर्थ मे आया है। खारवेल के शिला लेख[3], नारद स्मृति तथा रघुवश[4] में इसका प्रयोग प्रजा के अर्थ मे हुआ है।

राजनीति सम्बन्धी सभी प्राचीन ग्रथो ने इन सात अगों को माना है। अन्तर केवल शब्दों और क्रम का है। राष्ट्र के लिए कहीं कहीं पर जन अथवा जनपद शब्द, दण्ड के लिए बल तथा दुर्ग के लिए पुर शब्द मिलता है। सरस्वती विलास ने सुमन्तु का उद्धरण देते हुये दण्ड का अर्थ शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड लिया है तथा सेना की गणना कोश के अन्तर्गत की है।

प्रकृतियों के क्रम का अध्ययन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आपत्ति के समय किसी भी पूर्व प्रकृति पर आइ हुइ आपत्ति उसके बाद की प्रकृति की अपेक्षा अधिक विचारणीय है। कुछ शास्त्रकारो ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है। मनु का कथन है कि सात प्रकृतियो मे यथाक्रम प्रत्येक पूर्व की प्रकृति को उसके बाद की प्रकृति की अपेक्षा अतिशय व्यसन से अधिक हानि समझनी चाहिये—

सप्ताना प्रकृतीना तु राज्यस्यासा यथाक्रमम्।
पूर्वं पूर्वं गुरुतर जानीयाद् व्यसन महत्॥[7]

इसी प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार स्वामी, अमात्य, जनपद, दुग, कोश, दण्ड और मित्र इन पर विपत्ति आने पर अगले की अपेक्षा पूर्व पर आपत्ति पडना कष्टदायक है, जैसे यदि राजा और अमात्य दोनों पर विपत्ति पडे तो राजा की विपत्ति अधिक भयकर है। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये—

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यसनाना पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्या ॥[8]

सोमेश्वर ने प्रकृतियों के किस क्रम को अपनाया है इसमे थोडा सन्देह है क्योकि मानसोल्लास[9] की प्रति मे स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, कोश, दुर्ग, बल, सुहृत् यह क्रम मिलता है किन्तु 'अभिलषितार्थचिन्तामणि'[10] नाम की प्रति में

---

१ मनु० ७।१५६। २ शुक्रनीतिसार २।७०७३।

३ एपीग्रैफिका इण्डिका खड २० पृ० ७९।

४ नारदस्मृति प्रकीणक ५। ५ रघुवश ८।१८।

६ सरस्वतीविलास पृ० ४६। ७ मनु० ९।२९५।

८ कौटिलीय अर्थशास्त्र ८।१।५।

९ मानसोल्लास—गायकवाड ओरियन्टल सीरीज।

१० मैसूर ओरियन्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन।

स्वामी अमात्य, सुहृत्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग, बल यह क्रम प्राप्त होता है। प्रथम मे सुहृत् को अन्तम स्थान दिया है किन्तु दूसरे मे उसका स्थान स्वामी और अमात्य के बाद है। इसमे 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' की सूची अधिक उपयुक्त ज्ञात होती है क्योकि मानसोल्लास के एक प्रारम्भ के श्लोक मे वही क्रम मिलता है।[1]

महाभारत तथा मनुस्मृति के अनुसार सातों प्रकृतियो मे ऐक्य होना चाहिए क्योंकि बिना एक की सहायता के दूसरे का काम सुचारु रूप से नही चल सकता। महाभारत के शान्तिपर्व के अनुसार राज्य के अग तीन दण्डों की तरह एक दूसरे के आश्रित है। यह कहना कठिन है कि राज्य का कौन सा अग परिस्थिति के अनुसार महत्वपूर्ण हो जाता है—

सप्तागस्यास्य राज्यस्य त्रिदण्डस्येव तिष्ठत।
अन्योन्यगुणनियुक्तस्य क केन गुणतोऽधिक॥
तेषु तेषु हि कालेषु तत्तदग विशिष्यते।
येन यत् सिध्यते कार्यं तत्प्राधान्याय कल्पते॥[2]

इसी बात को मनु ने दूसरे शब्दो मे कहा है कि जिस प्रकार तीन दण्ड एक दूसरे के आश्रय पर ठहरे हों उसी प्रकार राज्य सात प्रकृतियों मे एक दूसरे के आश्रय पर ठहरा है—

सप्तागस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदडवत्।
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते॥[3]

इसके अतिरिक्त जिस जिस अग से जो जो काम सिद्ध होता है वह अग उसमें श्रेष्ठ होता है—

तेषु तेषु तु कृत्येषु यत्तदग विशिष्यते।
येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते॥[4]

राज्य के सावयव सिद्धान्त का सकेत यजुर्वेद मे भी प्राप्त होता है। एक स्थल पर राजा को राज्यरूपी पुरुष का प्राण माना गया है—

राजा मे प्राणो अमृत सम्राट् श्रोत्रम्।[5]

एक अन्य ऋचा मे राष्ट्र उसी पुरुष की पीठ तथा प्रजा उदरादि अग है—

---

१ 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।'
मानसोल्लास खड प्र० अनुक्रमणिका श्लोक २०।

२ महाभारत शातिपर्व।

३ मनु० ९ २९६।

४ वही ९ २९७।

५ यजुर्वेद मन्त्र ५ अ० २०।

पृष्ठीमें राष्ट्रमुदर सौग्रीवाश्च श्रोणी ।
ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेडङ्गानि सर्वत ॥[1]

इस प्रकार राज्य का सावयव सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन है और अधिकाश प्राचीन भारतीय राजशास्त्र-प्रणेताओ ने राज्य के सप्ताग रूप को स्थिर किया है और यह कल्पना भारत मे सामेश्वर के समय अर्थात् १२ वीं शती तक कायम थी।

राज्य की इन सात प्रकृतियो के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय राजनीतिज्ञों के अनुसार राज्य का निमाण केवल जनसमुदाय पर नही वरन् एक निश्चित क्षेत्र में बसे हुये लोगों (राष्ट्र) पर निर्भर था। राष्ट्र की सत्ता शासक (स्वामी) मे सीमित थी। उनकी एक शासन-व्यवस्था थी जिसका सचालन अमात्यों द्वारा किया जाता था। राष्ट्र की रक्षा के लिये सेना (बल) तथा दुग की आवश्यकता थी तथा मित्र राष्ट्रों (सुहृत्) द्वारा अन्तराष्ट्रीय सम्बन्ध स्थपित किया जाता था। समाज के विकास के साथ साथ शासन सत्ता तथा शासन व्यवस्था सम्बन्धी भावनाओं का विकास हुआ। धीरे धीरे बल, सुहृत् आदि का गणना सरकार के अन्तगत होने लगी। शासन सत्ता का केन्द्र भी विभिन्न दशाओ मे विभिन्न स्थलो पर हो गया। फलत वर्तमान राजनीतिज्ञों ने राज्य के केवल चार अगों का अनुमान किया—जन सख्या (Population), क्षेत्र (Territory), शासन-सत्ता (Sovereignty) तथा शासन व्यवस्था (Government)।

स्वामी

महाराज सोमेश्वर ने राज्य की सात प्रकृतियों मे स्वामी अर्थात् राजा को सर्वोच्च स्थान दिया है। उसकी आज्ञारूपिणी शक्ति सबके सिर के ऊपर स्थित रहती है—

"आज्ञारूपेण या शक्ति सर्वेषा मूर्धनि स्थिता।"[2]

राजा के इस महत्व को सभी प्राचीन आचार्यों ने माना है। कौटिल्य ने तो यहाँ तक कह दिया है कि प्रकृतियों को यदि सक्षेप मे कहा जाय तो राजा ही राज्य है—

"राजा राज्यमिति प्रकृतिसक्षेप।"[3]

राजा का जैसा स्वभाव होता है, प्रकृतियाँ भी उसी स्वभाव वाली हो जाती है—

"स्वय यच्छीलस्तच्छीला प्रकृतयो भवन्ति।"[4]

---

१ वही मन्त्र ८ अ० २०। २ मानसोल्लास २।८।६९६।
३ कौटिलीय अर्थशास्त्र ८।२। ४ वही ८।१।

तथा राजा यदि गुणसम्पन्न है तो अन्य प्रकृतियाँ भी गुणवती हो जाती है—

"स्वामी च सम्पन्न स्वसम्पद्भि प्रकृती सपादयति ।"[१]

इसके अतिरिक्त अमात्य, पुरोहितादि की नियुक्ति राजा ही करता है और अमात्यो के व्यसनी होने पर वह उनके स्थान पर अन्य अमात्यों की नियुक्ति करता है—

मन्त्रिपुरोहितादिभृत्यवर्गम् राजैव करोति ।
व्यसनिषु वामात्येऽन्यानव्यसनिन करोति ॥[२]

शुक्रनीतिसार ने राज्य की सात प्रकृतियों की तुलना मनुष्य के शरीर के अगो से की है। उसने राजा को सिर, अमात्य को नेत्र, सुहृत् को कर्ण, कोश को मुख, सेना को मन तथा दुर्ग और राष्ट्र को हाथ पैर माना है—

"सप्तागमुच्यते राज्य तत्र मूर्धा नृप स्मृत ।
हस्तौ पादौ दुर्गराष्ट्रौ ॥"[३]

इसी प्रकार राजनीतिप्रकाश ने राज्य के सप्तागो मे स्वामी को मूल माना है—

"सप्तागस्यापि राज्यस्य मूल स्वामी प्रकीर्तित ।"[४]

सोमेश्वर ने सर्वप्रथम राजा (स्वामी) के गुणो एव कर्तव्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। सोमेश्वर के कथनानुसार योग्य एव प्रतिभाशाली राजा मे निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

सत्य, सत्व, कुल, शील, तारुण्य, सुरूपता, दाक्षिण्य, अविसवाद, वृद्ध सेवा, कृतज्ञता तथा अक्षुद्रपरिवारता (विशाल परिवार वाला होना , बुद्धिमत्ता, देव सहायता, आस पास के छोटे छोटे राजाओ को वश मे रखना, निपुणता, क्षिप्रकारिता, शौय, धैर्य, क्षमा, औदार्य, शुचित्व, प्रियवादिता, उद्योग, अनिर्वेद, धर्मकारिता, जनानुराग (प्रजा के प्रति प्रेम), सौभाग्य, शास्त्र तथा अस्त्र शस्त्रो की निपुणता, विवेक, दृढ चित्तत्व, धैर्य, कलाकुशलता, धन की पूर्णता, दोष के अनुरूप दड देना, सब प्राणियों के हित का ध्यान रखना, दयालुता, प्रसन्नता, नौकरों के सुख को प्रदर्शित करना, सरलता, तत्व दर्शित्व, उत्साह, नयज्ञता तथा मगल आचार। इसके साथ ही सत्य, शौर्य, क्षमा, दान, गुणज्ञता ये पाँच गुण राजा के लिए अत्यन्तावश्यक बताये है। इसके अतिरिक्त राजा को वैभव, कीति, धर्म एव विजय, सुख तथा यश आदि गुणों को विशेष रूप से धारण करना चाहिए।[५]

---

१ वही। २ वही।
३ शुक्रनीति० १ ६१ ६२। ४ राजनीति प्रकाश प० १२३।
५ मानसो० २।१।२९।

इन सभी गुणो मे सोमेश्वर ने राजा के तीन प्रकार के गुणो का सकेत किया है १ सर्वसाधारण गुण—जो साधारणतया सभी राजाओं मे विद्यमान होने चाहियें क्योंकि वे सभी गुण राज्य को शातिपूर्ण बनाने के साधन है। उन गुणों के बिना राजा इतने बडे शासन को शातिपूर्वक नहीं चला सकता। २ आवश्यक गुण – राजा मे पॉच गुण अवश्य होने चाहिये सत्य, शौर्य, क्षमा, दान तथा गुणज्ञता। इन पॉच गुणों के न रहने पर राजा प्रजा की दृष्टि मे गिर जाता है। ३ विशेष गुण—इन विशेष गुणों को धारण कर लेने पर राजा अन्य राजाओ के मध्य अत्यन्त प्रकृष्ट पद को प्राप्त करता है। इन सभी गुणों को पढ कर ऐसा विदित होता है कि सोमेश्वर वास्तव मे इन सभी गुणो से युक्त था और वह अपने राज्य के प्रत्येक अग का विशेष रूप से ध्यान रखता था।

सोमेश्वर द्वारा वर्णित राजा के गुणो का विभाजन कौटिल्य के विभाजन के आधार पर भी किया जा सकता है। कौटिल्य[1] ने राजा मे चार प्रकार के गुणो का होना आवश्यक बतलाया है—

१ आभिगामिक गुण २ प्रज्ञा गुण

३ उत्साह गुण ४ आत्मसम्पत्

अक्षुद्रपरिवारत्व, देवसहायता, वश्य सामन्तता, शुचित्व, प्रियवादिता आदि आभिगामिक गुणो के अन्तर्गत लिये जा सकते है। शास्त्र तथा अस्त्र शस्त्र की निपुणता, विवेक, दृढचित्तत्वादि प्रज्ञा गुण है। शौर्य, क्षिप्रकारिता, दक्षत्व आदि उत्साह गुण है। आत्मसम्पत् नाम के गुणो का विशेष उल्लेख पूर्व मे किया जा चुका है।

इनमे से कुछ गुणो का वर्णन याज्ञवल्क्य तथा कुछ का मनुस्मृति मे हुआ है। याज्ञवल्क्य स्मृति के राजधर्म प्रकरण मे राजा के गुणो के विषय मे कहा गया है कि राजा को उत्साही, स्थूललक्ष्य, कृतज्ञ, वृद्धसेवी, विनय युक्त, सदा एकरस, कुलीन, सत्यवादी, पवित्र, अदीर्घसूत्री, स्मृतिमान्, कटु वाक्य न बोलने वाला, धार्मिक, अव्यसनी, पण्डित, शूर, रहस्य जानने वाला, राज्य प्रबन्ध की शिथिलता का रक्षण करने वाला, आत्म विद्या और राजनीति

---

१ कौटिल्य अर्थशास्त्र ६।१।३ ६।

२ महोत्साह स्थूललक्ष्य कृतज्ञो वृद्धसेवक।
विनीत सत्यसम्पन्न कुलीन सत्यवाक् शुचि।
अदीर्घसूत्र स्मृतिमानक्षुद्रो परुषस्तथा।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञ शूरो रहस्यवित॥
याज्ञवल्क्यस्मृति राजधर्म प्र० श्लो० ३०९ १०।

मे निपुण, लाभ के उपाय तथा तीनो वेदों मे प्रवीण होना चाहिए ।[1] वास्तव मे राजा अपनी प्रजा के लिये आदर्श की मूति होता है ।

सोमेश्वर ने राजा के लिए 'देवसहायता' का प्रयोग किया है । इससे विदित होता है कि सोमेश्वर भी राजा को दैवी विभूति मानते थे । वह देवताओं द्वारा महायता प्राप्त करता था । मनुस्मृति मे ऐसा माना गया है कि राजा मे अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, कुबेर, वरुण, आदि देवताओं की विभूतियों का अश विद्यमान है इसी कारण इन्ही सब देवताओ की भानि कार्य करने का आदेश दिया गया है—

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ।
चन्द्रस्याग्ने पृथिव्याश्च तेजोवृत्त तपश्चरेत् ॥[2]

यज्ञादि के द्वारा मेघो में जल धारण करने वाली शक्ति उत्पन्न करा कर देश मे वर्षा करवाने के कारण इन्द्र,[3] सम्पूर्ण राज्य मे चर व्यवस्था स्थापित कर न्यायपूर्वक उसका अवलोकन करने के कारण वायु,[4] शत्रु मित्र को समान रूप से दड देने वाला होने के कारण यम,[5] अपने न्यायरूपी पाश से पापियों को बाध लेने के कारण वरुण, अत्यन्त प्रतापवान् होने तथा राज्य से कर लेने के कारण सूर्य,[7] अपनी प्रजा के आह्लाद का कारण होने के कारण चन्द्र तथा सब प्राणियों का समान रूप से पालन पोषण करने के कारण प्रथ्वी[9] का रूप माना गया है । महाभारत के अनुशासनपर्व मे भी राजा के अनेक

---

१ स्वराष्ट्रगोप्तान्वीक्षिक्या दण्डनीत्या तथैव च ।
विनीतस्त्वथ वार्त्ताया त्रय्या चैव नराधिप ॥ वही ३११ ।

२ मनु० ९।३०३ ।

३ वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ।
तथाभिवर्षेत् स्व राष्ट्र कामैरिन्द्रव्रत चरन ॥ वही ९ ३०४ ।

४ प्रविश्य सवभूतानि यथा चरति मारुत । वही ९।३०५ ।

५ यथा यम प्रियद्वेष्यो प्राप्ते काले नियच्छति ।
तथा राज्ञा नियन्तव्या प्रजास्तद्धि यमव्रतम ॥ वही ९।३०७ ।

६ वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते । वही ९।३०८ ।

७ तथा हरेत्कर राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रत हि तत् । वही ९।३०५ ।

८ परिपूर्ण यथा चन्द्र दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवा ।
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चान्द्रव्रतिको नृप ॥ वही ९।३०९ ।

९ यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम् ।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रत पार्थिव व्रतम ॥ वही ९।३११ ।

गुणो पर प्रकाश डाला गया है। उसमे वणित अनेक गुण सोमेश्वर के द्वारा वणित राजा के गुणों मे मिलते है।

सोमेश्वर ने राजा के गुणों का इस प्रकार से वर्णन किया है कि उसके अन्तर्गत राजा के सभी कर्तव्य एव उत्तरदायित्व आ जाते है। इन सभी गुणो मे 'सर्वदा धर्मकारिता' तथा 'दोषानुरूपदडत्व' ये दोनों ही अश राजा के कर्तव्यों को पूणरूपेण स्पष्ट कर देते है। इतने बडे राष्ट्र का स्वामी होकर राष्ट्र की सुख शान्ति के लिये उसे धर्म तथा न्यायपूर्ण दड का आश्रय ग्रहण करना पडता है। राष्ट्र मे धर्म की स्थापना के लिये ही राजा की स्थापना होती है। राजा राष्ट्र मे धर्म का जाग्रत स्वरूप होता है, क्योकि धर्म की रक्षा करना उसका परम कर्तव्य होता है। धर्म का ही आश्रय ग्रहण कर राजा अपनी सम्पूर्ण प्रजा का पालन करता है और प्रत्येक व्यक्ति को स्वधर्म पालन करने के लिए प्रेरित करता है। धर्म का पालन करने के कारण राजा मे चारित्रिक शुद्धता आ जाती है जिससे वह अपने प्रभावशाली काया द्वारा प्रजा का प्रियपात्र बन जाता है। राजा अपने राज्य मे सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। ऋग्वेद के प्रथम मडल मे राजा के विषय मे 'वृषभो जनाना'[१] कहा गया है। इससे विदित होता है कि सभी मनुष्यो मे राजा वृषभ की भाति अत्यन्त बलवान है। प्रजा का लालन पालन करने के कारण वह सब मे श्रेष्ठ है। वेदो मे राजा के लिये सज्जनो मे श्रेष्ठ तथा अपनी प्रजा का शिशु के समान पालन करना आवश्यक बतलाया है—

'सघा राजा सत्पति शिशुवज्जनोरात हव्य प्रतिन शासमिन्वति'[२] सोमेश्वर ने भी 'जनानुराग' कहकर इस मत को पुष्टि की है। वास्तव मे राजा यदि अपनी प्रजा के प्रति शिशु की भाति ध्यान न रखेगा तो उसकी प्रजा कदापि सुखी नही हो सकती। राजा के इसी प्रकार के गुणो का वणन यजुर्वेद तथा अथर्ववेद मे हुआ है। यजुर्वेद मे आया हुआ 'जनिष्ठाऽउग्र सहसे तुराय मन्द्रऽओजिष्ठो बहुलाभिमान' प्रसग राजा को लोकप्रिय, प्रबल, क्रियाशील, जगसुखकारी, ओजस्वी, बहुलाभिमान आदि होना आवश्यक बतलाता है। अथर्ववेद मे बृहत्, महान् वास्तविकता, दीक्षा, तप, हवन, यज्ञ आदि को इस पृथ्वी को धारण करने का आधार माना है।[३] सोमेश्वर ने सत्य, गुणज्ञता, दृढचित्तत्व, शास्त्र शस्त्रास्त्रनैपुण्य, कलाकुशलता, विवेक, नृत्यज्ञता आदि गुणो को राजा के लिये 'अवश्यम्भाविन' कहकर आवश्यक बतलाया है।

---

१ ऋ० मण्डल १ मन्त्र १ सू० १७७।

२ वही मन्त्र ७ सू० ५४।

३ सत्य बृहत् मुग्र दीक्षा तपो ब्रह्मयज्ञ पृथ्वी धारयति।

रामायण तथा महाभारत मे भी राजा के गुणो पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। रामायण मे राजा के गुणो के विषय मे अनेक प्रसग प्राप्त होते है। नारद राजा के विषय मे कहते है—

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शन ।
कालाग्निसदृश क्रोधे क्षमया पृथिवीसम ॥[१]

इसके अतिरिक्त राजा धर्म, अर्थ तथा काम के उचित उपयोग का अनुष्ठान करने वाला माना गया है।[२] धर्म, अर्थ को त्याग कर केवल काम का ही सेवन करने वाले राजा की उसी प्रकार की नश्वर स्थिति होती है जिस प्रकार से वृक्ष की शाखा पर सुप्त व्यक्ति किसी भी क्षण गिर कर मृत्यु को प्राप्त हो सकता है। वास्तव में काम के पूर्णरूप से वश मे हुआ राजा अपने तथा अपनी प्रजा के हित अहित का विचार नहीं कर पाता। उसकी बुद्धि काम के प्रलोभनो से कुण्ठित हो जाती है और वह शीघ्र ही अपने जीवन के वास्तविक सुख खो बैठता है। लक्ष्मण जी ने राजा के लिए बलवान, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ तथा सत्यवादी आदि गुण आवश्यक बतलाया है।[३]

सोमेश्वर ने भी राजा के लिये—

शौर्यधैर्यक्षमौदार्यं शुचित्व प्रियवादिता ।
उद्योगित्वमनिर्वेद सर्वदा धर्मकारिता ॥[४]

तथा—

सत्य सत्त्व कुल शील तारुण्य च सुरूपता ।
दाक्षिण्यमविसवादो वृद्धसेवा कृतज्ञता ॥[५]

कहकर शौर्य, धैर्य, क्षमा, उदारता, उद्योगित्व, सत्यवादिता, शक्ति, कुल, कृतज्ञता आदि गुण आवश्यक बतलाया है। कुलीनता भी राजा का प्रधान गुण माना गया है। निम्नकुल का कोई भी व्यक्ति अपने मानापमान का इतना अधिक ध्यान नहीं रख सकता जितना कि एक कुलीन राजा रखता है। राजा का यही परम कर्तव्य है कि वह ऐसा कोई कार्य न करे जो उसके कुल मे कलक लगाने वाला हो। इसके साथ ही साथ दयालुता तथा उदारता भी राजा के लिये आवश्यक है। किन्तु उसे बहुत मृदु नहीं होना चाहिये नहीं तो प्रजा ही उस पर विद्रोह

---

१ बालकाड १।१८।

२ धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापर । वही १।१९।

३ सत्वाभिजनसपन्न सानुक्रोशो जितेन्द्रिय ।
कृतज्ञ सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥ किष्किन्धा० ३८।७।

४ मानसोल्लास २।१।४। ५ वही २।१।२।

करने के लिए उन्नत हो जायगी। राजा को वसत ऋतु की भाति होना चाहिये अथात् थोडा मृदु तथा थोडा कठोर।[१] राजा को चाहिये कि प्रजा पर बडा दयालु रहे। राजा और प्रजा के मध्य पिता का सा सम्बन्ध होना चाहिये। जिस प्रकार से पिता अपने पुत्र के सुख-दुःख का प्रत्येक प्रकार से ध्यान रखता है और अपने को मिटा कर भी अपने पुत्र की उन्नति मे सहायक होता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा का पिता होता है। महाभारत मे राजा तथा प्रजा के विषय मे कहा गया है—

पुत्रा इव पितुर्गेहविषये यस्य मानवा ।
निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तम ॥[२]

अथात् जिस राजा के राज्य मे प्रजा पिता के गृह मे स्वतन्त्रतापूर्वक निवास करते हुए पुत्र की भाँति आनन्द से विचरण करती है वही श्रेष्ठ राजा है। राजा की ही कृपा को प्राप्त कर प्रजा प्रसन्न हो सकती है। जिस प्रकार बालक को देख कर पिता के विषय मे बहुत कुछ जाना जा सकता है उसी प्रकार प्रजा के सुख चैन को देखकर राजा के विषय मे जाना जा सकता है। राजा के लिये अन्य गुणो के साथ रूप सौन्दर्यवान् एव चरित्रवान् होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

राजा यदि प्रजा के प्रति क्रूर होगा तो वह कदापि एक सफल राजा नही बन सकता। राजा मे अन्य सभी गुण विद्यमान रहने पर भी उसकी क्रूरता तथा उद्दडता उसे राजा के पद से च्युत कर देती है। रामायण मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि राजा सगर के श्रेष्ठ पुत्र असमज को, उसकी क्रूरता तथा उद्दडता के कारण ही, जीवनपर्यन्त वनवास देकर उसका राज्यपद सदा के लिये छीन लिया गया था।[३] महाभारत मे भी गर्व से उन्मत्त हो जाने के कारण ययाति पुत्रों का राज्य पर का अधिकार छीन लिया गया था।[४] इसी प्रकार सोमेश्वर ने भी राजा के लिये प्रजा के प्रति दयालु होना एक बहुत बडा गुण बताया है। सोमेश्वर के इन राजगुणों के प्रसगों को पढकर विदित होता है कि सोमेश्वर अपने समय का बडा ही प्रभावशाली राजा था। उसके राज्य मे प्रजा बडी सन्तुष्ट थी।

अन्य गुणो के साथ ही साथ राजा के लिये रूपवान् तथा चरित्रवान् होना भी आवश्यक है। प्राचीन काल से ही नृपतन्त्रात्मक शासन में राजा को प्रधानता दी गई है, किन्तु उस प्रधानता के मूल मे राजा का सुदृढ चरित्र छिपा हुआ

---

१ तस्मा नैव मदुर्नित्य तीक्ष्णो नैव भवे नप ।
वास ताक इव श्रीमान न शीतो न च घमद । शा० प० ५६।४० ।

२ वही ५७।३३ ।

३ बालकाण्ड ३८।२० । ४ उद्योगपव १४९।८१० ।

है। अपने उत्तम चरित्र के बल पर ही राजा धर्म, अर्थ तथा काम का उचित रीति से उपभोग कर सकता है तथा साथ ही साथ जनता से भी करवा सकता है। राजा मे शारीरिक योग्यता का होना शुक्र ने अत्यन्तावश्यक बतलाया है। वास्तव मे यह शारीरिक योग्यता एव रूप-सौन्दर्य का गुण राजा मे होना भी चाहिये। महाभारत मे राजा के विषय मे कहा गया है—

"हीनाग पृथ्वीपाल नाभिनन्दन्ति देवता ।"[1]

अथात् अगहीन श्रेष्ठ राजा के द्वारा की गई कोई भी आहुति देवता लोग स्वीकार नही करते है। कुरूप तथा अगहीन श्रेष्ठ राजपुत्र भी पिता के सिहासन पर आरूढ होने के पद से वचित हो जाता है। महाभारत मे धृतराष्ट्र का प्रसग इस कथन को और अधिक पुष्ट कर देता है। यद्यपि धृतराष्ट्र तथा पाडु के मध्य राज्य पद प्राप्त करने का धृतराष्ट्र को ही सर्वप्रथम अधिकार था किन्तु धृतराष्ट्र जन्मान्ध होने के कारण ही राजा के पद से वचित रखे गये। इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र अपने परदादा महाराज प्रतीप के पुत्र देवापि का दृष्टान्त बतलाकर दुर्योधन से कहते है—

"देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तम ।
धार्मिक सत्यवादी च पितु सुश्रवणेरत ॥"[2]

अर्थात् देवापि अत्यन्त शक्तिशाली, सत्यवादी, धर्मात्मा तथा सबसे ज्येष्ठ थे किन्तु कुष्ठ रोग के कारण वे राजपद से वचित कर दिये गये।

अमात्य

राजा के बाद राज्य के अन्तर्गत द्वितीय महत्वपूर्ण पद मन्त्रियो को सभी प्राचीन शास्त्रों ने दिया है। सोमेश्वर ने भी राजा के गुणों के वर्णन के पश्चात् मन्त्रियों के लक्षणों का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने मन्त्रियो के लिये कुलीन, श्रुतसपन्न, पवित्र, अनुरागी, वीर, धीर, निरोग, नीतिशास्त्र मे पटित, प्रगल्भ, वाग्मी, प्राज्ञ, राग द्वेष से रहित, सत्यसन्ध, महात्मा, दृढचित्त वाला, निरामय, प्रजा को प्रिय तथा दक्ष होना आवश्यक बतलाया है। इसके अतिरिक्त मन्त्रियो को राजकार्य मे राग द्वेष को त्याग कर कार्य करना चाहिये, उन्हे कोष की वृद्धि मे तथा आय व्यय में निपुण होना चाहिये। यदि राजा नियम के प्रतिकूल मार्ग पर चले तो मन्त्रियों को मधुर भाषण द्वारा उसे समझाना चाहिये। इसके अतिरिक्त वे अपने ही देश मे उत्पन्न हो।

---

१ वही १४९।२५।

२ वही १४९।१७ १८।

३ मानसोल्लास २।२।५२ ५९।

कौटिल्य ने भी अपने ही देश मे उत्पन्न मत्री की नियुक्ति के विषय मे कहा है। उन्होने शासक की भाति अमात्य के लक्षणो का उल्लेख किया है और उसे अमात्यसपत् नाम से पुकारा है। कौटिल्य के अनुसार अपने देश मे उत्पन्न होना कुलीन, प्रगल्भ, पवित्र हृदय वाला होना आदि गुण अमात्यसपत् की कोटि मे आते है—

जानपदोऽभिजात स्ववग्रह कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो वैराणामकर्तेत्य-मात्यसपत्।[1]

राज्य के कार्यभार को चलाना बडा ही कठिन कार्य है जिसे राजा अकेले कदापि नही चला सकता। अत राजा को सम्पूर्ण राज्य पर सुचारु रूप से शासन करने के लिये मन्त्रिपरिषद् की आवश्यकता होती है। ये मन्त्री प्रतिक्षण राजा को राज्यविषयक प्रत्येक बात बतलाया करते है। इसी कारण मन्त्रियो को राज्य के मध्य बडा ही उत्तम स्थान दिया गया है। कौटिल्य ने राज्य मे मन्त्रियो की प्रधानता को स्वीकार करते हुये लिखा है—

सहायसाध्य राजत्व चक्रमेक न वर्तते।
कुर्वीत सचिवास्तस्मात्तेषा च शृणुयान्मतम्॥[2]

अथात् जिस प्रकार रथ एक पहिये से चलने मे असमर्थ होता है इसी प्रकार राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये राजा को भी सचिव रूपी दूसरे चक्र की आवश्यकता होती है। यद्यपि राजा को राज्य के अन्तर्गत सर्वोच्च पद प्राप्त है[3] किन्तु राजा का वह ऐश्वर्य मत्रियों के ऊपर निभर है। मत्री लोग जब राजा की उचित रीति से सहायता करते है तभी सफलता राजा के चरण चूमती है।

अमात्य के लिये विशेष रूप से तीन शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है—अमात्य, सचिव, मन्त्रिन्। अमा का अर्थ है समीप, इसमे त्यप् प्रत्यय लगाकर अमात्य शब्द बना है। अमात्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के चतुर्थ मडल मे हुआ है। यास्क ने भी "याहि राजा इव अमात्यवान् स्ववान् वा" कहा है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे भी अमात्य के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि राजा बिना गुरु तथा मन्त्रियो के सुखपूर्वक जीवन नही व्यतीत कर सकता।[7] मनु ने राज्य का कार्यभार राजा के लिये अकेले बडा दुष्कर बतलाया है—

१ कौटिल्य अथशास्त्र ९।१। २ वही १।७।१५।
३ सप्ताङ्गमुच्यते राज्य तत्र मूर्धा नृप स्मृत। शुक्रनी० १।६१ ६२।
४ पाणिनि अष्टाध्यायी ४।२।१०४।
५ कृणुष्व पाज प्रसितिं न पृथ्वी याहि राजेवामवा इभेन। ऋ० ४।४।१।
६ यास्क निरुक्त ६।१२। ७ आप० ध० सू० २।१०।२५।

अपि यत्सुकर कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्य महोदयम् ॥[1]

अमात्य का ही दूसरा नाम सचिव है। सचिव का अर्थ विशेष रूप से सहायक तथा सलाहकार के रूप मे होता है। इसी कारण उसकी महत्ता सभी ने स्वीकार की है। शुक्र लिखते हे—

यद्यप्यल्पतर कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्य महोदयम् ॥[2]

अर्थात् एक छोटा से छोटा कार्य भी अकेले व्यक्ति से कठिनता से होता है फिर राज्य ऐसे बृहद् कार्यभार को बिना सचिवो की सहायता के किस प्रकार चलाया जा सकता है। मत्स्य पुराण मे भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है कि राजा को चाहिये कि राज्याभिषेक के जल से सिर के भीग जाने पर तुरन्त अपनी सहायता के लिये सचिवो को नियुक्त करे।[3] इसी प्रकार के प्रसग महाभारत[4], राजनीतिप्रकाश[5] तथा कामशास्त्र[6] मे प्राप्त होते है। किन्तु इन सभी के अन्तर्गत अमात्य तथा सचिव दोनो ही पर्यायवाची शब्द माने गये हैं। अमरकोश मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

मन्त्री धीसचिवोऽमात्योऽन्ये कर्मसचिवास्तत ।[7]

अर्थात् राजा के जो धीसचिव अथवा मतिसचिव होता है उसे मन्त्रिन्, तथा मन्त्रिन् से अन्य अमात्य कर्म सचिव कहलाते है। शुक्रनीति मे राजा के लिये ऐसा आदेश दिया गया है कि राजा चाहे जितना विद्याओ एव कलाओं मे कुशल हो, मत्र करना जानता हो, तीव्र बुद्धिवाला एव दूरदर्शी हो किन्तु उसे राज्य कार्य करने में अपनी अकेली अनुमति कभी नही चलानी चाहिये।[8]

रामायण मे राम ने मन्त्रियो की सलाह को "कच्चिन्मत्रयसे नैक" कहकर अत्यन्तावश्यक माना है।[9] महाभारत में नारद युधिष्ठिर को राजधर्मसम्बन्धी आदेश देते हुये "विजयो मत्रमूलो हि राजा भवति भारत" कहकर मन्त्रियो की सलाह को ही राज्य की उन्नति का कारण माना है।[10] मन्त्री यदि शान्तिपूर्ण

---

१ मनु० ७।५५ । २ शुक्र० २।१ ।

३ मत्स्य पुराण २१५।३ ।

४ महाभारत शांति पर्व १०६।११ । ५ राजनीति प्रकाश पृ० १७४ ।

६ कामसूत्र ४।२५।२७,१३।२४ । ७ अमरकोश २ क्षत्रिय वर्ग ।

८ सर्वविद्यासु कुशलो नृपो ह्यपि सुमत्रवित् ।
मन्त्रिभिस्तु विना मत्र नैकोर्थं चिन्तयेत्क्वचित् ॥ शुक्र० २।२ ।

९ अयोध्याकाड १००।१८ । १० महाभारत सभापर्व ५।२८ ।

वातावरण मे राजा के मनोरञ्जन का साधन होते है तो आपत्ति के समय रक्षक का कार्य भी करते है। राज्य म मन्त्री ही एक ऐसे साधन है जो राजा को प्रतिक्षण आई हुई आपत्ति से बचाया करते है। इसी कारण राजा को मन्त्रियों की महान् आवश्यकता रहती है।

मन्त्रियो की नियुक्ति को सोमेश्वर देव ने बडी प्रधानता दी है और साथ ही साथ उन्होंने मन्त्रियों के लक्षणो पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला है। मन्त्रियो की नियुक्ति करने में सोमेश्वर ने सर्वप्रथम कुलीनता का प्रश्न रखा है। राजा को ऐसे मन्त्री नियुक्त करने चाहिये जो कुलीन हो। मनुस्मृति[1] मे ऐसा कहा गया है—

सर्वं स्व ब्राह्मणस्येद यत्किंचिज्जगतीगतम्।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेद सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति॥
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।
ईश्वर सर्वभूताना धर्मकोशस्य गुप्तये॥

सभी वर्णों मे ब्राह्मण की सर्वश्रेष्ठ उच्चता ससार मे स्वीकार की गई है। इसी कारण उसे ही इस पृथ्वी का शासनकर्ता स्वीकार किया गया है किन्तु ब्राह्मणों का कार्य शासन कार्य से भिन्न है। ब्रह्मा के सर्वश्रेष्ठ अग से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण लोगों में आध्यात्मिक शक्ति मानी गई है। वे मेधावी एव धर्मपरायण होते है इसी कारण उनका कार्य निम्नलिखित है—

अध्यापनमध्ययन यजन याजन तथा।
दान प्रतिग्रह चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥[2]

ब्राह्मण सतत इन्हीं कार्यो मे सलग्न रहने के कारण पूर्ण रूप से राजकार्य नहीं चला सकते इसी कारण यह शासन का भार क्षत्रियों को सौंप दिया गया। क्षत्रिय राजा इन्ही विद्वान् ब्राह्मणो को मत्री नियुक्त कर उनसे प्रत्येक कार्य मे सहायता प्राप्त करते है। कुलीन मन्त्रियो तथा क्षत्रिय राजा दोनो के सहयोग से ही राज्य वृद्धि को प्राप्त होता है। राज्य के लिये राजा तथा मत्री दोनों ही अत्यन्तावश्यक अग है। दोनो में से एक के न रहने पर एक की प्रसिद्धि व्यर्थ हो जाती है। इसी कारण मत्रिपरिषद् मे नियुक्त हुये व्यक्तियों के लिये यह आवश्यक है कि वे उच्च कुल मे उत्पन्न हुये हों। ऐसा प्रसग मनु ने भी दिया है।[3] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी मन्त्रियों के अन्य गुणो के साथ ही

---

१ मनु० १।९९-१०० । २ वही १।८७ ।

३ मौलाञ्छास्त्रविद शूराल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्। ७।५४।
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्दक्षान कुलोदगतान। ७।६२।

साथ कुलीनता पर अधिक बल दिया गया है।[1] किन्तु कुलीनता से तात्पर्य केवल उच्च कुल मे उत्पन्न होने से ही नही है वरन् इसके अन्तर्गत मन्त्रियो के सदाचार, धर्मपरायणता तथा चारित्रिक शुद्धता पर भी सकेत किया गया है।

इसके अतिरिक्त सोमेश्वर देव ने मन्त्रियो को नीतिशास्त्रविशारद, पवित्र अनुरागी, शूरवीर, धैर्यवान्, नीरोग, तीनो वेदो के ज्ञाता (श्रुतसम्पन्न), चतुर, दक्ष, अन्य जनो की सम्मति का ज्ञान रखने वाला, आय व्यय मे निपुण, कोश की वृद्धि करने मे चतुर, अतिकुशल तथा साध्य असा य का याान रखने वाला बतलाया है।[2] महर्षि मनु ने भी इसी प्रकार के गुणो का वर्णन मन्त्रियों के लिये किया है। मनुस्मृति मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

सन्धि विग्रह कालज्ञान् समर्थानायतिक्षमान्।
परैरहार्यान् शुद्धाश्च धर्मत कामतोऽर्थत ॥
समाहर्तुं प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविपश्चित ।
कुलीनान्वृत्तिसम्पन्नान्निपुणान् कोशवृद्धये ॥
आयव्ययस्य कुशलान् गणितज्ञानलोलुपान्।
नियोजयेद्धर्मनिष्ठान् सम्यक्कार्यार्थचिन्तकान् ॥
कर्मणि चातिकुशलाल्लिपिज्ञानायतिक्षमान्।
सर्वविश्वासिन सत्यान्सर्वकार्येषु निश्चितान् ॥[3]

इसमे से लिपिज्ञान आदि के सम्बन्ध मे सोमेश्वर ने कुछ भी नही लिखा। हा, "परेगितज्ञा धीमन्त स्वाकारस्य निगूहका" कहकर अपने कार्य के लिये दूसरे के सकेतो को पहचानने में मन्त्रियों को निपुण होना चाहिये, ऐसा उल्लेख किया है। मानसोल्लास मे जो मन्त्रियों के वाग्मी, नीरोग, निडर आदि होना बताया है वे गुण महर्षि मनु ने दूत के लिये आवश्यक बतलाये है—

अनुरक्त शुचिर्दक्ष स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञ प्रशस्यते ॥[4]

किन्तु दूत के साथ मन्त्रियों मे भी इन गुणो का होना अत्यन्तावश्यक है।

रामायण[5] मे भी मन्त्रियो को जितेन्द्रिय, अनुभवी, अनुरागी, शूरवीर, विद्वान होने का प्रसग प्राप्त होता है। मानव धर्मशास्त्र मे मन्त्रियो की नियुक्ति

१ सर्मान्त्रण प्रकुर्वीत प्रज्ञामौलान् स्थिराञ्छुचीन।
तै सार्द्धं चिन्तयेद्राज्य विप्रेणाथ तत स्वयम ॥ याज्ञ० राजधम १२।
२ मानसोल्लास २।२।५२ ५५। ३ मनुस्मृति ७।६५ ६८।
४ वही ७।६४। ५ रामायण अयोध्याकाड १००।१५।

मे वश परम्परा के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। सोमेश्वर ने मन्त्रियों के लिये "स्वदेशजाता" शब्द का अवश्य प्रयोग किया है जिसका अर्थ है अपने ही देश मे उत्पन्न हुये। इससे विदित होता है कि उस समय मे मन्त्रियो की नियुक्ति मे वश परम्परा की अपेक्षा उनकी योग्यता पर अधिक ध्यान दिया जाता था क्योकि सोमेश्वर न मन्त्रियो के विषय मे कहा है—

अमार्गे वर्तमानस्य नृपस्य प्रतिकूलगा।
बोधयन्त प्रियैर्वाक्यै सचिवा स्युर्नृपर्द्धये॥[1]

अर्थात् राजा के बुरे मार्ग पर चलने पर सचिव का यह परम कर्तव्य है कि वह प्रिय वचनो द्वारा उसे सन्मार्ग पर लगावे। इस कार्य मे मन्त्रियों के लिये अत्यन्त बुद्धिमान, मधुरभाषी तथा दूरदर्शी होना आवश्यक है।

मन्त्रियों के लक्षणो एव गुणो के साथ ही साथ सोमेश्वर देव ने मन्त्रियों की सख्या पर भी प्रकाश डाला है—

सचिवान् सप्त चाष्टो वा कुर्वीत मतिमान् नृप ॥[2]

इससे विदित होता है कि मानसाल्लास मे राजा द्वारा सात या आठ सचिवों को नियुक्त करने का आदेश दिया गया है। मनु भी सात अथवा आठ सचिवों को ही नियुक्त करने का आदेश देते है—

मौलाञ्छास्त्रविद शूराल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥

सोमेश्वर ने अपने श्लोक की रचना मे सभवत मनुस्मृति के इसी श्लोक को आधार माना है क्योकि सात या आठ सख्या के साथ ही साथ 'परीक्षितान्' आदि शब्दों का भी प्रयोग उन्होंने किया है।

सोमेश्वर द्वारा कथित मन्त्रियो के इन लक्षणों को पढ कर विदित होता है कि सोमेश्वर वास्तव मे बडा ही सफल राजा था और सभवत उसने इसी प्रकार के योग्य, गुणज्ञ एव दूरदर्शी मन्त्रियो को मत्रणा करने के लिये नियुक्त किया था क्योकि जहा योग्य मत्री राज्य की उन्नति मे सहायक सिद्ध होते है वहा अयोग्य, लोलुप तथा मूर्ख मन्त्री राज्य के नाश का कारण भी बन जाते है।

पुरोहित

मानसोल्लास म महाराज सोमेश्वर ने राजा को राज्य की रक्षा के लिये पुरोहित को नियुक्त करना आवश्यक बतलाया है। पुरोहित की नियुक्ति के विषय

---

1 मानसो० २।२।५६।   2 वही २।२।५७।

मे उनका कथन है कि त्रयी विद्या, दण्ड नीति, शान्ति कर्म, पौष्टिक, आथर्वण में कुशल व्यक्ति को ही राजपुरोहित बनाना चाहिये।[१] त्रयी विद्या के अन्तर्गत ऋक्, साम तथा यजुर्वेद आ जाते है। कौटिल्य ने "सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयो" कहकर त्रयी शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है। इससे विदित होता है कि ऋक्, यजुस् तथा साम इन तीनों वेदो मे पुरोहित को निपुण होना चाहिये। इसके अतिरिक्त दण्डनीति अर्थात् राजनीति मे भी पुरोहित को निपुण होना चाहिये क्योकि राजनीति के दाव पचो मे भी वह राजा को समय समय पर सलाह दिया करता है। शुक्राचार्य के सम्प्रदाय के विद्वानो का मत है कि "दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसा। तस्या हि सर्वविद्यारम्भा प्रतिबद्धा इति"[२] अर्थात् दण्डनीति ही एक ऐसी विद्या है जिस पर अन्य सभी विद्याओ का योगक्षेम निर्भर रहता है।

शान्ति कर्म का सम्बन्ध आठ प्रकार के दैवी महाभयो से है जिनसे प्रजा को हानि पहुँचती है। पुरोहित को उन दैवी प्रकोपों को शान्त करने मे निपुण होना चाहिये। कौटिल्य ने उन आठ प्रकार के दैवी प्रकोपो का वर्णन किया है—

"दैवान्यष्टौ महाभयानि। अग्निरुदक व्याधिर्दुर्भिक्ष मूषिका व्याला सर्पा रक्षासीति। तेभ्यो जनपद रक्षेत्।"[४]

इसके अनुसार अग्नि, जल, बीमारी, दुर्भिक्ष, चूहे, व्याघ्र, साप, राक्षस ये आठ महाभय है जिनसे प्रजा को कष्ट पहुँचता है। यदि पुरोहित शान्ति कर्म जानता है तो पूर्णमासी आदि तिथियों मे अग्नि की पूजा, बलि, होम तथा स्वस्ति वचनो द्वारा इनका निवारण करा सकता है। जल के प्रकोप मे पूर्णमासी को नदी की पूजा करवा कर अथर्ववेद के अनुसार मन्त्रों द्वारा अतिवृष्टि को रोके। बीमारी के प्रकोप मे गगा आदि तीर्थो पर स्नान करवा कर समुद्र की पूजा करावे तथा चावल और सत्तू से बने हुये कबन्ध (सिर रहित शरीर) को श्मशान मे जलवाये। यदि पशुओं मे बीमारी फैली हो तो उन पशुओ के देवताओ की पूजा यत्र तत्र करवा कर शान्ति कराई जा सकती है। भिन्न भिन्न पशुओ के भिन्न भिन्न देवता है, यथा हाथी के लिये सुब्रह्मण्य, घोडे के लिये अश्विनी, गौ के लिये पशुपति, भैस के लिये वरुण तथा बकरे के लिये अग्नि देवता का पूजन करवाना चाहिये।[५]

इन सभी आधि व्याधियो को वैद्य तो चिकित्सा द्वारा दूर करते है किन्तु पुरोहितादि जन शान्तिकर्म द्वारा ही उसे शान्त कर देते है। इसी प्रकार दुर्भिक्ष

---

१ त्रय्या च दडनीत्या च शान्तिकर्मणि पौष्टिके।
आथर्वणे च कुशल स स्याद राजपुरोहित ॥ वही २।२।६०।

२ कौटिलीय अर्थशास्त्र १।३।१।　　३ वही १।२।६७।

४ वही ४।३।१३।　　५ वही ४।३।१४ २१।

चूहे, सर्प, राक्षस आदि से भी प्रजा की रक्षा करने के लिये पुरोहित राजा से अनेक यज्ञ करवाये और बिल्ली, नेवले, जगली पशुओ आदि को जगह जगह पर छोड दे।[1] दुर्भिक्ष के समय पुरोहित को चाहिये कि वह खूब अन्न बटवाये अथवा प्रजा को अन्नपूर्ण स्थान मे भेज देने का परामर्श दे।[2] अत आथवण क्रिया मे पुरोहित को अवश्य निपुण होना चाहिये। इस प्रकार से पुरोहित ऋत्विक् वर्ग का व्यक्ति होता था, ऐसा सोमेश्वर के वाक्यो से विदित होता है।

इन सभी प्रसगो का उल्लेख स्मृतियो मे भी हुआ है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे पुरोहित के लिये कहा गया है—जो ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता, सब शास्त्रो मे समृद्ध, अर्थशास्त्र म कुशल, शान्ति आदि कर्म तथा अथर्वांगिरस मे जो निपुण हो उसी को राजा अपना पुरोहित नियुक्त करे।[3] महर्षि मनु ने गृह्यकर्म तथा शान्त्यादि करने के लिये पुरोहित का वरण करना आवश्यक बतलाया है।[4] कौटिल्य ने राजपुरोहित के लक्षणो का वर्णन करते हुये लिखा है—

"पुरोहितमुदितोदितकुलशील षडगे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्या चाभिविनीतमापदा दैवमानुषीणामथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तार कुर्वात।"[5]

अर्थात् पुरोहित को शास्त्रप्रतिपादित विद्याओ से युक्त, उन्नत, कुलशील, षडग वेद, ज्योतिष शास्त्र, शकुन शास्त्र तथा दण्डनीति शास्त्र में अत्यन्त निपुण, दैवी मानुषी आपत्तियों का अथर्ववेद आदि मे बताये हुये उपायो से प्रतीकार करने वाला योग्य व्यक्ति होना चाहिये। इसी प्रकार शुक्र का कथन है कि जो मन्त्र और अनुष्ठान मे सम्पन्न, वेदत्रयी का ज्ञाता, कर्मतत्पर, जितेन्द्रिय, जितक्रोध, लोभ तथा मोह से रहित, वेद के षडगो का ज्ञाता, धनुर्विद्या तथा धर्म का ज्ञाता हो तथा जिसके भय से राजा भी नीति में तत्पर हो जाय ऐसे पुरोहित के होने पर ही राष्ट्र उन्नति कर सकता है।[6] इसके अतिरिक्त उसे नीति, शस्त्र अस्त्र के समूह मे कुशल तथा शाप और अनुग्रह मे समर्थ होना चाहिये, ऐसा भी शुक्र

---

१ वही ४।३।३०। २ वही ४।३।२२।

३ पुरोहित प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम।
दडनीत्या च कुशलमथर्वांगिरसे तथा ॥ याज्ञ० १।३१३।

४ पुरोहित च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥ मनु० ७।७८।

५ अथशास्त्र १।९।१५।

६ मत्रानुष्ठानसम्पन्नस्त्रैविद्य कर्मतत्पर।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जित ॥
षडगवित सागधनुर्वेदविच्चार्थधर्मवित्।
यत्कोपभीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत् ॥ शुक्र० २।७७ ७८।

का मत है।[1] इसमें कुछ गुणों का वर्णन सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में नहीं किया है।

इन सभी गुणों से युक्त पुरोहित को ही राज्य का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वप्रथम पालनकर्ता माना गया है।[2] इसी के ऊपर राज्य की उन्नति का बहुत कुछ भार आश्रित रहता है। यह राजा तथा राष्ट्र दोनों का ही उचित रीति से पालन करता है। वैदिक काल से ही पुरोहित को राष्ट्र के अन्तर्गत महान् स्थान प्राप्त है। यह राष्ट्र में राजा की आत्मा तथा राजा के आध्यात्मिक गुरु की भाँति रहता है। पुरोहित की आज्ञा सदैव राजा के सिर पर विद्यमान रहती है। यह केवल राजा का ऋत्विक् ही नहीं रहता वरन् राजा पर शासन भी करता है। ऐतरेय ब्राह्मण में राजा के लिये 'राष्ट्रगोपा" (अर्थात् राष्ट्र का पालनकर्ता अथवा छिपानेवाला अथवा जाननेवाला) कहा गया है।[3] शुक्र ने "पुरोधा प्रथम श्रेष्ठ सर्वेभ्यो राजराष्ट्रभृत्" कहकर पुरोहित को 'राष्ट्रभृत्' अर्थात् राज्य का पालन करनेवाला बतलाया है। इससे विदित होता है कि पुरोहित ही राज्य तथा राजा दोनों का रक्षक होता है। ऋग्वेद में पुरोहित विश्वामित्र के द्वारा ही भारत जाति की रक्षा होने का प्रसंग प्राप्त होता है।[5]

इसी कारण धर्मशास्त्र, वेद, नीति आदि में निपुण तपस्वी को ही पुरोहित बनाने का आदेश दिया गया है।[6] इस प्रकार के पुरोहित की आज्ञा राजा उसी प्रकार शिरोधार्य करता है जिस प्रकार शिष्य आचार्य की, पुत्र पिता की तथा भृत्य स्वामी की आज्ञा का पालन करता है।[7]

पुरोहित का कार्य केवल राजा के दैनिक जीवन में ही नहीं समाप्त हो जाता वरन् यह युद्ध के समय युद्धक्षेत्र में भी सेना के साथ जाता है। थकित हुये राजा तथा सेना को ओजपूर्ण मन्त्रों से उत्साहित करता है जिससे सेना के रग रग में

---

१ नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तु पुरोहित ।
 सवाचाय पुरोवा य शापानुग्रहयो क्षम ।। वही २।७९।

२ पुरोधा प्रथम श्रेष्ठ सर्वेभ्यो राजराष्ट्रभत ।
 तदनु स्यात्प्रतिनिधि प्रध नस्तदन तरम ।। वही २।७४।

३ ऐतरेय ब्राह्मण ४०।२। ४ शुक्रनीति २।७४।

५ विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारत जनम। ऋ० ३।५३।१२।

६ वेदेतिहासधमशास्त्राथकुशल कुलीनमव्यग तपस्विन पुरोहित च वरयेत।
विष्णुधमसूत्र ३।७०।

७ तमाचाय शिष्य, पितर पुत्रो, भत्य स्वामिनमिव चानुवर्तेत।
अर्थशास्त्र १।९।१६।

रक्त का प्रवाह हो उठता है। इसी प्रकार उत्साहित करते करते सम्पूर्ण सेना के सैनिको को शत्रु के समीप खडा कर देता है और वे तुरन्त ही भूखे व्याघ्र की भाति शत्रु पर झपट कर उसे परास्त कर देते हैं।[१] वैसे तो प्रत्येक कार्य मे राजा अपने सभी मन्त्रियों से सलाह लेता है किन्तु अन्त मे फिर वह एकान्त मे बैठ कर पुरोहित के साथ मन्त्रणा करता है। पुरोहित के भय से राजा भी भयभीत होकर नीति का अनुसरण करने लगता है। पुरोहित वास्तविक रूप मे धर्म की स्थापना के लिये ही राज्य मे नियुक्त किया जाता है। यह ब्राह्मणों की ओर से राजा का प्रतिनिधि होता है। इसी कारण राज्याभिषेक के अवसर पर उसे न्याय की खड्ग दी जाती है और पुरोहित उसी की सहायता से उसे शासन करने की आज्ञा देता है। फिर पुरोहित न्याय दड उस समय राजा की पीठ पर मार कर उसे यह शिक्षा देता है कि यद्यपि वह अदड्य है फिर भी किसी प्रकार का अन्याय करने पर धर्म का प्रतिनिधि मैं तुम्हें दण्ड देने के लिये उपस्थित हूँ। राजा यद्यपि राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता है किन्तु धर्म तथा न्याय के समक्ष उसे भी सिर झुकाना पडता है। न्याय और धर्म का प्रतिनिधि राष्ट्र मे यही पुरोहित होता है। पुरोहित का सोमेश्वर देव के राज्य मे भी बडा महत्व था। यद्यपि उन्होने पुरोहित के विषय मे अधिक प्रकाश नही डाला, फिर भी उसके गुणो को पढकर ही उसकी स्थिति के विषय मे बहुत कुछ विदित हो जाता है। उनके समय मे भी यह राष्ट्र का सर्वेसर्वा समझा जाता था और आध्यात्मिक पक्ष का आश्रय था।

सेनापति

सोमेश्वर एक बडा ही प्रतापी राजा था। सोमेश्वर ने सेनापति के लक्षणों का भी वर्णन मानसोल्लास मे किया है क्योकि सेना ही राजा की विजय का कारण होती है और सेना का सुचारु रूप से सगठन एक योग्य सेनापति ही कर सकता है। इसी कारण उन्होने सेनापति के गुणों का वर्णन करते हुये लिखा है कि सेनापति को कुलवान्, शीलवान्, धैर्यवान् चार भाषाओं मे निपुण, गज अश्व पर चढने मे दक्ष, शस्त्र-शास्त्र का ज्ञाता, शकुन को जानने वाला, प्रत्येक समय के अनुसार चिकित्सा को जानने वाला, वाह भेद विधान का ज्ञाता, सारेतर को विशेष रूप से जानने वाला, दानी, मधुर भाषी, दान्त, मतिमान्, दृढप्रतिज्ञ, शूरवीर तथा भृत्यों को विशेष रूप से समझाने वाला होना चाहिये। ऐसे व्यक्ति को ही सेनापति के पद पर नियुक्त करना चाहिये।[२] वास्तव में यदि सेनापति मे यह सभी गुण उपस्थित न होगे तो उसे सेना पर शासन करने मे

---

१ वही १०।३। २ मानसोल्लास २।२।९०-९२।

बडी कठिनाई होगी जिससे सेना मे भी अशान्ति की लहर फैलेगी और राजा का भी अनिष्ट होग। ।

सोमेश्वर ने जो सेनापति के गुणो का वर्णन किया है वे बहुत कुछ कौटिल्य द्वारा वर्णित सेनापति के गुणों से मिलते जुलते है। कौटिल्य के अनुसार सेनापति को सेना के चारो अगो के प्रत्येक कार्य को जानना चाहिये। उसे प्रत्येक प्रकार के युद्ध मे सब प्रकार के अस्त्र शस्त्र चलाने का ज्ञान होना चाहिये। इसके अतिरिक्त आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रो से भी उसका पूर्ण परिचय होना चाहिये। हाथी घोडे पर चढना तथा रथ आदि चलाने मे अत्यन्त निपुण होना चाहिये। उसे चतुरग सेना के भी प्रत्येक कार्य एव दाव पेचो को समझना चाहिये।[1] इन गुणो के न रहने पर वह अपना कार्य पूर्ण रूप से नही कर सकता। युद्ध मे उसका कार्य अपनी सेना पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण रखने के साथ ही साथ शत्रु की सेना को भी देखना रहता है। शत्रु की सेना के व्यूह को तोडना, अपनी फैली हुई सेना को इकट्ठा कर शत्रु के बल पर प्रहार करना, शत्रु के दुर्ग को तोडना, युद्ध का समय देखना, प्रत्येक दाव पेच का ध्यान रखना सेनापति का ही कार्य होता है।[2] इसी कारण सोमेश्वर सेनापति को मतिमान्, दृढप्रतिज्ञ, भृत्यविशेषवित्, शूरवीर, शस्त्र-शास्त्र विचक्षण, गजाश्वारोहण मे दक्ष होने का आदेश दिया है।

रामायण तथा महाभारत के भी अनेक स्थलो पर सेनापति के गुणों का वर्णन हुआ है। पुराणो मे सेनापति के विषय मे अनेक प्रसग प्राप्त होते है। सेनापति का पद बडा ही महत्वशाली एव उत्तरदायित्व का पद होता है। इसी कारण अग्निपुराण तथा मत्स्यपुराण मे इस प्रकार के प्रसग प्राप्त होते है कि सेनापति को ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय ही होना चाहिये। शुक्र ने भी अपनी शुक्रनीति में लिखा है—

> सेनाधिप क्षत्रियस्तु ब्राह्मणस्तदभावत ।
> न वैश्यो न च वै शूद्र कातरश्च कदाचन ॥

---

१ तदेव सेनापति सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथचर्यासघुष्टश्चतुरगस्य बलस्यानुष्ठानाधिष्ठान विद्यात। अर्थशास्त्र २।३३।१२

२ स्वभूमि युद्धकाल प्रत्यनीकमभिन्नभेदन भिन्नसधान सहतभेदन भिन्नवध दुर्गवध यात्राकाल च पश्यत्। वही २।३३।१३।

३ रामायण अयोध्याकाड १००।३०।

४ महाभारत सभापर्व ५।४६, शाति० ८५।३१ ३२।

५ अग्निपुराण २२०।१। ६ मत्स्यपुराण २१५।१०।

सेनापति शूर एव योज्य सर्वासु जातिषु।
ससकरचतुर्वर्णधर्मोऽय नैव यावन ॥[1]

अर्थात् सेनापति को क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ही होना चाहिये। वैश्य तथा शूद्र एव कायर व्यक्ति को कभी सेनापति के पद पर नही नियुक्त करना चाहिये क्योंकि शूद्र तथा वैश्य सेनापति नियुक्त करने से सभी वर्गों मे धर्मसकरता उत्पन्न होती है।

इस बात का प्रतिपादन सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास मे कुलज, शीलवान् तथा शूर शब्दों द्वारा किया है। उनके ये शब्द सेनापति के इन्ही सब गुणो को प्रकट करते है। इसके अतिरिक्त उन्होने सेनापति के कुछ विशेष गुणा का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ अनेक भाषाओ का ज्ञान, चिकित्सा का ज्ञान, शकुन का ज्ञान आदि।

अन्य गुणों के साथ ही साथ इन गुणो का होना उसमे आवश्यक है क्योकि एक विशाल सेना का सेनापति होने के नाते उसे अनेक देशो की सेना से मिलना पडता है। यदि वह उनकी भाषा न समझेगा तो शत्रुपक्ष की सेना के दाव पेच को जानने में उसे कठिनाई होगी। इसके अतिरिक्त अपनी ओर के भी सैनिक जो अनेक प्रकार के भाषाभाषी होते है उन्हे समझने म भी उसे कष्ट होगा। इसके अतिरिक्त उसके लिये चिकित्सा का भी ज्ञान होना आवश्यक है। सेना में अचानक किसी प्रकार की छोटी मोटी आधि व्याधि आ जान पर वह स्वय ही उसका सामना कर सकता है। शकुन आदि का ज्ञान होने पर वह अपनी सेना के शुभ अशुभ का विचार कर सकता है। इन गुणो को पढकर सोमेश्वर का प्रखर बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार का प्रसग अन्यत्र कही भी नहीं प्राप्त होता।

इसके अतिरिक्त सेनापति को अपने भृत्यो के विषय मे पूर्णरूप से जानकारी होनी चाहिये।[3] ऐसा न होने पर किसी भी समय उसका कोई भी सैनिक उसे धोखा दे सकता है। उसे सदैव अपनी सेना के व्यक्तियों से बोलने मे मधुर भाषा का प्रयोग करना चाहिये। उसे सभी विशेष प्रकार के ज्ञान की बातों मे निपुण होना चाहिये।

वास्तव मे यदि देखा जाय तो सेनापति का पद भी राष्ट्र के लिये बडे ही महत्व का है। सम्पूर्ण राष्ट्र की विजय इसी सेनापति पर ही निर्भर रहती है। युद्ध में तो यह सर्वेसर्वा होता है। इस प्रकार राष्ट्र पर आये हुये आपत्ति काल, युद्ध काल तथा राष्ट्र की सीमा के विस्तार का यह सेनापति प्रतिनिधि होता है।

---

१ शुक्रनीति २।४२१ ४२२। २ मानसो० २।२।९० ९१।
३ वही २।२।९२।

धर्माधिकारिसभाध्यक्ष

राष्ट्र के मध्य धर्माधिकारी का भी बहुत श्रेष्ठ स्थान है। राष्ट्र मे न्यायपूर्वक प्रत्येक कार्य का निर्णय करना इसी के ऊपर निर्भर रहता है। यह धर्माधिकारी राष्ट्र मे धर्म की स्थापना करने के लिये रखा जाता था। राज्य मे एक धर्मसभा होती थी उसका यह अध्यक्ष होता था। उसी के लक्षणो का वर्णन करते हुये सोमेश्वर देव लिखते है कि उसे स्मृतिशास्त्र के अर्थ मे कुशल, रागद्वेष से रहित, लोभरहित तथा निर्भय होना चाहिये।[1] इन गुणो से युक्त धर्माधिकारी को ही राजा धर्माध्यक्ष के पद पर नियुक्त करे।

धर्माधिकारी के लिये यह आवश्यक था कि वह जाति का ब्राह्मण हो और समान रूप से अपराध का अवलोकन कर दण्ड देता हो, सर्वथा समर्थ हो तथा विचारज्ञ हो।[2] धर्माधिकारि सभा का अध्यक्ष होते हुये उसमे इन सभी गुणो की आवश्यकता थी। यदि उसे स्मृति आदि का ज्ञान न होगा तो वह न्याय के दाव पेचो को न समझ सकेगा और न उचित रीति से दण्ड का विधान ही कर सकेगा। राग द्वेष से शून्यहृदय न होगा तो वह पक्षपातरहित न्याय नही कर सकता जिससे जनता असन्तुष्ट रहेगी। इसी कारण उसको रागद्वेष से शून्य होने का आदेश दिया गया है। व्यक्ति उत्तम न्याय तभी तक कर सकता है जब तक उसके हृदय मे किसी प्रकार का पक्षपात न हो। इसके अतिरिक्त लोभ तथा भय आदि अवगुण भी उसके न्याय पथ मे बाधक सिद्ध होते है। इन दोनो के वशीभूत हो जाने पर व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है और उसे किसी प्रकार का ज्ञान नही रह जाता। लोभ तथा भय दोनो ही उसके ज्ञान को आवरण की भाँति ढक देते है और वह उत्तम न्याय करने मे समर्थ नही हो पाता। इसी कारण यदि उसके हृदय मे लोभ तथा भय न होगा तो वह न तो किसी प्रभाव मे आ सकता है और न किसी के साथ भय के कारण अन्याय कर सकता है। इस प्रकार के मस्तिष्क से किया हुआ न्याय वास्तव मे सन्तोषप्रद होता है।

इसके अतिरिक्त न्याय करने मे उसे सहकारियो की सलाह भी लेनी पडती है। तब जैसा दण्ड का विधान हो उसी प्रकार का दण्ड उसे देना चाहिये। यदि त्रुटियो एव अपराधो को ध्यान मे रखकर दण्ड का विधान न होगा तो वह राष्ट्र कदापि सफल राष्ट्र नही बन सकता। इसी कारण राजा के लिये भी ऐसा आदेश दिया गया है कि वह इसके न्याय पर विचार करे और धर्माध्यक्ष के पद पर ब्राह्मण को ही नियुक्त करे। मनुस्मृति मे भी इस प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है कि धर्मसभा का अध्यक्ष ब्राह्मण ही होना चाहिये—

---

१ वही २।२।९३।

२ वही २।२।९४।

"तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांस ब्राह्मण कार्यदर्शने।"[1]

इस प्रकार के प्रसग को पढ कर ऐसा प्रतीत होता है कि सोमेश्वर के समय मे सभवत न्याय करने के लिए सभा थी जिसमे राजा अन्य न्यायाधीशों की सहायता से न्याय करता होगा किन्तु उनके बीच एक अध्यक्ष ब्राह्मण होता होगा। राजा न्याय करते समय इस धर्माधिकारी से परामर्श लेता था। इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्र मे न्याय की बडी ही सुन्दर व्यवस्था थी।

कोशाध्यक्ष गणक लक्षण

कोष राज्य का आधार है। कौटिल्य ने "कोषपूर्वा सर्वारम्भा"[2] कहकर कोष को सम्पूर्ण राज्य के कार्यों का आधार माना है। इसी कारण कौटिल्य ने राजा के लिये सर्वप्रथम कोषवृद्धि का ही आदेश दिया है।[3] कोष की सुरक्षा एव वृद्धि के लिये कोशाध्यक्ष तथा गणक रखना आवश्यक है। उसी के लक्षणो पर सोमेश्वरदेव ने अपने मानसोल्लास मे प्रकाश डाला है। कोशाध्यक्ष की नियुक्ति के समय बुद्धिमान राजा को चाहिये कि जो गुणकार, भागहार तथा त्रैराशिक विधान के तत्त्वो को भली प्रकार जानता हो, लोभी न हो, सावधान, रागद्वेष से रहित हो ऐसे व्यक्ति को राष्ट्र तथा कोष के लिये गणक नियुक्त करना चाहिये। सोमेश्वर द्वारा कथित यह प्रसग इस बात को प्रकट करता है कि राजा उस समय मे दो प्रकार के गणक नियुक्त करता था—पहला राष्ट्र के लिये, दूसरा कोष के लिये। राष्ट्र मे नियुक्त हुआ गणक न्याय विभाग के अन्तर्गत आ जाता था और वह न्यायालय मे वसूल हुये जुर्मानों तथा अन्य धन सम्बन्धी विषयो का हिसाब रखता था। किन्तु कोष के गणक का कार्य उस गणक से भिन्न था। कोष का गणक कोष मे आने वाले धन तथा निकलने वाले धन का हिसाब रखता था। इसी कारण उसके गुणकार, भागहार तथा त्रैराशिक विधान मे निपुण होने का उल्लेख किया है। इतने विशाल कोष के धन की गणना करने के लिये तथा उसे सुरक्षित रखने के लिये यदि उसे गणित का ज्ञान न होगा तो वह सुविधापूर्वक धन की सुरक्षा नही कर सकता और धन की हानि होने से राष्ट्र की स्थिति भी दयनीय होगी।

इन गुणों के अतिरिक्त गणक को बडी ही सावधानी से ईर्ष्या, द्वेष, लोभ आदि छोड कर कार्य करना चाहिये तभी राष्ट्र का लाभ हो सकता है क्योंकि यदि वह लोभी होगा तो इतना विशाल कोष उसे शीघ्र ही लोभी बना देगा जिससे वह अपना कार्य उचित रूप से न कर सकेगा। सोमेश्वर ने सभवतः

---

१ मनु० ८।९। २ कौटिल्य अर्थशास्त्र ८।२।१।
३ वही ८।२।२।

कोष के अधिकारी को ही गणक नाम से विभूषित किया है क्योंकि अन्य ग्रन्थों मे कोष के अधिकारी के लिये कोषाध्यक्ष नाम प्रयुक्त हुआ है। इस कोषाध्यक्ष के विषय में अनेक लक्षण अन्य ग्रन्थो मे मिलते है। काटिल्य ने लिखा है—

कोषाध्यक्ष कोषप्रवेश्य रत्न सार फल्गु कुप्य वा त जातकरणाधिष्ठित प्रति गृह्णीयात् ॥[1]

अथात् कोष मे जो भी रत्न, सार, वस्त्र कुप्यसज्ञक वस्तुएँ आये उन्हे कोषाध्यक्ष को उनके अधिकारियो के सामने ही ग्रहण करना चाहिये। शुक्र[2] ने भी कोषाध्यक्ष के लिये जितेन्द्रिय, धनी तथा व्यवहार में चतुर होने का आदेश दिया है। सोमेश्वर भी इसी प्रकार के गुणों से युक्त कोषाध्यक्ष को उत्तम मानते है।

प्रतीहार

कोषाध्यक्ष के बाद सामेश्वर प्रतीहार का उल्लेख अपने मानसोल्लास मे करते है। राजा को चाहिये कि उन्नत, रूपवान, दक्ष, मधुभाषा, गर्वरहित, सबके चित्त को लुभा लेने वाले व्यक्ति को प्रतीहारी के पद पर नियुक्त करे।[3] प्रतीहार राजा का परम प्रिय दूत होता था। इसके लक्षणो के अन्य ग्रन्थों मे भी प्रसग प्राप्त होते है। प्रतीहार के विषय मे शुक्र कहते है कि जो अस्त्र शस्त्र में कुशल हो, दृढाग हो, आलसी न हो तथा जो नम्र होकर सबका स्वागत तथा आह्वान करता हो ऐसा व्यक्ति प्रतीहारी होना चाहिये।[4]

प्रतीहार को राजनीति के अन्तर्गत बहुत प्राचान काल से बडा ही श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। वेदो मे अनेक स्थल पर ऐसा प्रसग प्राप्त होवा है कि अग्निदेव देवताओं के सदेशवाहक थे।[5] दूत को शस्त्रो का भी भय नहीं होता क्योंकि वह सदेश ले जाने के कारण अवध्य होता है। इसी कारण वह यथार्थ वाणी बोलता है।[6] इसके अतिरिक्त दूत राजा का परम हितैषी होता है—

भक्तो गुणी शुचिर्दक्ष प्रगल्भो व्यसनी क्षमी।
ब्राह्मण परमर्मज्ञो दूत स्यात्प्रतिभानवान् ॥[7]

---

१ वही २।११।१। २ शुक्र० २।१५१।

३ मानसो० २।२।१२६।

४ शस्त्रास्त्रकुशलो यस्तु दृढागश्च निरालस ।
यथायोग्य समाहूयात्प्रनम्र प्रतिहारक ॥ शुक्रनीति २।१७३।

५ ऋग्वेद १।१२।१, १।१६१।३, ८।४४।३।

६ उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा।
सदैवावध्यभावेन यथार्थस्य हि वाचक ॥ हितोपदेश, विग्रह १५।

७ वही १९।

वह सदैव अपनी वाक्पटुता एव कार्यकुशलता द्वारा अपने स्वामी को प्रसन्न रखता है। सोमेश्वर ने दूत एव प्रतीहार के लिये उच्च कुल का होना बतलाया है। तभी उ होने 'उन्नत' शब्द का प्रयोग किया ह। दूत के लिये प्रगल्भ, अव्यसनी तथा शत्रु के मम को जानने वाला होना चाहिये तभी राजा विजयो हो सक्ता है क्योकि यही दूत एव गुप्तचर ही राजा की आख होता है (चारै पश्यन्ति राजान) । इसी कारण सोमेश्वर भी उसे न्यर्पवजित, दक्ष एव प्रियवाग् बतलाते है। महाभारत मे दूत के आठ गुणा का वर्णन हुआ है—

> अस्तब्धक्लीबमदीर्घसूत्र सानुक्रोश श्लक्ष्णमहार्यमन्यैं ।
> अरोगजातीयमुदारवाक्य दूत वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥

किन्तु महाभारत के एक अन्य स्थल पर दूत के सात गुणों का ही वर्णन किया गया है। रामायण तथा पुराणों मे भी दूत का वर्णन हुआ है। दूत को उतना ही बोलने का अधिकार होता है जितना उसे राजा ने आज्ञा दी हो अन्यथा वह वध करने योग्य है।[७] मनु ने भी दूत का वर्णन इस प्रकार किया है—

> दूत चेव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
> इङ्गिताकारचेष्टज्ञ शुचि दक्ष कुलोद्गतम् ॥
> अनुरक्त शुचिर्दक्ष स्मृतिमान् देशकालवित ।
> वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञ प्रशस्यते ॥[८]

कौटिल्य ने दूत को राजा का गुप्त सलाहकार माना है और निसृष्टार्थ, परिमितार्थ तथा शासनहर इन तीन प्रकार के दूतों का वर्णन किया है—

> "उद्धृतमन्त्रो दूत प्रणिधि । अमात्यसपदोपेतो निसृष्टार्थ ।
> पादगुणहीन परिमितार्थ । अर्धगुणहीन शासनहर ॥[९]

कौटिल्य ने दूत का सबसे बडा गुण यही बतलाया है कि प्राणों का भय उपस्थित होने पर भी उसे अपने स्वामी का यथोक्त सदेश कहना चाहिये।[१०] इसके अतिरिक्त "दूतमु ना वै राजानस्त्व चान्ये च। तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्त

१ वही २०।
२ मानसो० २।२।१२६।
३ महाभारत उद्योगपव ३७।२७।
४ वही शान्तिपव ८५।२८।
५ वा० रामायण अयोध्या० १००।३५।
६ मत्स्यपुराण २१५।१२ १३।
७ महाभारत उद्योगपव ७२।७।
८ मनुस्मति ७।६३ ६४।
९ कौटिल्य १।१६।१४।
१० शासन च यथोक्त ब्रूयात्। प्राणबाधेऽपि दृष्टे। वही १।१६।१२।

वक्तारस्तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्या । किमग पुनर्ब्राह्मणा । परस्यैतद्वाक्यमेष दूतधर्म इति"[1] कहकर दूत को राजा का मुख मानकर उसे अवध्य बतलाया है। इसी प्रकार का प्रसग एक स्थल पर और आया है—

दूतो म्लेच्छोऽप्यवध्य स्याद्राजा दूतमुखो यत ।
उद्यते ऽपि शस्त्रेषु दूतो वदति ना ऽन्यथा ॥[2]

दूत का वर्णन कामन्दकीय नीतिसार मे भी हुआ है।[3] रामायण मे भी दूत की अवध्यता पर अधिक बल दिया गया है।[4]

सान्धिविग्रहिक लक्षण

महाभारत के शान्तिपर्व मे षाड्गुण्य मत्र का उल्लेख हुआ है—

षाड्गुण्यमिति यत्प्रोक्त तन्निबोध युधिष्ठिर ।
सन्धानासनमित्येव यात्रा सन्धानमेव च ॥[5]

इसके अन्तर्गत शत्रु से सन्धि करके चुप बैठना, आक्रमण करना, वैर करके चुप बैठना, आक्रमण करके बीच मे रुक जाना, शत्रु और मित्र दोनो से सन्धि करना, किसी अन्य दुर्ग या राजा का आश्रय लेना आदि ६ गुण आ जाते हैं। इसी कारण इसका नाम षाड्गुण्य है। इन्हीं को क्रमश सन्धि, विग्रह, आसन, यान, सश्रय तथा द्वैधीभाव कहते है।[6]

सोमेश्वर ने जो सन्धि विग्रह का वर्णन किया है वह इसी षाड्गुण्य के अन्तर्गत आ जाता है। शुक्रनीति मे सन्धि के विषय मे कहा गया है—

याभि क्रियाभिर्बलवान्मित्रता याति वैरिण ।
सा क्रिया सधिरित्युक्ता विमृशेताशु यत्नत ॥[7]

इसके अनुसार जब निर्बल राजा बलवान शत्रुराजा को सन्धि द्वारा मित्र बनाता है तो उसी को सन्धि कहते है। कौटिल्य ने भी "तत्र पणबन्ध सन्धि" कहकर सन्धि की परिभाषा की पूर्ति की है। राजा को चाहिये कि जहा तक उससे बन पडे वह युद्ध न करे। युद्ध उसे तभी करना चाहिये जब युद्ध के अतिरिक्त और कोई चारा न हो।[9] युद्ध होने पर भी यदि देखे कि शत्रु पक्ष अधिक बलवान

---

१ वही १।१६।१७ १९। २ हितोपदेश विग्रह० ६२।
३ कामन्दकीय नीतिसार १२।१, १२।२ २४, १२।२२ २३।
४ रामायण ५।५२।१४ १५। ५ महाभारत शान्ति पर्व ६९।६७।
६ सधिविग्रहासनयानसश्रयद्वैधीभावा षाड्गुण्यमित्याचार्या । ७।१।२।
७ शुक्रनीति ४।१०६६। ८ कौ० ७।१।६।
९ उपायान्तरनाशे तु ततो विग्रहमाचरेत् । ४।१०८५।

है तो भूमि, कन्या, धन, सुवर्ण आदि वस्तुयें उपहार रूप में देकर उससे सन्धि कर लेनी चाहिये। यही सन्धि का नियम है।[१] कौटिल्य ने अपने समान राजा से भी सन्धि करने का आदेश दिया है, यदि भविष्य में उसकी उन्नति होने की आशका हो।[२] मनुस्मृति में दो प्रकार की सन्धिया बतलाई गईं हैं—

सधि तु द्विविध विद्याद्राजा विग्रहमेव च।[३]

इन्हीं का नाम समानयानकर्मा तथा असमानयानकर्मा सन्धि है।[४] जब शत्रु किसी विशेष कर्म से पीडित होकर आधीन हो जाता है तो उसी कर्म को विग्रह कहते हैं—

विकर्षित सन्नाधीनो भवेच्छत्रुस्तु येन वै।[५]

कौटिल्य ने 'अपकारो विग्रह' कहकर विग्रह को समझाया है। जब शत्रु निर्बल पड चुका हो, अन्य शत्रुओं से घिरा हो, भोग विलास में फसा हो, दुर्ग में बद होकर बैठा हो, ऐसे समय मे शत्रु राजा पर अचानक आक्रमण कर उसे वश मे करना ही विग्रह कहा जाता है।[६] किन्तु विग्रह राजा को तभी करना चाहिये जब वह देखे कि उसकी अमात्यादि सातों प्रकृतिया खूब वृद्धि पर है और सभी उसके अनुकूल है।[७] विग्रह दो प्रकार का होता है १ शत्रु की विजय के हेतु कार्य के लिये अनुकूल समय मे युद्ध करना, २ जो मित्र के अपकार होने से विग्रह होता है। कौटिल्य ने राजा को तभी विग्रह का पालन करने का आदेश दिया है जब राजा स्वय अपने को तथा अपने सगठन को शत्रु से अधिक बल्वान समझ ले।[९]

सन्धि तथा विग्रह के विषय में उपयुक्त सलाह देने के लिये राजा के समीप अधिकारी रहता था जो समय को देखकर उचित सलाह देता था। इसी प्रकार के अधिकारी का वर्णन सोमेश्वर ने किया है, जो 'साधिविग्रहिक' कहलाता था।[१०] उसी के लक्षणों का वणन करते हुये वे कहते है कि जो प्रगल्भ, बुद्धि मान, दक्ष, सभी भाषाओं में निपुण हो, जो सन्धि-विग्रह के तत्व को जानने वाला, लिपि को जानने वाला तथा अक्षर को पढ सकता हो, सामन्तमडल तथा मान्यकों का विशेष रूप से आवाहन, विसर्जन तथा स्थापन करने में निपुण हो, षाड्गुण्य विधि के तत्व को जानता हो, देश काल विभाग को समझने वाला,

---

१ शुक्र० ४।१०७३। २ कौ० ७।१।३०।
३ मनु० ७।१६२। ४ वही ७।१६३।
५ शुक्र० ४।१०६७। ६ वही ४।१०८१।
७ मनु० ७।१७०। ८ वही ७।१६४।
९ कौ० ७।१।४८ ५२। १० मानसोल्लास २।२।१३०।

आय व्यय लोक तथा देश की उत्पत्ति को समझने वाला, धन की रक्षा में तत्पर, कृत्य तथा अकृत्य की विवेचना करने वाला हो, ऐसे कार्य विशारद को राजा को सान्धिविग्रहिक के पद पर नियुक्त करना चाहिये।[1] सोमेश्वर ने जो सान्धिविग्रहिक का वर्णन किया है ऐसे व्यक्ति का अन्य स्थलों में प्रसग नहीं प्राप्त होता। हा, षाड्गुण्य का आचरण करने वाले विशेषज्ञ का प्रसग प्राप्त होता है—

सर्वेषा तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता।
मन्त्रयेत्परम मन्त्र राजा षाड्गुण्यसयुतम्॥[2]

वास्तव में इस अधिकारी के ऊपर देश का बहुत भार रहता है। इसी कारण इस व्यक्ति का इतना गुणवान् होना स्वाभाविक है। यदि वह बुद्धिमान, दक्ष, प्रगल्भ, अनेक भाषाओं, लिपियों एव अक्षरों को जानने वाला न होगा तो वह कदापि शत्रु के दाव पेचों को नही समझ सकता। सभवत युद्ध मे साथ रहने वाला यह राजा का गुप्तचर होगा जो शत्रु के प्रत्येक दाव पेच का ज्ञान रखता होगा।

लेखक

सान्धिविग्रहिक के अतिरिक्त राजा के दरबार में एक लेखक भी नियुक्त होता था जो सब देश की लिपियों का ज्ञाता, लेखन कला में पटु, अधीत तथा बुद्धिमान होता था। इसी प्रकार के व्यक्ति को राजा लेखक नियुक्त करता था।[3] यह लेखक लिखने का सभी कार्य करता था जो राज्य से सम्बन्धित होते थे।

शुक्रनीति मे लेखक के लक्षण का इस प्रकार वर्णन हुआ है—

गणनाकुशलो यस्तु देशभाषाप्रभेदवित्।
असदिग्धमगूढार्थं विलिखेत्स च लेखक॥[4]

इसके अनुसार लेखक को गणना में कुशल, देश-विदेश की भाषा के भेद को जानने वाला तथा असदिग्ध तथा स्पष्ट लिखने वाला होना चाहिये। किन्तु सोमेश्वर ने 'सर्वदेशलिपिज्ञाता'[5] का प्रयोग किया है।

सारथि लक्षण

राज्य में जो सेना के अश्वों का अधिपति होता था उसे सारथी कहते थे। सोमेश्वर ने उसके लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है—जो अश्वों की चिकित्सा को जानता हो, निमित्त तथा शकुनों का ज्ञाता हो, तुरगों की शिक्षा के विषय

१ वही २।२।१२७ १३०। २ मनु० ७।५८।
३ मानसोल्लास २।२।१३१। ४ शुक्रनीति २।१७२।
५ मानसोल्लास २।२।१३१।

मे ज्ञान रखता हो, अश्वों के योग्य भूमिभाग को जानता हो, सेना के तथा बिना सेना के रथों का ज्ञाता हो, प्रिय वाणी वक्ता, प्रियदर्शी, शूरवीर, विद्वान् हो उसी व्यक्ति को घोडों का सारथी नियुक्त करना चाहिए। वास्तव में सारथी को अश्व चिकित्सा का ज्ञान तथा घोडों की शिक्षा देने का ज्ञान होना चाहिये क्योंकि सारथी घोडों का स्वामी होता है। युद्ध में यदि अचानक घोडे को कुछ हो जाता है तो अश्व चिकित्सा जानने वाला व्यक्ति उसी क्षण उसे ठीक कर सकता है। घोडों को शिक्षा देने का ज्ञान यदि सारथी को न होगा तो घोडा उसके आधिपत्य में न रह सकेगा जिससे किसी भी समय अनर्थ होने की सम्भावना हो सकती है।[१]

इसके अतिरिक्त सारथी को शकुनों का ज्ञाता होना चाहिए जिससे वह शकुनों का ध्यान रख कर ही अश्व लेकर चलेगा जिससे विजय निश्चित हो जाती है। भूमिभाग का ज्ञान होने पर वह अश्व की गति को विशेष प्रकार से ध्यान कर प्रत्येक भूमि मे चला सकता है। इन सब गुणों के साथ ही साथ मधुरभाषी तथा प्रियदर्शी आदि गुण होने से वह शीघ्र ही दूसरे के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। शुक्रनीति में भी अश्वों के सारथी के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है।

अश्वाना हृदय वेत्ति जातिवर्णभ्रमैर्गुणान्।
गति शिक्षा चिकित्सा च सत्त्व सार रुज तथा॥
हिताहित पोषण च मान यान दतो वय।
शूरश्च व्यूहवित्प्राज्ञ कार्योऽश्वाधिपतिश्च स॥
एभिर्गुणैश्च सयुक्तो धुर्यान्युग्याश्च वेत्ति य।
रथस्य सार गमन भ्रमण परिवर्तनम्॥[२]

सूद-लक्षण

इसके अन्तगत सोमेश्वर ने पाकशास्त्र में निपुण व्यक्ति का वर्णन किया है। जो सभी पाकशास्त्र के ज्ञाताओं का अधिपति होता था उसे सूदाध्यक्ष कहते थे। सूद के लक्षण के विषय में सोमेश्वर ने लिखा है कि जो असम्भेद्य, पवित्र, दक्ष, अन्न की परीक्षा करने वाला, पाकशास्त्र के ज्ञाताओं में निपुण हो ऐसे व्यक्ति को सूदाध्यक्ष नियुक्त करना चाहिए।[३] इसके अतिरिक्त कुल के क्रम से आया हुआ, सन्तुष्ट, इष्ट का अनुकरण करने वाला, केश तथा नख कटवाये हुये, इन्द्रियजित्, दूसरे से न भेदा जाने वाला, राजा में रत, अन्न पानादि में

१ वही २।२।१३२ ३३। २ शुक्रनीति २।१२९-३१।
३ मानसोल्लास २।२।१३४।

विशेषज्ञ, मासपाक में विद्वान्, शाक के पाक की कला मे दक्ष, अन्न को पकाने मे प्रवीण, व्यजनों के तत्वो को जानने वाला, खण्ड के पाक को जानने वाला, दुग्ध के प्रकार को जानने वाला हो, ऐसे प्रवीण व्यक्ति को सूद नियुक्त करना चाहिये ।[1] इतने गुणों से युक्त सूद ही रुचिकर भोजन बना सकता है ।

इन सभी गुणों में सबसे आवश्यक गुण सूद का असभेद्य, दान्त, पराभेद्य तथा राजा में रत होना है । सूद के लिये यह आवश्यक है कि उसे अपनी इन्द्रियों एव हृदय पर विश्वास हो, वह किसी के कहने में न आवे, किसी के द्वारा भेदे अथवा सिखाये जाने पर राजा को विषादि न दे दे । उसका राजा मे ही रत रहना आवश्यक है, तभी वह राजा का सदैव ध्यान रखेगा और उसे सुन्दर एव रुचिपूर्ण भोजन बनाकर देगा ।

शुक्रनीति में पाकशास्त्र के नायक के गुणों का वर्णन निम्न प्रकार से हुआ है—

धौता धौतविपाकज्ञो रससयोगभेदवित् ।
क्रियासु कुशलो द्रव्यगुणवित्पाकनायक ॥[2]

इसमे केवल थोडे ही गुणों का वर्णन हुआ है । सोमेश्वर ने पाकशास्त्र नायक के अनेक गुणों का वर्णन किया है जिसके अन्तर्गत सूद को अन्न, द्रव्य, रस, शाक आदि सभी व्यजनों मे निपुण बतलाया है । इन सभी व्यजनों के साथ साथ मास बनाने में भी सूद को निपुण होना चाहिये । "मासपाकविशारदा" शब्द इस बात को प्रकट करता है कि महाराज सोमेश्वर मासभक्षण के अत्यन्त प्रेमी थे । सभी प्रकार के मासों का प्रयोग किया जाता था । इसका विस्तार पूर्वक वर्णन उपभोग के प्रकरण में होगा ।

वैद्य-लक्षण

सूद के बाद सोमेश्वर ने वैद्य के लक्षणों को गिनाया है जिसके अन्तर्गत उन्होंने वैद्य को मनुष्य, अश्व, गज, गो तथा अन्य पशु-पक्षियों की चिकित्सा में निपुण होना चाहिए, ऐसा बतलाया है ।[3] नर, अश्व, गज के अतिरिक्त गो तथा अन्य पशु एव पक्षियो की चिकित्सा भी वैद्य करते थे । इस प्रसग से विदित होता है कि प्रत्येक की चिकित्सा के लिए अलग अलग विभाग रहे होंगे जिनके अन्तर्गत इन सबकी चिकित्सा होती होगी । इनके अतिरिक्त वैद्य को अष्टाग चिकित्सा में भी निपुण होना चाहिए ।[4]

इस प्रसग में वर्णित वैद्य सम्भवत: राज्य के स्वास्थ्य तथा चिकित्सा विभाग

---

१ वही २।२।१३५ १३७ ।
२ शुक्रनीति २।१५६ ।
३ वही २।२।१३८ ।
४ मानसोल्लास २।२।१३९ ।

का अध्यक्ष होता था। जिस प्रकार वर्तमान काल का स्वास्थ्य एव चिकित्सा विभाग का केन्द्रीय प्रमुख सचालक (Director General of Public Health) सम्पूर्ण राज्य के चिकित्सालयों आदि का सुचारु रूप से सचालन करता है उसी प्रकार सोमेश्वर के राज्य में एक केन्द्रीय वैद्य रहता था जो सम्पूर्ण राज्य की चिकित्सा एव स्वास्थ्य का ध्यान रखता था। इसके आधीन स्थान स्थान पर अनेक चिकित्सालय रहते थे जिनका निरीक्षण स्थानीय वैद्यों द्वारा होता था।

केन्द्रीय वैद्य पर केवल मनुष्यो की ही अष्टाग चिकित्सा का भार न था वरन् पशुओ की चिकित्सा का निरीक्षण करना भी उसी का कार्य था। पशुओं की चिकित्सा सोमेश्वर के समय में वर्तमान काल से भी अधिक उन्नतिपूर्ण थी, क्योंकि वर्तमान काल में सभी पशुओं की चिकित्सा एक ही चिकित्सालय के अन्तर्गत होती है किन्तु सोमेश्वर के समय मे गज, अश्व, उष्ट्र, गो आदि पशुओं की चिकित्सा के लिये अलग अलग वैद्य तथा चिकित्सालय थे। इनमे गज तथा अश्व की चिकित्सा पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था क्योंकि ये युद्ध के अतिरिक्त राजा के दैनिक जीवन तथा विनोद आदि से अधिक सम्बन्ध रखते थे।

मध्यकालीन भारत मे अश्व का बडा महत्व था। अश्व चिकित्सकों को स्वतन्त्र रूप से राजाश्रय प्राप्त था। अश्वायुर्वेद पर इसी कारण पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है जिनमें से मुख्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

जयदत्त का 'अश्ववैद्यक', नकुलकृत 'अश्वचिकित्सा', कल्हणकृत 'शालिहोत्रसारसमुच्चय', वर्धमानकृत 'योगमञ्जरी', दीपकरकृत 'अश्ववैद्यक', अग्नि पुराण में वर्णित 'अश्ववैद्यक', भोज का 'युक्तिकल्पतरु', वाग्भट्ट का 'अश्वायुर्वेद' इत्यादि। महाराज सोमेश्वर ने भी अश्व के मुख्य रोगों की चिकित्सा का उल्लेख मानसोल्लास मे किया है।[१] अत सोमेश्वर का भी अश्वचिकित्सा साहित्य के रचयिताओ मे प्रमुख स्थान है।

गजायुर्वेद के पुरस्कर्ता पालकाप्य मुनि माने जाते है जिनका 'हस्त्यायुर्वेद' नाम का एक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। महाराज सोमेश्वर ने भी गजों के मुख्य रोगों को ध्यान में रखते हुए उनकी सरल चिकित्सा के उपायों पर प्रकाश डाला है।[2]

अश्व तथा गज के अतिरिक्त सोमेश्वर ने गो, मृग आदि पशुओं तथा पक्षियो की चिकित्सा किये जाने का स्वतन्त्र रूप से उल्लेख किया है।[3] गो आदि की

१ वही २।६।५७९ ६११। २ वही २।६।६२८-६७४।

३ वही २।२।१३८।

चिकित्सा के सम्बन्ध मे संस्कृत का कोई भी ग्रंथ प्रकाश मे नही आया है। हिन्दी मे अभी हाल में 'गोचरित्र', 'भैंसचरित्र', 'ऊटचरित्र' नाम की कुछ हस्तलिपिया प्राप्त हुई है जिनमें इन पशुओं की चिकित्सा पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है।[1] इन ग्रन्थों की शैली संस्कृत के ग्रन्थों की शैली के आधार पर लिखी हुई प्रतीत होती है। 'ऊँटचरित्र' नाम की हस्तलिपि मे शालिहोत्र तथा सगर को उष्ट्रायुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थो का रचयिता माना गया है किन्तु इन ग्रन्थों के अभाव मे कोई निश्चित निर्णय नही दिया जा सकता।

सोमेश्वर के समय मे केन्द्रीय वैद्य के आधीन मनुष्यों की चिकित्सा के अतिरिक्त विविध पशुओं के स्वतन्त्र चिकित्सालय थे। सम्भवत इसीलिए इस केन्द्रीय वैद्य को सुचारुरूप से उनका प्रबन्ध करने के लिए इन सबकी चिकित्सा का ज्ञान सोमेश्वर ने आवश्यक बतलाया है।[3]

राष्ट्र

मानसोल्लास मे राष्ट्र की रक्षा करना राजा का परम धर्म माना है। महाराज सोमेश्वर का कथन है कि जो राजा मोहवश अपने राष्ट्र को पीडित करता है उसका शीघ्र ही बन्धुओं सहित राज्य से पतन होता है—

स्वराष्ट्र यो नृपो मोहात् पीडयेदनवेक्षया।
राज्यात्स च्यवते शीघ्र प्राणेभ्य सह बन्धुभि ॥[4]

राष्ट्र ही राजा का प्राण है। जिस प्रकार शारीरिक व्याधि से प्राणों का क्षय होता है उसी प्रकार देश के पीडित होने पर राजा के प्राणों का क्षय होता है

यथैव प्राणिना प्राणा हीयन्ते देहपीडनात्।
तथैव भूभुजा प्राणा हीयन्ते देशपीडनात् ॥[5]

सोमेश्वर ने धनधान्य से पूर्ण, खानों तथा द्रव्यादि से भरे, पशुओ के लिये हितकारी, पर्याप्त जल से युक्त, पुण्यवान् व्यक्तियों से पूर्ण तथा अनेक उद्यानो और नदियों से पूर्ण राष्ट्र पर राजा को शासन करने का आदेश दिया है।[6] इन सभी उपकरणों एव साधनों के उपस्थित होने पर राष्ट्र समृद्ध हो जाता है।

सोमेश्वर सदैव अपनी प्रजा को शान्त एव सुखी बनाने का प्रयत्न करते थे। उनका कथन है कि राष्ट्र में राजा अपनी प्रजा का औरस पुत्रों की भाँति पालन

---

१ डा० मुनिकान्तिसागर-सम्मेलन पत्रिका चैत्र शुक्ल स० २०१२ पृ० ८।
२ वही।
३ मानसोल्लास २।२।१३८। ४ वही २।३।१५७।
५ वही २।३।१५८। ६ वही २।३।१५२ ५४।

करे। चार आदि से उसकी रक्षा करे तथा यह भी देखे कि अमात्यादि उस पर अत्याचार तो नही करते।[१]

वैदिक साहित्य में राष्ट्र से सम्बन्धित अनेक प्रसग प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के सप्तम मडल मे वरुण की एक स्तुति में 'राजा राष्ट्रानाम्' कहकर उन्हें राष्ट्रों का राजा कहा गया है।[२] ऋग्वेद के अन्य स्थलों पर भी राष्ट्र सम्बन्धी प्रसग प्राप्त होते हैं।[३] अथर्ववेद में पृथिवी माता से राष्ट्र को शक्ति प्रदान करने के लिये प्रार्थना की गई है।[४] तैत्तिरीयसहिता तथा वाजसनेयी सहिता[६] में भी इसी प्रकार के प्रसग प्राप्त होते है। कामन्दकीय नीतिसार ने राज्य के समस्त अगो की उत्पत्ति राष्ट्र से ही बतलाई है—

राज्यागाना च सर्वेषा राष्ट्राद् भवति सभव ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन राजा राष्ट्र समुन्नयेत् ॥[७]

अग्निपुराण में राज्य की प्रकृतियों में राष्ट्र को सवोच्च स्थान प्रदान किया गया है।

सोमेश्वर ने जिस प्रकार के धनधान्यपूर्ण राज्य का वर्णन किया है उसी प्रकार का प्रसग अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। कामन्दकीय नीतिसार में ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि राजा का ऐश्वय राष्ट्र के ऐश्वर्य पर निर्भर है।[९] इसी कारण राजा को सदैव अच्छे गुणों से युक्त स्थान चुनना चाहिये। जिस राष्ट्र में धन धान्य, खाने पशु, जल, शुद्धाचरण वाले व्यक्ति, वन, हाथी, सडके-व्यापारी तथा अन्य वस्तुये हों वह राज्य ऐश्वर्यशाली कहलाता है—

'अदेवमातृका चेति शस्यते भूर्विभूतये'[१०]

अदेवमातृका का ही दूसरा नाम नदीमातृका है जिसका प्रयोग सोमेश्वर ने किया है।[११] अमरकोष में इस विषय में कहा गया है कि जिस राष्ट्र में धान्य की कृषि पूर्णत वृष्टि पर ही निर्भर रहती है वह देवमातृक राष्ट्र तथा जहा धान्य की कृषि नदी तथा तालाब एव नहरों के जल पर ही आश्रित रहती है वह नदी मातृक राष्ट्र कहलाता है—

देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसपन्नव्रीहिपालित ।
स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम् ॥[१२]

---

१ वही २।३।१५५-५६।
२ ऋग्वेद ७।३४।११।
३ वही ७ ८४।२, १०।१०९।३।
४ अथर्ववेद १२।१।८,१०।
५ तैत्तिरीय सहिता ७।५।१८।१।
६ वा० स० २।२२।
७ कामन्द० ६।३।
८ अग्नि पु० २३९।२।
९ कामन्दक० ४।५२।
१० वही।
११ मानसोल्लास २।३।१५३।
१२ अमरकोष।

देवमातृक का प्रयोग 'देवो माता यस्य' के अर्थ मे हुआ है। सोमेश्वर ने राष्ट्र की भूमि के लिये नदीमातृका का प्रयोग किया है। भारत के दक्षिण का भूभाग नदियों से पूण है। सोमेश्वर दक्षिण प्रदेश के निवासी थे, सम्भवत इसी कारण उन्होने नदीमातृका शब्द का प्रयोग किया है।

जहा की भूमि पथरीली, वनों से पूर्ण, चोरों से घिरी, जलशून्य, विशाल एव घनी झाडियो से पूर्ण तथा सर्पों से पूर्ण हो ऐसी भूमि राष्ट्र बनाने के योग्य नहीं होती। इस कारण राष्ट्र वही अच्छा माना जायगा जो ऐश्वयपूर्ण, और अनेक प्रकार के साधनो से पूर्ण हो तथा जहा पर जनरक्षा का पूर्ण रूप से प्रबन्ध हो। मनु ने इसी प्रकार के ऐश्वर्यशाली राष्ट्र को अच्छा माना है—

जागल सस्यसम्पन्नमार्यप्रायमनाविलम्।
रम्यमानतसामन्त स्वाजीव्य देशमावसेत्॥[1]

इसी श्लोक की टीका करते हुये कुल्लूक ने इस प्रकार लिखा है—

अल्पोदकतृणो यस्तु प्रवात प्रचुरातप।
स ज्ञेयो जागलो देशो बहुधान्यादिसयुत॥[2]

राजनीतिप्रकाश मे इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है।[3] याज्ञवल्क्य ने अत्यन्त रमणीय तथा पशुओ से युक्त स्थान में बसने का आदेश दिया है—

"रम्य पशव्यमाजीव्य जागल देशमावसेत्।"[4]

इस प्रकार के ऐश्वर्यशाली राष्ट्र मे मनु के मतानुसार अधिकाधिक आय एव शिष्ट व्यक्तियो का निवास होना चाहिये[5]। विष्णुधर्मसूत्र का कथन है कि राष्ट्र मे वैश्य तथा शूद्र अधिक चाहिये[6]। मनु शूद्रों की अधिक सख्या को नाश का कारण मानते है—

यद्राष्ट्र शूद्रभूयिष्ठ नास्तिकाक्रान्तमद्विजम्।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्न दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्॥[7]

इसी प्रकार के प्रसग मत्स्य पुराण,[8] विष्णुधर्मोत्तर[9] तथा नीतिवाक्यामृत[10] मे प्राप्त होते हैं। सोमेश्वर भी मनु के मत से सहमत प्रतीत होते हैं क्योंकि

---

१ मनु० ७।६८।
२ वही, कुल्लूक की टीका।
३ रा० नी० प्र० पृ० १९७।
४ याज्ञ० १।३२१।
५ मनु० ७।६९।
६ वि० ध० सू० ३।५।
७ मनु० ८।२२।
८ मत्स्य पु० २१७।१५।
९ विष्णुधर्मोत्तर २।२६।१५।
१० नीतिवाक्यामृत जनपदसमुद्देश प० १९१।

उन्होंने भी "पुण्यवद्भिर्जनैर्युता"[1] कहकर राष्ट्र को पुण्यवान व्यक्तियो से पूर्ण बतलाया है।

राष्ट्र का सगठन दशमलव सिद्धान्त

सोमेश्वर के राष्ट्र सम्बन्धी प्रसगो के पढने से विदित होता है कि राष्ट्र के सगठन के विषय मे उन्होने दशमलव सिद्धान्त को अपनाया है। राष्ट्र के सगठन के विषय मे सोमेश्वर ने ग्राम को राष्ट्र की सबसे छोटा इकाई अथवा सस्था माना है और उसी के आधार पर सम्पूर्ण राष्ट्र का सगठन बतलाया है। उनका कथन है—

> एकग्रामप्रभु कुर्याद् दशग्रामप्रभु तथा।
> ग्रामाणा विशते कुर्यात् प्रभु शतसहस्रयो ॥[2]

अर्थात् एक ग्राम का एक निवासी नियुक्त करे, फिर दश ग्रामो पर, बीस ग्रामो पर तथा सौ ग्रामों पर एक स्वामी नियुक्त करे। इसी प्रकार सहस्र ग्रामो का स्वामी नियुक्त करे।

सोमेश्वर का यह सिद्धान्त प्राचीन धर्मग्रन्थों के आधार पर आधारित प्रतीत होता है। मनुस्मृति में भी इसी प्रकार एक, दस, बीस, सौ तथा सहस्र ग्रामो का क्रमश अधिपति बनाये जाने का आदेश दिया गया है—

> ग्रामस्याधिपति कुर्याद् दशग्रामपतिं तथा।
> विशतीश शतेश च सहस्रपतिमेव च ॥[3]

इस दशमलव सिद्धान्त का समर्थन महाभारत मे भी ग्रामो के सगठन के विषय में हुआ है—

> राष्ट्रगुप्ति च ते सम्यग्राष्ट्रस्यैव तु सग्रहम्।
> हन्त सव प्रवक्ष्यामि तत्त्वमेकमना श्रृणु ॥
> ग्रामस्याधिपति कार्यो दशग्राम्यस्तथापर ।
> द्विगुणाया शतस्यैव सहस्रस्य च कारयेत् ॥[4]

इस प्रकार महभारत में भी ग्राम को शासन की सबसे छोटी इकाई माना गया है और सम्पूर्ण राष्ट्र पर सुचारु रूप से शासन करने के लिये ग्राम, दश ग्राम, बीस ग्राम, सौ ग्राम तथा सहस्र ग्रामों मे विभक्त करने का आदेश दिया गया है।

राष्ट्र की इकाई ग्राम

ग्रामों के शासन का राजा के लिये भली प्रकार निरीक्षण करने का सोमेश्वर

---

१ मानसोल्लास २।३।१५२। २ वही २।३।१५१।
३ मनु० ७।११५। ४ महा० शान्ति० ८७।२ ३।

ने आदेश दिया है, क्योंकि उनका कथन है कि यदि ग्राम के शासन में कोई त्रुटि हो जाती है तो ग्राम में दोष उत्पन्न हो जाते है। अत जब ग्राम के शासन मे कोई त्रुटि उत्पन्न हो जाय तो उसके अधिपति को चाहिये कि वह दस ग्रामों के अधिपति से शिकायत करे। इसी प्रकार दस ग्राम का अधिपति बीस ग्रामों के अधिपति से, विंशतेश्वर सौ ग्रामों के अधिपति से तथा सौ ग्रामो का अधिपति सहस्राधीश से अपने अपने ग्राम मे उत्पन्न हुई त्रुटियो के विषय मे शिकायत कर सकता है।[१] फिर भी यदि ग्राम के शासन में उत्पन्न दोष दूर न हो तो सभा अधिपति वहा जाकर वहीं रहकर ग्राम के दोष को दूर करे।[२] यह प्रसग इस बात की ओर सकेत करता है कि सोमेश्वर के समय ग्रामों का प्रबन्ध बडा ही सुसगठित था। मनु ने प्रत्येक ग्राम का उचित रूप से निरीक्षण करने के लिये राजा की ओर से ग्रामिक नाम के अधिकारी को नियुक्त करने का आदेश दिया है। ग्राम में दोष उत्पन्न हो जाने पर ग्रामदशेश से उसे निवेदन करना उसका कर्तव्य बतलाया है—

ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिक शनकै स्वयम्।
शसेद् ग्रामदशेशाय ॥[३]

महाभारत में भी ग्राम के दोषों को बतलाने के लिये एक अधिपति रखने का उल्लेख हुआ है।[४] कौटिल्य ने ग्राम के अधिपति के विषय में तथा ग्राम के शासन के विषय में निम्नलिखित प्रसग दिया है—

"ग्रामार्थेन ग्रामिक व्रजन्तमुपवासा पर्यायेणानुगच्छेयुरननुगच्छन्त पणार्ध पाणीक योजन दद्यु ।"[५]

अर्थात् ग्राम कार्य के निमित्त ग्रामिक उद्यत रहता है। अत ग्राम की जनता को चाहिये कि वह सदैव उसका अनुसरण करे। इस नियम का उल्लघन करने वाले व्यक्ति को दण्ड का भागी बनना पडता है। शुक्र ने ग्राम के शासन के विषय में लिखा है कि प्रत्येक ग्राम में राजा की ओर से छ कर्मचारी नियुक्त होने चाहिये जो गांव की प्रत्येक बात राजा को बतला सके। वे ग्राम की जनता की माता पिता की भांति रक्षा करते थे—

आधर्षकेभ्यश्चोरेभ्यो ह्यधिकारिगणात्तथा।
प्रजासरक्षणे दक्षो ग्रामपो मातृपितृवत्॥[६]

---

१ मानसो० २।३।१६० १६१। २ वही २।३।१६२।
३ मनु० ७।११६। ४ महा० शान्ति० ८७।३।
५ अथ० ३।१०।२६। ६ शुक्र० २।१७० १७१।

इन छ कर्मचारियों मे जो सबका मुखिया होता था उसे ग्रामप कहते थे।[1] शुक्र ने ग्रामिक के लिये ही ग्रामप शब्द का प्रयोग किया है। यह ग्रामप चोर, लुटेरों से तथा राज्य के कर्मचारियो के अत्याचार से ग्रामवासियो की रक्षा करता था। सोमेश्वर ने "चौरेभ्योऽमात्यकेभ्यश्च तयैवार्थाधिकारित"[2] पक्ति का प्रयोग किया है। इससे विदित होता है कि सोमेश्वर के राज्य मे स्थित ग्रामों में भी कभी कभी चोरो का आक्रमण हो जाता था, तथा कभी कभी अमात्य तथा राजा के अन्य कर्मचारी ग्रामवासियों का पीडित करते थे। उनकी रक्षा का प्रबन्ध राजा करता था।

पुर

सोमेश्वर के समय मे राष्ट्र के अन्तर्गत ग्रामों के अतिरिक्त पुर भी होते थे। इनमे से एक तो राजधानी का नगर होता था, जिसके लिये सोमेश्वर ने 'महा पत्तन'[3] शब्द का प्रयोग किया है। यह नगर अत्यन्त रमणीय तथा विशाल होता था। राजधानी के नगर के अतिरिक्त अन्य भी पुर[4] होते थे, परन्तु इनकी सख्या सभवत बहुत कम थी। सोमेश्वर ने "महापत्तन" तथा 'पुर" शब्दों का ही उल्लेख किया है। उनका कोई विस्तृत वर्णन नहीं किया। पुर के प्रसग में उन्होंने केवल यह कहा है कि उसके समीप विहारार्थ वन होने चाहिये।[5] इन पुरों में बहुत व्यक्ति रहते थे और ये पुर मूल, फल एव पुष्पों से पूर्ण रहते थे।

इस प्रकार सोमेश्वर ने राष्ट्र की सप्त प्रकृतियों के अन्तर्गत राष्ट्र प्रकृति के दो मुख्य भेद माने है ग्राम तथा पुर। मनु ने राज्य की सप्त प्रकृतियों में पुर को राष्ट्रादि के साथ एक स्वतत्र प्रकृति माना है।[7] इसके अतिरिक्त उनका कथन है कि धनुदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, नृदुर्ग तथा गिरिदुर्ग इन छ प्रकार के दुर्गों में से एक का आश्रय लेकर पुर को बसाना चाहिये।

महाभारत में उल्लिखित भीष्म के मतानुसार दुर्ग पुर में होना आवश्यक तो है, किन्तु दुर्ग ही पुर है यह भीष्म को मान्य नहीं। वे दुर्ग को पुर का एक अंश मानते है। उन्होंने जनपद और पुर राज्य की भिन्न प्रकृतिया मानी है। शुक्र ने राज्य की सप्त प्रकृतियो के अन्तर्गत राष्ट्र तथा दुर्ग दो अलग अलग

---

१ वही। २ मानसो० २।३।१५५।

३ वही २।३।१५४। ४ वही २।३।१६७ १६८।

५ वही २।३।१६८। ६ वही २।३।१७०।

७ स्वाम्यमात्यो पुर राष्ट्र कोशदण्डौ सुहृत्तथा। मनु० ९।२९४।

८ धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
गिरिदुग नृदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥ वही ७।७०।

९ यत्पुर गुणसपन्न ॥ महा० शान्ति० ८६।६।

प्रकृतिया मानी है और ग्राम तथा पुर ये राष्ट्र के दो विभाजन बताये है, क्योकि उसमें ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि राजा को अपने राज्य मे स्थित ग्राम तथा पुरों का प्रतिवर्ष निरीक्षण करना चाहिये—

ग्रामाणि पुराणि देशाश्च स्वय सवीक्ष्य वत्सरे ॥[१]

इस प्रकार यदि देखा जाय तो सोमेश्वर का मत शुक्र के मत से कुछ मिलता जुलता है किन्तु शुक्र के ग्राम के सगठन से सोमेश्वर द्वारा कथित ग्राम के सगठन मे भेद है, क्योंकि शुक्र ने ग्राम के सगठन मे कुम्भ तथा पल्ली[३] आदि का जो उल्लेख किया है उस विभाजन को सोमेश्वर ने नहीं स्वीकार किया है। ग्राम सगठन के नियम मे सोमेश्वर ने मनु तथा भीष्म के अनुसार दशमलव सिद्धान्त अपनाया है। अत यद्यपि सोमेश्वर के राष्ट्र सगठन के नियम कुछ कुछ सबसे किसी न किसी रूप मे मिलते हैं, किन्तु फिर भी उनका सगठन अपनी स्वतत्र विशेषता रखता है।

कोष

कोष की आवश्यकता

कोष भी सप्त प्रकृतियों के अन्तर्गत राज्य का एक महत्वशाली एव आवश्यक अगं है। बिना धन के ससार का कोई भी काय नही सिद्ध नहीं होता फिर राज्य का सचालन धन के बिना कैसे हो सकता है। कोष द्वारा ही राजा अपनी प्रजा को सतुष्ट कर सकता है। कोष राजा के ऐश्वर्य का भी साधन है।

सोमेश्वर ने सुदृढ़ कोष से सम्पन्न राजा को अत्यन्त सुखी तथा कोष से हीन राजा को दुःखी माना है—

"कोशवान् सुखमाप्नोति कोशहीनस्तु सीदति"।[४]

महाभारत में भी कोष को राजा की मूल एव वृद्धि का कारण माना गया है—

"कोषश्च सतत रक्ष्यो यत्नमास्थाय राजभि।
कोषमूला हि राजान कोषवृद्धिकरो भवेत्" ॥

कौटिल्य ने राज्य के समस्त कार्यों का आधार कोष को ही माना है, इसी कारण उन्होंने राजा का सर्वप्रथम उद्देश्य कोष की वृद्ध करना बतलाया है—

"कोषपूर्वा समारम्भा। तस्मात्पूर्वं कोषमवेक्षेत।[६]

राज्य की सातों प्रकृतियों में से कोष तथा सेना पर ही राजा का वास्तविक

---

१ शुक्र० १।३७३। २ पल्ल्यर्ध कुम्भसज्ञकम् ॥ वही १।१९२।
३ ग्रामाधक पल्लिसज्ञ, वही। ४ मानसो० २।४।५४।
५ महा० शान्ति० ११९।१६। ६ अथ० २।८।१ २।

अस्तित्व आधारित होता है और सेना का मूल भी कोष ही है।[१] कामन्दकीय नीतिसार का कथन है कि राजा का मूल कोष ही है—

"कोषमूलो हि राजेति प्रवाद सार्वलौकिक ।[२]

विष्णुधर्मोत्तर में कोष को राज्य रूपी वृक्ष का मूल बतलाया गया है[३] और सरस्वती विलास[४] ने कोष का राज्य की अन्य प्रकृतियो की वृद्धि का कारण माना है। इन सभी ने कोष के विषय में मनु को ही आधार माना है, क्योंकि मनु कोष तथा राष्ट्र को राजा के ही आधीन मानते हैं—

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्र च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥[५]

इस प्रकार कोष के बिना राजा न तो प्रसन्नता को ही प्राप्त कर सकता है और न उसका कोई अस्तित्व ही शेष रह जाता है। कोष मे धन कम होने से राजा प्रजा को कष्ट देना प्रारम्भ कर देता है और प्रजा पीडित होकर राजा का मूलोच्छेद करने लगती है।[६]

कोष सचय का उद्देश्य

राजा कोष की वृद्धि अनेक उद्देश्यों के आधार पर करता है। सोमेश्वर ने अपने सम्पूर्ण कोष को चार भागों में विभक्त किया था। उसके तीन भाग द्वारा वह धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि करता था और शेष बचे हुये एक भाग द्वारा कोष की वृद्धि करता था—

राष्ट्रादायातवित्तस्य चतुर्भागान् प्रकल्पयेत्।
धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं कुर्याद् भागत्रय नृप ॥[७]

कौटिल्य ने कोष को धर्म तथा काम का आधार माना है।[८] वे ससार में अर्थ को प्रधान वस्तु मानते है[९] और धर्म तथा काम को अर्थ के आधीन मानते है—

---

१ महा० शान्ति पव १३०।३५।

राज्ञ कोशबल मूल कोशमूल पुनर्बलम।
तन्मूल सवधर्माणा धममूला पुन प्रजा ॥

२ कामन्दकीय० १३।३३। ३ विष्णुधर्मोत्तर० २।६१।१७।

४ कोशस्तु सवथा अभिसरक्ष्य इत्याह गौतम । तन्मूलत्वात्प्रकृतीनामिति। सरस्वती विलास। पृ० ४६।

५ मनु० ७।६५। ६ अथ० २।१।१८।

७ मानसो० २।४।५३९।

८ "कोशो धमकामहेतु" अर्थशास्त्र ८।१।५१।

९ "अथ एव प्रधान इति कौटिल्य" वही १।७।१०।

अर्थमूलो हि धर्मकामाविति ।[1]

मनु भी कोष का उद्देश्य प्रजा को सुचारु रूप से पालन करना मानते है, क्योंकि उन्होंने उस राजा को नरकगामी बतलाया है जो अपनी प्रजा का सरक्षण न करके उससे अधिक धन लेता है और उसे पीडित करता है ।[2] शुक्र ने कोष का सग्रह बल, प्रजा सरक्षण तथा यज्ञ, इन तीन हेतुओं के लिये माना है, क्योंकि इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर कोषवृद्धि करने से राजा को लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं—

बलप्रजारक्षणार्थं यज्ञार्थं कोषसग्रह ।
परत्रेह च सुखदो नृपस्यान्यश्च दु खद ॥
स्त्रीपुत्रार्थं कृतो यश्च सोपभोगाय केवल ।
नरकायैव स ज्ञेयो न परत्र सुखप्रद ॥[3]

अर्थात् जो राजा कोष का केवल स्त्री तथा पुत्रादि के निमित्त सग्रह करता है, वह सचित किया हुआ कोष राजा को नरकगामी बनाता है ।

सोमेश्वर ने यह पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है कि कोष का अधिकाश भाग धर्म तथा काम में व्यय करे ।[4] यह प्रसग पूर्ण रूप से सोमेश्वर की प्रजापालन एव उनकी धार्मिक भावना को स्पष्ट करता है । जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कौटिल्य ने अर्थ को धर्म और काम का मूल माना है किन्तु सोमेश्वर ने अर्थ को धर्म और काम का साधन मात्र माना है । यद्यपि मनु तथा शुक्र आदि महर्षियों ने कोष का उद्देश्य धर्म तथा काम का सेवन ही बतलाया है, किन्तु इनमें से किसी ने एतदर्थ कोष के निश्चित भाग का व्यय करने का उल्लेख नहीं किया । सोमेश्वर केवल अपने कोष के एक भाग द्वारा कोष का सचय करते थे । शेष धर्म एव काम के कार्यों में लगाते थे ।

कोष सचित करने के सिद्धान्त

मानसोल्लास के राजनीति सम्बन्धी प्रकरण का सूक्ष्मावलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सोमेश्वर का कोषसग्रह निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है—

१ शनै शनै कोष सचय का सिद्धान्त
२ प्रजा पालन अथवा प्रजा-परिपुष्टि का सिद्धान्त ।
३ वस्तु के अनुरूप धन सग्रह का सिद्धान्त ।
४ श्रोत्रिय से कर न लेने का सिद्धान्त ।

---

१ वही १।७।११ ।
२ मनु० ८।३०७ ३०८ ।
३ शुक्रनीति ४।११८ ११९ ।
४ मानसो० २।४।५४० ।

५ मुक्ता, मणि, रत्न तथा आभूषणादि सग्रह का सिद्धान्त ।

६ धातुवाद एव रसायन द्वारा कोष सग्रह का सिद्धान्त ।

७ खनि रक्षण का सिद्धान्त ।

शनै शनै कोष-सचय का सिद्धान्त—

सोमेश्वर का मत है कि राजा को धीरे धीरे कोष का सचय करना चाहिये, क्योंकि इस प्रकार से सचित हुआ कोष एक दिन उसी प्रकार समृद्धि को प्राप्त करता है जिस प्रकार थोडे थोडे जल बिन्दुओं से तडाग पूर्ण हो जाता है और छोटे छोटे मिट्टी के कणों के एकत्र होने पर विशाल वल्मीकि (बाबी) का निर्माण हो जाता है—

स्तोकस्तोकेन पूर्यन्ते तडागा जलबिन्दुभि ।
मृत्तिकाकणसघातैर्वल्मीकिर्वर्धते यत ॥[1]

शनै शनै कोष सचित करने का आदेश मनु ने भी दिया है। मनु का कथन है कि जिस प्रकार धीरे धीरे दुग्धपान करते हुये बछडे से गाय आनन्दित होती है, शनै शनै रक्तपान कर जोंक तृप्त हो जाती है और पशु को भी कष्ट नही होता उसी प्रकार धीरे धारे प्रजा से धन लेकर कोष का सचय करने पर कोष की वृद्धि अधिक होती है, जिसका न तो राजा को ही ध्यान रहता है और न प्रजा ही कष्ट का अनुभव करती है—

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्य वार्योकोवत्सषट्पदा ।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिक कर ॥[2]

इसी सिद्धान्त का समर्थन भीष्म ने भी किया है। वे इस सम्बन्ध मे राजा को नीति का आश्रय लेने का आदेश देते हैं। उनका कथन है कि प्रजा को अधिक कर देने के लिये धीरे-धीरे उसी प्रकार तैयार करना चाहिये जिस प्रकार से एक छोटा बछडा धीरे-धीरे अधिक भार वहन करने योग्य बैल तैयार किया जाता है।[3] जिस प्रकार उस छोटे बछडे पर अधिक भार लाद देने से वह गिर जाता है उसी प्रकार प्रजा पर अचानक अधिक कर लगा देने से प्रजा पीडित होकर विद्रोह करने लग जायगी। अत राजा को प्रजा पर कर लगा कर उसमे शनै शनै वृद्धि करनी चाहिये।[4] यद्यपि इन सबका सिद्धान्त समान है, किन्तु सोमेश्वर का सिद्धान्त विशेष रूप से कोषसग्रह से ही सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त शनै शनै धन सचित करने से कोष भी कभी क्षीण नहीं होता।

---

१ वही २।४।५३७। २ मनु० ७।१२९।
३ महा० शान्ति० ८८।८। ४ वही ८८।७।

प्रजा परिपुष्टि का सिद्धान्त—

राजा के द्वारा प्रजा का उचित रूप से पालन एव वर्धन होने पर भी कोष की वृद्धि होती है।[१] उचित रूप से पालन किये जाने पर प्रजा अपने ऊपर लगाये हुये करों को हर्षपूर्वक देती है। प्रजा को परिपुष्ट करने के सिद्धान्त का अर्थ यही है कि प्रजा को प्रत्येक प्रकार से सुखी कर उससे इस प्रकार से धन लेकर कोष की वृद्धि की जाय कि उसे तनिक भी कष्ट न हो। सोमेश्वर ने जो "पालनाद् वर्धयेद् राजा"[२] का प्रयोग किया है, इसमें "पालनाद्" तथा "वर्धयेद्" शब्द क्रमश प्रजापालन द्वारा प्रजा की प्रत्येक प्रकार की पुष्टि एव उन्नति के भाव को प्रकट करते हैं।

मनु प्रजा का उचित रूप से पालन एव रक्षा करने पर ही राजा को प्रजा द्वारा दिये गये करो का अधिकारी मानते है और प्रजा से कर ग्रहण करके भी उसका पालन न करने पर उस राजा को नरकगामी बतलाते है।[३] शुक्र ने भी प्रजा को रक्षा करने के कारण ही राजा को उसके द्वारा दिये हुए कर का भोक्ता माना है।[४] भीष्म ने महाभारत मे कहा है कि जैसे गाय का उचित रूप से पालन करने पर उससे इच्छानुसार दुग्ध ग्रहण किया जा सकता है, वह दुग्ध दुहाने के लिये व्याकुल रहती है, उसी प्रकार प्रजा का लालन पालन कर उसकी पुष्टि एव उन्नति करने पर प्रजा स्वय ही राजा को कर देती है जिससे राजकोष की वृद्धि होती है।[५] इसी प्रसग के अन्तर्गत भीष्म माता पुत्र,[६] माली[७] तथा कोयला बनाने वाले की नीति का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। माता जिस प्रकार से सतुष्ट होकर पुत्र का दुग्ध द्वारा पालन करती है तथा जिस प्रकार माली वाटिका के वृक्षों एव पुष्पों को सजा कर उन्हें वर्धित करता है, उसी प्रकार सतुष्ट होने पर पृथ्वी राजा के लिये अनेक विभूतियाँ उत्पन्न करती है। अत राजा को चाहिये कि वह माली की भाँति अपनी प्रजा का पालन करे। कोयला बनाने वाले की नीति की भाँति राजा को अपनी प्रजा को नष्ट कर देने की चेष्टा न करनी चाहिये। माली की नीति को अपनाने का आदेश शुक्र ने भी दिया है।[९]

---

१ 'पालनाद् वधयेद राजा स्वकोशस्याभिवृद्धये।" मानसो० २।३।१५४।

२ वही ३ मनु० ९।२५३ २५४।

४ 'राजा रक्षार्थं सवभागभुक'। शुक्र० १।७४।

५ महा० शान्ति० ७१।१७।

६ "दोग्ध्री धान्य हिरण्य च मही राज्ञा सुरक्षिता।
नित्य स्वेभ्य परेभ्यश्च तृप्ता माता यथा पय।" वही ७१।१९।

७ "मालाकारोपमो राजन्।" वही ७१।२०। ८ वही।

९ "मालाकार इव ग्राह्यो भागो नागारकारवत्"। शुक्र० ४।२२३।

वस्तु के अनुरूप धन सग्रह का सिद्धान्त

सोमेश्वर ने इस सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु पर उसी के अनुसार प्रजा पर कर लगाने का आदेश दिया है। इसी प्रसग मे उन्होने कहा है—

"फलक्षेत्रानुरूपेण गृह्णीयात् तत्कर नृप "[१]

अर्थात् राजा को फल तथा क्षेत्रादि के अनुरूप कर लगाना चाहिये। इस कर के लगाने मे प्रजा की सामर्थ्य, समय तथा नियमादि का ध्यान रखा जाता है। भीष्म ने भी अधिक कर न लगाने का तथा कर लगाने में समय और सामर्थ्य का ध्यान रखने का आदेश दिया है—

आनुपूर्व्येण सान्त्वन यथाकाल यथाविधि ॥[२]

वस्तु के अनुसार तथा सामर्थ्य को न देख कर अधिक कर लगाने वाले राजा को महाभारत मे 'अतिखादी' के नाम से सम्बोधित किया गया है। ऐसे बहुभक्षी राजा से प्रजा पीडित होकर उससे द्वेष करने लगती है—

प्रद्विषन्ति परिख्यान राजानमतिखादिनम् ॥[३]

राजा यदि प्रजा से अधिक कर ग्रहण करता है तो प्रजा भी पीडित होती है और राजा के भी विनाश की आशका रहती है। इस प्रकार सोमेश्वर प्रजा के ऊपर अधिक कर लगाने के विरोधी है। व प्रजा पर उसी मात्रा म कर लगाने के पक्षपाती है जितना प्रजा सामर्थ्य के अनुसार सरलता से दे सके। ऐसा करने पर राजा तथा प्रजा दोनो का कल्याण होता है और दोनो ही वृद्धि को प्राप्त करते है।

श्रोत्रिय से कर न लेने का सिद्धान्त

सोमेश्वर के राज्य मे ब्राह्मण से कर नही लिया जाता था।[४] यह प्रसग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर ब्राह्मणो का बहुत आदर करता था। इसका उल्लेख अन्य स्थलो पर पूर्व भी हो चुका है।

मनु ने भी श्रोत्रिय से कर लेने का निषेध किया है।[५] नारद स्मृति मे श्रोत्रिय से किसी प्रकार का गृह सम्बन्धी कर न लेने का आदेश दिया गया है, किन्तु व्यापार सम्बन्धी कार्यों मे ब्राह्मणों से कर लिये जाने का आदेश दिया गया है—

सदा श्रोत्रियवर्ज्यानि शुल्कान्याहु प्रजानता।
गृहोपभोगि यच्चैषा नतु वाणिज्यकर्मणि ॥[६]

---

१ मानसो० २।३।१६४।
२ महा० शाति० ८८।१२।
३ वही ८७।१९।
४ मानसो० २।३।१६६।
५ मनु० ८।३९४।
६ नारद स्मृति ६।१४।

मनु ने ऐसा आदेश दिया है कि राजा मृत्यु के समय भी ब्राह्मण से कर न ग्रहण करे और न राजा को अपने राज्य मे श्रोत्रिय को क्षुधा से पीडित हो रखना चाहिये, क्योकि यदि श्रोत्रिय क्षुधा से पीडित होगा तो उसकी क्षुधा के साथ ही साथ राजा का राज्य भी नष्ट हो जायगा।[1] विष्णुधर्मसूत्र[2] तथा गौतमधर्मसूत्र[3] आदि ग्रन्थो मे भी ब्राह्मण के लिये कर का निषेध हुआ है।

कौटिल्य ने कुछ करो का श्रोत्रिय के लिये निषेध बतलाया है।[4] इस प्रकार के कर के निषेध के लिये उन्होने 'परिहार' शब्द का प्रयोग किया है। खारवेल के हाथी गुम्फा शिलालेख मे भी "ब्राह्मणानाम् जाति परिहार ददाति" ऐसा पाठ प्राप्त होता है। यह शिलालेख ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी का है।[5]

इसी प्रसग मे सोमेश्वर ने कहा है कि ब्राह्मण से किसी दशा मे कर नही लेना चाहिये। यदि राजा आपत्ति मे हो तब भी ब्राह्मण से कर न ले—

आपत्स्थितोऽप्याददीत श्रोत्रियान्न कर नृप।[6]

इससे विदित होता है कि जिस समय देश में आपत्ति या आक्रमण होने से देश की शाति भग हो जाय उस समय प्रजा की रक्षा के लिये राजा प्रजा से थोडा-थोडा धन कर के रूप मे ले सकता था और उससे प्रजा की रक्षा करता था किन्तु उस समय भी ब्राह्मणो से कर नहीं लिया जाता था।[7] महाभारत मे भी भीष्म ने इस प्रकार बतलाया है कि बाह्य शत्रु का देश पर आक्रमण होने पर राजा ब्राह्मणों को छोडकर शेष प्रजा को समझा बुझा कर थोडा थोडा धन वसूल कर सकता है।[8] इस प्रकार यह धन कोषवृद्धि मे सहायक होता था। आपत्ति के समय प्रजा से लेकर यह धन उसी की रक्षा के निमित्त व्यय कर दिया जाता था। यह कर राजा के विशेषाधिकार को सूचित करता है।

धातुवाद रसायन सिद्धान्त

धातुवाद रसायन के आधार पर ताम्र से सुवर्ण तथा वग से रौप्य बनवा कर राजा अपने कोष की वृद्धि करता था।[9] ताम्बा तथा वग का सुवर्ण एव रौप्य मे परिवर्तन अनेक प्रकार से रसायन एव चूर्णो के आधार पर होता था। इन दोनों ही विधियों का सोमेश्वर ने मानसोल्लास मे विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[10] इस प्रसग से विदित होता है कि राज्य की टकसाल पर राजा का पूर्ण

१ मनु० ७।१३३ ३४।
२ विष्णु० ३।२६।
३ गौतम० १०।९ १२।
४ कौटिल्य २।१२।४५।
५ Epigraphika Indica Vol XX p 9
६ मानसोल्लास २।३।१६६।
७ वही।
८ महा० शान्ति० ७१।२१।
९ मानसो० २।४।३७७।
१० वही २।४।३७८ ३९३।

अधिकार होता था। राजा ही केवल ताबे तथा वग मे सुवर्ण एव रौप्य बनाकर अपने कोष की वृद्धि कर सकता था। राजा की टकसाल मे ही बने हुये रौप्या टिको का प्रयोग राज्य मे होता था। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर के समय मे रसायन की क्रिया भी अत्यन्त उन्नतिपूर्ण थी।

मुक्ता, मणि रत्न तथा आभूषणादि के सग्रह का सिद्धान्त

सोमेश्वर के समय मे विशेष प्रकार के रत्नों का सग्रह कोष मे होता था किन्तु कोष मे रखने योग्य रत्नो को सोमेश्वर ने विशेष रूप से परीक्षा कर लेने का आदेश दिया है।[१] क्योकि रत्नो को इन्होने आयु तथा यश का वर्धक माना है।[२]

समुद्र के तट पर अपने अधिकारियो को नियुक्त कर राजा अनेक प्रकार की सुन्दर मुक्ताओ को निकलवाकर अपने कोष की वृद्धि करता था। मुक्ता निकलने वाले स्थान की राजा विशेष रूप से रक्षा करवाता था।[3] इन वस्तुओ के अतिरिक्त राजा के कोष मे वस्त्र, सुवर्ण, आभूषणादि का भी सग्रह होता था क्योकि मानसोल्लास मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

> सुवर्णै रजतै रत्नैर्वस्त्रैराभरणस्तथा।
> पूर्णो व्ययसह कार्य कोशो नित्य महीभुजा॥[४]

खनिरक्षण का सिद्धान्त

सोमेश्वर के समय में खानो पर राजा का पूर्ण अधिकार होता था। इसी कारण राजा के लिये सुवर्ण, रजत, रत्न, मणि आदि की खानो की रक्षा का आदेश दिया है। सोमेश्वर ने खानो की परीक्षा करने के लिये कुछ दृष्टान्तो का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ वर्षा तथा शीतकाल म जहा निरन्तर गोधा निवास करे जहा पर सदैव विच्छू तथा सर्प का निवास स्थान हो, जहा पर पृथ्वी पर खजरोटों का भी समोग दिखलाई पडे, जहा बिना ईंधन के अग्नि जले वहा पर पृथ्वी के अन्तर निधि होती है। इसी प्रकार और भी दृष्टान्त दिये है।[७] इन्हीं लक्षणों के अनुसार निधि से पूर्ण स्थान को जानकर राजा तीन, पाच, सात अथवा अधिक खनि शास्त्र के ज्ञाता साधको के द्वारा वहा खुदवाकर उसे ग्रहण कर कोष की वृद्धि करे।[८]

---

१ वही २।४।४७३ ५३५।

२ वही २।४।५३६ 'आयुर्लक्ष्मी जय कीर्ति लभते रत्नसग्रहात्।"

३ वही २।३।३६२।

४ वही २।४।३९४।

५ वही २।३।३३२।

६ मानसो० २।३।३३४ ३५।

७ वही २।३।३३६ ३४०।

८ वही २।३।३५८ ६०।

रुद्रदामन के शिलालेख मे भी राजा को चादी, सोना, हीरा तथा अन्य रत्नो द्वारा कोषवृद्धि करने का आदेश दिया गया है।[1]

कोष सग्रह के साधन

प्राचीन काल मे कोष का सग्रह मुख्यत प्रजा द्वारा ग्रहण किये हुये कर द्वारा होता था। सोमेश्वर के समय मे कोष के सचय के अनेक साधन थे। उनके ग्रन्थ मे निम्नलिखित करो का प्रसग प्राप्त होता है—

१ भूमि, धान्यादि पर कर
२ सुवर्ण पर कर
३ पशुकर
४ शिल्पियो एव श्रमजीवियों पर कर
५ पण्य कर
६ खानो से निकली हुई वस्तुओ पर कर
७ पोत कर अथवा यातायात कर

भूमि, धान्यादि पर कर

सोमेश्वर के राज्य मे जो उपज होती थी, प्रजा उस उपज का आठवा, बारहवा अथवा छठा भाग करके रूप देती थी—

अष्टमो द्वादशो वाऽपि षष्ठो वा धान्यतो नृप ।[2]

यह कर धान्य के रूप मे ही प्रजा से स्वीकार किया जाता था। यह प्रजा द्वारा कर के रूप मे दिया हुआ धान्य राजा का ही समझा जाता था और उसी के कोष मे एकत्र किया जाता था। समय पडने पर राजा उसी से प्रजा की उदरपूर्ति करता था अथवा फसल के समय निर्धन किसानो को राज्य की ओर से बोने के लिये धान्य मिल जाता था। इस प्रकार से राज्य मे कृषको को कष्ट नहीं होने पाता था। उपज पर कर लगाने के अतिरिक्त राजा क्षेत्र पर भी यथा-नुसार कर लगाता था। यह कर विशेष रूप से कृषको से ही सम्बन्धित था।

मनु ने भी धान्य का का छठा आठवा अथवा बारहवा भाग राज्य के कोष के सचय के निमित्त ग्राम के अधिकारी द्वारा जमा कराने का उल्लेख किया है।[3] कौटिल्य ने—

धान्यषड्भाग प्रकल्पयामासु ।[4]

कहकर प्रजा से उपज का छठा अश राजा को प्राप्त करने का आदेश दिया है। अनेक ग्रन्थो मे इस कर के लिये 'बलि' शब्द मिलता है। कौटिल्य ने इस प्रसग मे बलि शब्द का प्रयोग न करके धान्य शब्द का ही प्रयोग किया है।

---

१ एपीग्रैफिका इण्डिका खण्ड ८ पृ० ३६।
२ मानसो० २।३।१६३। ३ मनु० ७।१३०।
४ अथशा० १।१३।७।

किन्तु उनका तात्पर्य बलि से ही है। महाभारत मे भीष्म ने भी उपज के छठे अश को ही ग्रहण करना माना है।[१] मार्कण्डेय पुराण मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

"गृह्णतो बलिषड्भाग नृपतेर्नरको ध्रुवम्।"[२]

अर्थात् जो राजा प्रजा से बलि षड्भाग ग्रहण कर समय पडने पर उस धान्य द्वारा प्रजा की रक्षा नही करता वह नरकगामी होता है।

इस प्रकार अधिकाशत उपज का छठा भाग कर के रूप में ग्रहण करने का आदेश दिया गया है। किन्तु सोमेश्वर ने छठे भाग के अतिरिक्त उपज का आठवा तथा बारहवा भाग भी ग्रहण करने का उल्लेख किया है।[३] इससे विदित होता है कि सोमेश्वर प्रजा मे सबसे यथासामर्थ्य बलि लेते थे। यद्यपि उपज का छठा भाग ही सबसे लिया जाता था किन्तु किसी की इतनी सामर्थ्य न होती थी तो उससे आठवा तथा बारहवा भाग भी ग्रहण कर लिया जाता था। इसके अतिरिक्त उनके राज्य मे फल तथा क्षेत्र के अनुसार धान्य कर ग्रहण किया जाता था।

पशुकर

सोमेश्वर के समय मे पशुओ के व्यापारियो से लाभ का पचासवा भाग कर के रूप मे ग्रहण किया जाता था[५] और वह धन राजा के कोष मे एकत्र किया जाता था। इस कर को प्रजा ने राजा मनु के कोष की वृद्धि के हेतु निधारित किया था। जिस समय प्रजा ने मनु को राजा के रूप मे स्वीकार किया था उस समय ऐसा वचन दिया था कि हम पशु के लाभ का पचासवॉ भाग आप को देगे। शुक्र ने भैंस, बकरी, भेड तथा अश्वो की वृद्धि मे से आठवॉ भाग राजा को ग्रहण करने का आदेश दिया है।[७] सोमेश्वर प्रजा के प्रति अधिक उदार थे और अपने राज्य मे पशुओ के व्यापार की वृद्धि करना चाहते थे, इसी कारण वे इस सम्बन्ध मे भीष्म तथा मनु की भाति कम कर लगाने के पक्षपाती थे।

सुवर्ण पर कर

सोमेश्वर ने सुवर्ण पर भी कर लगाने की व्यवस्था दी है। उनके समय में सुवर्ण के लाभ का पचासवॉ भाग कर के रूप मे स्वीकार किया जाता था—

पचाशत्तम आदेयो भाग पशुहिरण्ययो।[८]

---

१ महा० शान्ति० ७१।१०, ६९।२५। २ मार्क० पु० १६।१२६।

३ मानसो० २।३।१६३। ४ वही २।३।१६४।

५ वही २।३।१६३। ६ महा० शा० ६७।२३।

७ शुक्रनीति ४।२३१। ८ मानसो० २।३।१६३।

मनु ने भी सुवर्ण का पचासवाँ भाग कर के रूप मे लेने का आदेश दिया है।[1] महाभारत के प्रसगों से विदित होता है कि उस समय मे भी सुवर्ण पर लाभ का पचासवाँ भाग ही ग्रहण किया जाता था—

पशूनामधिपचाशद्धिरण्यस्य तथैव च।[3]

कौटिल्य ने "हिरण्य चास्य भागधेय प्रकल्पयामासु"[2] कहकर हिरण्यकर की व्यवस्था दी है किन्तु उसकी दर का उल्लेख नहीं किया है। शुक्र ने सुवर्ण के स्वामी से लाभ का तृतीय, पचम, सप्तम अथवा दशमाश कर रूप मे लेने का आदेश दिया है।[4] शुक्र की अपेक्षा मनु तथा भीष्म इस कर के विषय मे अधिक उदार है। सोमेश्वर ने भी मनु द्वारा कथित कर की दर को ही आधार माना है।

शिल्पियो एव श्रमजीवियो पर कर

सोमेश्वर ने मिट्टी, पत्थर के बर्तनो, चमडे की वस्तुओं घृत, फल, पुष्प, रस, गन्ध आदि वस्तुओ पर कर लगाये जाने का आदेश दिया है।[5] इससे विदित होता है कि राज्य म जो श्रमजीवी एव शिल्पी व्यक्ति रहते थे उनसे भी कर ग्रहण किया जाता था। इन सबसे लाभ का छठा अश ग्रहण किया जाता था। मनु ने श्रमजीवियो तथा शिल्पियों से कर ग्रहण करने का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु यह कर धन रूप म नही ग्रहण किया जाता था। उनसे राजा महीने मे एक दिन अपना काम करवा लेता था—

कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविन ।
एकैक कारयेत्कर्म मासि मासि महीपति ॥[6]

शुक्र ने श्रमजीवियो तथा शिल्पियो से पक्ष मे एक दिन काम करवाने का आदेश दिया है।[7]

इस प्रकार मनु तथा शुक्र के समय मे शिल्पियो का कोई आदर नही था। उनसे राजा बेगार भी लेता था। सोमेश्वर इस बेगार के पक्ष में नही थे क्योंकि उन्होंने इन शिल्पियों से कर ग्रहण करने का आदेश दिया है। यह कर उनकी वस्तुओं के लाभ के अनुसार छठा अश ग्रहण किया जाता था। इसके अतिरिक्त घृत, मधु, शाक, ओषधि, मूल, फल तथा रस आदि पर भी छठा भाग कर

---

१ मनु० ७।१३०।
२ महा० शान्ति पर्व ६७।२३।
३ अर्थ० १।१३।७।
४ शुक्र० ४।२२८।
५ मानसो० २।३।१६४ १६६।
६ मनु० ७।१३८।
७ कारुशिल्पिगणात्पक्षे दैनिक कर्म कारयेत् ॥ शुक्र० ४।२३२।

के रूप मे ग्रहण किया जाता था।[1] सोमेश्वर ने जो इस प्रसग मे रस शब्द का प्रयोग किया है, वह रस सभवत लवण के लिये प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। इस लवण का भी छठा भाग कर के रूप मे ग्रहण किया जाता था। कौटिल्य ने भी लवण पर छठा अश कर के रूप मे लिये जाने का आदेश दिया है—

आगन्तुकलवण षड्भाग दद्यात्।[2]

महाभारत मे भी लवण कर लेने का आदेश दिया गया है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो सभी ग्रथो ने श्रमजीवियों एव शिल्पियों पर कर लगाने का आदेश दिया है, किन्तु उन सबके सिद्धान्तो से सोमेश्वर का सिद्धान्त बिल्कुल भिन्न है। सोमेश्वर अपने राज्य मे किसी भी व्यक्ति से व्यर्थ मे कार्य न करवाता था और शिल्पियों एव श्रमजीवियों से धन के रूप मे कर ग्रहण करता था जिससे कोष की वृद्धि होती थी।

पण्य कर

यह कर धन पर लगता था और प्राप्त हुये प्रसग से विदित होता है कि यह कर व्यापारियों से ही वसूल किया जाता था। व्यापारियों को लाभ होने पर उनके धन का छठा भाग सोमेश्वर के राज्य मे कर के रूप मे ले लिया जाता था।[4] मनु ने इस कर के लिये शुल्क शब्द का प्रयोग किया है, जो उस समय व्यापारियो के धन पर लगाया जाता था। शुक्र ने क्रय विक्रय की वस्तुओं पर दिये जाने वाले कर को शुल्क नाम से सम्बोधित किया है।[6] कौटिल्य ने भी शुल्क ग्रहण करने वाले स्थान का उल्लेख किया है।[7] महाभारत मे शुल्क को ग्रहण करने के लिये आप्तपुरुषों की नियुक्ति करने का आदेश दिया गया है।[8] मनु ने व्यापारियो के लाभ का बीसवा भाग शुल्क रूप में ग्रहण करने का आदेश दिया है—

शुल्कस्थानेषु कुशला सर्वपण्यविचक्षणा।
कुर्युरर्घं यथा पण्य ततो विश नृपो हरेत्॥[9]

सोमेश्वर ने इसी कर के लिये सभवत पण्य कर का प्रयोग किया है और पण्य का छठा अश ग्रहण करने का आदेश दिया है।[10]

---

१ मानसो० २।३।१६४ १६५। २ अथ० २।१२।३८।
३ महा० शा० ६७।२३। ४ मानसो० २।३।१६४।
५ मनु० ८।३०७।
६ 'विक्रेतृक्रतृतो राजभाग शुल्कमुदाहृतम। शुक्र० ४।२१७।
७ अथ० ३ १६।२२। ८ महा० शाति० ६९।२९।
९ मनु० ८।३९८। १० मानसो० २।३।१६४।

खानों से निकली हुई वस्तुओं पर कर

सोमेश्वर के राज्य मे सोने, चादी तथा रत्नों की खानो की राजा की ओर से पूर्ण रूप से रक्षा की जाती थी और उन खानों को खोदने से जो भी निधि निकलती थी उन सब पर राजा कर ग्रहण कर अपने कोष की वृद्धि करता था।[1] इसके अतिरिक्त राजा उन खानो को खुदवाकर भी उनका धन ग्रहण करता था।[2] क्योंकि सोमेश्वर का मत था कि विधाता ने राजा को बाह्य एव आन्तरिक सभी प्रकार की विभूतियों का स्वामी बनाया है।[3] शुक्र ने खान के स्वामी का अधिक लाभ होने पर तृतीय, पचम, सप्त तथा दशम भाग राजा को ग्रहण करने का आदेश दिया है।[4] कौटिल्य ने खन्यध्यक्ष को वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल आदि की उत्पत्ति का उचित रूप से प्रबन्ध करने का आदेश दिया है।[5] मनु तथा भीष्म[7] ने सुवर्ण के स्थान पर जो "आकर कर" का प्रयोग किया है, वही सभवत खानों से सम्बन्धित कर होगा, क्योंकि कौटिल्य ने खानो के लिये 'आकर' तथा खन्यध्यक्ष के लिये 'आकराध्यक्ष' का प्रयोग किया है। सोमेश्वर के समय मे सुवर्ण कर अलग से भी ग्रहण किया जाता था जिसका उल्लेख पूर्व मे हो चुका है कि सोने का पचासवा भाग राजा कर रूप मे ग्रहण करता था।[9] इसके अतिरिक्त खानो से निकलने वाले सोने पर तथा अन्य मणियो पर राजा अलग से कर ग्रहण करता था।[10] इस प्रकार सोमेश्वर के समय मे सुवर्ण सम्बन्धी कर दो प्रकार से लिया जाता था।

पोत-सम्बन्धी

सोमेश्वर ने मानसोल्लास मे समुद्र के समीप स्थित हुए सभी पुरों एव बन्दरगाहो की उचित प्रकार से रक्षा करने का आदेश दिया है। समुद्र के किनारे बन्दरगाहो की रक्षा करने के लिये राजा अपने अध्यक्षों को नियुक्त कर देता था और जो जहाज उसके राज्य मे स्थित बन्दरगाहो के समीप आकर रुकते थे उनसे राजा के अधिकारी गण दशमाश लेते थे।

निजवेलातटस्थाना पोतवाहनकर्मणाम्।
पोते प्रत्यागते तस्माद् दशमाश हरेन्नृप ॥[11]

---

१ वही २।३।३३२। २ वही २।३।६०।
३ वही २।३।३६१। ४ शुक्र० ४।२२८।
५ कौटिल्य २।१२ ३४। ६ मनु० ७।१३०।
७ महा० शान्ति० ६९।२९। ८ कौटिल्य २।१२।३५ २।१२।४६।
९ मानसो० २।३।१६३। १० वही २।३।३३२।
११ वही २।४।३७५।

इसके अतिरिक्त यदि दवयोग से वायु के प्रवाह के साथ कोई जहाज बन्दरगाह पर आ जाता था तो राजा उससे अपनी इच्छानुसार कर ग्रहण कर लेता था।[1] यह प्रसग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देता है कि सोमेश्वर के समय म जहाजो द्वारा अन्य देशो से व्यापार होता था और बन्दरगाहा की व्यवस्था बडी हा सुसगठित थी। मनु ने सतरण कर का उल्लेख किया है जो नदी नालों को पार करने के लिये देना पडता था। मनु के समय मे नदी नालो को पार करने के लिये राजा की ओर से पुल, नाव तथा डोगियो का प्रबन्ध रहता था और इनका प्रयोग करने वाले व्यक्ति को यह कर देना पडता था।[2] इस कर को मल्लाह लोग ही ग्रहण करते थे जिनका उचित प्रबन्ध बन्दरगाहो पर राज्य की ओर से होता था। महाभारत मे भी प्राप्त हुये तरण कर से कोष की वृद्धि करने का आदेश दिया गया है। महाभारत काल मे यह कर आप्त पुरुषो द्वारा ग्रहण किया जाता था।[3] कौटिल्य ने भी व्यापारी के लाभ को जानने के प्रसग में अनेक प्रकार के करो के साथ 'तरदेय' का प्रयोग कर तरण कर की ओर सकेत किया है।

इस प्रकार इन सभी ग्रन्थो मे तरण कर का उल्लेख हुआ है। किन्तु इसकी दर का वर्णन किसी ने नहीं किया है। सोमेश्वर के समय मे अन्य देशो के साथ व्यापार बहुत ही बढा चढा था। अत जहाजो के आने पर राज्य की ओर से नियुक्त किये हुये पोतवाहक उन सबसे दशमाश कर लेते थे। इसका निरीक्षण राजा भली प्रकार करता था क्योंकि इस प्रसग मे सोमेश्वर ने 'हरेन्नृप'[4] तथा 'स्वेच्छया नृप' शब्दो का प्रयोग किया है।

दुर्ग

दुर्ग भी राज्य की रक्षा का प्रधान अग है। इसी कारण राज्य के सप्तागो मे इसको भी प्रधान स्थान प्रदान किया गया है। मनु दुर्ग को राष्ट्र से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानते है। इसी कारण उन्होने पुर अथवा दुर्ग को राष्ट्र के पूर्व स्थान दिया है।

> स्वाम्यमात्यो पुर राष्ट्र कोशदण्डौ सुहृत्तथा।
> सप्तप्रकृतयो ह्येता सप्ताग राज्यमुच्यते ॥[7]

दुर्ग राष्ट्र की रक्षा में बडे सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि युद्ध के समय इन्हीं का आश्रय लेकर सैनिक अपने शत्रुओ का सामना करते है। दुर्ग का आश्रय

---

१ वही २।४।२७६।
२ मनु० ८।४०४ ४०५।
३ महा० शा० ६९।२९।
४ मानसो० २।३।३७५।
५ वही।
६ वही २।३।३७६।
७ मनु० ९ २९४।

लेने वाले राजा को शत्रु नही नष्ट कर सकता। इससे जन कोश तथा अपनी रक्षा होती है।[1] दुर्ग मे से एक व्यक्ति सौ शत्रुओ को पराजित कर सकता है ऐसा मनु का कथन है—

एक शत योधयति प्राकारस्थो धनुर्धर ।
शत दशसहस्राणि तस्माद् दुर्ग विधीयते ॥[2]

अत यह राष्ट्र की रक्षा का विशेष अग है। इसी कारण इसकी रक्षा पर राजा को अधिक ध्यान देना चाहिये। बृहस्पति ने दुर्ग के विषय मे लिखा है—

आत्मदारार्थलोकाना सचिताना तु गुप्तये ।
नृपति कारयेद्दुर्ग प्राकारद्वारसयुतम् ॥[3]

सोमेश्वर ने दुर्ग के विषय मे विशेष रूप से कुछ कहने के अतिरिक्त दुर्गों के प्रकारो पर विशेष बल दिया है। उन्होंने जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, पाषाण, इष्टिका, मृत्तिका, वनदुर्ग, मरुदुर्ग दारु तथा नरदुर्ग इन नौ प्रकार के दुर्गो का उल्लेख करने के साथ ही साथ प्रत्येक के लक्षणो का भी वर्णन किया है। जो दुर्ग अगाध जल से वेष्टित हो वह जलदुर्ग, बडी कठिनाई से चढ सकने योग्य गिरि पर बना हुआ तथा जल से भरा हुआ गिरिदुर्ग होता है, पत्थर से निर्मित दुर्ग पाषाण दुर्ग तथा इष्टिकाओं से सुचारु रूप से बना हुआ, लिपा हुआ तथा अत्यन्त निर्मल दुर्ग इष्टिका दुर्ग कहलाता है। यह चारों ओर से खूब गहरी खाई (परिखा) से घिरा होता है। मुलायम मिट्टी से बना हुआ दुर्ग मृत्तिकामय तथा घन कण्टक एव शाखाओं से युक्त दुर्ग वनदुर्ग कहलाता है। जिस दुर्ग के अन्दर जल सुचारु रूप से सुरक्षित हो किन्तु बाहर से जल का चिह्न बहुत ढूढने पर भी न ज्ञात हो ऐसे मरुस्थल मे स्थित दुर्ग को मरुदुर्ग कहा जाता है। इसी प्रकार दारु तथा वेणु आदि से पूर्ण दारुदुर्ग तथा अनेक अस्त्र शस्त्र एव महायोधाओ से पूर्ण दुर्ग नरदुर्ग कहलाता है।[5] इनमे से जल तथा गिरि दुर्ग को सोमेश्वर ने सर्वोत्तम, वनदुर्ग को मध्यम तथा नरदुर्ग को निम्न श्रेणी का दुर्ग बतलाया है।[6] यह विभाग सोमेश्वर ने सम्भवत शत्रु की कठिनाई के अनुसार किया है क्योंकि जलदुर्ग विशाल जलराशि के मध्य स्थित होने के कारण अगम्य होते है। शत्रु को वहा तक पहुचने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता

---

१ रम्य पशव्यमाजीव्य जागल देशमावसेत ।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकोशात्मगुप्तये ॥ याज्ञ० १।३२१ ।

२ मनु० ७।७४ ।

३ राजनीति प्रकाश पृ० २०२ और राजधर्म काण्ड पृ० २८ ।

४ मानसोल्लास २।५।५४१–४२ । ५ वही २।५।५४४–५४८ ।

६ वही २।५।५४९ ।

है। इसी प्रकार गिरिदुर्ग ऊची एव अगम्य पहाडियो पर स्थित होता है जिससे शत्रु शीघ्रता से वहा न पहुच सके। किन्तु वनदुर्ग में शत्रु की पहुच जल तथा गिरिदुर्ग की अपेक्षा अधिक शीघ्र हो सकती है। दुर्ग के समीप पहुच कर उसे अवश्य कठिनाइ उठानी पडती है इसीलिए इसे मध्यम दुग बतलाया है। नर तथा दारु दुर्ग मे शत्रु शीघ्र ही पहुच कर आक्रमण कर सकता है। इसी कारण सोमेश्वर ने इन दुर्गो को निम्न श्रेणी मे रखा है। यह दुगा का विभाजन उनके सूक्ष्म राजनीतिविषयक ज्ञान को स्पष्ट करता है।

दुगा के विभाजन के विषय मे इसी प्रकार के अन्य प्रसग अन्य स्थलो पर प्राप्त होते है। कौटिल्य ने चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है[१] प्रथम औदक, जो सम्भवत एक द्वीप की भाति जल से घिरा होता है अथवा अत्यन्त गहरी भूमि (परिखा) आदि से सुरक्षित हो, द्वितीय पार्वत, जो गिरिदुर्ग के समान पर्वतीय चट्टानो से निर्मित होता है अथवा जो अत्यन्त भयानक गुफा के रूप मे होता है, तीसरा धान्वन, जो मरुभूमि में स्थित हो और जहाँ जल शून्य तथा उजाड स्थल चारों ओर हो, चौथा जगल मे स्थित दुर्ग है जो नरकुल तथा अनेक प्रकार की झाडियो एव जल आदि से पूर्ण हो। कौटिल्य द्वारा कथित औदक, पार्वत, धान्वन तथा वनदुर्ग सोमेश्वर के जल, गिरि, मरु तथा वनदुर्ग से मिलते जुलते है। कौटिल्य ने इन चारो मे प्रथम दो दुर्गों को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। औदक तथा पार्वत दुर्गों को महत्त्वशाली स्थानो की रक्षा का आश्रय माना है।[२]

पुराणों मे भी दुर्गों के विषय म विभिन्न प्रकार के प्रसग प्राप्त होते है। वायु पुराण[३] मे चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख हुआ है किंतु मत्स्य तथा अग्निपुराण[४] मे ६ प्रकार के दुर्गों का वर्णन हुआ है। मनु ने धनुदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुग, वृक्षदुग, गिरिदुर्ग तथा नृदुर्ग इन दुर्गों का वर्णन किया है। महाभारत[७], विष्णुधर्मसूत्र[८] तथा विष्णुधर्मोत्तर[९] मे भी छ प्रकार के दुगा का

---

१ कौटिलीय अथशास्त्र २।३।२। २ वही २।३।३–४।

३ वायु पुराण ८।१०८। ४ मत्स्य० २१७।६–७।

५ अग्नि० २२२।४–५।

६ धन्वदुग महीदुगमब्दुग वार्क्षमेव वा।
गिरिदुग नृदुग वा समाश्रित्य वसेत्पुरम ।। मनु० ७ ७०।

७ महा० शांति० ५६।३५ तथा ८६।४–५।

८ विष्णुधमसूत्र ३।६।

९ विष्णुधर्मोत्तर २।२६।६–९ और ३।३२३।१६–२१।

वर्णन हुआ है। श्रीमद्भागवत पुराण मे शस्त्रदुर्ग का प्रसग मिलता है।[1]

शुक्र ने दुर्गो के नाम इस प्रकार दिये है[2]—ऐरिणदुर्ग, परिख दुर्ग, पारिघ दुर्ग, वनदुर्ग, धन्वदुर्ग, जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, सैन्यदुर्ग तथा सहायदुर्ग। जिसके समीप गड्ढे, काटे, पत्थर आदि हों वह ऐरिण दुर्ग है और जिसके चारों ओर खाई खुदी हो उसे पारिख दुर्ग कहते है। जिस दुर्ग मे ईंट, पत्थर, मिट्टी तथा भित्ति का परकोटा हो वह पारिघ दुर्ग है। जो बडे-बडे काँटों वाले वृक्षों से पूर्ण हो वह वनदुर्ग है। जिसके चारो ओर जल का अभाव हो वह धन्वदुर्ग कहलाता है और जो चारो ओर जल से घिरा हो वह जलदुर्ग कहलाता है। जो ऊँचे स्थान पर एकात मे बना हो तथा जहाँ जल का अभाव हो वह गिरिदुग है। जिसमें बहुत से शूरवीर रहते हो और जो भेदा न जा सके वह सैन्यदुर्ग है। जिसमे शूरा के अनुकूल बन्धुजन रहते हाँ वह सहाय दुर्ग है।[3] इनमे से सहाय दुर्ग तथा सैन्य दुर्ग सब दुर्गो के साधन होते है—

सहायसैन्यदुर्गे तु सर्वदुर्गप्रसाधके।[4]

शुक्र के मतानुसार पारिख दुर्ग से ऐरिण और ऐरिण से पारिघ और उससे वन श्रेष्ठ होता है। वनदुर्ग से धन्वदुर्ग, धन्वदुर्ग से जलदुर्ग और उससे गिरिदुर्ग श्रेष्ठ होता है—

पारिखादैरिण श्रेष्ठ पारिघ तु ततो वनम्।
ततो धन्व जल तस्माद्गिरिदुर्गं तत स्मृतम्॥[5]

मनु ने भी गिरिदुर्ग को सर्वोत्तम माना है और उसे कठिनता से जीता जाने वाला बताया है—

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्ग समाश्रयेत्।
एषा हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते॥[6]

किन्तु महाभारत[7] नृदुर्ग को सर्वोत्तम बतलाता है। परशुरामप्रताप[8] मे आठ प्रकार के दुर्गो का उल्लेख हुआ है और दुर्ग के चारों ओर पत्थर, ईंट तथा मिट्टी की दीवाल बनवाने का आदेश दिया है।[9]

अनेक प्रकार के दुर्गो के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने दुर्ग मे रखी जाने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का वर्णन किया है। सोमेश्वर के अनुसार राजा

---

१ गिरिदुर्गं शस्त्रदुर्गजलाग्न्यनिलदुर्गमम। श्रीमद्भागवत १०।५९।३।
२ शुक्रनीति ४।८५०।
३ वही ४।८५०-८५४।
४ वही ४।८५५।
५ वही ४।८५४-५५।
६ मनु० ७।७१।
७ महा० शान्ति० ५९।३५।
८ परशुरामप्रताप राजवल्लभ काण्ड Folio।
९ वही।

का यह परम कर्तव्य है कि वह दुर्ग के प्रमुख द्वार को गुप्त बनवाये और उसमे सब प्रकार के आयुध, अस्त्र, शस्त्र, बडे बडे पत्थर, बालू, कुदाल, रज्जु, बेत, पिटक, सभी प्रकार के बर्तन, औषधि, सब प्रकार के वादित्र, यवस, प्रभूत मात्रा मे ईंधन, गुड, सब प्रकार के तेल, घृत, मधु, सब प्रकार के अन्न, दुग्ध, कुम्भ, आशीविष जिनसे कि व्याघ्र सिंह आदि को बाधा जा सके, तथा अन्य सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुये रखे जो समय पर उसके काम आ सके।[1]

दुर्ग मे रखने की सामग्री का अन्य ग्रन्थो मे भी वर्णन हुआ है। कौटिल्य ने दुर्ग के अन्दर सभी वस्तुओ को रखने के लिए अलग अलग स्थान का वर्णन किया है और प्रत्येक वस्तु रखने के लिये तथा प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति के निवास स्थान के लिये दिशाओ का भी उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ अन्त पुर का द्वार पूर्व या पश्चिम की ओर[2] तथा पुरोहित का निवासस्थान अन्त पुर के पूर्वोत्तर भाग मे करावे।[3] माला, गन्ध, अन्न, घी, आदि की दूकाने तथा क्षत्रियो का निवासस्थान पूर्व दिशा की ओर, भाण्डागार, अक्षपटल, आय-व्यय की गणना करने का स्थान तथा सोने चाँदी की दूकाने दक्षिण दिशा मे हों। शराब, मास की दूकाने तथा नट, वैश्य आदि के निवासस्थान दक्षिण दिशा मे हों।[4] बाग बगीचे, कूप, तडाग, खेत आदि उसमे हो, खेतो मे क्यारिया बनी हो तथा उनमे तरकारियाँ बोई हों।[5] दुर्ग के अन्दर घी, तेल, क्षार, नमक, दवाई, सूखे शाक, भुस, सूखा मास, घास, लकडी, ईंधन, लोहा, चमडा, कोयला, स्नायु, विष, सींग बाँस, हथियार, कवच, पत्थर, सारदारु आदि इतनी पर्याप्त मात्रा में एकत्र करे कि वर्षा तक चलती रहे।[7] इसके अतिरिक्त उन वस्तुओ का राजा को सदैव निरीक्षण करते रहना चाहिये तथा पुरानी वस्तुओं के स्थान पर नई वस्तुओं को रखवाना चाहिए।[8] दुर्ग के अन्दर जो सेना हो उसके अग का निरीक्षण करने के लिए अलग-अलग अध्यक्ष रखना चाहिये।[9] इस प्रकार कौटिल्य के मत मे दुर्ग सभी प्रकार की सामग्रियो से पूर्ण होने चाहिये।

मनु का भी कथन है कि दुर्ग को धन धान्य, वाहन, बल, ब्राह्मण, सब ऋतुओ के फल तथा पुष्प, आयुध, देवमदिर, अग्निशाला, जल तथा वृक्षादि

१ मानसोल्लास २।५। ५५० ५५।

२ कौ० २।४।१०। अन्त पुर प्राङ्मुखमुदङ्मुख वा कारयेत्।

३ वही २।४।१३। ४ वही २।४।१४।

५ वही २।४।१६। ६ वही २।४।२३।

७ वही २।४।२४। ८ 'नवेनानव शोधयेत्' अथ० २।४।२५।

९ 'हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत्' वही २।४।२६।

से पूर्ण होना चाहिये।[1] मनुस्मृति की कुछ प्रतियो मे उदकेन च' के स्थान पर 'उदकेन्धनै' पाठ भी प्राप्त होता है। इससे दुर्ग मे इन्धन रखने का भी प्रसग प्राप्त होता है।

उपयुक्त सभी सामग्रिया का वर्णन सोमेश्वर ने अपना दुग से 'सम्बन्धित सामग्री के प्रकरण मे किया है किन्तु उन्होने दुर्ग के अन्तर्गत अनेक प्रकार के भवनों के निमाण का प्रसग नही दिया है और न उन भवनो के निमाण क विषय मे दिशाओ का ही उल्लेख किया हे।

सैन्यबल

राज्य मे स्थापित दुर्गों के महत्व को प्रदर्शित करने के पश्चात् सोमेश्वरदेव ने सैन्यबल के प्रकार एव महत्व को प्रदर्शित किया है। शुक्र ने बल की परिभाषा देते हुये कहा है कि जिसका आश्रय लेकर मनुष्य नि शक होकर कार्य करता है वह बल कहलाता है—

अशकितक्षमो येन कार्य कर्तु बल हि तत्।[2]

उन्होंने बल छ प्रकार का बताया है—शारीरिक बल, आत्मिक बल, सैन्यबल, अस्त्रबल, बुद्धिबल तथा आयुबल—

शारीर हि बल शौर्यबल सैन्यबल तथा।
चतुर्थमास्त्रिकबल पचम धीबल स्मृतम्॥
षष्ठमायुर्बल ।[3]

शुक्र ने सैन्यबल को बहुत महत्वपूर्ण माना है। उनका कथन है कि जिस राजा के पास नीति और सैन्यबल होता है उसके पास लक्ष्मी दौड कर आती है—

तत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीस्सर्वतोमुखी।[4]

कौटिल्य ने सैन्यबल को दण्ड नाम से सम्बोधित किया है—

'स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोषदण्डमित्राणि प्रकृतय।'[5]

कौटल्य के अनुसार राजा को दो प्रकार के कोपों से सदैव भय रहता है —प्रथम

---

१ तत्स्यादायुधसम्पन्न धनधान्येन वाहन।
ब्राह्मण शिल्पिभिय त्रैर्यवसेनोदकेन च॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्त कारयेद्गृहमात्मन।
गुप्त सवर्तुक शुभ्र जलवृक्षसमन्वितम॥ मनुस्मृति ७।७५–७६।

२ शुक्रनीति १।३२३। ३ वही ४।८६८–६९।

४ वही १।१७। ५ कौटिल्य अथशास्त्र ६।१।१।

६ वही २।२।८। रानो अभ्य तरो बाह्यो वा कोप इति।

अमात्यो का कोप जो आन्तरिक कोप कहलाता है[1] और घर म रहने वाले सर्प की भाति अधिक भयप्रद होता है—

अहिभयादभ्यतर कोपो बाह्यकोपात्पापीयान्।

दूसरा कोप बाह्य कोप है जो शत्रु राजाओं के द्वारा आक्रमण के रूप मे होता है। इन दोना ही से राजा को सैन्यबल तथा कोष पर अपना पूर्ण अधिकार जमाकर अपनी रक्षा करनी चाहिये।[3]

मनु ने शब्द का व्यापक अर्थ लिया है। उनका कथन है कि ससार की स्थिति दण्ड के अधीन है—

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च॥[4]

महाभारत के अनुसार दण्ड के दो रूप है—प्रकाश तथा ॒त। सेना अथवा बल उसका प्रकाश रूप है।[5]

चतुरग बल

शुक्र ने सेना की परिभाषा देते हुए कहा है कि शस्त्रो और अस्त्रो से सुसज्जित मनुष्यो के समुदाय को सेना कहते है—

सेना शस्त्रास्त्रसयुक्ता मनुष्यादिगणात्मिका।[6]

सोमेश्वर ने चार प्रकार की सेना का उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत पदाति, अश्व गज तथा रथ आ जाते है—

ईदृक्चतुर्बल विद्वान् युद्धाय विजितश्रम।[7]

शुक्र ने सेना के मुख्य दो भाग बतलाये है—स्वगमा तथा अन्यगमा।[8] स्वगमा के अन्तर्गत पदाति सेना तथा अन्यगमा के अन्तर्गत रथ, अश्व तथा गज आदि वाहनो पर चलनेवाली सेना आ जाती है। सेना के यह चार अग चतुरग बल के नाम से प्रसिद्ध है। इन चार अगों के अतिरिक्त अन्य अगा का उल्लेख भी कहीं कही पर हुआ है। शुक्र ने सेना मे ऊँटो का भी होना आवश्यक बतलाया है। इसके अतिरिक्त बैलों तथा खच्चरों का प्रयोग भी भारवहन करने के लिये होता था।[9] रघुवश मे छ अगो वाली सेना द्वारा रघु के दिग्विजय करने का उल्लेख हुआ है—

---

१ वही ८ २।४। २ वही ८।२।३।
३ वही ८।२ ५। ४ मनुस्मति ७।१५।
५ महाभारत शातिपव ५९।४०। ६ शुक्रनीति ४।८६४।
७ मानसाल्लास २।६।६८४।
८ स्वगमान्यगमा चेति द्विधा। शुक्र० ४।८६४। ९ वही ४।८८४।

षड्विध बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ।[1]

महाभारत मे प्रकाश दण्ड के अन्तर्गत रथ, हाथी, अश्व, पैदल के साथ ही विष्टि, नौकर, चर तथा उपदेशक को भी सेना का ही अग माना है—

रथा नागा हयाश्चैव पादाताश्चैव पाण्डव ।
विष्टिर्नाविश्चराश्चैव देशिका इति चाष्टमम् ॥

सोमेश्वर ने सेना के केवल चार अगो का उल्लेख किया है। इसका कारण सम्भवत यही हो सकता है कि सोमेश्वर ने शान्ति के समय राजा के समीप रहनेवाली सुरक्षित सेना (Reserved Force) का ही वर्णन किया है। इस कारण युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय भारवहन करनेवाले खच्चर, ऊट आदि के उल्लेख की आवश्यकता उन्होने नही समझी। इसके अतिरिक्त यदि भारवहन करने के लिये पशु आदि की आवश्यकता भी पडती थी तो उनका उल्लेख सोमेश्वर ने सेना के स्वतन्त्र अग के रूप मे नही किया है यद्यपि चिकित्सा के प्रकरण मे उन्होने ऊँट आदि के स्वास्थ्य का ध्यान रखना राजा के लिये आवश्यक बतलाया है।[3]

पदातिबल

सोमेश्वर ने सेना को छ प्रकार की बतलाया है—

मौल भृत्य तथा मैत्र श्रैणमाटविक बलम् ।
अमित्रमपर षष्ठ सप्तम नोपलभ्यते ॥[4]

अथात् सोमेश्वर के विचार से मौल, भृत्य, मित्र, श्रेणी, आटविक तथा अमित्र ये छ प्रकार की सेनाये है। वश के क्रम से आई हुई सेना पैतृक अथवा मौल, अधिक धन देकर बनाई हुई सेना भृत्य, मित्रता स्थापित करके बनाई हुई सेना मित्र, जन्म कर्म से सम्बन्धित तथा निश्चित समय पर सहायता देने वाली सेना श्रेणी, पर्वत प्रदेश मे रहने वाले निषाद तथा म्लेच्छादिको से पूर्ण सेना आटविक तथा शत्रु की सेना से आक्रान्त होकर भागे हुये सैनिक जो आकर दस्यु भाव स्वीकार कर ले ऐसे व्यक्तियो से बनी हुइ सेना अमित्र कहलाती है।[5]

अमित्र सना के विषय मे सोमेश्वर ने लिखा है –

सन्निधौ न च तत्कार्यं विश्वसेन्न कदाचन ।
युद्धेषु पुरत कार्यं नृपैर्युद्धविशारदै ॥[6]

---

१ रघुवश ४।२६ ।

२ महाभारत शाति पव ५९।४१ ।
'अगा येतानि कौरव्य प्रकाशानि बलस्य तु' । वही ५९।४२ ।

३ मानसोल्लास २।६।६४० ।   ४ वही २।६।५५६ ।

५ वही २।६।५५९–५६० ।   ६ वही २।६।५६१ ।

अथात् बुद्धिमान तथा युद्ध मे प्रवीण राजा को चाहिये कि वह अमित्र सेना को कभी अपने समीप न रखे और न उस पर कभी विश्वास ही करे। युद्ध होने पर सबसे आगे उसी सेना को रखे।

इस छ प्रकार की सेना मे मौल, भृत्य तथा मित्र इन तीन प्रकार की सेनाओ को सोमेश्वर ने सर्वश्रेष्ठ,[1] श्रेणी बल को मध्यम[2] तथा आटविक सेना को अधम[3] प्रकार की सेना माना है।

सोमेश्वर के इस विभाजन से विदित होता है कि मुख्यत पाँच प्रकार की सेनायें ही राजा से सम्बन्धित थीं। छठी प्रकार की सेना राजा से सम्बन्धित तो अवश्य होती थी किन्तु राजा उसे दूर ही रखता था। वश के क्रम से वेतन लेकर चली आती हुई मौल सेना तथा भृत्य सेना राजा की सबसे अधिक सहायता करती थी। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय अपनी रक्षा करने के लिये राजा अन्य राजाओं से जो मित्रता करता था उस राजा की सेनाये भी युद्ध के समय सहायता करती थीं किन्तु राजा की सहायता यह सेना उतनी भक्तिपूर्वक नहीं करती थीं जितनी मौल तथा भृतक सेना करती थी। श्रेणी सेना को सोमेश्वर ने जन्म तथा कर्म से सम्बन्धित कहकर उसे निश्चित समयवाली बतलाया है।[4] सभवत उनके समय मे शिल्पी व्यक्ति जन्म तथा कर्म के अनुसार अपने अलग अलग समुदाय बनाकर रहते थे। उन्हीं को श्रेणी कहते थे। उन्हीं में से कुछ व्यक्तियों के समुदाय ऐसे भी थे जो समय-समय पर अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग कुशलतापूर्वक करते थे और राजा समय पडने पर उन्हीं की सहायता माँगता होगा। ऐसे व्यक्तियों के लिये शस्त्रोपजीवी शब्द का प्रयोग हुआ है।[5] यह बल आवश्यकता पडने पर ही प्रयोग में लाया जाता था।

सोमेश्वर ने सेनाओ का यह विभाजन कौटिल्य के आधार पर किया है, क्योंकि कौटिल्य ने भी 'मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलाना समुद्दानकाला'[6] कहकर छ प्रकार की सेनाओं का प्रसग दिया है और "पूर्वपूर्वश्रेषा श्रेय. सनाहयितुम्"[7] कहकर उत्तर की अपेक्षा पूर्व की सेना को अधिक श्रेष्ठ बतलाया

१ श्रेष्ठमेतदबलत्रयम। वही २।६।५५७।

२ तद्बल श्रेणमाख्यात तच्च मध्यममिष्यते। वही २।६।५५८।

३ अधम तत् समाख्यात बलमाटविक बुधै। वही २।६।५५९।

४ वही २।६।५५८।

५ 'सूत्रकर्मा विशेषज्ञा ये च शस्त्रोपजीविन।
वा० रा० अयो० सग ८३ श्लो० १२
काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविन।' कौ० ११।१।५।

६ कौ० अथशास्त्र ९।२।१। ७ वही ९।२।३५।

है इस प्रकार कौटिल्य के मत से अटवी बल सबसे अधम प्रकार का बल है।

रामायण मे केवल मौल, भृत्य, मित्र तथा अटवी इन चार प्रकार की सेनाओं का प्रसग प्राप्त होता है।[१] महाभारत के आश्रमवासिक पर्व मे मौल, भृत्य, अटवी तथा श्रेणी बल का प्रसग प्राप्त होता है—

आददीत बल राजा मौल मित्र बल तथा।
अटवीबल भृत चैव तथा श्रेणीबल प्रभो ॥[२]

इसके अतिरिक्त इसमे मौल तथा मित्र बल को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और श्रेणी तथा भृत बल को समान माना गया है—

तत्र मित्रबल राजन् मौल चैव विशिष्यते।
श्रेणीबल भृत चैव तुल्ये एवेति मे मति ॥[३]

बलभी के ध्रुवसेन प्रथम के दानपत्र मे राजा को मौल, भृत्य, मित्र तथा श्रेणी सेनाओं द्वारा अपना राज्य विस्तार करने का आदेश दिया है। शुक्रनीति में सेना के लिये प्रयुक्त कुछ नाम उपर्युक्त नामो के पर्याय विदित होते है। उनके द्वारा प्रयुक्त 'सादस्क'[५] शब्द सम्भवत भृतक का पर्याय है। इसके अतिरिक्त अटवी के स्थान पर आरण्यक तथा अमित्र के स्थान पर शत्रुबल[७] नाम शुक्रनीति मे प्राप्त होते है। राजनीतिरत्नाकर में अमित्र बल का अरिबल नाम से उल्लेख हुआ है।[८]

इस प्रकार सोमेश्वर ने सेना के विभाजन मे विशेष रूप से कौटिल्य के विभाजन को ही अपनाया है। अन्तर केवल इतना है कि कौटिल्य का विभाजन विशेषत युद्धकालीन सेना का विभाजन प्रकट होता है, क्योकि उन्होंने इन सैनाओं के युद्ध में तैयार होने के समय का उल्लेख किया है—

"मोलभृत समुद्दानकाला ॥[९]

किन्तु सोमेश्वर का विभाजन शान्तिकालीन सेना का विभाजन प्रतीत होता है।

कौटिल्य ने उपर्युक्त छ प्रकार की सेनाओ के अतिरिक्त एक सातवीं प्रकार की 'औत्साहिक' नाम की सेना का भी वर्णन किया है—

---

१ वा० रा० युद्धकाण्ड १७।२४।

२ महाभारत आश्रमवासिक पर्व ७।७। ३ वही ७ ८।

४ Epigraphica Indica Volume XI page 106

५ शुक्र० ४।८७२। ६ वही ४।८७७।

७ वही ४।८७८। ८ राजनी० र० पृ० ३८।

९ कौ० अर्थ० ९।२।१।

"सैन्यमनेकजानीयस्थमुक्तमनुक्त वा विलोपार्थं यद्बुत्तिष्ठति वदौत्साहिकम् ।"[१] यह अस्थायो सेना है और युद्ध के समय विशेष परिस्थिति के अन्तर्गत बनती है। सोमेश्वर ने इस प्रकार की सेना का नाम नक नहीं लिया है प्रत्युत उनका कथन है कि सेनाय छ प्रकार को होती है, सातवी प्रकार की सेना कोई नही है "सप्तम नोपलभ्यते"। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि सोमेश्वर ने सेना का विभाजन शान्तिकालीन सेना का यान रखकर किया है, युद्धकालीन सेना के अनुसार नही।

सेना के अस्त्र शस्त्र

सेना के प्रकारो तथा विभाजन के पश्चात् पदाति सेना के अस्त्र शस्त्र का वर्णन सोमेश्वर ने किया है। लौह, चर्म तथा कापास से रचे तथा शल्क आदि से निमित दृढ सग्रह सेना के लिये करना चाहिये।[३] प्रत्येक प्रकार के अस्त्र शस्त्र, भुजत्राण (बाहु की रक्षा का शस्त्र) शिरस्त्राण, (शिर को बचाने की लोह की टोपी), अङ्गत्राण (अगों को बचाने का लोहे का कवच), पताका, ध्वजा तथा स्तम्भों से सेना को सुशोभित रखना चाहिये।[४] इसके अतिरिक्त बेत बास, काष्ठ तथा चमडे के दृढ बन्धनो से सेना के चारो ओर गोला तथा घेरा बनाना चाहिए तथा सेना को छिपाने एव उसकी रक्षा के लिये कवचों का निमाण कराना चाहिए।[५] व्याघ्र चम से आच्छादित सुवर्ण के विचित्र फलको को सदैव अपने बल मे रखना चाहिए।[६]

इसके अतिरिक्त सेना मे कुछ खड्ग धारण करने वाले, कुछ भाले धारण करने वाले, कुछ बछा, चक्र तथा मुद्गर धारण करने वाले, कुछ शक्ति, शूल तथा छुरिका धारण करने वाले, कुछ यन्त्रमुक्त आयुधों से युक्त, कुछ धनुधारी तथा कुछ फरसा धारण करने वाले सैनिक थे।[७]

धनुर्वेद के अनुसार आयुध चार प्रकार के होते हैं —मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त तथा यन्त्रमुक्त। नीतिप्रकाशिका में यन्त्रमुक्त की अपेक्षा मन्त्रमुक्त आयुधों का उल्लेख है।[९] मानसोल्लास में आयुधों के प्रकार के विषय मे निम्नलिखित प्रसग प्राप्त होता है

---

१ वही ९।२।२६। २ मानसोल्लास २।६।५५६।
३ वही २।६।५६२। ४ वही २।६।५६३।
५ वही २।६।५६४। ६ वही २।६।५६५।
७ वही २।६।६८१–८२।
८ अग्निपुराण (२४९–२५२) तथा विष्णुधर्मोत्तर (II, १७८–१८२) मे धनुर्वेद का साराश प्राप्त होता है।
९ नीतिप्रकाशिका २।११–१३।

यन्त्रमुक्तायुधा केचित्केचिन्मुक्तायुधास्तथा ।
अमुक्तायुधहस्ताश्च मुक्तायुधकरास्तथा ॥[1]

इस श्लोक मे 'मुक्तायुध' शब्द का दो बार प्रयोग त्रुटिपूण विदित होता है। सम्भवत दूसरी पक्ति मे प्रयुक्त 'मुक्तायुधकरास्तथा' के स्थान पर 'मुक्तामुक्तकरास्तथा' यह शुद्ध पाठ होना चाहिए, क्योंकि चक्रादि मुक्तामुक्तायुधों का उल्लेख उन्होंने आयुधो की सूची मे किया है। इस प्रकार सोमेश्वर ने चार प्रकार के आयुधो का उल्लेख किया है—

१ यन्त्रमुक्त यथा तीर
२ अमुक्तायुध यथा खड्ग, परशु, कुन्त आदि
३ मुक्तामुक्त यथा चक्रादि
४ मुक्तायुध यथा शक्ति आदि ।

सैनिका का वेतन

सोमेश्वर को सैनिको के यथासमय वेतन मिल जाने का बडा ध्यान था जिससे सेना मे असतोष न फैले। वह विश्वस्त जनो को नियुक्त कर इस बात की जाच करता था और कभी कभी स्वय भी निरीक्षण करता था।[2] उनकी सेना मे वेतन कई प्रकार से दिया जाता था। वुछ सैनिक दैनिक वृत्ति (Daily wages) वाले थे। कुछ को मासिक, कुछ को त्रैमासिक, कुछ को चार मास के उपरान्त, कुछ को छ मास के उपरान्त तथा कुछ को वार्षिक वेतन मिलता था।[3] वेतन सम्बन्धी विशेष विवरण बन्धुभृत्यादि प्रकरण के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

सेना मे अश्व का महत्व

भारतीय साहित्य में आदि काल से ही अश्व का बडा महत्व रहा है। वैदिक काल से ही भारत में इसकी ख्याति रही है, क्योंकि वेदों मे इसके बहुत प्रसग मिलते है[4] किन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि यह किस देश का प्राणी है। अश्व का सम्बन्ध केवल मानव जगत से ही नहीं वरन् देवताओं के साथ भी है। यज्ञ के अवसर पर आहुति रूप से यह देवताओ को प्रदान किया जाता था। इस वाजिमेध यज्ञ का वैदिक साहित्य में विस्तृत विधान मिलता है। सूर्य के रथ मे जुडे हुए सात अश्व तो प्रसिद्ध हो है।

वाजिशास्त्र के आचार्य पाण्डुनन्दन नकुल अश्व की प्रशसा करते हुए

---

१ मानसोल्लास २।६।६८३ । २ वही २।६।५७० ।
३ वही २।६।५६८–६९ ।
४ ऋग्वेद १।२२।६–७–८, ६।४३।१३–१४, अथववेद ४।२१।४ ।

कहते है कि तुरगों के द्वारा धमार्थ काम की सिद्धि होती है। अश्वो से पृथ्वी तथा लक्ष्मी हस्तगत होती है, उनसे विपुल यश तथा विजय की भी प्राप्ति होती है

अश्वैर्हस्तगता पृथ्वी श्रीरश्वै विपुल यश ।
विजयश्च भवेदश्वैरश्वो हि भूषणम् ॥[१]

जहा पर सब लक्षणो से युक्त अश्वों का वास होता है वहा सभी सम्पत्तिया रहती हैं—

राजा राष्ट्र यशो लक्ष्मी धर्मकामार्थसम्पद ।
वाजिनो यत्र तिष्ठन्ति सर्वलक्षणसयुता ॥[२]

इसके अतिरिक्त जिसके प्रागण में एक दिन भी अश्वों का वास होता है सागर पर्यन्त पृथ्वी उसके हाथ में आ जाती है और जिसकी सेना अश्वसमूहों से पूर्ण रहती है उसके गृह में लक्ष्मी विष्णु भगवान के वक्ष स्थल को छोडकर आ विराजती है—

तस्य सागरपर्यन्ता हस्ते तिष्ठति मेदिनी ।
एकाहमपि यस्याश्वा निवसन्ति महाजिरे ॥
विष्णोर्वक्ष स्थल मुक्त्वा लक्ष्मीस्तस्य गृहे स्थिरा ।
निवसत्यश्वसघातै सपूर्णा यस्य वाहिनी ॥[३]

युद्ध के लिये तो अश्व प्राण ही हैं। उनके बिना सेना उसी प्रकार श्रीहीन हो जाती है जैसे चन्द्र के बिना रात्रि और पति से हीन पतिव्रता स्त्री—

चन्द्रहीना यथा रात्रि पतिहीना पतिव्रता ।
हयहीना तथा सेना विस्तीर्णापि न शोभते ॥[४]

अश्वों में सबसे बडा गुण यह है कि वे निर्भीक होते हैं और हर प्रकार के स्थल मे विचरण कर सकते हैं। वे हर प्रकार के वातावरण को अपने अनुकूल बना लेते हैं और अपने सवार की इच्छा को भली प्रकार समझ लेते हैं। इस प्रकार शरीर एव रचना द्वारा वे युद्ध के लिये बहुत उपयुक्त होते हैं। वे बहुत शीघ्र एकत्र हो जाते हैं और आवश्यकतानुसार शीघ्र ही फैल जाते हैं और शत्रु को देखकर तुरन्त उसका अन्त कर देते हैं—

१ नकुल अश्वशास्त्र १,१० । २ वही १।११ ।
३ वही १।१२-१३ । ४ वही १।१४ ।

क्षणादेकत्वमायान्ति क्षणाद्यान्ति सहस्रधा।
क्षणान्मुख्य रिपु वीक्ष्य नयन्ति यमसादनम् ॥[1]

जब वे एक साथ युद्ध करते हैं तो पारस्परिक सहयोग की भावना प्रकट करते है और अकेले पड जाने पर निर्भय होकर आगे बढते हुए विपत्तयो का सामना करते है। वे प्रत्येक ऋतु मे सरलता से कार्य कर सकते है और कई दिन तक बिना खाये पिये रह सकते है—

जितशीतातपा ये च जितत्रासा जिताशना ।[2]

सुयोग्य राजा होने के कारण सोमेश्वरदेव अश्वो के गुणो से भली भॉति परिचित थे। उनका विचार था कि शिक्षित अश्वो से युक्त होने पर ही उत्तम सेना का निर्माण हो सकता है—

शिक्षितैर्बहुभिर्वाहैस्सयुक्त बलमुत्तमम् ।[3]

इसके अतिरिक्त दूर के शत्रु भी उत्तम घोडों द्वारा वश मे हो जाते है—

साध्यन्ते तुरगैरेव दूरस्था अपि वैरिण ।[4]

उनका यह मत नकुल के मत से समानता रखता है। नकुल की निम्नलिखित पक्ति मानसोल्लास की उपर्युक्त पक्ति से मिलती है—

दूरदेशान्तरस्थोऽपि रिपुस्तिष्ठति शकित ।[5]

इसके अतिरिक्त जैसा ऊपर नकुल के उद्धरण द्वारा कहा जा चुका है महाराज सोमेश्वर भी इस बात को मानते थे कि अश्वो द्वारा ही कीति मिल्ती है और अश्वों द्वारा पृथ्वी अथवा राज्य स्थिर रहता है—

लभ्यते तुरगै कीतिर्यस्याश्वास्तस्य भूस्स्थिरा ।[6]

इसलिये मानसोल्लास की द्वितीय विंशति में जहा राज्य को स्थिर रखने के अन्य उपायों का उल्लेख है वहा अश्वबल को भी उन्ही उपायो के अन्तर्गत स्थान दिया है।

इस प्रकार के उपयोगी पशु की शिक्षा तथा उसके भरण-पोषण का ध्यान भी महाराज सोमेश्वर को बहुत था। उनका कथन है कि अश्वों को कोमल घास, जौ, चना आदि खाद्य पदार्थों तथा तेल, घृत आदि रसों से पुष्ट करना चाहिये और प्रतिदिन प्रात काल प्रयत्न से उन्हें चलाना चाहिये। तभी वे काम के योग्य होते है ।[7]

---

१ वही।
२ वही।
३ मानसोल्लास २।८।५७३।
४ वही २।६।५७४।
५ नकुल अश्वशास्त्र।
६ मानसोल्लास २।६।५७४।
७ वही २।६।५७५–७७।

बारहवी शताब्दी मे अश्वों का बहुत मान था, इसका प्रमाण गोदावर मिश्र के हरिहरचतुरग नाम के ग्रन्थ से भी मिलता है। यह ग्रन्थ बारहवीं शतक के अन्त का है। उक्त ग्रन्थ के अनुसार धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों का उचित रूप म पालन करने के लिये राजा को सदैव सब प्रकार से अश्वो की रक्षा करनी चाहिये—

तस्माद्धर्मार्थकामार्थ पार्थिवैस्स्वार्थवेदिभि ।
सर्वदा सर्वथा यत्नाद्रक्षणीयास्तुरगमा ॥[२]

अश्वबल

महाराज सोमेश्वर का कथन है कि सुशिक्षित सैन्धव, यवन, तथा काम्बोज अश्वो से युक्त सेना उत्तम होती है।[३] अर्थशास्त्र मे युद्ध के लिये चार प्रकार के उत्तम घोडों का वर्णन किया है—

प्रयोज्यानामुत्तमा काम्बोजकसैन्धवारट्टजवनायुजा ।[४]

इस प्रकार से काम्बोज, सैन्धव, आरट्टज तथा वनायुज इन चार प्रकार के घोडा को ही युद्ध के लिये सेना म रखना चाहिये। इसमे से सोमेश्वर ने केवल तीन ही प्रकार के घोडो का उल्लेख किया है काम्बोज, सैन्धव तथा वनायुज। वनायु अरब देश का प्राचीन नाम है इसीलिये सोमेश्वर ने सम्भवत यवन शब्द का प्रयोग किया है। काम्बोज तथा सैन्धव घोडे पुराण तथा महाकाव्यो मे भी युद्ध के लिये उपयुक्त बताये गये है। प्राचीन काल के युद्ध मे काम्बोज अश्वों की सेना अवश्य रहती था। उन अश्वो के नाम भी होते थे।[५]

महाभारत में शल्य तथा कृष्ण का नाम महान् अश्वारोहियों मे गिना जाता है।[६] ये अश्वारोहा तीर, खड्ग तथा भाले रखते थे और उष्णोष तथा कवच धारण करते थे।[७] अश्वो को शीघ्र गतिवाला बनाने तथा उत्साह से भरने के लिये उन्हे युद्ध के पूर्व मदिरापान कराया जाता था।[८] सम्भवत यही नियम सोमेश्वर के समय मे भी था क्योकि उन्होने "साध्यन्ते तुरगैरेव दूरस्था अपि वैरिण"[९] लिखकर घोडे के उन्मत्त स्वभाव को प्रदर्शित किया है। इस अश्व सेना पर विजय का तथा सेना की रक्षा का बहुत कुछ भार रहता

१ Dikshitar war in Ancient India p 175

२ हरिहरचतुरग ३।३।

३ मानसोल्लास २।६।५७३।

४ कौटिल्य० २।३०।३२।

५ वा० रा० १।६।२३–२८।

६ महाभारत द्रोणपर्व ३१।५९–६०।

७ वही कर्ण पर्व ४४।६४–६७।

८ वही द्रोणपर्व ११२।५६।

९ मानसोल्लास २।६।५७४।

था । इसी कारण सोमेश्वर ने घोडो को शिक्षित बनाने का प्रसङ्ग दिया है ।[१] कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र मे अश्व की शिक्षा का वर्णन किया है ।

इन चार प्रकार के घोडों के अतिरिक्त कौटिल्य ने वाह्लीक प्रदेश के घोडों को भी युद्ध के लिये उपयुक्त बतलाया है । कौटिल्य के अनुसार ये मध्यम प्रकार के अश्व हैं ।[२] इन वाह्लीक अश्वो के प्रसग रामायण[३] तथा महाभारत[४] मे भी प्राप्त होते है । सोमेश्वर ने वाह्लीक अश्वों को उत्तमोत्तम अश्वो के अन्तर्गत लिया है—

काम्बोजयवनास्तेजी वाह्लीकाश्चातलास्तथा ।
तोक्खारका सकेकाणा एते सहोत्तमोत्तमा ॥[५]

वाह्लीक अश्वों की समता नकुल ने वर्ण रूपादि में काम्बोजों से की है । ये महा गति वाले तथा रूप ओर सौन्दय से युक्त होते हैं ।

बाह्लीका काम्बोजे समानसस्थानवर्णरूपाश्च ।
तेषामथ विशेषो दीर्घोदरपृष्ठवशास्ते ॥
परिणाहायामाभ्यामधिका किंचिन्महेक्षणा शूरा ।
ह्रस्वपृष्ठमूर्तिदीर्घा दीर्घग्रीवा दशनकेशाश्च ॥
मधुपिगलामिनयता कुद्धास्ते दन्तखादिन कथिता ।
भर्तुश्च वत्सला स्युर्महाजवा रूपसौन्दर्यसम्पन्ना ॥[६]

सेना मे गज का महत्व

गज प्रारम्भ ही से ऐश्वयशाली एव उपयोगी वाहन माना गया है । इसी कारण भारतीय साहित्य के आचार्यों ने इसकी उत्पत्ति, बाधने का उपाय, लक्षण तथा शिक्षा आदि का विशेष प्रकार से वर्णन किया है । गजविषयक अनेक प्रसग हमें वेदों में प्राप्त होते हैं । ऋग्वेद के दशम मडल मे दो युद्ध करते हुये हाथियों का वर्णन हुआ है ।[७] ऋग्वेद की आरम्भ की सहिताओ में इसे केवल जगली पशु बताया गया है किन्तु पश्चात् के साहित्य में इसको हस्तिन्[८] (हाथ वाला) नाम से विभूषत किया गया है । अग्नि,[९] मत्स्य[१०] आदि पुराणों में हाथी के लक्षणों,

१ वही ४।४४३ ।
२ कौटिल्य० २।३०।३३ ।
३ वा० रा० १।६।२२ ।
४ महाभारत सौप्तिक १३।२ ।
५ मानसोल्लास ३।४।६६९ ।
६ नकुल अश्वशास्त्र ।
७ ऋग्वेद १०।१०६।६ ।
८ Cambridge History of India Vol I p 81
९ अग्निपुराण २४२।२४ ।
१० मत्स्य पु० २१५।३६ ।

का उल्लेख है। महाभारत[1] तथा रामायण[2] में भी गजविषयक साहित्य उपलब्ध होता है। कौटिल्य[3] ने अपने अर्थशास्त्र में गजों का विस्तृत विवरण दिया है। शुक्रनीति में गजों के लक्षण आदि का प्रतिपादन किया गया है।[4] बृहस्पति संहिता में गजों के विभाजन पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। मातंगलीला गजशास्त्र सम्बन्धी सुन्दर ग्रन्थ है। इस प्रकार गजों पर महान् साहित्य उपलब्ध होता है।

सोमेश्वर ने मानसोल्लास में गज की बड़ी प्रशंसा की है। वे योग्य तथा सुशिक्षित हाथियों को विजय का कारण मानते हैं और 'एको विजयते दन्ती'[5] कहकर सेना के मध्य उसे सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हैं—

शिक्षितैस्सज्जितैश्शूरै लभ्यते विजयो युधि ।[6]

अन्य ग्रन्थो मे भी गज को विजय दिलाने वाला बतलाया है—

गजा सर्वबलश्रेष्ठा पार्थिवाना जयप्रदा ॥
तेषाममितसत्त्वाना कर्तव्यमनुपालनम् ।
बलसाविधिज्ञेन कर्तव्यमनुपालनम् ॥[7]

ये गज रण में अपने पक्ष की सदैव रक्षा करते है और शत्रु के पक्ष का नाश करते है। जिस प्रकार दुर्ग को तोड़ना एव उस पर विजय प्राप्त करना कठिन होता है उसी प्रकार इन्हें भी शत्रु सेना शीघ्रता से नष्ट नहीं कर पाती—

भजने मर्दने चैव नागा वज्रोपमा स्मृता ।
स्वसैन्य परिरक्षन्ति परसैन्य द्रवन्ति च ॥[8]

गजो को सेना का भूषण माना गया है।[9]

गज राजा का बन्धु तथा सखा माना गया है। इसके समान योधा तथा महाकाय पशु अन्य नहीं है—

नास्ति हस्तिसमो बन्धुर्नास्ति हस्तिसम सखा ॥
नास्ति हस्तिसमो योधो नास्ति हस्तिसमो रिपु ।
नास्ति हस्तिसमो कायो नास्ति हस्तिसमो बली ॥[10]

---

१ महाभारत शान्ति पर्व ५९।४१ ।
२ वा० रा० ७।६४।२–४ ।
३ कौटिल्य अर्थ० २।३२ ।
४ शुक्रनीति ४।९०५–९६५ ।
५ मानसोल्लास २।६।६२१ ।
६ वही २।६।६२० ।
७ हस्त्यायुर्वेद ५ १–२ ।
८ हस्त्यायुर्वेद ५।११ ।
९ पथिव्या भूषण मेरु शवर्य्या भूषण शशी ।
नराणा भूषण विद्या सै याना भूषण गजा । वही ५।२३ ।
१० वही अध्याय ५ श्लोक ३३–३४ ।

इस प्रकार सिद्ध है कि गज के बिना राजा का कोई अस्तित्व नही है। राजा के पास चाहे जितना वैभव हो, चाहे जितनी विशाल सेना हो, किन्तु वह यदि गज से हीन है तो राजा का वैभव तथा उसकी सेना सब व्यर्थ समझी जाती है और उसका वैभव अपूर्ण ही रह जाता है—

दृश्यन्ते ये सदा राजन् हीनेष्वपि हि दन्तिषु।
चन्द्रहीना यथा रात्रि सस्यहीना वसुधरा॥
गजहीना तथा सेना विस्तीर्णाऽपि न शोभते।
एते चान्येऽपि बहवो वारणाना गुणा स्मृता ॥[१]

गज बल

महाराज सोमेश्वर का कथन है कि उत्तम जाति के, कलिंग वन मे उत्पन्न हुए, अत्य त शिक्षित गजो एव शूरवीरो से सुसज्जित सेना हो युद्ध मे विजय का एकमात्र कारण है—

वारणैर्भद्रजातीये कालिंगवनजन्मिमि ।
शिक्षितै सज्जिते शूरैर्लभ्यते विजयो युधि॥[२]

अत्यन्त शूरवीर, महाकाय सभी शुभ लक्षणो एव मदोन्मत्त लोचनों से युक्त गज ही विजय को प्राप्त कराते है।[३] सोमेश्वर ने गजों के विषय मे कहा है—

मुख्य दन्तिबल राज्ञा समरे विजयैषिणाम्।
तस्मान्निजबले कार्या बहवो वारणोत्तमा ॥[४]

इस प्रकार सोमेश्वर गजसेना को युद्ध मे विजय का प्रधान अग मानते है और उन उत्तम गजो को उचित रूप से स्वस्थ बनाने का प्रसग गज चिकित्सा के अन्तर्गत दिया है। उन्हें भली प्रकार स्वस्थ बनाने का विस्तारपूर्वक वर्णन गजचिकित्सा के अन्तर्गत हुआ है।

हाथियों के युद्ध का प्रसग वेदो मे भी प्राप्त होता है। कौटिल्य ने "हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञा"[७] कहकर गजबल को राजा का प्रमुख बल माना और शत्रु सेना का नाश करने के लिये हाथी को मुख्य माना है—

हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति।[८]

सोमेश्वर की "मुख्य दन्तिबल राज्ञा समरे विजयैषिणाम्" पक्ति का आधार

---

१ वही ३७—३८।
२ मानसो० २।६।६२०।
३ वही २।६।६२१।
४ वही २।६।६२२।
५ वही २।६।६२९ ६७४।
६ ऋग्वेद १०।१०६।६।
७ अर्थशास्त्र २।२।१४।
८ वही ७।११।१९।

सभवत कौटिल्य की "हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञाम्" पक्ति है। कामन्दक नीतिसार मे भी—

"नागेषु हि क्षितिभुजा विजयो निबद्धस्तस्माद्गजाधिकबलो नृपति स्यात् ॥"[1]

यह प्रसग गजबल का मुख्यता को द्योतित करता है। बुद्धभूषण मे इस प्रकार कहा गया है कि जहा पर बलवान गज होते है वहाँ पर विजय अवश्य होता है। नीति वाक्यामृत मे भी गजबल को प्रधान माना गया है—

"बलेषु हस्तिन प्रधानमग स्वैरवयवैरष्टायुधा हस्तिनो भवन्ति ॥"[3]

कौटिल्यने सात प्रकार से हाथियो का शिक्षित बनाने का वर्णन किया है—

सान्नाह्य सप्तक्रियापथ । उपस्थान सवर्तनसयाम
वधावधौ हस्तियुद्ध नागरायण साग्रामिक च ॥[4]

युद्ध के लिये हाथी को शिक्षित करना आवश्यक है, क्योकि नीतिवाक्यामृत मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

अशिक्षिता हस्तिन केवलमथप्राणहरा ॥[5]

अथात् अशिक्षित हाथी केवल धन का तथा प्राणों का नाश करनेवाले होते है। वास्तव मे यदि गज को युद्ध सम्बन्धी शिक्षा न दी जाय तो वह निश्चय ही सेना मे स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करेगा और अपनी इच्छानुसार अन्न को खाकर सैनिकों को हानि पहुँचायेगा। यशस्तिलकचम्पू मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि जिस राजा के पास विनीत गज नही होते वह नाममात्र का राजा है और युद्ध मे वही गज उसके आत्मवध तथा विनाश का कारण होते हैं—

न विनीता गजा येषा तेषा ते नृप केवलम् ।
क्लेशायापि विनाशाय रणे आत्मवधाय च ॥[6]

इसी कारण कौटिल्य ने गजो को शिक्षित बनाने के लिये हाथी के अध्यक्ष का प्रसग दिया है—

"हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षा दम्यकर्मक्षान्ताना हस्तिहस्तिनी कलभाना शालास्थानशय्याकर्मविधायवसप्रमाण कर्मस्वायोग बन्धनोपकरण साग्रामिकमलकार चिकित्सकानीकस्थायुकवर्गं चानुतिष्ठेत् ॥"[7]

---

१ कामन्दकनीतिसार १९।६२।

२ यतो नागास्ततो जय बुद्धभूषण प० ४२।

३ नीतिवाक्यामन बलसमुद्देश पृ० २०७।

४ कौटिल्य० २।३२।५ ६। ५ नीतिवाक्यामृत २२।५ पृ० २०८।

६ यशस्तिलक० खड ३ पृ० ४९१। ७ अथशास्त्र २।३१।१।

सोमेश्वर ने भी गजों को महामात्र द्वारा शिक्षा देने का उल्लेख किया है।[1]

रथ-बल

गजों के पश्चात् महाराज सोमेश्वर सेना के रथों का वर्णन करते है। उनका कथन है कि अनेक आयुधों से पूर्ण, पताका तथा ध्वजा आदि से सुशोभित, चार अश्वो से युक्त, अत्यन्त दृढ चित्त वाले सारथी से युक्त तथा अनेक महारथियों से पूर्ण बहुत से रथ राजा को विजय की इच्छा से अपनी चतुरगी सेना में रखना चाहिये।[2]

युद्ध मे रथों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है। ऋग्वेद के छठे मण्डल में कुछ सूक्त ऐसे प्राप्त होते है जो रथ के सारथी को सम्बोधित करते हुए कहे गये है।[3] इसी प्रकार के प्रसग अथर्ववेद[4] तथा ब्राह्मणो[5] में भी प्राप्त होते है। अथर्ववेद में इन्द्र द्वारा केशिन् के रथ पर आक्रमण करने का प्रसग प्राप्त होता है।[6] ऐतरेय ब्राह्मण मे रथ के सारथियो का सेना के योद्धाओं से अलग वर्णन प्राप्त होता है।[7] तैत्तिरीय ब्राह्मण में रथकार नाम का एक अलग समुदाय होने का प्रसग प्राप्त होता है। ये लोग केवल रथ ही बनाते थे।

रामायण[8] तथा महाभारत काल[9] में भी युद्ध के समय रथों का प्रयोग होता था। महाभारत मे वासुदेव, मातलि आदि योग्य सारथियों के प्रसग प्राप्त होते हैं। पुराणों में भी रथों के प्रसग अधिक मात्रा मे प्राप्त होते हैं। मार्कण्डेय पुराण में रथों के प्रयोग का बडा सुन्दर वर्णन हुआ है—

रथोद्वहनखिन्नाश्च ते इमे रथवाजिन।
दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव॥
निमित्तानि च भूयिष्ठ यानि प्रादुर्भवन्ति न।
तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्षयाम्यप्रदक्षिणम्॥
देशकालौ च विज्ञेयौ लक्षणानीगितानि च।
दैन्य खेदश्च हर्षश्च रथिनश्च बलाबलम्॥
स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमानि च।
युद्धकालश्च विज्ञेयो परस्यान्तरदर्शनम्॥

---

१ मानसोल्लास २।३।२९६। २ वही २।६।६७९ ६८०।
३ ऋग्वेद ६।४७।२६। ४ अथववेद ६।१२५।
५ ऐतरेय ब्रा० ५।२१। ६ अथवेद ७५।१७।
७- ऐतरेय ब्रा० २।३७, ५।२१ १०।५ २४।३ ३४।१।
८ वा० रा० युद्धकाड १०६।१६ २०।
९ महाभारत शान्ति पव ५९।४१ ४२।

उपयानापयाने च स्थान प्रत्यपसर्पणम् ।
सर्वमेतद्रथस्थेन ज्ञेय रथकुटुम्बिना ॥

अर्थशास्त्र मे कौटिल्य ने रथाध्यक्ष का प्रसग दिया है, जिसका कार्य नये रथ बनवाना था। कौटिल्य ने देवरथ, पुष्परथ, साग्रामिक, पारियाणिक, परपुराभिगामिक तथा वैनयिक आदि विभिन्न प्रकार के रथों का वर्णन किया है।[2] इन रथों के अतिरिक्त शुक्र के समय मे एक प्रकार के लौहरथ का प्रयोग होता था—

लौहसारमयश्चक्र सुगमो मचकासन ।
स्वादोलायितरूढस्तु मध्यमासनसारथि ॥
शस्त्रास्त्रसधायुदर इष्टच्छायो मनोरम ।
एव विधो रथो राज्ञा रक्ष्यो नित्य सदश्वक ॥[3]

वैदिक काल मे रथ दो अश्वों द्वारा खींचा जाता था और वह दो पहियों से युक्त होता था।[4] किन्तु अश्विन् के रथों मे तीन पहियों का उल्लेख हुआ है।[5] पुराण काल में कहीं कहीं रथ में पाँच घोडे जोते जाने का प्रसग प्राप्त होता है—

स एकदा महेष्वासो रथ पचाश्वमाशुगम् ।[6]

महाभारत में बडे-बडे योद्धाओं के रथ में चार घोडे जुतते थे।[7] महाराज सोमेश्वर के समय तक इस पद्धति में किसी प्रकार का भी अन्तर न आने पाया था। मानसोल्लास के प्रसगों से विदित होता है कि तत्कालीन समर में भी रथ चार अश्वों द्वारा ही खींचे जाते थे—

चतुर्भिस्तुरगैर्युक्ता दृढा सारथिनोदिता ।[8]

युद्ध में काम आने वाले साग्रामिक रथ ध्वजा से युक्त होने चाहिये, क्योकि ध्वजा के ही नाम से सेना ध्वजिनी के नाम से प्रसिद्ध है।[9] उस ध्वजा पर

---

१ स रथकर्मान्ता कारयेत् अथ० २।३३।२

२ देवरथपुष्परथसॉग्रामिकपारियाणिकपरपुराभियानिकवैनयिकाश्च रथान् कारयेत ॥ वही २।३३।५।

३ शुक्रनीति ४।९२।९४।

४ ऋग्वेद ५।३०।१, ५।३६।५ ६।२३।१।

५ ऋग्वेद १।११८।२, १।१५७।३, १०।४१।१।

६ श्रीमदभागवत पु० ४।२६।१।

७ महा० आ० १९८।१५, उद्योग० ४८।५०, द्रोण० १४५।८१।

८ मानसो० २।६।६७९।

९ महाभारत उद्योग पव १५५।२५।

किसी प्रकार की प्रतिमा, पशु अथवा पुष्प का चिह्न प्रतीक रूप मे रहना चाहिये। भीष्म की ध्वजा पर ताड का वृक्ष प्रतीक रूप मे चिह्नित था। ध्वजा के चिह्नो के अतिरिक्त ये रथ मालाओ तथा आतपत्रो से खूब सजाये जाते थे।[१] रथो को खूब सजाने की प्रथा सोमेश्वर के समय मे भी प्रचलित थी किन्तु रथ आतपत्रो द्वारा ढका नही जाता था—

अनेकायुधसकीर्णा पताकाध्वजराजिता ।[२]

इस प्रकार से सोमेश्वर के समय मे सेना का रूप अत्यन्त सुसगठित था। सोमेश्वर ने विजय की आकाक्षा रखने वाले राजा को इसी प्रकार की चतुरगी सेना द्वारा आलस्यरहित होकर शत्रु का सहार करने का आदेश दिया है।

सुहृद्

सोमेश्वर एक अत्यन्त प्रतिभावान् राजा था और उसका प्रजा पर पूर्ण अधिकार था, क्योकि वह अपनी निरकुशता न चला कर प्रजा का ध्यान रखकर प्रत्येक कार्य करता था। सोमेश्वर ने सुहृद् को राजा का बडा सहायक माना है। मित्र भी राष्ट्र का प्रधान अग है। सोमेश्वर ने सुहृद् के लक्षणो का वर्णन निम्न प्रकार से किया है

कुलीन च सुशील च सुखे दु खे च सम्मनम्।
अमाय दृढचित च धनै प्राणैरवचकम् ॥
नीतिज्ञ शौचसपन्न व्यसनेष्वपराङ्मुखम्।
कुर्वीत नृपतिमित्र धर्मार्थसुखसिद्धये ॥[३]

प्राचीन धर्मग्रथो मे भी सुहृद् को बडा सम्मान प्रदान किया गया है। मनु ने राजा के तीन प्रकार के फलों का वर्णन किया है[४] और सुहृद् के विषय मे लिखा है—

हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्र ध्रुव लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥

अर्थात् राजा के मित्र, हिरण्य तथा भूमिलाभ मे मित्रलाभ सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि राजा सुवर्ण और भूमि प्राप्त करके उतना नहीं बढता जितना भविष्य मे काम आने वाले योग्य तथा स्थिर मित्र को प्राप्त कर बढता है। अत मनु ने

---

१ वही द्रोण पर्व ७।१०५। २ मानसो० २।६।६७९।

३ मानसो० २।७।६८५ ६८६।

४ मित्र भूमि हिरण्य वा सम्पश्यस्त्रिविध फलम। मनु० ८।२०६।

५ वही ७।२०८।

मनु ने धर्मज्ञ, कृतज्ञ, प्रसन्नचित्त, प्रीति करने वाले मित्र को उत्तम माना है किन्तु वे बुद्धिमान तथा कुलीन शत्रु को कठिन बतलाते है ।[1]

२ सोमेश्वर तथा शक्तित्रय

राज्य के सप्तागों का वर्णन कर चुकने के पश्चात् सोमेश्वर ने उन तीनों शक्तियों का वर्णन किया है जो राज्य का विस्तार करने, उसे सुचारु रूप से चलाने तथा उत्साहपूर्वक प्रजा एव राष्ट्र का पालन करने मे सहायक सिद्ध होती हैं। ये तीनों शक्तियाँ प्रभु, मन्त्र तथा उत्साह के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से तीनों ही उत्साह की द्योतिका है। प्रभु शक्ति का दूसरा नाम प्रभाव भी है। महाभारत के आश्रमवासिक पर्व में ये तीनों ही शक्तिया राजा के ऐश्वर्य के लिये अत्यन्तावश्यक बतलाई गई है।[2]

सरस्वतीविलास मे गौतमधर्मसूत्र का एक सूत्र ऐसा प्राप्त होता है जो इन तीनों ही शक्तियों का आधार कोष को बतलाता है—

अत एव गौतमसूत्रम्। प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तयस्तन्मूला इति।
तन्मूला कोशमूला इत्यर्थ ।[3]

कौटिल्य ने "बल शक्ति"[4] कहकर बल को ही शक्ति बताया है और तीनों शक्तियों के विषय में लिखा है—

ज्ञानबल मन्त्रशक्ति । कोशदण्डबल प्रभुशक्तिश्च। विक्रमबलमुत्साहशक्ति ।[5]

राजा अपनी बुद्धि का आश्रय ग्रहण कर जितने भी कार्य करता है उसे मन्त्र शक्ति कहते हैं। कोष तथा दण्ड प्रभुशक्ति के अन्तर्गत आते है। वास्तव में कोष तथा दण्ड जिस राजा का जितना ही विशाल एव दृढ होगा उतना ही राजा के ऐश्वर्य एव प्रभाव का विस्तार होगा।

प्रभु-शक्ति

सोमेश्वर ने सर्वप्रथम प्रभुशक्ति का वर्णन किया है। उसके अन्तर्गत आत्मायत्त, दूतायत्त, तथा सचिवायत्त इन तीन प्रकार के शासनों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। उन्होने आत्मायत्त शासन को श्रेष्ठ, दूयायत्त शासन को मध्यम तथा सचिवायत्त शासन को निम्न प्रकार का शासन बतलाया है।[7] जिस

---

१ मनुस्मृति ७।२०९ १० ।
२ महाभारत आश्रमवा० ७।६ ।
३ सरस्वतीविलास पृष्ठ ४६ ।
४ कौ० अथ० ६।२।४० ।
५ वही ६।२।४२ १५ ।
६ मानसोल्लास २।८।६८७ ६९५ ।
७ वही २।६।६८७ ।

आत्मायत्तो नृप श्रेष्ठो द्वयायत्तस्तु मध्यम ।
कनिष्ठ सचिवायत्त इति नीतिविदो विदु ॥

राज्य मे सचिव की शक्ति सर्वप्रधान होती है और वह सचिव अभिमान से पूर्ण होकर ऐसा सोचता है कि राजा मेरे वश मे है, मै जो कुछ आज्ञा दू अथवा करूँ उसका कोई भी उल्लघन नही कर सकता ऐसे राज्य को सोमेश्वर ने निम्न प्रकार का राज्य माना है।[1] वास्तव म वह राज्य अधिक दिन तक स्थायी नही रह सकता। सचिव जसा चाहता है वैसा ही करता है जिससे राज्य में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है और वही अशान्ति राजा के नाश का कारण हो जाती है।

जिस राज्य मे सचिव ऐसा सोचता है कि जो कुछ विज्ञप्ति मेरे द्वारा की जायगी वह राजा अवश्य ही स्वीकार कर लेगा ऐसा सोचकर जहाँ राजा तथा सचिव दोनो का सम्मति से राज्यशासन चलता है वह द्वयायत्त शासन है। ऐसे राज्य को सोमेश्वर ने सुख का प्रदान करने वाला माना है।[2] इस प्रकार के राज्य मे सचिव के साथ ही साथ राजा का भी शासन मे हाथ रहता है।

तीसरे प्रकार का राज्य आत्मायत्त है। इस प्रकार के शासन को सोमेश्वर ने सर्वश्रेष्ठ बतलाया है।[3] आत्मायत्त शासन म सचिव का ऐसा विचार होता है कि बिना राजा की आज्ञा के मै अपने कार्य मे सफलता प्राप्त नही कर सकता। इस प्रकार का भय सचिव के हृदय में विद्यमान रहता है और वह सदैव स्वामी के प्रति भक्तिभावना रखता है। ऐसे भय एव श्रद्धा से पूर्ण राज्य को सोमेश्वर ने सुख एव समस्त निधियो का देने वाला, अधिक समय तक स्थिर रहने वाला, सर्वश्रेष्ठ राज्य बतलाया है।[4] इस शासन में अनुग्रह, निग्रह, दान, अदान, निवृत्ति, ग्रहण तथा मोक्षादि कार्यों को करने मे राजा ही समर्थ होता है और उसी की आज्ञा मान्य होती है। ऐसे पूर्णरूप से अपनी शक्ति के प्रभाव से युक्त राजा राज्य का प्रभु कहलाता है।[5]

इन तीनो प्रकार के राज्यों के वर्णन द्वारा सोमेश्वर ने राजा की तीन प्रकार की स्थितियो का सकेत किया है। तीनों प्रकार के राज्यो की स्थिति केवल राजा

---

१ मानसोल्लास २।६।६८८ ८९

मदधीनमिद राज्य राजा च वशगो मम।
कनिष्ठ तत्र तद् राज्य सचिवायत्तमुच्यते ॥

२ मानसो० २।८।६९० ६९१

३ "श्रेष्ठ स्थिरतर सम्यगात्मायत्त प्रकीर्तितम।" मानसो० २।८।६९३।

४ मानसो० २।८।६९२ ६९४।

५ स्वय समर्थो यो राजा स्वाज्ञा चैव निरगला।
निजशक्त्या समायुक्त स प्रभु प्रभुरुच्यते ॥
मानसो० २।८।६९५।

तथा सचिव के मध्य स्थित है। सचिवायत्त शासन मे राजा नाम मात्र का ही स्वामी रहता है। राज्य के शासन का उसे कुछ भी ध्यान नही रहता। सचिव राजा को हृदय से अपना स्वामी अथवा प्रभु नही समझता। इसी कारण इस राज्य मे स्थित राजा की शक्ति को प्रभुशक्ति के अन्तगत नही माना जा सकता।

द्वयायत्त शासन में भी राजा के हाथ म शासन सम्बन्धी शक्ति अधिक नही होती। शासन सचालन का सम्पूर्ण कार्य सचिव के हाथ मे ही रहता है, किन्तु प्रत्येक कार्य करने से पूर्व वह राजा की सम्मति अवश्य ले लेता है। इस राज्य मे भी राजा राज्य का पूर्णरूपेण स्वामी नही समझा जाता। इसी कारण ऐसे राज्य में स्थित हुई प्रजा की शक्ति भी प्रभु शक्ति के अन्तर्गत नही कही जा सकती।

आत्मायत्त शासन मे राजा राज्य के प्रत्येक कार्य मे अपना हाथ रखता है। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का वह केन्द्र होता है। सचिवादि सम्मान मिश्रित भय से राज्य का प्रत्येक कार्य करते है। राजा ही सम्पूर्ण राज्य का स्वामी समझा जाता है। उसे राज्य मे प्रत्येक कार्य करने का अधिकार है। अत आत्मायत्त शासन मे स्थित शक्ति को प्रभुशक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सोमेश्वर ने प्रभुशक्ति अध्याय के अन्त में प्रभुशक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है—

आज्ञारूपेण या शक्ति सर्वेषा मूर्धनि स्थिता।
प्रभुशक्तिहि सा ज्ञेया सप्रमामहिमोदया॥[1]

कौटिल्य ने जो प्रभु शक्ति को कोष तथा दण्ड पर आधारित बतलाया है, वह बिल्कुल सत्य है। कोष पर अपना पूर्णरूपेण अधिकार होने पर ही राजा सुखपूर्वक प्रजा का पालन कर सकता है और दण्ड को उचित रूप से धारण कर अपने उचित न्याय द्वारा प्रजा को शान्त एव सुखी रख सकता है। सोमेश्वर भी कौटिल्य के इसी मत से सहमत है ऐसा प्रतीत होता है, क्योकि सोमेश्वर ने जो अनुग्रह, निग्रह तथा दान अदान मे राजा को सर्वेसवा माना है, यह चारो ही कार्य कोष से सम्बन्धित है और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति आदि कार्य दण्डादि से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। जिस राजा को कोष तथा दण्ड पर पूर्ण अधिकार होगा वही भली प्रकार शान्तिपूर्वक राज्य कर सकता है। इसी कारण सोमेश्वर ने उसी राजा मे स्थित शक्ति को प्रभु शक्ति स्वीकार किया है जिसकी आज्ञा सम्पूर्ण राज्य के सिर पर विद्यमान रहती है किन्तु प्रत्यक्षरूप से तो सोमेश्वर ने प्रभुशक्ति को आज्ञा एव शासन शक्ति के रूप मे स्वीकार किया

---

१ मानसो० २।८।६९६।

है। कामन्दकीयनीतिसार ने भी "सुकोशदण्डौ प्रभुशक्तिमाहु"[1] कहकर कोष एव दण्ड पर स्थित हुई शक्ति को ही प्रभुशक्ति माना है। नीतिवाक्यामृत ने भी "कोषदण्डबल प्रभुशक्ति" कहा है।[2]

मन्त्रशक्ति

मन्त्र शक्ति के प्रकरण में सोमेश्वर ने मन्त्रशक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है—

> कामात् क्रोधाद् भयादन्यल्लोभ्यमानो न मुह्यति।
> यथा शक्त्या युत कार्ये मन्त्रशक्तिस्तु सा स्मृता॥[3]

अथात् जिस शक्ति से युक्त होकर मनुष्य कार्य मे काम, क्रोध, भय, लोभ तथा अन्य तृष्णाओ से आकृष्ट नही होता वही मन्त्रशक्ति है।

परिभाषा के पश्चात् महाराज सोमेश्वर मन्त्रो के पाच अगों का उल्लेख करते है—

१ कार्यसाधन के उपाय, २ उसके करने मे समर्थ सहायक, ३ देश काल विचार, ४ विघ्नो की प्रतिक्रिया तथा ५ कार्यसिद्धि का सुख। कार्यसाधन के गुप्त वाक्य, गुप्त इगित तथा गुप्त आकृति ये तीन उपाय बताये है। इनसे पूर्ण जो मन्त्र होता है वह पुण्य फल का देने वाला होता है।[4] कार्य की सिद्धि मे सहायक व्यक्तियो का वर्णन सोमेश्वर इस प्रकार करते है—

> बधिराधजडान् मूकान् व्याधितान् वृद्धबालकान्।
> प्रिया अपि स्त्रियो म्लेच्छास्तिरश्चोऽपि शुकादिकान्॥
> श्रुतिगोचरतो देशात् तथा लोचनगोचरात्।
> धारयेत् परतो यत्नात् तत्र काले नरेश्वर॥[6]

अथात् राजा को इनके अतिरिक्त व्यक्तियों से मन्त्र करना चाहिये, क्योकि ये कार्य की सिद्धि मे बाधक हैं।

मन्त्र करने के लिये सोमेश्वर ने देश-काल का भी विचार करने का आदेश दिया है। राजा जब मन्त्र करे तो किसी उन्नत स्थान मे, प्रासाद मे, एकात स्थान में, अरण्य मे, निर्जन स्थान में जिससे अन्य व्यक्ति न जान सके।[7] बहुत जनों के बीच किया हुआ मन्त्र शीघ्र ही प्रकट हो जाता है किन्तु दो

---

१ कामन्दकीयनीतिसार १५।३२।

२ नीतिवाक्यामृत पृष्ठ ३२२।३२३।

३ मानसोल्लास २।९।७२१। ४ वही २।९।६९७।

५ वही २।९।७०१। ६ मानसोल्लास २।९।७०२ ३।

७ मानसोल्लास २।९।७०४।

व्यक्तियो के मध्य किया हुआ मन्त्र न तो नष्ट होता है और न शीघ्र ही प्रकट होता है। अपने आप सोचा हुआ मन्त्र ब्रह्मा भी नही जान सकते, ऐसा मत है—

बहुभिर्भिद्यते मन्त्रो द्वाभ्या मन्त्रो न नश्यति।
आत्मना विहितो मन्त्रो ब्रह्मणाऽपि न भिद्यते॥[१]

स्थान के अतिरिक्त मन्त्र करने के लिये समय मध्याह्न, भोजन करने के पश्चात्, थकावट दूर हो जाने के बाद अथवा रात्रि के ऊपर भाग मे अथवा निद्रा चले जाने पर सुखपूर्वक उठकर बताया है।

राजा को मन्त्रियो के साथ अथवा स्वय निम्नलिखित विषयो पर मन्त्रणा करनी चाहिये—

धर्म, अर्थ, काम करने तथा न करने योग्य कार्य, बल, अबल, मित्र, अमित्र, देशरक्षा, शत्रुदमन, अर्थार्जन के उद्यम, भृत्यों के भरण पोषण, पुत्रो के लिये नीति शिक्षा, स्त्रियो की रक्षा, गज तथा अश्व की शिक्षा, दुष्ट अमात्य की चेष्टा, आय, व्यय, दुष्टदमन, शिष्टों का पालन, वर्णाश्रम धर्म का पालन, दुर्गो की रक्षा, आत्मरक्षा, प्रकृतियों के सद्भाव, धन धान्य की वृद्धि, शान्तिक, पौष्टिक, नित्य तथा नैमित्तिक कर्म आदि। इस प्रकार सोमेश्वर ने राजा के योग्य विचारणीय कर्मों एव विषयो का विवरण दिया है।[२]

तत्पश्चात् वे मन्त्रणा करने की विधि का वर्णन इस प्रकार करते है—

आहूय मन्त्रिण सर्वान् मन्त्रयेत पृथक् पृथक्।
अभिप्राय विदित्वैषा गुणदोषौ विचारयेत्॥[3]

राजा को चाहिये कि वह अलग अलग सब मन्त्रियो को बुलाकर उनकी सलाह प्रत्येक विषय पर ले और फिर उस पर गुण दोष का विचार कर कार्य करे तभी कार्य में सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

कि कृत करणीय कि क्रियमाण च कि मया।
कि सिद्ध किमु साध्य मे इति चिन्त्य मुहुर्मुहु॥[४]

राजा सदैव अधिक लाभ करने वाला, सुसाध्य, धर्म तथा कांति को बढाने वाला तथा सुख प्रदान करने वाला कार्य अपनी इच्छा से विचार कर करे, ऐसा आदेश राजा के लिये दिया गया है।[५] इस प्रकार विचार करने पर राजा विघ्नो का नाश कर शान्ति स्थापित कर सकता है।

---

१ वही २।९।७००। २ मानसो० २।९।७०६।१४।
३ वही २।९।७१५। ४ मानसोल्लास २।९।७१७।
५ वही २।९।७१८।

अन्त मे सोमेश्वर उन विषयो एव दुर्मन्त्रों के विषय मे बतलाते है जिन पर राजा को मन्त्रणा नही करनी चाहिये। जो समान आय व्यय वाले, अथवा अधिक व्यय वाले तथा सैकडों उपाय करने पर भी असाध्य विषय हों उन पर राजा को मन्त्रणा नही करनी चाहिये।[१] इसके अतिरिक्त अधम तथा अपयश का विस्तार करने वाले दुर्लभ, क्लेशदायी विषयो पर भी मन्त्रणा न करनी चाहिये। इन विषयो को सोमेश्वर ने दुमन्त्र के नाम से सम्बोधित किया है—

अधर्म्यमयशस्य च पश्चात्तापकर च यत्।
दुर्लभ क्लेशबहुल दुर्मन्त्र तन्न मन्त्रयेत्॥[२]

इस प्रकार सोमेश्वर ने मन्त्र करने के उपायों का, उसके सहायक व्यक्तियों का, मन्त्रणा करने के लिये देश-काल, विचारणीय विषयों, विघ्नों के नाश करने के उपायो तथा न मन्त्रणा करने योग्य विषयो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

कौटिल्य ने मन्त्रशक्ति के विषय में कहा है—

"मन्त्रशक्ति श्रेयसी। प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजाल्पेनापि प्रयत्नेन मन्त्रमाधातु शक्त। परानुत्साहप्रभावतश्च धातुम्।[3] अथात् मन्त्रशक्ति अधिक श्रेष्ठ होती है क्योंकि प्रज्ञा एव शास्त्ररूपी चक्षुओं द्वारा राजा अल्प प्रयत्न करके मन्त्र का अनुष्ठान कर सकता है और प्रतिद्वन्द्वी राजाओं को उत्साह-प्रभावशक्ति के कम होने पर भी मन्त्रशक्ति द्वारा वश में कर सकता है।

उत्साह शक्ति

उत्साह शक्ति के प्रकरण मे सोमेश्वर ने सर्वप्रथम राजा के विक्रम का वर्णन किया है। भूमि, द्रव्य, गज, अश्व तथा रत्नादि को ग्रहण करने के लिये जो राजा शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेने के लिये उद्यत होता है वह विक्रमशाली राजा होता है। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ किया हुआ कार्य देवयोग से यदि सिद्ध अथवा पूर्ण नहीं होता तो भी उसे पूर्ण करने के लिये उसी कार्य को बार बार करने में जो राजा लेशमात्र भी थकित एव शान्त नहीं होता वह राजा उत्साही होता है।[४] इस प्रकार से विभूति प्राप्त करने के उद्यम करने में जिस राजा के हृदय मे नित्य ही उत्साहपूर्ण प्रवृत्ति विद्यमान रहती है उसी शक्ति एव विक्रम को सोमेश्वर ने उत्साह शक्ति माना है।[५]

---

१ वही २।९।७।१९। २ वही २।९।७२०।

३ कौटिल्य अथशास्त्र ९।१।१४ १५।

४ मानसोल्लास २।१०।७२२ २३। ५ वही २।१०।७२४।

'यस्य स्यादुद्यमे नित्य चित्तमुत्साहसयुतम।
उत्साहशक्ति मा ज्ञया नृपाणा भूतिमिच्छता॥"

सोमेश्वर ने उत्साह शक्ति की परिभाषा मे कौटिल्य का पूर्णरूप से अनुसरण किया है। कौटिल्य ने भी विक्रम बल को उत्साह शक्ति माना है।[१] नीतिवाक्यामृत भी 'विक्रमो बल चोत्साहशक्तिस्तत्र रामो दृष्टान्त'[२] ऐसा कहकर राम को उत्साह शक्ति का प्रतीक माना है। कामन्दकीय नीतिसार मे भी उत्साह शक्ति के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

उत्साहशक्ति बलवद्विचेष्टा त्रिशक्तियुक्तो भवतीह जेता।[3]

इस प्रकार से उत्साह शक्ति ही विजय का कारण मानी गई है। दशकुमारचरित में उत्साह शक्ति को निश्चित किये हुये अर्थ का निर्वाह करने वाला माना गया है।[४]

वास्तव मे उत्साह शक्ति ही विजय का कारण है। प्रत्येक राजा अपने यश एव ऐश्वर्य का प्रसार करने के लिये अपने राज्य की सीमा के विस्तार के साथ ही साथ अपनी विभूति की वृद्धि भी करना चाहता है। इसी तीव्राकाक्षा के साथ ही साथ उसके हृदय मे शत्रु की विभूति को जीतने की लालसा प्रज्वलित हो उठती है। वह बार बार उस सफलता को प्राप्त करने का अधिकाधिक प्रयास करता है और वही पुन पुन प्रयास की शक्ति उत्साह शक्ति कहलाती है। इसी उत्साह शक्ति से शून्य हृदय वाला राजा दिन प्रतिदिन पतनोन्मुख होता जाता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यही उत्साह शक्ति राजा के ऐश्वर्य एव महत्व की वृद्धि का आधार है। इसी का आश्रय ग्रहण कर राजा किसी प्रकार की सफलता प्राप्त करने के लिये बार-बार उद्यम एव प्रयास करता है और दैव के द्वारा असिद्ध वस्तु को भी सिद्ध कर लेता है। पञ्चतन्त्र मे इसी उत्साह शक्ति के विषय में कहा गया है —

उत्साहशक्तिसम्पन्नो हन्याच्छत्रु लघुर्गुरुम्॥[५]

अत उत्साह शक्ति का राजा के हृदय में विद्यमान होना अत्यतावश्यक है।

३ सोमेश्वर तथा षाड्गुण्य

शक्तियों के प्रकरण के पश्चात् सोमेश्वर ने षड्गुणों का वर्णन किया है। जिस प्रकार अपने राज्य की सुख शान्ति के लिये राजा प्रभु, मन्त्र तथा उत्साह शक्तियों का आश्रय लेता है उसी प्रकार सधि, विग्रह, आसन, यान,

---

१ "विक्रमबलमुत्साहशक्ति" अथशास्त्र ६।२।४५।

२ नीतिवाक्यामन पृष्ठ ३२२ २३। ३ काम दकीय० १५।३२।

४ 'मन्त्रेण हि विनिश्चयोऽर्थाना प्रभावेण प्रारम्भ । उत्साहेन निवहणम" दशकुमारचरित उच्छ्वास ८।

५ पचतन्त्र ३।३०।

आश्रय तथा द्वैधीभाव इन छ गुणो का प्रयोग राजा समय को देखकर अपना इच्छानुसार कर सकता है।

कौटिल्य ने षड्गुणों का सम्बन्ध मण्डल सिद्धान्त से बतलाया है—

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डल योनि ।

सन्धिविग्रहासनयानसश्रयद्वैधीभावा षाड्गुण्यमित्याचार्या ॥[1]

राजा प्रभु, मन्त्र तथा उत्साह शक्ति को ध्यान मे रखकर षड्गुणो का प्रयोग करे। वातव्याधि ने छ गुणो के स्थान पर केवल सन्धि तथा विग्रह इन दो को ही माना है। उनके मत से अन्य चार इसी के अन्तर्भूत हो जाते हैं। सरस्वती-विलास मे सन्धि आदि छ गुणों के विषय मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

"तथा च गौतमसूत्रम्। चतुरुपायानवलम्ब्य सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावाश्रयाख्यान् गुणान् परिकल्पयेत्।" मनु ने राजा को इन छ गुणो पर भली प्रकार विचार करने का आदेश दिया है।[4] किन्तु राजा को सदैव समय देखकर उनका प्रयोग करना चाहिये—

आसन चैव यान च सन्धि विग्रहमेव च।

कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैध सश्रयमेव च॥[5]

याज्ञवल्क्यस्मृति मे भी इन छ गुणो का वर्णन हुआ है—

सन्धि च विग्रह चैव यानमासनसश्रयौ।

द्वैधीभाव गुणानेतान् यथावत् परिकल्पयेत्॥[6]

इसके अतिरिक्त कामन्दकीय नीतिसार,[7] अग्निपुराण,[8] विष्णुधर्मोत्तर[9] तथा राजनीतिप्रकाश[10] मे भी इन गुणों पर प्रकाश डाला गया है। मनु ने इन छ गुणो मे से प्रत्येक को दो प्रकार का बताया है।[11] इससे विदित होता है कि सभी गुणो का प्रयोग करना राजा के लिये अनिवार्य था।

---

१ कौटिल्य ७।१।१ २।

२ द्वैगुण्यमिति वातव्याधि ।' कौ० अर्थशास्त्र ७।१।३।

३ सरस्वतीविलास पृ० ४२।

४ "संधि च विग्रह चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभाव सश्रय च षड्गुणाश्चिन्तयेत्सदा। मनु० ७।१६०

५ मनु० ७।१६१। ६ याज्ञ० १।३४६।

७ कामन्दक० ९।१६। ८ अग्नि पु० २४०।

९ विष्णुधर्मोत्तर १।१५०।३ ५।

१० राजनीतिप्रकाश पृ० ३२४४१३। ११ मनु० ७।१६२ १६८।

सधि

इस प्रकरण मे सर्वप्रथम सोमेश्वर ने सधि की परिभाषा इस प्रकार दी है—

नाक्रान्तिसाध्यो य कश्चिद् देशकालाद्यपेक्षया।
तेन सार्धं प्रकुर्वीत सधि नीतिविचक्षण ॥[1]

अर्थात् जब एक राजा दूसरे राजा का देश तथा काल का विचार करके जीतने में असमर्थ होता है तब वह उसके साथ मित्रता कर लेता है उसी को नीति के जानने वाले सधि कहते है।

सधि की परिभाषा दे चुकने के पश्चात् सोमेश्वर सधि की अवस्थाओं का वर्णन करते हैं। जब कोई विजयी राजा शत्रु को अपने से अधिक एव उच्च स्तर पर देखता है अथवा उसके बल से पीडित होकर उसे जीतने मे अपने को असमर्थ देखता है उस समय वह निर्बल राजा उससे सधि कर लेता है।[2] कौटिल्य ने 'पणबध सधि' कहकर दो राजाओ को कुछ शर्तों पर मित्रता हो जाने को सधि बतलाते है। विष्णुधर्मोत्तर[4] मे भी शर्तों पर आधारित मित्रता को ही सधि माना गया है। कौटिल्य का सधि करने के विषय मे ऐसा मत है कि जब राजा शत्रु से अपने को अधिक निर्बल समझे तो उसके साथ सन्धि करले[5] अथवा शत्रु की वृद्धि उस समय समान होने पर भी उदयोन्मुखी हो तो निबल राजा शत्रु से सन्धि अवश्य कर ले।[6] मनु ने भी ऐसा ही कहा है—

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्य ध्रुवमात्मन ।
तदात्वे चाल्पिका पीडा तदा सधि समाश्रयेत् ॥[7]

वास्तव में जब अपनी विजय की आशा न देखे तब सधि का ही आश्रय लेना अच्छा है।

सोमेश्वर ने "सधिश्चतुर्विध" कहकर चार प्रकार की सधियों का वर्णन अपने मानसोल्लास में किया है। वे क्रमश मैत्र, सम्बन्धज, परस्परोपकाराख्य, तथा उपहार है।[8] सोमेश्वर का कथन है कि जब किसी व्यक्ति को अत्यन्त

---

१ मानसो० २।१२।७२५। २ वही २।११।७२५ ७२७।

३ अथ० ७।१।६।

४ 'पणबध स्मत सधि ॥' विष्णुधर्मोत्तर २।१५०।३५।

५ 'परस्माद्धीयमान सदधीत॥' अथशास्त्र ७।१।१२।

६ 'तुल्यकालफलोदयाया वा वृद्धौ सधिमुपेयात ॥" अथ० ७।१।२३।

७ मनु० ७।१६९।

८ 'सधश्चितुर्विध प्रोक्तो मैत्र सम्ब धजस्तथा।
परस्परोपकाराख्य उपहारस्तथव च ॥"
मानसो० २।११।७२८।

सज्जन जानकर उसके गुणो से आकृष्ट होकर जो मित्रता की जाती है वह मित्र सधि, किसी कार्य के वशीभूत होकर अपनी कन्या देकर जो सधि की जाती है वह सम्ब धज, एक दूसरे के प्रत्युपकार करने के विचार से वशीभूत होकर की हुइ सधि परस्परोपकाराख्य तथा गज, अश्व, रत्न, सुवर्ण, भूमि आदि देकर की हुई सधि उपहार सधि कहलाती है।[1]

कौटिल्य ने तीन प्रकार की सधियों का उल्लेख किया है जो क्रमश दण्डोपनत, कोषोपनत तथा देशोपनत है। इनमे से दण्डोपनत सधि के अन्तर्गत तीन प्रकार की सधियो का वर्णन हुआ है—१ आमिष सधि, जिसमे हारा हुआ राजा जेता शत्रु के द्वारा कथित सेना तथा अपनी शक्ति के अनुसार पर्याप्त धनादि देकर स्वय जाकर शत्रु की सेवा करता है, २ पुरुषान्तर अथवा आत्मरक्षण सधि, जिसमे राजकुमार या सेनापति को शत्रु के समक्ष उपस्थित कर सधि की जाती है। किसी पुरुषविशेष को समर्पित करने के कारण इसका पुरुषान्तर नाम पडा, ३ अदृष्टपुरुष अथवा दण्डमुख्यात्मरक्षण सधि, इसमे निर्बल राजा शत्रु के समक्ष ऐसी प्रतिज्ञा करता है कि अवसर पडने पर शत्रु का कार्य सिद्ध करने मै स्वय जाऊँगा अथवा मेरी सेना जायगी। इस प्रकार से राजा तथा सेना के प्रमुख व्यक्ति की रक्षा भी हो जाती है और शत्रु के समक्ष किसी व्यक्ति को उपस्थित भी नहीं करना पडता। यही तीनों सधिया दण्डोपनत सधि के अन्तर्गत हैं।[2]

कोशोपनत सधि के अन्तर्गत परिक्रय, उपग्रह, अत्यय तथा कपाल सधिया आ जाती है। युद्ध में पकडे हुये अमात्य को जब बलवान शत्रु से पर्याप्त धन राशि देकर छुडाया जाय तब परिक्रय सधि, वही धनराशि जब थोडी-थोडी किश्तों में दी जाय तब उपग्रह सधि, वही धनराशि जब नियत स्थान तथा नियत समय पर शत्रु को दी जाय तब वही उपग्रह सधि अत्यय सधि कहलाती है। इसे सुवर्ण सधि भी कहते है। किन्तु जब शत्रु द्वारा कथित धनराशि उसी क्षण चुका दी जाय तब वह कपाल सधि कहलाती है। ये चारो ही सधिया धन से सम्बन्धित होने के कारण कोष का क्षय करने वाली है, इसी कारण इनका नाम कोशोपनत सधि पडा।[3]

देशोपनत सधि के अन्तर्गत आदिष्ट, उच्छिन्न, अवक्रय तथा परदूषण ये चार सधिया आ जाती हैं। जब निर्बल राजा अपने देश तथा प्रकृति के रक्षार्थ कुछ भूमि शत्रु को देकर उससे सधि करता है तब वह सधि आदिष्ट होती है।

---

१ मानसो० २।११।७२६ ३२। २ कौ० ७।३।२४ २७।

३ कौटिल्य अथ० ७।३।२८ ३२।

राजधानी तथा दुर्गो को छोड कर जब सम्पूर्ण भूमि शत्रु को दे दी जाय तब वह उच्छिन्न सधि कहलाती है। अवक्रय सधि मे राजा भूमि मे उत्पन्न हुई वस्तु के दान द्वारा भूमि को छुडा कर सधि करता है, किन्तु परदूषण सधि मे भूमि म उत्पन्न हुइ वस्तु के साथ कुछ और भी देना पडता है। ये सभी सधिया भूमि को प्रदान कर की जाती है, जिससे भूमिराशि का क्षय होता है। इसी कारण ये सधिया देशोपनत के नाम से प्रसिद्ध है।[१]

उपर्युक्त दण्डोपनत आदि तीनो प्रकार की सधिया हीन सधिया मानी गई है, क्योंकि इनमे निर्बल राजा अपनी विभूति का क्षय कर बली राजा से सधि करता है। इस प्रकार कौटिल्य ने सम, हीन तथा अधिक शक्ति एव विभूति को सधि का कारण माना है।

कामन्दकीयनीतिसार[३] तथा अग्निपुराण[४] मे साधारण रूप से सोलह प्रकार की सधियो का उल्लेख हुआ है। कामन्दकीय नीतिसार मैत्र, सम्बन्धज, परस्परोपकाराख्य तथा उपहार इन चार सधियो मे उपहार सधि को ही प्रमुख मानता है और मैत्र को छोडकर शेष सधियो को उपहार सधि का ही प्रकार बतलाता है—

> एक एवपोहारस्तु सन्धिरेतन्मत हि न ।
> उपहारस्य भेदास्तु सर्वेन्ये मैत्रवजिता ॥
> अभियोक्ता बली यस्मादलब्ध्वा न निवर्तते ।
> उपहाराद्दते तस्मात् सन्धिरन्यो न विद्यते ॥[५]

मित्र सधि मे सवि करते समय कोइ भी वस्तु उपहार के रूप मे नही दी जाती, इसी कारण सभवत यह सधि उपहार के अन्तर्गत नही मानी जा सकती। इस प्रसग से विदित होता है कि कामन्दकनीतिसार मे भी विशेषत मैत्र, सम्बन्धज, परस्परोपकाराख्य तथा उपहार इन चार सधियों को ही मुख्य माना है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से सोमेश्वर ने कामन्दकनीतिसार को ही सधि के विषय मे आधार माना है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से कौटिल्य द्वारा कथित दण्डोपनत, कोशोपनत तथा देशोपनत सधिया इन्ही चारों के अन्तर्गत आ गई है।

विग्रह

विग्रह के प्रकरण मे सोमेश्वर ने बतलाया है कि राजा सुन्दर यत्नो, सहायकों,

---

१ अथ ७।३।३३ ३६ । २ वही ७।३।३७ ।
३ कामन्दक० ९।२ १८ । ४ अग्नि पु० २४० ।
५ काम दक० ९।२१ २२ ।

सामर्थ्य, बल के अनुसार मन्त्रों से हीन राजा के साथ विग्रह करे। विग्रह का अर्थ बिगाड करना अथवा हानि पहुचाना है। इसी कारण कौटिल्य ने "अपकारो विग्रह' कहकर विग्रह की परिभाषा दी है। किसी राजा का अपकार करना ही उसके साथ विग्रह करना है। विग्रह उसी से करना उचित है जो अपने से हीन हो।[3]

सोमेश्वर ने मानसोल्लास मे आठ प्रकार के विग्रहो का वर्णन किया है जो क्रमश कामज (स्त्री के कारण उत्पन्न हुआ विग्रह), लोभज। जो (दूसरे का धन हरण करने के विचार से किया जाय), भूभव (जो भूमि को ध्यान मे रख कर किया जाय), मानसभव (जो मान रक्षा के लिये किया जाय), अभयाख्य (जो विग्रह शरणागत की रक्षा को ध्यान मे रखकर किया जाय), इष्टज (जब मित्र, बन्धु अथवा भृत्य के लिये विग्रह किया जाय), मदोत्थित (जो मदिरा के मद, विद्या अथवा धन के गर्व, तथा यौवन से उत्पन्न हुआ विग्रह हो)। इस प्रकार के गर्व से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और उस अविवेकावस्था के वशीभूत हो कर मनुष्य जो विग्रह करता है वही मदोत्थित विग्रह होता है तथा एकद्रव्याभिलाष (जो किसी एक ही अर्थ की दृष्टि से आपस मे विग्रह होता है) है।[4]

कामन्दकनीतिसार मे विग्रह अथवा वैर पाच प्रकार का बताया गया है—
१ सौतेले भाई का वैर, २ भूमि से सम्बन्धित वैर, ३ स्त्री से सम्बन्धित वैर,
४ शाब्दिक वैर, ५ त्रुटियो से उत्पन्न वैर।

अग्निपुराण[6] में भी इसी प्रकार पाँच प्रकार के विग्रहो का वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त कामन्दक नीतिसार[7] तथा अग्निपुराण में १६ प्रकार के ऐसे प्रसग प्राप्त होते है जो विग्रह के कारण बन जाते है। अधिकाशत विग्रह राज्य को छीन लेने से तथा स्त्री, घोडे और हाथी के कारण, दूसरे की सम्पत्ति से, अभिमान एव मद से तथा प्रजा को सताने से उत्पन्न होता है। अग्निपुराण मे भी इन्ही विषयों का उल्लेख हुआ है।

सोमेश्वर ने जो आठ प्रकार के विग्रहो का वर्णन किया है वह सम्भवत. उन्होंने कामन्दक नीतिसार के आधार पर ही लिखा है। उपर्युक्त प्रसगों मे जो विग्रह के विषय प्राप्त होते हैं उनमे स्त्री, धन भूमि, मद, सौतेले भाई आदि से

१ मानसो० २।१२।७३३।   २ कौटिल्य० अथ० ७।१।७।

३ "अभ्युच्चीयमानो हि गृह्णीयात्॥" अथ० ७।१।१३।

४ मानसो० २।१२।७३४ ४२।   ५ काम द० १०।१५।

६ अ० पु० २४०।१९।   ७ काम द० १०।५।

८ अ० पु० २४०।२० २४।

उत्पन्न विग्रह के ही सोमेश्वर ने क्रमश कामज, लोभज, भूभव, मदोत्थित तथा इष्टज आदि नाम दिये है। इस प्रकार जब कि कामन्दकादि ने विग्रह का विभाजन भूमि, स्त्री आदि विग्रह के कारणों के अनुसार किया है, सोमेश्वर ने उसका विभाजन मनुष्य की काम लोभ मदादि प्रवृत्तियों के आधार पर किया है और यही विभाजन अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है।

मनुस्मृति मे मनु ने दो प्रकार के विग्रह बतलाये है[१]—प्रथम स्वयकृत, द्वितीय अपने मित्र का अपकार होने से किया हुआ। इनका वर्णन मनु ने इस प्रकार किया है—

स्वयकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा।
मित्रस्य चैवापकृतेन द्विविधो विग्रह स्मृत ॥[२]

विग्रह का आश्रय ग्रहण कर राजा पर्याप्त मात्रा में अपनी श्री एव राज्य की वृद्धि कर सकता है।

यान

यान के प्रकरण मे सोमेश्वर आक्रमण करने का सर्वप्रथम वर्णन करते है। यान की परिभाषा के विषय मे कौटिल्य ने "अभ्युच्चयो यानम्"[३] कह कर शक्ति के आधिक्य को ही यान का कारण माना है। कामन्दकनीतिसार मे जिस राजा की शक्ति तथा सेना अत्यन्त बलवती हो और जिसकी प्रजा राजा के गुणों के कारण उससे आकृष्ट हो ऐसे विजिगीषु राजा का सफलता के दृष्टिकोण से अन्य राजा पर आक्रमणार्थ प्रयाण करने को यान कहा गया है।[४] विष्णुधर्मोत्तर मे यान को विजिगीषु द्वारा शत्रु के देश मे यात्रा के नाम से सबोधित किया गया है—

जिगीषो शत्रुविषये यान विधीयते।[५]

सोमेश्वर के मतानुसार विधाता के द्वारा अपहृत कोष वाले, व्याधि से युक्त, व्यसनो मे आसक्त, शत्रु से पीडित, बल तथा कोष से विहीन अथवा मित्र राजाओं द्वारा परित्यक्त राजा पर विजिगीषु राजा को विजय की सफलता के हेतु आक्रमण करना चाहिये।[६] राजा को शरत्काल अथवा वसन्त मे अथवा शत्रु के नाश होने के लक्षण देख कर अपने अनुकूल शकुन का विचार कर आक्रमण

---

१ सधि तु द्विविध विद्याद्राजा विग्रहमेव च' ॥ मनु० ७।१६२।

२ मनु० ७।१६४।

३ अर्थशास्त्र ७।१।९।

४ कामन्दक० ११।१।

५ विष्णुधर्मोत्तर २।१५।३–५।

६ मानसो० २।१३।७४३ ७४४।

के लिये यात्रा करनी चाहिये ।[1] मत्स्य पुराण में जिगीषु राजा के यान के विषय में कहा गया है कि जब शत्रु अपने शत्रुओ से पीडित हो अथवा आपत्तियो मे फसा हुआ हो, उस समय जिगीषु को आक्रमण करना चाहिये । अग्निपुराण[2] मे भी इसी प्रकार का उल्लेख हुआ है, किन्तु कामन्दकनीतिसार मे ऐसा भी प्रसग प्राप्त होता है कि यदि अचानक आक्रमण करे तो आक्रमण करने के पूर्व शत्रु को दूत द्वारा सूचित कर देना चाहिये ।[4] महाभारत मे यान के समय का भी उल्लेख हुआ है । कृष्ण के पाडवो का दूत बनकर शरद ऋतु के अन्त मे जाने का प्रसग प्राप्त होता है—

कौमुदे मासि रेवत्या शरदान्ते हिमागमे ।"[5]

पुराणो मे यान के पूर्व अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्य करने का आदेश दिया गया है । अग्निपुराण[6] तथा विष्णुधर्मोत्तर[7] मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि यान के सात दिवस पूर्व से राजा को गणपति, अश्विन, शिव, विष्णु तथा अपनी राजधानी के मदिरो की प्रतिमाओ का पूजन प्रारम्भ कर देना चाहिये और उन देवताओं को आहुतिया भी प्रदान करनी चाहिये । इसके अतिरिक्त उसे उन रात्रियों मे आने वाले स्वप्नों पर भी ध्यान देना चाहिए । मत्स्य तथा अग्नि पुराण म अच्छे तथा बुरे स्वप्नो के विषय पर प्रकाश डाला गया है । सोमेश्वर ने भी अपने निमित्त शुभ शकुन प्राप्त करने के पश्चात् यात्रा करने का आदेश दिया है ।[10] इसके अतिरिक्त उन्होने अन्य शकुन, नक्षत्र आदि का भी वणन किया है ।[11]

सोमेश्वर ने यानविषयक सात प्रकार की यात्राओ का वर्णन किया है—

सन्धानजा पार्ष्णिरोधा मित्रविग्रहणी तथा ।
द्वन्द्वनिर्व्याजजा कुल्या सप्तमी चापि शीघ्रगा ॥[12]

अथात् सन्धानजा, पार्ष्णिरोधा, मित्रविग्रहणी, द्वन्द्वनिर्व्याज, कुल्या तथा शीघ्रगा

---

१ 'शरत्काले वसन्ते वा रिपोर्नाशमुपस्थिते ।
निमित्त शकुन लब्ध्वा यात्रा कुर्वीत भूपति ॥'
मानसो० २।१३।७४५ ।

२ मत्स्य पु० २४०।२ । ३ अग्नि पु० २२८।१।२ ।
४ कामन्दक० १२।१ । ५ महा० उद्योगपव ८३।५ ७ ।
६ अग्नि पु० २३६।१ १८ । ७ विष्णुधर्मोत्तर २।१७६ ।
८ मत्स्य० २४२ । ९ अग्नि पु० २२९ ।
१० मानसो० २।१३।७४५ । ११ मानसो० २।१३।७५५ ९२७ ।
१२ मानसो० २।१३।७४६ ।

ये सात प्रकार के यान हैं। पाष्णिग्राह[1] के साथ मित्रता करके तत्पश्चात् यान का अवलम्बन ले, उसे सन्धान यात्रा कहते है। पार्ष्णिग्राह के अवरोध के लिये आत्मबल बढा कर अन्य राजाओं से मित्रता कर उनकी सेनाये लेकर जब राजा आक्रमण करने जाता है वह पार्ष्णिरोध यान कहलाता है। अपने मित्र राजाओं के सहित जो शत्रुओ से विग्रह कर उस पर आक्रमण करने के लिये जाता है उसे मित्रविग्रहणी यात्रा कहते हैं। शत्रु को बुलाकर उस पर स्वय आक्रमण कर देने को द्वन्द्व यान कहते है। यह आक्रमण शत्रुओ का विनाश करने वाला होता है। जब स्वस्थ एव बलिष्ठ राजा सब ओर से शत्रुओं का नाश करने के हेतु यात्रा करता है तब वह निर्व्याजा यात्रा कहलाती है। जो शत्रु के वश के साथ युद्ध करने को प्रयाण करता है उसे कुल्या यात्रा कहते है। यह शत्रुओं के लिये अत्यन्त भयकारिणी होती है। शत्रु का विनाश करने के उद्देश्य से जो समस्त प्रमादो को त्याग कर सहसा युद्ध के लिये यात्रा करता है उसे शीघ्रगा यात्रा क_ते है।[2]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे यात्रा की स्थितियो का वर्णन किया है।[3] मनु ने दो प्रकार के यानों का वणन किया है—अकेले आक्रमण करना अथवा मित्र के साथ आक्रमण करना—

> एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया।
> सहतस्य च मित्रेण द्विविध यानमुच्यते॥[4]

इस प्रकार यहा पर मनु का यान का अर्थ आक्रमण प्रतीत होता है।

सोमेश्वर का यात्रा का प्रकरण तत्कालीन युद्धो के विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डालता है।

आसन

कौटिल्य ने 'उपेक्षणमासनम्'[5] कह कर उपेक्षा कर देना ही आसन बतलाया है। इसके अतिरिक्त स्थान तथा उपेक्षण शब्दों को आसन के पर्यायवाची शब्द बतलाया है।[6] शत्रु के बराबर शक्ति का होना आसन कहलाता है, जब शत्रु की अपेक्षा अल्प शक्ति हो तो स्थान तथा उपायों का प्रयोग न करना अथवा कम करना उपेक्षण कहलाता है—

---

१ दूसरे के राज्य का जय करते हुये राजा के पीछे राज्य को दबाता हुआ पाष्णिग्राह कहलाता है। देखिये मनु० ७।२०७।

२ मानसो० २।१३।७४७।७५३। ३ कौटिल्य अथ० ७।५।

४ मनु० ७।१६५। ५ कौटिल्य अथ० ७।१।८।

६ 'स्थानमासनमपेक्षण चेत्यासनपर्याया॥' अथ० ७।४।२।

गुणैकदेशे स्थानम् । स्ववृद्धिप्राप्त्यर्थमासनम् । उपायानामप्रयोग उपेक्षणमिति ।[१]

सोमेश्वर का कथन है कि वृष्टि न होने के कारण जल से रहित, दुर्भिक्ष से पूर्ण तथा बुरी स्थिति से पूर्ण अन्य राजा के देश मे कभी आक्रमण नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त परस्पर विरोध द्वारा शत्रु के पतनोन्मुख होने पर बुद्धिमान राजा को तब तक ठहरना चाहिये जब तक उसका विनाश न हो जाय।[२] इसम से पूर्वांश मे राजा के पास अवसर होते हुये भी वह उपायो का प्रयोग नही करता, इसी कारण यह उपेक्षण के अन्तगत लिया जा सकता है।

सोमेश्वर ने मानसोल्लास मे दस प्रकार के आसनो का उल्लेख किया है जो क्रमश इस प्रकार है—

१ स्वस्थासन—शत्रु के निष्कण्टक राज्य को देख कर अपने स्थान पर स्थित रहना।

२ उपेक्षासन—मेरे द्वारा जो अनुष्ठान किया जायेगा वही दैव भी करेगा अत उग्र दण्ड के प्रयोग से, व्यसन से तथा दुर्भिक्ष आदि से इसका नाश हो जायगा ऐसा सोचकर अपने स्थान पर स्थित रहना।

३ मार्गरोधासन—पूर्ण वेग के प्रवाह वाली नदी से मार्ग अवरुद्ध हो जाने के कारण उसके दोष से जो स्थान ग्रहण किया जाय।

४ दुर्गसाध्यासन—घास फूस को हटाता हुआ दुर्ग को लेने के लिये उद्यत जो दुर्ग के उपात प्रदेश में वास किया जाता है।

५ राष्ट्रस्वीकरणासन—हठपूर्वक हथवा बल्पूवक प्राप्त किये हुये राष्ट्र को वश में करने के हेतु वहा निवास करना।

६ रमणीयासन—जो विजिगीषु राजा युद्धस्थल मे शत्रुओ को मार कर वहाँ के रमणीय स्थान को देख कर यवस, इधन तथा जल एव धान्य से पूर्ण स्थान मे अपना इच्छा से रह जाता है, नीतितत्वज्ञ उसे रमणीयासन कहते है।

७ निकटासन—अत्यन्त दूर पर स्थित शत्रु के लिये उद्यत राजा जब समीप जाकर अपना स्थान बनाता है।

८ दूरमार्गासन—अत्यन्त दूर देश में जाकर अपना सम्पूर्ण कार्य समाप्त कर अपने देश को अत्यन्त दूर जान कर जहा कोई भी सम्बन्धी न हो ऐसे उचित स्थान मे वर्षा ऋतु अथवा शरत्काल आने तक निवास करना।

---

१ अथ० ७।४।४६। २ मानसो० २।१४।९२८।

३ मानसो० २।१४।९२९।

९ प्रलोभासन—अन्य राजा के द्वारा मै तुम्हें हाथी, घोडे, धन, रत्न, दुर्ग, राष्ट्र आदि दूगा, इस आश्वासन पर कुछ काल तक राजा जहा रहता है अथवा एक मास मे, पक्ष मे, दस दिन मे, छ दिन मे, पाच दिन मे अथवा दो दिन मे दूगा ऐसा प्रलोभन देकर जो राजा को ठहरा लेता है और इसी आशा को धारण करता हुआ राजा चिर काल तक जहा ठहरता है उसी को मनीषियो ने प्रलोभासन कहा है।

१० पराधीनासन—स्नेह अथवा वैर भाव से जब राजा अपने देश को नहीं जा पाता वह स्थान पराधीनासन कहलाता है। इस प्रकार इन दस आसनो का वर्णन सोमेश्वर ने किया है।[१]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे आसन ग्रहण करने के समय का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।[२] किन्तु आसनों के दस भेदो का विस्तृत वर्णन अन्यत्र नही प्राप्त होता। मनु दो प्रकार के आसनो का उल्लेख करते है—

१ पूर्व जन्म के दुष्कृत से अथवा यहा की बुराई से चुप होकर बैठना।

२ मित्र के अनुरोध से चुप हो कर बैठना—

> **क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात् पूर्वकृतेन वा।**
> **मित्रस्य चानुरोधेन द्विविध स्मृतमासनम्॥**[3]

आसन के प्रसग से यही विदित होता है कि विशेष अवसर पर विशेष स्थिति को अपनाना आसन कहलाता है।

आश्रय

आसन के पश्चात् आश्रय की परिभाषा देते हुये सोमेश्वर लिखते है—

> **स्वय हीनबलो राजा जयहेतु न पश्यति।**
> **बलिना पीड्यमानो य क्षेमस्थान समाश्रयेत्॥**[४]

अर्थात् स्वय हीन शक्ति वाला होने पर जब राजा अपनी विजय के लक्षण नही देखता अथवा बलवान राजा द्वारा पीडित किया जाता है तो वह क्षेमस्थान का आश्रय लेता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे आसन का ही नाम दिया है और अपनी रक्षा के लक्षण न देख कर अपना सर्वस्व बलवान राजा के समक्ष अर्पण कर देने को ही सश्रय बतलाया है।[५] सश्रय के विषय में कौटिल्य ने कहा है कि जब कोई राजा आश्रय की शरण ले तो सदैव अपने शत्रु एव प्रतिद्वन्द्वी

---

१ मानसो० २।१४।९३०-९४८। २ अथ० ७।४।७-२६।

३ मनु० ७।१६५। ४ मानसो० २।१५।९४९।

५ 'परार्पण सश्रय।' अथ० ७।१।१०।

राजा से अधिक बलवान राजा की शरण ले ।[1] इसके अतिरिक्त दो बलवान राजाओं के मध्य पड जाने पर जो अपनी रक्षा करने मे अधिक समर्थ हो उसी की शरण सश्रय ग्रहण करने वाले राजा को लेनी चाहिये अथवा जो समीप मे स्थित हो उसका आश्रय ग्रहण करे ।[3] यदि दोनो ही बलवान राजा समीप मे हों तो दोनो के साथ कपाल सधि कर ले ।[4] आश्रय भूत राजा बलवान राजा के उपकार करने म लगा रहता है, उसका अपना रचमात्र भी व्यक्तित्व शेष नहीं रह जाता । इसी प्रकार और भी सश्रय के नियमों का वणन कौटिल्य ने किया है ।

सोमेश्वर ने तीन प्रकार के आश्रयों का वर्णन किया है —

१ सत्सश्रय—अत्यन्त हीन शक्तिवाला राजा महान् बलशाली शत्रु से पीडित होकर उसे सत्सश्रय जानकर उसी का आश्रय ग्रहण कर लेता है अथवा बहुत से सद्गुणों को देखकर उसी शत्रु के आश्रित अपने को कर देता है, उसी को सत्सश्रय कहते है ।

२ अन्यसश्रय—अपने को हीन समझ कर तथा शत्रु द्वारा पीडित होने पर, शत्रु को गुणहीन एव दुष्ट प्रकृति का समझ कर बलशालिनी क्रियाओ से युक्त, धर्मज्ञ तथा सत्यवादी एव अधिक गुणो से युक्त किसी अन्य राजा के आश्रित होने को अन्यसश्रय कहते है ।

३ दुर्गसश्रय—बलशाली शत्रु अथवा समान शक्ति वाले रिपु से पीडित किये जाने पर जो दुर्ग का आश्रय ग्रहण किया जाता है ।

इन तीनो प्रकार के सश्रय का वर्णन कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे किया है । कौटिल्य ने अत्यन्त बलशाली प्रतिद्वन्द्वी राजा का (यदि उसके समान शक्तिशाली कोई न हो) आश्रय ग्रहण करने का,[7] तथा अपनी रक्षा करने मे समर्थ किसी अन्य बलवान, राजा का आश्रय ग्रहण करने का,[8] तथा अपनी रक्षा की आशा न देख कर दुर्ग का आश्रय ग्रहण कर द्वैधीभाव का प्रयोग करने

१ 'यद्बल साम त्स्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत् । अथ० ७।२।७ ।

२ बलीयसोर्वामध्यगतस्त्राण समथमाश्रयेत' ॥ अथ० ७।२।१४ ।

३ 'यस्य वा तदधि स्यात' । अर्थ० ७।२।१५ ।

४ 'उभौ वाकपालसश्रयस्तिष्ठेत' । अथ० ७।२।१६ ।

५ 'सश्रितस्तु परस्योपकरोति नात्मन ' ॥ अथ० ७।२।६ ।

६ मानसो० २।१५।९५० ९५५ ।

७ तद्विशिष्टबलाभावे तमेवाश्रित कोशदण्डभूमीनाम यतमेनास्योपकर्तुम दृष्ट प्रयतेत् ॥ अथ० ७।२।८ ।

८ अथ० ७।२।१४ ।

का आदेश ‌दया है ।[१] परन्तु इन तीनो प्रकार के आश्रयों का कौटिल्य ने नाम नही दिया है । सोमेश्वर ने इन्हीं तीनों का क्रमश सत्सश्रय,[२] अन्यसश्रय[३] तथा दुर्गसश्रय[४] नाम दिया है । मनु ने दो प्रकार के सश्रयो का वर्णन किया है—

१ शत्रुओ से पीडित होने पर किसी की शरण लेना,

२ सज्जनो के साथ व्यपदेशार्थ शरण लेना—

> अर्थसपादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभि ।
> साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविध सश्रय स्मृत ॥[५]

समय आ पडने पर राजा के लिये आत्मरक्षार्थ अन्य राजा का सश्रय भी आवश्यक था ।

द्वैधीभाव

सोमेश्वर ने सर्वप्रथम द्वैधीभाव का किस प्रकार आचरण करना चाहिये इसका उपदेश दिया है । दो बली शत्रुओं के मध्य वाणी द्वारा अपने को समर्पित करता हुआ कौए की आख की भाति द्वेधीभाव का आचरण करे और लाभ, प्राप्ति, भय अथवा योग क्षेम के लिये उद्यत हुआ राजा उन दोनों के मध्य चिरकाल तक द्वैधीभाव का आचरण करता हुआ निवास करे अथात् उसके द्वैधीभाव के आचरण के विषय दोनों ही शत्रु जान न पावे और वह उन दोनो ही शत्रुओ को इस प्रकार से वश में कर ले । जब दो प्रकार की विपरीत भावनाओं द्वारा एक ही व्यक्ति दो विभिन्न व्यक्तियो को प्रसन्न करे उसी को सोमेश्वर ने द्वैधीभाव का आचरण माना है और इसी कारण उन्होने इस द्वैधीभाव के आचरण की तुलना काकाक्षि से दी है क्योकि कौआ एक ही आँख से समानरूप से अपने दोनों ओर की वस्तुओ को देखता है ।

कौटिल्य ने भी सधि तथा विग्रह दोनों गुणों के एक साथ प्रयोग करने को ही द्वधीभाव कहा है—

> "सधिविग्रहोपादान द्वैधीभाव इति ॥"[७]

कौटिल्य ने द्वैधीभाव के आचरण के विषय में स्पष्टरूप से लिखा है—

> "सहायसाध्ये कार्ये द्वैधीभाव गच्छेत् ॥"[८]

अथात् यदि किसी कार्य में सहायता की अपेक्षा हो तो द्वैधीभाव का आचरण

---

१ दुर्गापाश्रयो वा द्वधीभूतस्तिष्ठेत् ॥ अथ० ७।२१ ।

२ मानसो० २।१५।९५२ । ३ वही २।१५।९५४ ।

४ वही० २।१५।९५५ । ५ मनु० ७।१६८ ।

६ मानसो० २।१६।९५६ ५७ । ७ अथ० ७।१।११ ।

८ अथ० ७।१।१७

करना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर मे "बलार्धेन प्रयाण तु द्वैधीभाव तदुच्यते"[1] कहकर आधे बल के सहित प्रयाण का ही द्वैधीभाव बतला कर उसके आचरण को श्रेष्ठ माना गया है। यह द्वैधीभाव की परिभाषा सब से भिन्न है।

सोमेश्वर ने नातशास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा कथित पाँच प्रकार के द्वैधीभाव का आचरण किया है—

१ मिथ्याचित्त—जो मन में विरोध माने, किन्तु मुख से प्रिय भाषण करे।

२ मिथ्यावचन—जिसमे वाणी अत्यन्त प्रिय बोले, किन्तु कर्मों में बिल्कुल उसके विपरीत आचरण करे।

३ मिथ्याकरण—जब शत्रु के हृदय में थोडा-थोडा विश्वास उत्पन्न करते हुए अपनी दूषित भावनाओं द्वारा बहुत बडे कार्य का विनाश कर दिया जाय, ऐसे द्वैधीभाव के आचरण को मिथ्याकरण कहते है।

४ उभयवेतन—जो दो राजाओं के मध्य एक स्थान से गुप्त वेतन तथा अन्य स्थान से प्रकाशित वेतन लेता हुआ गुप्तरूप से रह कर शत्रु के अलक्षित मन्त्र को जान कर अपने स्वामी से निवेदन कर देता है, ऐसा आचरण करने वाले को उभयवेतन कहा जाता है।

५ युग्मप्राभृतक—मेरे शत्रुओं को रोक लो, इस प्रकार से एक राजा को उद्देशित करता हुआ उसे गज तथा अश्वादि देकर सतुष्ट कर तथा तुम्हारे रिपुओं को रोकूँगा और समय पडने पर मै अपनी सेना भेजूँगा ऐसा कहकर अन्य राजा को प्रसन्न करता है। इस प्रकार के वचनों को बोल कर द्वैधीभाव का आचरण करता हुआ जहाँ पर राजा उन दोनों ही शत्रु राजाओं के मध्य अपने लाभ एव रक्षा की इच्छा से निवास करता है उसे युग्मप्राभृतक कहते है।[2]

कौटिल्य ने भी अधिकाशत इन सभी प्रकार के द्वैधीभाव का वर्णन किया है,[3] किन्तु इनके नामो का उल्लेख नहीं किया है। मनु ने दो प्रकार के द्वैधीभावों का वर्णन किया है, १—अर्थसिद्धि के लिए कुछ सेना एक स्थान पर स्थापित कर देना और २—कुछ सेना लेकर अपनी रक्षा के हेतु दुर्ग मे निवास करना—

बलस्य स्वामिनश्चैव स्थिति कार्यार्थ सिद्धये।
द्विविध कीर्त्यते द्वैध षड्गुण्यगुणवेदिभि ॥[4]

किन्तु मनु तथा कौटिल्य द्वारा कथित द्वैधीभाव के आचरण से सोमेश्वर के

---

१ विष्णुधर्मोत्तर २।१५०।३५। २ मानसो० २।१६।९५८-९६९।

३ कौटिल्य अर्थशास्त्र ७।७।१५०।

४ मनु० ७।१६७।

द्वैधीभाव का आचरण बिल्कुल भिन्न है। मनु तथा कौटिल्य ने शत्रु के विरुद्ध द्वैधीभाव का आचरण करने का आदेश दिया है, किन्तु सोमेश्वर द्वारा कथित द्वैधीभाव के आचरण में निबल राजा अपने शत्रु का भी विश्वासपात्र बना रहता है और गुप्त रीति से शत्रु का भेदन भी कर देता है।

३ सोमेश्वर तथा उपायचतुष्टय

प्रत्येक वीर राजा को अपने राज्य के विस्तार एव अपनी प्रजा पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए चार उपायों का आश्रय ग्रहण करना पडता है। ये चार उपाय साम, दान, भेद तथा दण्ड है।

सोमेश्वर इन चारो उपायों मे साम को सर्वोत्तम, भेद को मध्यम, दान को अधम तथा दण्ड को कष्टतम बतलाते है।[1] बिना द्रव्य की हानि के तथा अपायरहित कार्य की सिद्धि हो जाने के कारण साम उपाय अत्यन्त उत्तम माना गया है। सदेहरूप होने के कारण भेद मध्यम माना गया है। धन के क्षय होने पर भी सिद्धि भाग्याधीन होने के कारण दान अधम उपाय है। इसके अतिरिक्त दण्ड कष्टतम उपाय है क्योकि लाभ प्राप्ति के लिए युद्ध किया जाता है किन्तु उसमें विजय राज्य तथा जीवन भी सदेह में पड जाता है।[2] इन चारो उपायो का उल्लेख रामायण मे भी प्राप्त होता है।[3] मनु ने उपायों द्वारा ही शत्रु को वश मे करने का आदेश दिया है और राज्य की वृद्धि में साम तथा दण्ड को अधिक उपयोगी माना है।[4] याज्ञवल्क्य ने भी "उपाया साम दान च भेदो दण्डस्तथैव च"[5] कह कर चारों उपायों का वर्णन किया है। शुक्र ने शत्रु का विनाश सामादि उपायों द्वारा बताया है। उपायो के महत्त्व का प्रदर्शन उन्होंने इस प्रकार किया है—

---

१ उपायेषूत्तम साम भेदो मध्यम इष्यते।
उपप्रदानमधम दण्ड कष्टतम स्मत ॥ मानसो० २।१७।९७२।

२ वही २।१७।९७३ ७६।

३ न साम रक्ष सु गुणाय कल्पते। न दानमर्थोपचितेषु युज्यते ॥
न भेद साध्या बलदर्पिता जना। पराक्रमस्त्वेव ममेह रोचते ॥
वा० रा० सुन्दर० ४१।२ ३।

४ एव विजयमानस्य ये स्यु परिपन्थिन।
तानानयेद्वश सर्वान् सामादिभिरुपक्रमै ॥
सामादीनामुपायाना चतुर्णामपि पण्डित।
सामदण्डौ प्रशसन्ति नित्य राष्ट्राभिवृद्धये ॥ मनु० ७।१०७ १०९।

५ याज्ञ० १।३४६

६ विनाशनी यास्ते सर्वे सामादिभिरुपक्रमै।
मित्रशत्रु यथायोग्यै कुर्यात्स्ववशवर्तिनौ ॥ शुक्र ४।२१।

उपायेन यथा व्यालो गज सिंहोऽपि साध्यते ।
भूमिष्ठा स्वर्गमायान्ति वज्र भिंदत्युपायत ॥[1]

अथात् उपाय के द्वारा गज, व्याल तथा सिंह भी वश मे हो जाते है और मृत्युलोक के जीव स्वर्ग तक पहुँच जाते है। इसके अतिरिक्त मदोन्मत्त हाथी के सिर पर भी पैर रखा जा सकता है—

"उपायेन पद मूर्ध्नि न्यस्यते मत्तहस्तिनाम् ॥[2]

इस प्रकार से उपाय द्वारा सब कुछ साध्य हो जाता है।

हाथीगुम्फा के शिलालेख म राजा खारवेल के द्वारा इन्हा साम, दण्ड तथा सधि आदि नियमो का आश्रय ग्रहण कर विजय प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है।[3] मत्स्य,[4] अग्नि आदि पुराण तथा बृहस्पति सूत्र एव विष्णुधर्मोत्तर[7] मे सात प्रकार के उपायो का वर्णन हुआ है, किन्तु इन सभी के उपाय भिन्न ह। पुराणादि साम, दान, दण्ड, भेद, माया, उपेक्षा तथा इन्द्रजाल इन सात उपायो को मानते है, कि तु बृहस्पति सूत्र[8] यद्यपि इन सभी सातों उपायों को मानता हे, किन्तु इन्द्रजाल के स्थान पर वध नाम का उपाय बतलाता है। कुछ ग्रन्थ माया, अन तथा इन्द्रजाल मानते है। महाभारत के सभापर्व[10] मे सात प्रकार के उपायो का उल्लेख हुआ है, किन्तु वनपर्व[11] मे केवल साम, दान, भेद, दण्ड तथा उपेक्षा इन पाच प्रकार के उपायो का प्रसग प्राप्त होता है। किन्तु साम, दान, भेद तथा दण्ड यह चार उपाय सर्वप्रसिद्ध हैं। इन चारों ही उपायो का विष्णुधर्म सूत्र मे शत्रु, मित्र, उदासीन पर यथायोग्य समय का विचार कर प्रयोग करने का आदेश दिया गया है—

"शत्रुमित्रोदासीनम ध्यमेषु सामभेददानदण्डान् यथार्ह यथाकाल प्रयुजीत्"[12]

साम

सोमेश्वर ने साम के आचरण के विषय में बतलाया है कि कुलीनों, कृतज्ञों, उदार चित्तवालो, साधुओ, काय करने वाले मेधावियों के साथ सर्वप्रथम साम का ही प्रयोग करना चाहिये। सोमेश्वर ने पाच प्रकार के साम उपायों का वर्णन किया है—

---

१ शुक्र० ४।२२। २ वही ४।११२८।
३ Epigraphica Indica vol xx page 79, 88
४ मत्स्य पु० २२२।२। ५ अग्नि पु० २२६।५ ६।
६ ब० सू० ५।१ ३। ७ विष्णुधर्मोत्तर २।१४६ १४९।
८ ब० सू० ५।२६३। ९ सरस्वतीविलास पृ० ४२।
१० महा० सभा० ५।२१। ११ महा० वन० १५०।४२।
१२ विष्णुधमसूत्र ३।३८।

१ कर्णसुभग—मधुर वचनो से युक्त उपाय ।

२ दैविक—जो साम विश्वासोत्पादक उपायो से तथा देवताओं की शपथों से पूर्ण हो ।

३ स्मारक— यह पहिले तुम्हारा बान्धव था, पीछे से तुम्हारे द्वारा भुला दिया गया इस प्रकार के स्मरण कराने योग्य वचनो से जो पूर्ण हो ।

४ लोभज—ग्राम, पुर, राष्ट्र, घोडे, हाथी तथा धन आदि दूगा, ऐसे वचनो से पूर्ण साम लोभज कहलाता है ।

५ निजार्पण—जिस साम में ऐसा कहा जाय कि मै आपके कार्य मे स्वय अपना शरीर अर्पित कर दूँगा ।

इन पाच प्रकार के सामों का वर्णन मानसोल्लास मे हुआ है ।[1] शुक्रनीति मे शत्रु तथा मित्र के विचार से साम दो प्रकार का माना गया है । तुम्हारे समान मेरा कोई दूसरा मित्र नहीं है यह मित्रविषयक साम है तथा हम लोगों को दूसरे का अनिष्ट न करना चाहिये और समय पडने पर एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए, यह शत्रुविषयक साम बतलाया गया है ।[2] इस प्रकार साम का आधार ग्रहण कर कोई भी राजा शत्रु अथवा बिगडे हुए मित्र को समझा बुझा कर अपने अनुकूल बना सकता है ।

भेद

साम उपाय के पश्चात् सोमेश्वर ने भेद उपाय का वर्णन किया है । जो शत्रु साम द्वारा वश मे न हो उस मद से उन्मत्त शत्रु को भेद उपाय द्वारा वश मे करना चाहिये तथा जिस प्रकार से हस नीर क्षीर का अलग अलग विश्लेषण कर देता है, उसी प्रकार भेदोपाय द्वारा शत्रुओ का भी विश्लेषण करना चाहिये ।[3] सोमेश्वर भेद उत्पन्न करने के नियम का निम्न प्रकार से वर्णन करते है—

शत्रुस्थैरात्मपुरुषैर्गूढैरुभयवेतनै ।
भीतापमानितान् क्रुद्धान् भेदयेच्च नृसगतान् ॥[4]

अर्थात् जो डरे हुए हैं, अपमानित हैं, क्रुद्ध है उनमे शत्रु के यहा स्थित गूढ तथा उभयवैतनिक आत्मपुरुषो द्वारा भेद उत्पन्न करा कर विजिगीषु राजा को उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिये । इस प्रकार भेद उत्पन्न करने के प्रमुख कारण राजा के जासूस ही होते है । यह भेद छ प्रकार का होता है[5]—

---

१ मानसो० २।१७।९७९ ९८५ । २ शुक्र० ४।२५ २८ ।
३ मानसो० २।१८।९८६ ८७ । ४ वही २।१८।९८८ ।
५ भेदोऽत्र षड्विध ॥ मानसो० २।१८।९८९ ।

१ प्राणहा—मेरे द्वारा यह मन्त्र भली प्रकार जान लिया गया है कि राजा तुमको आज या कल ही मारना चाहता है किन्तु तुमको अभी तक नहीं पता ऐसा कह कर जो विश्वास उत्पन्न करा कर भेद उत्पन्न करता है।

२ मानभग—तुम्हारे शत्रु से पीडित होकर राजा तुम्हारा मानापहरण करेगा ऐसा कहकर जहा द्वेष अथवा भेद उत्पन्न किया जाता है।

३ धनहानि—जब उभयवैतनिक व्यक्ति किसी धनिक व्यक्ति के लिये राजा से कहे कि यह बहुत धनवान है, किन्तु आप को कुछ नही देना चाहता, किसी प्रकार इसके धन का अपहरण करना चाहिये। राजा से इस प्रकार की मन्त्रणा करके उस धनी व्यक्ति से जाकर कहे कि यह अर्थ का लुब्धक राजा तुम्हारे धन को हर लेगा। इस प्रकार चुगली करके जो उभयवैतनिक भृत्य दोनो मे भेद उत्पन्न करा दे।

४ बन्धक—तुम्हारा स्वामी तुमम विश्वास नहीं करता इस कारण वह तुम्हे कभी भी हथकडियो द्वारा बाध कर कारागार मे डाल देगा ऐसे वचनों द्वारा विश्वास उत्पन्न कर अपने स्वामी के हित में रत हुआ भृत्य भेद उत्पन्न करता है।

५ दाराभिलाषक—तुम्हारी रूपसम्पन्ना तथा नवयौवनशालिनी भार्या को राजा चाहता है ऐसा मुझसे वर्णन कर रहा था। वह तुम्हारे जीवित रहने पर उसे नही प्राप्त कर सकता, इसी कारण वह तुमसे विद्रोह करेगा। इस प्रकार के वचनो द्वारा जब दो राजाओ के मध्य भेद उत्पन्न कर दिया जाता है। यह दाराभिलाषक भेद कहलाता है।

६ अगभग—यह इस कुल मे उत्पन्न हुआ है, इस कारण कभी न कभी वह राज्य प्राप्ति की इच्छा अवश्य करेगा और आपके हाथ तथा नेत्र निश्चय ही कटवा अथवा छिदवा देगा। इस प्रकार कह कर जो भेद उत्पन्न किया जाय।

इस प्रकार से सम्यक् रूप से शत्रुओ की प्रकृति मे भेद उत्पन्न करके शत्रु राजा का हृदय वज्ररूपी भेद से भिन्न करता है और भेद उत्पन्न करवा कर निश्चय ही अपने विरोधी राजाओं पर विजय प्राप्त करता है।[1]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे भेद के नियमों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, जो सभी मानसोल्लास मे मिलते है। अर्थशास्त्र में भेद के उपाय के विषय मे कहा गया है कि सामन्त, आटविक, यातव्य, शत्रु के कुल में उत्पन्न हुआ कोई सम्बन्धी किसी नजरबन्द हुए व्यक्ति के पुत्र आदि मे से किसी को अपना ओर मिला कर, उसके द्वारा कोष तथा धनादि की याचना करवा कर सामन्तादि में भेद उत्पन्न करे—

१ मानसो० २।१८।१००४। २ कौटिल्य अथशास्त्र ११।१।

सामन्ताटविकतत्कुलीनापरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण । कोशदण्डभूमिदाययाचन मिति भेदमाचरेत् ॥[१]

शुक्र ने मित्र तथा शत्रु के भेद से दो प्रकार के भेदो का वर्णन किया है,[२] जिसमे उन्होने स्त्रीविषयक भेद का भी वर्णन किया है—

परस्पर प्रातिकूल्य रिपुसेनपमन्त्रिणाम् ।
भवेद्यथा तथा कुर्यात्तत्प्रजायाश्च तत्स्त्रिया ॥[३]

जिन उपायो द्वारा शत्रु राजा का सेनापति, मत्रियो, प्रजा तथा रनिवास की स्त्रियों से विरोध हो जाय, उन्हा उपायो को विजिगीषु राजा को अपनाना चाहिये। इस प्रकार बलवान शत्रु को भी भेद उपाय का आश्रय ग्रहण कर वश मे किया जा सकता है। अत शत्रु को शक्तिहीन बनाने का सर्वोत्तम उपाय भेद है।

दान

सोमेश्वर ने अर्थभार का दान, कुल का स्वाधिकार, वेतन न देना तथा द्रव्यापहरण ये शत्रुता के चार कारण माने है,[४] अत उन्होने विरक्त हुए मन्त्रियो, अमात्यो, सचिव, सामन्त, मान्यक, भृत्य, बान्धव, अन्तर्वंशाजा तथा युद्ध मे बुद्धि द्वारा सहायता करने वाले व्यक्तियो को दान द्वारा प्रसन्न रखने का राजा को आदेश दिया है।[५] जो लोभी तथा व्यसनो म आसक्त चित्तवाले व्यक्ति है उन्हे भी शत्रु पर विजय प्राप्त करने को इच्छा से राजा को दान द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिये। इसके अतिरिक्त रागादि से हीन अपने सचिवादि को सन्तुष्ट करने के लिये राज्य की वृद्धि के हेतु उन्हे दान देना चाहिये।[७] इस प्रकार सोमेश्वर ने इन व्यक्तियो को दान के लिए उपयुक्त बतलाया है। पश्चात धनादि के दान द्वारा भी राजा बहुत से व्यक्तियो को अपने देश की वृद्धि के हेतु अपने वश मे कर सकता है।

इन दान के योग्य पात्रों को देने के लिये सोमेश्वर ने सोलह प्रकार के दानों का वर्णन किया है, जो क्रमश निम्नलिखित हैं—

---

१ अर्थशास्त्र ७।१६।८।

२ मित्रे यमित्रसुगुणा कीतयेदभेदन हि तत् ॥ शुक्र० ४।२६।
शत्रुसाधकहीनत्वकरणात्प्रबलाश्रयात् ।
तद्धीनतोज्जीवनाच्च शत्रुभेदनमुच्यते ॥ शुक्र० ४।३०।

३ शुक्र० ४।११३०।

४ मानसो० २।१९।१००५। ५ वही २।१९।१००६ ७।

६ वही २।१९।१००८। ७ वही २।१९।१००९।

८ वही २।१९।१०१२ १०२७।

१ अभीष्ट—जो वस्तु जिसे प्रिय हो उसकी रुचि के अनुसार उसे वही वस्तु प्रदान कर सन्तुष्ट करना।

२ हायन—एक वर्ष तक कुटुम्ब का भरणपोषण करने के लिये जो दान दिया जाय।

३ देश्य—जिसमे राष्ट्र तथा देशादि दान दिया जाय।

४ करज—जिसमें राष्ट्र द्वारा बनाया हुआ कर दान दिया जाय।

५ दन्ति—गजदान देना।

६ सप्तिज—अश्व दान देना।

७ ग्रामज—जिसमे कर लेकर अथवा बिना कर लिये हुये ग्राम दिया जाय।

८ शासन—जो दान पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र द्वारा भी लुप्त न हो।

९ भूषा, रत्न, सोना तथा आभूषण का दान।

१० वसन दान—जिसमे नाना वर्णों तथा नाना प्रकार के सूत्रों से युक्त अनेक देशो के बने हुए सूक्ष्म एव नवीन वस्त्र दान दिये जाय।

११ प्रतिपत्तिक—जब आसन, चमर, छत्र तथा यान आदि वस्तुये सम्मान पूर्वक दी जाय।

१२ आकर—जहाँ पर भूमि से रौप्य, काचन तथा रत्नादि निकलते हों, उस खनि भूमि का दान 'आकर' दान कहलाता है।

१३ रुक्मज—जिसमे श्रेष्ठ निष्क बहुत मात्रा मे दिये जाय।

१४ कन्यादान—शुभ लक्षणों वाली, आभूषणो से सुसज्जित कन्या का विधिपूर्वक दान करना।

१५ वैश्य—जब रूप, यौवन से सम्पन्न तथा गीत नृत्यादि मे चतुर वेश्या दी जाय।

१६ वेलाकर—जब पुण्यमयी रत्नाकर वेला मे नगर तथा वस्तु आदि दी जाय।

सोमेश्वर दान का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए कहते है कि जो भेद उपाय द्वारा असाध्य है वह भी दान द्वारा साध्य हो जाता है और भली प्रकार दिया हुआ दान दोनो लोकों को जीतने वाला होता है।[1] इस ससार मे कोई भी ऐसा नही है जो दान द्वारा वश मे न किया जा सकता हो, क्योकि देवता भी दान के द्वारा मनुष्यो के वश मे हो जाते है। सोमेश्वर ने दान को सर्वश्रेष्ठ

१ मानसो० २।१९।१०२८।

२ न सोऽस्ति लोके दानेन वशगो यो न जायते।
देवा अपि भवन्तीह वशगा सर्वदेहिनाम ॥ मानसो० २।१९।१०२९।

बतलाकर श्रेष्ठ दान को सभी अर्थों का साधक बतलाया है। दानशील राजा इस ससार में देवता के समान पूजा जाता है।[1]

कौटिल्य ने दान के विषय मे लिखा है—

भूमिद्रव्यकन्यादानभयस्य चेति दानमाचरेत्॥[2]

इससे विदित होता है कि वे भूमि, द्रव्य, कन्या तथा अभयदान को उपाय के अन्तर्गत मानते हैं। सोमेश्वर द्वारा कथित सोलह प्रकार के दान भी विशेषत भूमि, द्रव्य, कन्या तथा अभय दान से ही सम्बन्धित है। शुक्र ने शत्रु तथा मित्र के विचार से दो प्रकार के दानों का उल्लेख किया है। मेरा जो कुछ है सब तुम्हारा ही है, यहाँ तक कि जीवन भी तुम्हारे लिए अर्पित है इस प्रकार के वचन मित्रविषयक दान को सूचित करते है, किन्तु कुछ ग्राम तथा धन देकर प्रबल शत्रु को एक वर्ष के लिये सन्तुष्ट कर देना अमित्रविषयक दान है—

मम सर्वं तवैवास्ति दान मित्रे सजीवितम्।

करैर्वा प्रमितैर्ग्रामैर्वत्सरे प्रबल रिपुम्।
तोषयेत्तद्धिदान स्याद्यथा योग्येषु शत्रुषु॥[3]

इस प्रकार दान को भी शुक्र ने शत्रु तथा मित्र से सबधित बतलाया है। अत बिगडे हुए मित्र को शान्त करना तथा शत्रु को द्रव्य द्वारा प्रसन्न कर आत्मरक्षा करना ही दान कहा जाता है। दान द्वारा अनेक असाध्य व्यक्तियों पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

दण्ड

साम, भेद तथा दान उपायो के पश्चात् सोमेश्वर ने दण्ड उपाय का वर्णन किया है। जो शत्रु साम भेद तथा दान उपाय द्वारा वश मे न किया जा सके, उसे वश मे करने के लिये राजा को उस पर दण्ड उपाय का प्रयोग करना चाहिये। किन्तु दण्ड उपाय का प्रयोग करने के पूर्व राजा को अपनी शक्ति एव बल की मात्रा का ज्ञान कर लेना चाहिये। सोमेश्वर ने पूर्व मे ही दण्ड को अत्यन्त कष्टतम उपाय बतलाया है, इसी कारण जब कोई उपाय न चले तभी उसका प्रयोग करने का आदेश दिया है। मनु ने भी कहा है कि यदि अन्य तीन उपायों से शत्रु वश मे न हो तो दण्ड उपाय का प्रयोग कर उसे वश में करना चाहिये—

१ दान श्रेयस्कर श्रेष्ठ दान सर्वार्थसाधकम।
दानशीलो नपो लोके देववत् पूज्यते जनै ॥ वही २।१९।१०३०।

२ कौटिल्य अथ० ७।१६।७। ३ शुक्र० ४।२५ २९।

४ मानसो० २।२०।१०३१ ३२। ५ वही २।१७।९७३।

यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभि ।
दण्डेनैव प्रसह्यैताशच्छनकैर्वशमानयेत् ॥[1]

मनु ने दण्ड का प्रयोग राजा के लिये आवश्यक माना है, क्योंकि वे दण्ड को ही राष्ट्र की स्थिति का कारण मानते है ।[2] याज्ञवल्क्य का भी ऐसा मत है कि जिस समय और कोई उपाय से काम न चले उस समय दण्ड उपाय का आश्रय ग्रहण करना चाहिए—

सम्यक्प्रयुक्ता सिद्ध्येयुर्दण्डस्त्वगतिका गति ।[3]

याज्ञवल्क्य के "दण्डस्त्वगतिका गति " पाद का प्रसग बृहत्पाराशर मे भी प्राप्त होता है—

न युद्धमाश्रयेत्प्राज्ञो न कुर्यात् स्वबलाश्रयम् ।

वदन्ति सर्वे नीतिज्ञा दण्डस्त्वगतिका गति ॥[4]

कामन्दकनीतिसार भी इसी प्रकार के मत का अनुमोदन करता है ।[5] शुक्र ने भी दण्ड का उसी समय आचरण करने का आदेश दिया है, जिस समय अपने प्राणो का सशय हो—

सामैव प्रथम श्रेष्ठ दान तु तदनन्तरम् ।
सर्वदा भेदन शत्रोर्दण्डन प्राणसशये ॥
प्रबलेरौसामदाने सामभेदौधिके स्मृतौ ।
भेददण्डौ समे कार्यौ दण्ड पूज्य प्रहीनके ॥[6]

विष्णुधर्मसूत्र मे भी दण्ड का अत्यन्त विचार कर प्रयोग करने का आदेश दिया है ।[7] महाभारत मे कृष्ण ने युधिष्ठिर को क्रमश इन चारो के प्रयोग का उपदेश दिया है ।[8]

सोमेश्वर ने अपने दण्ड के प्रकरण मे दो प्रकार के दण्डों का उल्लेख किया है—

१ बलिष्ठ शत्रुओ एव व्यक्तियो के साथ प्रयोग मे लाये जाने वाले दण्ड ।

---

१ मनु० ७।१०८ ।

२ सामादीनामुपायान चतुर्णामपि पडिता ।
सामदण्डौ प्रशसन्ति नित्य राष्ट्राभिवृद्धये ॥ मनु० ७।१०९ ।

३ याज्ञ० १।३४६ । ४ बृहत्पाराशर सहिता पृ० २८४ ।

५ कामन्दक० १८।१ । ६ शुक्र० ४।३४ ३५ ।

७ विष्णुधर्मसूत्र ३।३८ । ८ महा० उद्योगपर्व १४८ ।

२ निर्बल एव अशक्त व्यक्तियों को दिये जाने वाले दण्ड ।[1]

शक्तिशाली व्यक्तियो को दिये जाने वाले ग्यारह प्रकार के दण्डो[2] का प्रसग मानसोल्लास मे प्राप्त होता है—

१ देशनाशक—जहाँ पर शत्रु के वनो को काट कर, जलाशयो को तुडवा कर ग्रामो को जलवा दे वह देशनाशक दण्ड होता है ।

२ जनांगछेदन—जिस दण्ड मे देशवासियो की नासिका, दोनो कान आदि कटवा दिये जाय ।

३ गोग्रह—जब शत्रु के देश मे उत्पन्न हुए सभी पशु बलपूर्वक हरण कर लिये जाय ।

४ धान्य हरण—जो अन्दर छिपाकर रखा हुआ हो, बाजार मे ढेर हो तथा जो एतदर्थ निमितपात्रो मे एकत्र हो, ऐसे रिपु के राष्ट्र मे स्थित धान्य का हरण धान्यहरण दण्ड कहलाता है । यह दण्ड देश मे दुर्भिक्ष का करने वाला है ।

५ बन्दिग्राह जहाँ पर गृहस्थ, कुटुम्बी, वनिक, व्यापारी आदि बदी बना लिये जाय वह बन्दिग्राह दण्ड होता है ।

६ देशहारक—देश के सभी व्यक्तियों को अभयदान देकर वहा स्थित रहकर राष्ट्र को आत्मसात कर ले वह देशहारक दण्ड होता है ।

७ धनादान अथवा बलादान—जब सैनिको द्वारा ग्राम पर आक्रमण कर बलपूर्वक वहाँ का सभी सोना आदि हरण कर लिया जाय ।

८ सर्वस्वहरण—जब महती सेना द्वारा शत्रु के अत्यन्त विशाल नगर को घेर कर वहाँ का धन, धान्य, गो, लौहभाण्ड, वस्त्र तथा गृह की सब वस्तुएँ छीन ली जाय ।

९ दुर्गभग—जब शत्रु के दुर्ग को सेना द्वारा चारो ओर से घेर कर, उसके चारों ओर अगाध कुएँ तथा खाई खुदवाकर तथा चारों ओर से आग जलवा कर उसे और अधिक प्रज्वलित करने के लिये उस पर प्रभूत मात्रा मे तेल डलवा कर दुर्ग मे स्थित शत्रु के व्यक्तियो को पीडित करे । इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने प्रत्येक प्रकार के दुर्ग के लिए विशेष प्रकार के दण्डो का प्रयोग बतलाया है, जैसे मरु दुर्ग मे अपनी सेना को खूब जल से तृप्त रखे किन्तु शत्रु के सैनिकों को तृषार्त कर दे । इस प्रकार का दण्ड दुर्गभग दण्ड कहलाता है ।

१० स्थानदाह—जब शत्रु के देश मे रह कर उसके तोरण, प्राकारादि से युक्त पुर, स्त्रियो के सुन्दर भवनों से पूर्ण अन्त पुर, पुत्रों के घर, अमात्य के

---

१ मानसो० २।२०।१०३३ । २ मानसो० २।२०।१०३८ १०८२ ।

गृहों, सचिवों के निवास स्थान, अन्य मनुष्यों के घरों, मन्दुरा, गजशाला, अनेक बाजारों आदि को जला कर भस्म कर देता है, वह स्थानदाह दण्ड कहलाता है।

११ देशनिवासक—जब शत्रु देश को त्याग कर उपभोगो से च्युत, गिरी कन्दराओं में निवास करने वाला, स्त्री, पुत्र, बन्धु तथा सचिवों से वियुक्त, क्षुधा पिपासा से पीडित चिन्ता तथा शोक से युक्त, यान, आसन तथा गज, अश्व से हीन हो जाता है, तब वह देशनिवासक दण्ड होता है।

१२ युद्ध—जब राजा शत्रु से क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिये उद्यत होता है। सोमेश्वर ने "युद्धावहो महादण्डशत्रुसंहारकारक"[1] कह कर युद्ध को महादण्ड माना है।

इन बारह प्रकार के दण्डो के अतिरिक्त सोमेश्वर ने अशक्त एव बलहीन शत्रुओं के साथ विष, घात तथा वध इन तीन प्रकार के दण्डों का उल्लेख किया है—

> बलशक्तिविहीनेन नृपेण रिपुघातिना।
> प्रयोज्या स्युस्त्रयो दण्डा विषघाताभिचारजा ॥[2]

यद्यपि विष्णुधर्मोत्तर मे भी इन्ही वध तथा विषादि दण्डों का वर्णन प्राप्त होता है, किन्तु इन दण्डों को विदेशी राज्यों से सम्बन्धित तथा प्रकाश एव अप्रकाश इन दो प्रकार के दण्डों के अन्तर्गत बतलाया गया है।[3]

इस प्रकरण मे सोमेश्वर ने सर्वप्रथम विष दण्ड का वर्णन किया है, किन्तु विष दण्ड का वर्णन करने के पूर्व सोमेश्वर ने स्थावर, जगम तथा कृत्रिम इन तीन प्रकार के विषों का वर्णन किया है—

> विष हालाहल शृंगि कालकूट भयावहम्।
> वत्सनाभ चतुर्थंतु स्थावर परिकीर्तितम् ॥
> सर्पदंष्ट्रादिसजात विष तज्जगम विदु।
> विरुद्धद्रव्यमिलित कृत्रिम विषमुच्यते ॥[4]

सोमेश्वर ने शत्रुओं मे जो विरक्त श्रेष्ठ पुरुष हो उनको विषरूपी रस प्रदान करने का आदेश दिया है। तालाब, कूप, वापी, छोटा तालाब, स्नान के जल, तैल, चरण दबाने में, खडाऊँ के सहित होने पर तथा क्रीडा के तालाब मे विष का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार के विष प्रयोग द्वारा राजा अपने शत्रु के

---

१ मानसो० २।२०।१०३७। २ मानसो० २।२०।१२२५।
३ विष्णुधर्मोत्तर २।१४६। ४ मानसो० २।२०।१२२६ २७।
५ वही २।२०।१२२८। ६ वही २।२०।१२२९ २९।

कुमार, सचिव, अमात्य, मन्त्री, सेनापति महागज तथा उत्तम अश्वो का क्षय कर शत्रु को निर्बल बना देता है।[१]

शत्रु का वध करना घातदण्ड कहलाता है। इसमे सर्वप्रथम सोमेश्वर ने शूरवीर, दृढ भक्त, प्राणो के भय से रहित, वीर, समयज्ञ, वध के उपायों को जानने मे चतुर तथा जिसने अधिक वेतन ग्रहण किया हो, ऐसे व्यक्ति द्वारा शत्रु का वध करवाने का आदेश दिया है।[२] शत्रु का वध उस समय करवाना चाहिये जिस समय वह गीत वाद्य मे आसक्त, द्यूत क्रीडा मे रत, मृगया मे आसक्त चित्तवाला, देवयात्रा मे, श्रक तथा मल्ल विनोद में, अन्तपुर मे, देव पूजा तथा अन्य कर्मों में, शूरवीरो की क्रीडा मे तथा भोजन के स्थान मे व्यस्त हो। इस प्रकार के शत्रु का पूर्वोक्त गुणो से युक्त पुरुष द्वारा वध करवाना घात दण्ड कहलाता है।[३] अनेक अभिचारक उपकरणों द्वारा शत्रु को मोहित कर, अपने स्थान से हटा कर, उसे अपने वश मे करके उसका वध करा डालने को अभिचारज दण्ड कहते है।[४] इसके उपकरणो का मानसोल्लास मे विस्तार-पूर्वक वर्णन हुआ है।[५]

यह तीनो ही दण्ड अत्यन्त कठोर प्रकृति के दण्ड है। सम्भवत सोमेश्वर इन दण्डों को विदेशी शत्रुओं के लिए भी प्रयोग करते थे। सोमेश्वर द्वारा कथित प्रथम प्रकार के अन्तर्गत कहे गये बारह दण्ड सर्वांगीण है अर्थात् ये दण्ड अधिकाशत अधिक व्यक्तियो, पुर, जन, राष्ट्र आदि से सम्बन्धित है, किन्तु विष, वध तथा अभिचारज दण्ड एकाकी है। यह एक ही व्यक्ति से सम्बन्धित प्रतीत होते है। प्रथम प्रकार के दण्ड द्वारा शत्रु को समूल नष्ट कर दिया जाता था, किन्तु दूसरे प्रकार के दण्डो द्वारा शत्रुविशेष को ही नष्ट किया जाता था।

इस प्रकार यह चारों ही उपाय राजा के लिये एव राज्यवर्धन के लिये तथा राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इन्हीं चारो का आश्रय ग्रहण कर राजा देश मे शान्ति स्थापित कर सकता है और प्रत्येक प्रकार के शत्रु तथा मित्र को वश मे कर सकता है।



१ वही २।२०।१२३०-३१। २ मानसो० २।२०।१२३२-३३।
३ वही २।२०।१२३४-३६। ४ वही २।२०।१२४२।
५ वही २।२०।१२३८-४२।

चतुर्थ अध्याय

मोमेश्वर तथा उपभोग

उपभोग, विनोद एव क्रीडाएँ

सोमेश्वर के ग्रथ की तीमरी, चौथी तथा पाचवी विंशतिया क्रमश उपभोग, विनोद एव क्रीडओ से सम्बन्धित हैं। और इन विषयों पर इतना विशाल एव विस्तृत साहित्य किसी भी ग्रथ में नही प्राप्त होता। सोमेश्वर ने बीस बीस प्रकार के उपभोग, विनोद एव क्रीडाओं का वर्णन किया है।

जैसा कि सभी को विदित है कि प्राचीन भारतीय समाज में राजा का थान अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता था। वह ईश्वर द्वारा भेजा हुआ प्रतिनिधि माना जाता था जिसकी उत्पत्ति मनुष्यों पर शासन करने के लिए मानी जाती थी। इतने विशाल उत्तरदायित्व को अपने कन्धो पर वहन करते हुए भी राजा का जीवन अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण था। उसका दैनिक जीवन शृगार तथा मन को हृद्य लगने वाले कृत्यो से पूर्ण रहता था।

सोमेश्वर ने जो सर्वप्रथम बीस प्रकार के उपभोगों का वर्णन किया है वह सभी राजा के शृगार एव व्यक्तिगत दैनिक जीवन से सम्बन्धित है। ये उपभोग राजा के शृगार, ऐश्वर्य तथा आनन्द के प्रतीक है और उनसे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। अत ये सभी उपभोग चार विषयों से सम्बन्धित है —

१—शृगार २—भोजन
३—स्वास्थ्य ४—मनोरजन

उपभोगो के पश्चात् सोमेश्वर ने बीस प्रकार के विनोदों का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में सोमेश्वर ने सम्भवत निम्नलिखित आधारो को ग्रहण किया है—

१—आध्यात्मिक एव ज्ञानवर्धक विनोद।
२—शारीरिक शक्तिवर्धन से सम्बन्धित विनोद।
३—न्यायसम्बन्धी विनोद।
४—मनोरजन प्रदान करने वाले विनोद।
५—यशोत्पादक विनोद।
६—विलक्षण विनोद।

आध्यात्मिक एव ज्ञानवर्धक विनोद के अन्तर्गत सोमेश्वर ने शास्त्र, गीत,

वाद्य, नृत्य आदि विनोदों का, शारीरिक शक्तिवर्धन के अन्तर्गत शस्त्र, मल्ल, मृगया आदि विनोदो का, न्यायसम्बन्धा विनोदों के अन्तर्गत अक तथा गजवाह्याली विनोदो का, मनोरजन प्रदान करनेवाले विनोदा मे कुक्कुट, महिष, मेष, लावक, सारमेय तथा पारावत आदि विनोदो का, यशोत्पादक विनोद के अन्तर्गत कथा तथा विलक्षण विनोद के अन्तर्गत चमत्कृत आदि विनोदो का वर्णन किया है। यद्यपि ये सभी प्रकार के विनोद प्रत्यक्षरूप से तो मनोरजन के ही साधन थे, कि तु अप्रत्यक्षरूप से यह विशेष प्रकार के ज्ञान, शक्ति, यश आदि की वृद्धि करते थे जैसा कि आगे के आलोचनात्मक एव ऐतिहासिक अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

ये विनोद निम्नलिखित दो श्रेणियों मे भी विभक्त किये जा सकते है—

१—राजोचित विनोद।

२—समाज म प्रचलित विनोद।

कुछ विनोद ऐसे है जिनमें अन्य जनो के साथ साथ राजा स्वय अपनी प्रियाओ परिवार के व्यक्तियों एव अपने सचिव तथा अमात्यादिको के साथ उपस्थित रहता था। ये विनोद बडे उत्सव के साथ होते थे। इन विनोदो के अन्तर्गत शस्त्र, शास्त्र, मल्ल, अक, गजवाह्याली, तुरगवाह्याली, चमत्कृत तथा मृगया आदि विनोद है। मेष, कुक्कुट, लावक आदि के युद्ध से उत्पन्न विनोद द्वारा राजा के साथ ही साथ समाज के निम्न श्रेणी से लेकर उच्च श्रेणी तक के व्यक्ति मनोरजन करते थे। ये विनोद समाज मे भी प्रचलित थे। इस प्रकार विनोद राजा के व्यक्तिगत जीवन के साथ ही साथ लौकिक जीवन से भी सम्बन्धित थे क्योकि इन विनोदो म कोई भी ऐसा विनोद नहीं जो केवल राजा के एकागी जीवन से सम्बन्ध रखता हो।

विनोदों के पश्चात् बीस प्रकार को क्रीडाये राजा के ऐश्वर्य को प्रकट करती है। ये क्रीडाये भी सम्भवत निम्नलिखत प्रकार की थीं—

१ वे क्रीडाये जिन्हें राजा केवल अपनी प्रेयसियों एव अन्य स्त्रियो के साथ करता था।

२ वे क्रीडाये जिनमे प्रेयसियो के साथ ही साथ राजा के सचिव तथा अमात्यादि भी भाग लेते थे।

३ वे क्रीडाये जिन्हें राजा अन्य बाहर के व्यक्तियों के साथ भी खेलता था।

इन सभी क्रीडाओं मे राजा स्वय सक्रिय भाग लेता था। प्रथम प्रकार की क्रीडाओं के अन्तर्गत आन्दोलन, सलिल, सेचन, ज्योत्स्ना, तिमिर, मधुपान, रति तथा प्रेम आदि क्रीडाये आ जाती है। दूसरे प्रकार की क्रीडाओं में भूधर,

वन, बालुका मन्य क्षेत्र आदि क्रीडाये तथा तृतीय प्रकार मे पहेलिका, वराटिका तथा चतुरग आदि क्रीडाये आती है।

विशेष प्रकार से इन सभी क्रीडाओ का राजा स्वय ही करता था, किन्तु कुछ को तो पूर्णरूप से वह करता था और कुछ मे अन्य व्यक्तियों का भी हाथ रहता था। इस प्रकार ये क्रीडाये दो प्रकार की थीं—

१ एकागी क्रीडाये २ सामूहिक क्रीडाये

उपर्युक्त उपभोग, विनोद तथा क्रीडाओ के वर्णन मे सोमेश्वर ने ऋतु, काल, अवसरादि का भी आश्रय लिया है जो इनकी प्रमुख विशेषता है। उदाहरणार्थ उपभोगो के प्रकरण मे ऋतुओ के अनुसार वस्त्रो, विलेपनों, आभूषणा आदि का धारण करने का आदेश दिया है। वसन्त ऋतु मे आन्दोलन तथा सलिल क्रीडा, विवाहादि के शुभावसरो पर सेचन क्रीडा एव गीत, वाद्यादि विनोदो के द्वारा मनोरजन करने का उल्लेख है।

आगे के पृष्ठो मे उपर्युक्त आधारो को ही ग्रहण कर उपभोगादि का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

गृहोपभोग

राजा का प्रासाद नाना प्रकार की कलाओ तथा सौन्दर्य का प्रतीक होता था। सोमेश्वर ने गृहोपभोग के प्रकरण मे विशेष रूप से राजा के प्रासाद एव अनेक प्रकार के गृहों का वर्णन किया है। उस समय राजा अपने प्रासाद में अनेक लक्षणों से युक्त विभिन्न प्रकार के चित्रों की रचना करवाता था। प्रासाद के रुचिर तुग सुवर्ण के कलशों से आच्छादित रहते थे। नाना वर्ण के विचित्र चित्रों एव वस्त्रो से सुसज्जित वितान ऊपर रहता था, जिसके स्तम्भों में सुन्दर वस्त्र का आवरण ढँका रहता था। पञ्चवर्ण वाले वितान के मध्य मे पद्म बना होता था तथा गुजापुज से आच्छादित मत्तिका की भित्ति पर गोमय का लेप होता था। इस प्रकार का वितान शाला के ईशान कोण भाग मे रहता था और उसके दक्षिण भाग में देवता का चित्र रहता था।[1] उसी के समीप वेदी से युक्त स्नान गृह रहता था।[2] उसी के समीप अग्निकुण्ड से युक्त होमशाला का धुआँ बाहर निकलने के लिए गवाक्षों का सुचारुरूप से निर्माण कराया जाता था।[3] गवाक्षों का प्रसग यह पूर्णरूप से स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर के समय मे व्यक्तियो को प्रकाश एव शुद्ध वायु के महत्व का पूर्ण ज्ञान था।

देवतागार के पश्चात् सोमेश्वर ऋतुओं के अनुसार बनने वाले अनेक

---

१ मानसो० ३।१।९०६-९११। २ वही ३।१।९१२।

३ धूमनिर्गमनोपायकृतजालपरिष्करा।
कृत्वैव देवतागारं तत्र सम्पूजयेद्धरिम्॥ वही ३।१।९१३।

प्रकार के गृहों एव अनेक प्रकार की शालाओं का वर्णन करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न का समय व्यतीत करने के लिए सुन्दर मण्डप का निर्माण होता था जिसकी बालुका से पूर्ण भूमि अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थो से मिश्रित जल से सीची जाती थी। ऐसी शाला मे राजा अपनी रानियों के साथ मध्याह्न का समय व्यतीत करता था—

हरिद्रादलसछन्ने वालुमूलकनिर्त्तिके।
मरुकैर्दमनैर्बद्धे सिकतामयभूतले॥
सेचिते गन्धतोयैश्च मडपे सुमनोहरे।
कान्ताभिर्वीज्यमानस्तु ग्रीष्मे मध्य दिन नयेत्॥[1]

प्रासाद के ऊपरी भाग मे बडा सा प्रागण होता था जहाँ ग्रीष्मकाल मे राजा रात्रि के समय सुखपूर्वक सल्लाप करने योग्य अपनी प्रेयसियों तथा गीत वाद्य मे निपुण, परिहास एव व्यग करने मे निपुण साहित्य के रस एव भाव को जानने वाले, कथा कहने में योग्य अन्य व्यक्तियों के साथ अर्ध रात्रि तक चन्द्र ज्योत्स्ना एव चन्द्रवारि से युक्त प्रागण मे बैठकर आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करता था। वहाँ से उठकर वह सुखशाला मे जाकर अपनी प्रिया के साथ सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करता था।[2] इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु मे अत्यन्त शीतल स्थान में वह अपना समय व्यतीत कर आनन्द का अनुभव करता था। वात्स्यायन ने भी हर्म्य तथा प्रासाद के बने हुए इसी प्रकार के स्थानों का वर्णन किया है जहाँ राजा अपनी प्रिया के साथ ज्योत्स्नापूर्ण रात्रि मे बैठकर मनोरजन करता था—

हर्म्यतलस्थितयोर्वा चन्द्रिकासेवनार्थमासनम्॥[3]

सोमेश्वर ने जो सुखशाला का प्रसग दिया है इससे विदित होता है कि यह सभवत राजा की शयनशाला होगी जहाँ राजा रात्रि के समय सोता था। यह अत्यन्त सुन्दर एव आनन्ददायिनी होगी इसी कारण इसका नाम सुखशाला[4] पडा। वसन्त ऋतु मे भी उसी ऋतु के अनुकूल आनन्द देने वाले गृह का निर्माण कराया जाता था, जिसमे राजा वसन्तकाल में सुखपूर्वक निवास करता था।[5]

वर्षाकाल में ठण्डी शीकरो तथा रन्ध्रो से शून्य चतुष्क नामक गृह में अपनी

---

१ वही ३।१।९१४ ९१५।
२ वही ३।१।९१६ ९२०।
३ कामसूत्र सू० ९।
४ मानसो० ३।१।९२०।
५ वही ३।१।९२१।

प्रिया के साथ रात्रि व्यतीत करता था। इस गृह का निमाण प्रासाद के हर्म्य के भीतर ही कराया जाता था —

नीरन्ध्रके निवाते च शीतसीकरवर्जिते।
हर्म्ये चतुष्किकाया वा वर्षासु निवसेन्नृप ॥[1]

वषाकाल के योग्य गृह के अतिरिक्त राजा के लिए हेमन्त एव शिशिर काल के योग्य गृहों का भी निमाण कराया जाता था, जिसमे राजा इन ऋतुओं में निवास करता था। ये हर्म्य तथा दिव्य गृह सब ओर से गवाक्षों से पूर्ण होने के कारण प्रकाश से पूर्ण तथा अत्यन्त भव्य एव रमणीय होते थे। ये गृह इस प्रकार के सुदृढ कपाट आदि लगाकर बनाये जाते थे जिससे उसमें शीत वायु का आगमन नही हो पाता था।[2] इस प्रकार के दिव्य गृह मे राजा अपना हेमन्त तथा शिशिरकाल व्यतीत करता था।

सोमेश्वर का इस प्रकार का गृहोपभोग का वर्णन तत्कालीन व्यक्तियों एव राजाओ के वैज्ञानिक एव कलात्मक ज्ञान को प्रकट करता है।

राजा के प्रासाद के विषय मे इसी प्रकार के वर्णन अन्य ग्रन्थों मे भी प्राप्त होते हैं। वात्स्यायन ने राजा के प्रासाद मे अनेक प्रकार के बने हुए चित्रो तथा स्तम्भों का वर्णन किया है—

आदर्शे कुड्ये सलिले वा प्रयोज्यायाश्छायाचुम्बनमाकारप्रदर्शनार्थमेव कार्य्यम्॥[3]

इसके अतिरिक्त स्तम्भ का एक स्थल पर और सुन्दर प्रसग प्राप्त होता है—

तदेव कुड्यसन्दशेन स्तम्भसदशेन वा स्फुटकमवपीडयेदिति पीडितकम्॥[4]

बुद्धचरित मे एक स्थल पर स्तम्भमायसम्[5] शब्द प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि लोहे के स्तम्भो का निमाण भी राजा के प्रासाद मे होता था। सुन्दरनन्दनकाव्य में सुवर्ण के बने हुए स्तम्भों का प्रसग प्राप्त होता है।[6] एक स्थान पर सोने के सुन्दर उपस्तम्भ का वर्णन हुआ है।[7] सोमेश्वर ने भी इसी भाति स्तम्भों पर सोने के कलशों का निर्माण कराने का आदेश दिया है।

कामसूत्रों मे ग्रीष्मकाल व्यतीत करने के लिए समुद्रगृहो एव मडपो का

---

१ मानसो० ३।१।९२२। २ मानसोल्लास ३।१।९२३ २५।

३ कामसूत्र सू० ३०। ४ वही १३।

५ बुद्धचरित १४।१२।

६ सुवर्णस्तम्भवष्माण ॥ सुन्दरनन्दनकाव्य १।१९।

७ उपस्तम्भ पिपतिर्षोर्दुवलस्येव वेश्मन ॥ वही १४।१५।

उल्लेख हुआ है, इसी मे राजा अपना मध्याह्न का समय व्यतीत करता था। यह समुद्रगृह इतने ठडे बनाये जाते थे जिससे राजा को ग्रीष्म के आतप का अनुभव नही होने पाता था—

वहि प्रवालकुट्टिम ते दर्शयिष्यामि मणिभूमिका वृक्षवाटिका
मृद्वीकामण्डप समुद्रगृहप्रासादान् गूढभित्तिसचाराश्चित्रकर्माणि ॥[1]

विष्णुस्मृति मे समुद्रगृह भेदक को दड देने का प्रसग प्राप्त होता है।[2] कालिदास ने भी 'दीर्घिका गूढमोहनगृहा'[3] कहकर इमी प्रकार के गूढमोहन गृहो का वर्णन किया है। इन गूढमोहन गृहों में सदैव शीतलता रहती थी।[4] भास ने अत पुर मे निर्मित एक प्रकार की चतुश्शाला का उल्लेख किया है।[5] इसके अतिरिक्त अविमारक म भी चतुश्शाला का वर्णन हुआ है। इसी चतुश्शाला का ही सोमेश्वर ने चतुष्कगृह नाम दिया है।

सोमेश्वर द्वारा कथित यह गृहोपभोग का प्रसग इस बात को स्पष्ट करता है कि उनके समय मे राजा का जीवन अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण था। सभी उसके आराम का विशेष ध्यान रखते थे। राजा के विश्राम करने के लिए प्रत्येक ऋतु के अनुकूल आनन्द प्रदान करने वाले विभिन्न प्रकार के गृहों का निमाण होता था ये सभी गृह ऋतु के अनुकूल होते थे और उन्ही स्थानों मे राजा निवास कर अपना समय व्यतीत करता था। इसके अतिरिक्त नागरिकों का जीवन भी बडा सुखी था। लोगो को वास्तुशास्त्र का विकसित ज्ञान था, उसी के आधार पर वे अपने गृहो का भी निमाण कराते थे। इस प्रकरण मे सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के आनन्द प्रदान करने वाले गृहों का वर्णन किया है इसी कारण इस प्रकरण का गृहोपभोग नाम दिया गया है।

स्नानोपभोग

प्राचीनकाल से स्नान के महत्व पर अधिक बल दिया गया है। स्नान विशेषत दो प्रकार का होता है—१ मुख्य, २ गौण, मुख्य स्नान जलद्वारा सम्पादित होता है किन्तु गौण स्नान बिना जल द्वारा किया जाता है। इन दोनो स्नानों के अनेक भेद है। मुख्य स्नान ६ प्रकार का होता है। (१) नित्य, (२) नैमित्तिक, (३) काम्य, (४) क्रियाग, (५) मलकर्षण,

---

१ कामसूत्र सू० १७, पृ० २८३ ८४। २ विष्णुस्मति ५।११७।
३ रघुवश १९।९। ४ वही १९।९।
५ प्रविश्यतामभ्यन्तरचतु शालम।
चारुदत्त (भास) गणपति शास्त्री द्वारा सपादित अध्याय १।
६ अविमारक (भास) Trivandrum Sans Series p 23 42 86

(६) क्रिया स्नान ।[1] अग्निपुराण[2] में इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है ।

नित्य स्नान शीतल जल द्वारा किया जाता है । साधारणत इसमें उष्ण जल का प्रयोग नहीं होता है । शख[3] के अनुसार यदि कोई व्यक्ति नित्य स्नान में उष्ण जल का प्रयोग करता है तो उसकी शारीरिक शुद्धि तो हो जाती है किन्तु उसका आध्यात्मिक फल उस व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता । जो स्नान किसी विशेष अवसर पर अथवा किसी कारणवश किया जाय ।[4] यथा पुत्रजन्म के अवसर पर, यज्ञ के अन्त मे तथा ग्रहण आदि के अवसर पर, ऐसे स्नान को नैमित्तिक स्नान कहते हैं । जो स्नान किसी इच्छित पदार्थ की प्राप्ति के लिए किया जाता है वह काम्य स्नान है, जैसे तीर्थ को जाते समय अथवा चन्द्रमा के पुष्प नक्षत्र में होने पर अथवा सुख की प्राप्ति के लिए माघ तथा फाल्गुन मास में प्रात काल स्नान किया जाता है ।[5] जब कोई व्यक्ति धार्मिक कृत्य के अवसर पर स्नान करता है उसे क्रियाग स्नान कहते है । उदाहरणार्थ कूप, मदिर आदि बनवाने के अवसर पर ।[6] शरीर में तैलादि लगाकर केवल शरीर की शुद्धि के लिए स्नान किया जाता है उसे मलापकर्षक अथवा अभ्यग स्नान कहते हैं ।[7] तीर्थों मे स्नान कर लेने मात्र को ही जो अपने पुण्य का अन्तिम कारण मानता है वह क्रिया स्नान कहलाता है ।[8]

महाराज सोमेश्वर ने स्नानभोग प्रकरण में मलापकर्षक अथवा अभ्यग स्नान का ही वर्णन किया है । वास्तव में तैलादि के प्रयोग द्वारा शारीरिक शुद्धि करके

---

१ स्नान तु द्विविध प्रोक्त गौणमुख्यप्रभेदत ।
तयोस्तु वारुण मुख्य तत्पुन षडविध भवेत् ॥
नित्य नमित्तिक काम्य क्रियागमलकषणम ।
क्रियास्नान तथा षष्ठ षोढास्नान प्रकीर्तित ॥
शख quoted by अपराक पृ० १२७

२ अग्निपुराण १५५।३ ४ ।

३ शखस्मति ८।९ १० ।

४ पुत्रजन्मनि यज्ञ च तथा चापत्यकमणि ।
राहोश्च दशने दान प्रशस्त नान्यदानिशि ॥ पाराशर १२।२६ ।

५ पुष्यस्नानादिक स्नान दैवज्ञविधिचोदितम ।
तद्धि काम्य समुद्दिष्ट नाकामस्तत्प्रयोजयत ॥ शख ८।४ ।

६ इष्टापूतक्रियाथयत्क्रियाग स्नानमुच्यते स्मत्यथसार, पृ० २७ ।

७ मलापकषणाथ तु स्नानमभ्यगपूवकम ।
मलापकषणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ शख ८।६ ।

८ स्नानमेव फल तीर्थे क्रियास्नान तदुच्यते । स्मृत्यर्थसार, पृ० २७ ।

स्नान के आनन्द को प्राप्त करना ही स्नानोपभोग की कोटि मे आ सकता है, क्योंकि अन्य प्रकार के स्नानों का सम्बन्ध किसी न किसी रूप मे धार्मिक कृत्यों से है। इस स्नान को मलव्यपोहन अथवा मलस्नान भी कहते हैं। इस प्रकार के स्नान के लिए शास्त्र के नियमों का पालन आवश्यक नही। यह पूर्ण रूप से मनुष्य की इच्छा के ऊपर निर्भर है।[१]

अभ्यगस्नान के सम्बन्ध मे महाराज सोमेश्वर ने कुछ तिथिया आदि अभ्यग के लिये वर्जित बतलाई है। उनका कथन है कि द्वितीया सुख का नाश करने वाली, दशमी पुत्र का नाश करने वाली, एकादशी रूप को हरने वाली, त्रयोदशी धन का नाश करने वाली तथा चतुर्दशी रोग उत्पन्न करने वाली होती है। मन्वादि युगो तथा उभय पर्वों मे भी अभ्यग वर्जित है।[२]

इनमे से दशमी तथा त्रयोदशी तिथियों मे महर्षि गर्ग ने भी मलस्नान का वर्जन किया है। उनका कथन है कि दशमी मे स्नान पुत्रनाश के लिए तथा त्रयोदशी मे स्वय अपने नाश के लिए होता है।[3] महाराज सोमेश्वर की उक्ति इससे बहुत कुछ मिल्ती जुलती है, यहा तक कि शब्द भी बिल्कुल मिलते है—

दशमी पुत्रनाशिनी	अभिलषितार्थचिन्तामणि
दशमी पुत्रनाशाय	गर्ग
वित्तनाशी त्रयोदशी	अभिलषितार्थचिन्तामणि
स्वनाशाय त्रयोदशी	गर्ग

सोमेश्वर ने त्रयोदशी को 'वित्तनाशी' बतलाया है और गर्ग ने 'स्वनाशाय' कहा है। वास्तव में धन का नाश होना भी स्वनाश ही है। गर्ग ने शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय के लिए ये तिथिया वर्जित बतलाई हैं।[४] सोमेश्वर ने क्षत्रिय होने के नाते इनका पाल्न किया है। पर्वकाल मे स्नान का वर्जन व्यास ने भी बतलाया है।[५]

---

१ क्रियते वा न वा यत्त शास्त्रय त्रणया विना।
मलव्यपोहन मलस्नान याहच्छिक तु यत्॥ गग। अपराक १९६।

२ अभिलषिताथचि तामणि ३।२।९७१ ७३।

३ दशमी पुत्रनाशाय स्वनाशाय त्रयोदशी॥ वही।

४ त्रयोदश्या तृतीयाया दशम्या चैव सवश।
शूद्रविटक्षत्रिया स्नान नाऽऽचरेयु कदाचन॥
गग quoted by। अपरार्क पृ० १९६।

५ श्रीकाम सवदा स्नान कुर्वीताऽऽमलकैनर।
सप्तमी पचमी चैव पवकाल विवजयेत्॥
व्यास quoted by। अपरार्क, पृ० १९५।

इसके अतिरिक्त सोमश्वर न सोम, बुध तथा शनिवार मे अभ्यग का बडा महत्व बतलाया है। इन दिनों मे अभ्यग कराने से राजा की आयु बढती है और उसको विपुल लक्ष्मी प्राप्त होती है।[१]

अभ्यग के लिए एक विशेष प्रकार का तैल प्रयुक्त होता था। वह तिलो से यन्त्र द्वारा तैयार किया जाता था और वह केतकी, जाती, पुन्नाग, चम्पक की सुगन्धि से युक्त होता था। त्वचा के दोषों को दूर करने वाले तथा ओषधियो की गन्ध से सिद्ध तैलो द्वारा तरुणी जनो ने कोमल हाथों से अभ्यग कराकर मल्लों द्वारा देह को दबवाये और फिर कोमल हाथो से धीरे-धीरे मर्दन करवाए। इसके पश्चात् उबटन के लिए कोष्ठ, तक्कोलक, मुस्ता, ग्रन्थिपर्णा, दोनो निशाए, पालक, तगर, मासी, अजगन्धा तथा पुष्कर की जडों को ग्रहण करके छाया मे सुखाएँ। इसके अतिरिक्त नीम, राजवृक्ष, तुला तथा आर्जक के पत्रो को लेकर उपर्युक्त द्रव्यों के साथ मिलाए, फिर इलायची, जाती, सरसों, तिल, कुस्तुम्बरु, वाकुचा, चक्रमर्द के बीज ले। लौंग, पद्मक, लोध्र, श्रीखड, सुरदारु, अगरु और सरल काष्ठ को मिलावे और नागकेसर, पुन्नाग, काकली और पिचु मन्दक के फूल उनमे मिलावे। साथ ही गुग्गुल, सैन्धव, चोल तथा सज्जरस द्रव्यों को पीस कर पय से अथवा काजिक से उबटन करावे।[२]

देह मे लगे हुए तैल को छुडाने के लिए एक विशेष प्रकार के पदार्थ का उल्लेख किया गया है। मदन के मूल को पीस कर आरनाल से ससिद्ध गेहूँ के चिकने चूर्ण मे मिलाकर खली तैयार करे और उससे तैल को छुटाए।[३] शरीर में सुवासित तैल के मर्दन का उल्लेख कादम्बरी (कथामुख भाग) मे भी मिलता है। परिचारक या परिचारिका रईस के शरीर मे तेल मलता थी। नागरक की गर्दन या मन्या पर विशेषरूप से मर्दन होता था क्योकि बुद्धिजीवी व्यक्ति की मन्या पर तेल मलने से मस्तिष्क के तन्तु जाग्रत हो जाते है।

वात्स्यायन के कामसूत्र में नागरक की दिनचर्या के प्रसग में उसके स्नान का विवरण मिलता है। नागरक प्रात के दैनिक कृत्यो से निबट कर स्नान करता था। वह स्नान नित्य करता था। हर दूसरे दिन अपने अगो का उत्सादन कराता था और हर तीसरे दिन फेनक (एक प्रकार का साबुन) का प्रयोग करता था।

जैसा कि आयुर्वेद के प्रकरण से स्पष्ट है महाराज सोमेश्वर आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता थे। स्नान के समय उपर्युक्त औषधियों का प्रयोग उनके आयुर्वेद के विशेष ज्ञान का द्योतक है। इनका प्रयोग शरीर को निर्मल तथा स्वस्थ

---

१ अभिलषित० ३।२।९७३ ७४। २ मानसो० ३।२।९३१ ४१।
३ वही ३।२।९४१ ४३।

बनाना है। आयुर्वेद के साथ ही साथ ज्योतिष के अनुसार विशेष तिथियों तथा दिवसों पर तैलादि का प्रयोग अथवा वर्जन उनके ज्योतिष के ज्ञान को पुष्ट करता है।

अभ्यग, मर्दन, उबटन आदि के पश्चात् राजा स्नान के लिए तैयार हो जाता था। राजा का स्नानगृह घर के अन्दर ईशान कोण मे होता था। स्नानगृह मे सोने के सुन्दर स्तम्भ होते थे और स्फटिक मणि की सुन्दर वेदी होती थी। काच की कुट्टिम शोभायमान होती थी और अमूल्य पत्थरों से जडी हुई दीवारे होती थी। इसके अतिरिक्त उसमे विचित्र चीनपट्ट का वितान होता था।[1]

स्नानगृह के अन्दर नाना तीर्थों से आया हुआ विमल तथा मल को हरने वाला, सुगन्ध से युक्त जल कलशा में भरा रखा रहता है। रूप और लावण्य से युक्त श्रेष्ठ स्त्रिया इधर-उधर घूमती हुई तथा राजा के मुख से दृष्टि किए हुए उसको स्नान कराती थी। साथ ही साथ बालो म वे सुगन्धित तथा चिकने आमल्को का लेप करती थो। इस प्रकार स्नान भोग का आनन्द प्राप्त कर राजा अगमार्जन कर गीले कपडे उतार कर सफेद धौतवस्त्र धारण करता था।[2]

धौतवस्त्र के अर्थ के विषय मे विद्वानों मे बडा मतभेद है। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है धुला हुआ वस्त्र। ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल मे केवल धोती नित्य धोई जाती थी और अन्य वस्त्र कई दिन तक बिना धुले ही पहने जाते थे। कुछ विद्वान् धौत शब्द का अर्थ अधोवस्त्र लेते है। प्राचीन काल मे उष्णीष, उत्तरीय तथा अधोवस्त्र यही मनुष्यों का पहनावा था। किन्तु इस शब्द का अर्थ धुला हुआ वस्त्र अधिक उपयुक्त जान पडता है। महाराज सोमेश्वर ने तो 'सुधौत वसन' कह कर इस बात को और स्पष्ट कर दिया है अर्थात् अच्छी तरह धुला हुआ वस्त्र स्नान के बाद धारण किया जाता था।

कादम्बरी के कथामुख भाग मे इसी प्रकार से स्नान किए जाने का वर्णन है। परिचारक अथवा परिचारिका द्वारा मालिश के बाद रईस स्नानगृह मे रखी हुई एक जल की द्रोणी (टब) मे बैठता था और तत्पश्चात् स्नान की चौकी पर बैठता था। तब उसके सिर पर सुगन्धित जल की धारा डाली जाती थी। अच्छी तरह से स्नान कर लेने के पश्चात् वह केंचुल के समान श्वेत तथा चमकीले धौत वस्त्र को धारण करता था।

अजन्ता की गुफा मे गौतम के स्नान का इसी प्रकार का सुन्दर चित्र मिलता है। गौतम स्फटिक की चौकी पर विराजमान है। पीछे दो परिचारिक

१ मानसो० ३।२।९२७ ९३०। २ वही ३।२।९४३ ५३।
३ वही ३।२।९५३।

खडे है जो सिर म सफेद वस्त्र लपेटे हुए गौतम के ऊपर जल डाल रहे है। एक परिचारिका थाली म कुछ सामग्री लिए हुए खडी है। एक पारचारिक सुगन्धित जल से पूण कलश ला रहा है। कुछ परिचारिकाएँ और है जो प्रसाधन की सामग्रिया ली हुई है। इसा प्रकार १७वीं गुहा मे भी एक चित्र मिलता है जिसमे स्नान के उपरान्त रानी के प्रसाधन का चित्रण है।

स्नान के समय सिर के बालो मे आमलक के लेप का उल्लेख जो महाराज सोमेश्वर ने किया है वह कादम्बरी के कथामुख में स्नान के सम्बन्ध मे मिलता है। स्मृतिचन्द्रिका[1] मे मार्कण्डेय पुराण का एक उद्धरण मिलता है जिसमे यह कहा गया है कि ऐश्वर्य की इच्छा वाले व्यक्ति को स्नान के समय आमलक का प्रयोग अवश्य करना चाहिये किन्तु सप्तमी तथा नवमी तिथिया तथा पर्व के दिनो में ऐसा प्रयोग त्याग देना चाहिए—

श्रीकामस्तु सदा स्नान कुर्वीतामलकै नर ।
सप्तमी नवमीं चैव पर्वकाल च वर्जयेत् ॥

स्नान के विषय मे कामसूत्र मे भी सुन्दर प्रसग प्राप्त होते है। उस समय नागरिक नित्य स्नान करता था, दूसरे दिन शरीर का उत्सादन करता था। स्नान के समय साबुन की भानि का एक श्वेत पदार्थ प्रयोग में लाया जाता था जिसे फेनक कहते थे। इसे व्यक्ति स्नान के समय तीसरे दिन लगा कर अपने शरीर को स्वच्छ करता था—

नित्य स्नान, द्वितीयकमुत्सादन, तृतीयक फेनक, चतुर्थममायुष्यम्, पचमक दशमक वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम् ॥[2]

इस प्रकार स्नान के अनेक प्रसग प्राप्त होते हैं, किन्तु सोमेश्वर ने स्नान के प्रकरण का स्नानोपभोग नाम देकर उसे भी उपभोग के अन्तर्गत माना है। यद्यपि यह नित्य की ही की जाने वाली क्रिया है, किन्तु इसे भी उनके समय मे अत्यन्त आनन्द एव उत्साह के साथ किया जाता था। इस प्रकार का स्नान स्वास्थ्य तथा आयु का वर्धक होता था।

पादुकोपभोग

स्नान भोग के पश्चात् सोमेश्वर महाराज ने पादुकाओं के उपभोग के विषय में लिखा है। इसके अन्तर्गत उन्होने केवल राजा के पहनने योग्य पादुकाओं का ही वर्णन किया है। इस प्रकरण मे विशेषरूप से दो प्रकार की पादुकाओं का विवरण प्राप्त होता है। १ लकडी की बनी हुई,[3] २ चमडे की चप्पल।[4]

---

१ स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० १२३। २ कामसूत्र सू० १७।
३ मानसो० ३।३।९५४। ४ वही ३।३।९५६।

स्नान से निवृत्त होकर राजा श्रीपणा, देवदारु अथवा हरिचन्दन की लकडी की बनी हुई अथवा स्यन्दन आदि के वृक्ष की लकडी की बनी हुई पादुकाओ को पहनता था। ये पादुकाये चारो ओर से मयूरपिच्छ तथा गुजा आदि से ढकी रहती थी जो देखने म बहुत सुन्दर लगती थी।[१]

इनके अतिरिक्त राजा अनेक वर्णा मे रगी हुई चमडे की पादुकाओ का भी प्रयोग करता था जिन पर हाथी दात का तथा सुन्दर सोने का काम बना होता था। इनके विषय मे सोमेश्वर ने लिखा है—

विचित्रे सुदृढे श्लक्ष्णे शिंजाने सुमनोहरे।
लघुछत्रकृताधारे सुस्पर्शे पादुके समे।[२]

इस वर्णन से ऐसा विदित होता है कि ये पादुकायें बडी ही विचित्र, सुदृढ तथा अत्यन्त सुन्दर होती थी और ये केवल पैर के अगले भाग मे पजे तक ही ढॅकी होती थीं। सभवत ये पादुकाय चप्पल की भॉति होता होगी और राजा अपनी सुविधा के लिए इन्हे धारण करता होगा।

इन पादुकाओं के प्रसग अनेक ग्रन्थों मे प्राप्त होते है क्योकि यह तो राजा के लिए अत्यन्त साधारण वस्तु है। लकडी की बनी हुई पादुकाओं का प्रसग श्रीमद्भागवतपुराण में भी प्राप्त होता है।[३] देवीपुराण में देवता की पादुका के निर्माण के विषय में निम्नलिखित प्रसग प्राप्त होता है—

मणिरत्नमयीकार्य्या हेमरूप्यमयीपि वा।
चन्दनेनापि कर्तव्या पादुकाप्रतिमापि वा॥
श्रीपर्णाश्रीदुमाचापि देवदारुमयीपि वा।
षडगुला च सा कार्य्या पादुके पूजयेत् सदा॥

ज्योतिस्तत्व मे पादुका के धारण की विधि इस प्रकार बतलाई है—

वर्षातपादिके छत्री दण्डी राज्यटवीषु च।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्क सदा व्रजेत्॥

राजवल्लभ के अनुसार पादुका के धारण करने से बल तथा ओज की वृद्धि होती है। नेत्रो को लाभ होता है तथा पैरों के रोग दूर होते है—

पादप्रधारण वृष्यमोजस्य चक्षुषोहितम्।
सुखप्रचारमायुष्य बल्य पादरुजापहम्॥

---

१ मानसो० ३।३।९५४ ५५। २ वही ३।३।९५७।

३ पादुके न्यस्य पुरत प्राञ्जलिर्बाष्पलोचन।

श्रीमद्भागवत पु० ९।१०।४०।

इसके विपरीत, पादुका न धारण करने से स्वास्थ्य, आयु, इन्द्रिय तथा नेत्रों की ज्योति क्षीण होती है—

पादाभ्यामनुपानद्भ्या नृणा चक्रमण सदा ।
अनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रियघ्नमदृष्टिकृत् ॥

सोमेश्वर महाराज ने इन पादुकाओं का इस प्रकार से वर्णन किया है जो वास्तव मे उपभोग के अन्तर्गत आ गई है। लकडी की बनी हुई पादुकाओ को राजा सम्भवत स्नान के पश्चात् तथा भोजनादि के समय धारण करता होगा और चर्म निमित पादुकाएँ वह शेष समय मे धारण करता होगा ऐसा इस प्रसग को पढकर विदित होता है।

ताम्बूलोपभोग

भारत में २००० वर्ष पूर्व इस नागवल्ली का सेवन जावा, सुमात्रा आदि दक्षिणी सामुद्रिक टापुओं से प्रारम्भ हुआ था। कुछ ही समय पश्चात् शनै-शनै सम्पूर्ण भारत की सभी जातियों मे विशेष रूप से प्रचलित हो गया। इस ताम्बूल के उपभोग को सभी उपभोगो के म य अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था।

श्री एल० वी० रामस्वामी अय्यर[1] ने कुछ द्राविडी शब्दों को लेकर ताम्बूल शब्द को द्राविडी उत्पत्ति का बताने का प्रयत्न किया है, किन्तु इस तुलना द्वारा वे किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंचते है और अन्त में आग्नेय शब्दों (austric) से सम्बन्ध की सम्भावना करते है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार आर्य लोग भारतवर्ष में आने के पूर्व ताम्बूल लता से परिचित न थे और न उसके उपभोग को ही जानते थे। आर्यों ने ताम्बूल पत्र का प्रयोग नाग जातियों से सीखा। इसी के आधार पर वे नागवल्ली (सस्कृत) शब्द की उत्पत्ति मानते हैं। राजशेखर विरचित प्रबन्धकोष में भी इस ताम्बूल को नागों की ही देन माना गया है, क्योकि उसमे लिखित एक कहानी में इस प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है कि पाताल्लोक के नागो के राजा वासुकि ने अपनी कन्या भूलोक के राजा उदयन को ब्याहते समय दहेज मे उसे सवत्सा कामधेनु, विशिष्ट नागवल्ली (ताम्बूल), सोपधान सतूलिका शय्या तथा रत्नोद्योत प्रदीप नामक चार बहुमूल्य एव अद्भुत रत्न दिए थे। उसी समय से इस ताम्बूल पत्र का उपभोग भारतीय नृत्यों के अन्त पुर में प्रचलित होने के साथ ही साथ बाहर निकल कर सभागृहों एव राजदरबारों तक में अधिकाशरूप से प्रचलित होने लगा। राजा तथा प्रजा सभी इस नागपत्र

---

१ Journal of Oriental Research, Madras, Vol V, p p 1–10

२ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० २३ २४।

का उपभोग करने लगे। प्रो० प्रह्लाद प्रधान ने बरई जाति में प्रचलित प्रवादों एव प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर यह बतलाया है कि पान नाग जाति की देन है।[1]

इसी प्रकार यू० वेकट कृष्णराव[2] भी ताम्बूल को दक्षिण भारत की ही अमूल्य निधि मानते है और इसका सम्बन्ध द्राविडी भाषा के शब्दों से (मलयालम वेट्टिल, तामिल वेट्टिलाई, कन्नड वीळ्यदेल) बतलाते हैं। उनका यह भी कथन है कि ताम्बूल का प्रयोग मगबार से पुर्तगाल होता हुआ अन्य योरोपीय देशों मे फैला। पुर्तगाली व्यापारी व्यापार करने के साथ ही अपने साथ ताम्बूलपत्र भी ले गए जिससे वहाँ के लोगो को भी इसका ज्ञान हो गया। डॉ० पी० सी० बागची ने कतिपय पाश्चात्य विद्वानो के अनुवाद मे ताम्बूल शब्द का सम्बन्ध निम्नलिखित आग्नेयदेशी भाषाओ के शब्दों से बतलाया है—

अलक	बलु
ख्मेर	म्लुव
बह्नार	बॉ लॉ उ
रोगाव	बॉ लो उ
सुए	मलुअ
ल्वें	में लु
स्तींग	म्लु
खा	ब्लु
पलोंग	प्लू

ये सब रूप एक मूल रूप मे घटाये जा सकते हैं जिसके आदि अक्षर मे बहुधा भाव उलट फेर करके हो जाता है।

इन रूपो के अतिरिक्त निम्नलिखित रूप है जो अधिक जटिल है—

हलॅग	लमलु
मोन	जॅबलु
मलय प्रायद्वाप	चॅम्बइ
	अमइ
	जॅम्बइ
	जॅम्बि

---

१ विश्वभारती खड ४ पृ० १६४ १६५।

२ Piper Betle or Betel Leaves
Journal of Oriental Research, Madras, Vol 17 p 158

३ Pre Aryan and Pre-Dravidian in India

पूर्व के दो नामो मे म्लु। ब्लु अश एक उपसग के साथ पुन प्रकट होता है। ल-म्लु, ज-ब्लु। मलय प्रायद्वीप के रूपों म च, चॅम् अथवा जॅम् उपसर्ग है और प्राचीन धातु जिसने ल का इ हो जाता है घट कर मइ, बइ, बि रह जाती है।

उसमे भारतीय आर्य परिवार के निम्नलिखित रूपों को समझा जा सकता है—

सस्कृत	ताम्बूल्म्
पाली	तम्बूली, तम्बूल
प्राकृत	तम्बोल, तम्बोलि

यहा पर मूल शब्द बूल, बोल है जिसमे तम् अथवा ताम् उपसर्ग है। भारतीय आर्य के अश बूल तथा आग्नेयदेशी बल्ू मे केवल स्वर के हेर-फेर का ही अन्तर है। इसके अतिरिक्त मोन ख्मेर भाषाओ में क, त उपसर्ग, जो पशुओं तथा पौधों के नामां को बनाने मे प्रयुक्त होते है, बहुधा मध्य मे अनुनासिक द्वारा धातु से सम्बद्ध रहते है—जैसे तन्, तम् आदि। ये वही उपसर्ग हैं जो तोम् ढोम् रूपो मे साधारणतया स्तींग, बहनार तथा कम्बोडी भाषाओं के वृक्षों के नामो के पूर्व मे मिलते है।

अत भारतीय आर्य समुदाय के ताम्बूल, तम्बूल, ताम्बूली, तम्बूली, ताम्बूल्म्, तम्बूलम् शब्द जो योरोपीय परिवार के नही ज्ञात होते है, स्वय (पान की) लता की भाति आग्नेयदेशी है।

जार्जस लिब्रन (Georges Lebrun) नामक विद्वान[१] ने पान की उत्पत्ति जावा, सुमात्रा आदि टापुओं में बतलाई है जहा से दक्षिण भारत ने उसे सवप्रथम ग्रहण किया। दक्षिण से उसका प्रयोग उत्तर में तथा अन्य देशों में व्याप्त हो गया।

ताम्बूल शब्द का प्रयोग सस्कृत साहित्य में बहुत मिलता है। राजशेखर सूरि के प्रबन्ध कोष मे दहेज दिए जानेवाले रत्नों मे इसका उल्लेख है। वराह मिहिर ने बृहत्सहिता में इसे श्रृगार का साधन बतलाया है। कामसूत्र[२] में नागरक की शय्या के पास पान थूकने के लिए पीकदान अथवा पतद्ग्रह की व्यवस्था की है। दशकुमारचरित मे पान की पीक थूककर उसके द्वारा चक्रवाक के जोडे के चित्र बनने का उल्लेख किया है। शुक्रनीतिसार में पान तैयार करने

१ Monthly French Journal 'France-Asie from Saigon-March-April 1949 (see English Translation-Journal of Oriental Research, Madras, Vol 17)

२ कामसूत्र १४।८६।

की विधि (ताम्बूलरक्षादिकृति विज्ञानम्) को कला की कोटि मे गिना है ।

बौद्ध साहित्य मे भी ताम्बूल के प्रयोग के बहुत से प्रसग मिलते है । शान्तिदेव के शिक्षासमुच्चय (पृ० ८६) मे भद्रकल्पिकसूत्र का एक उद्धरण है जिसमे ताम्बूलपत्र का प्रसग मिलता है ।[1] बुद्धघोष के विसुद्धिमग्ग[2] म इस प्रकार ताम्बूल का उल्लेख मिलता है—

मालागन्धविलेपनतम्बूलानि पि देन्ती ।

इसके अतिरिक्त पाली टेक्स्ट सोसाइटी द्वारा प्रकाशित पाली शब्दकोष द्वारा ताम्बूल के प्रयोग के प्रसग धम्मपद[3] तथा जातक[4] मे भी मिलते हैं । उक्त बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर श्री पी० वी० बापट[5] ने भारत मे ताम्बूल का प्रयोग तीसरी शतक के पूर्व बतलाया है ।

केवल सस्कृत और बौद्ध साहित्य मे ही नहीं वरन् भारतीय शिलालेखो मे भी ताम्बूल के प्रसग प्राप्त होते हैं । श्री पी० के० गोद[6] ने सन् ४७३ ई० से १८०० ई० के बीच के कतिपय शिलालेखो मे इसके प्रसग प्राप्त किये हैं । सर्वप्रथम उन्होने ४७३ ई० के एक शिलालेख[7] का उद्धरण दिया है जिसमे एक युवती का ताम्बूलादि से भूषित होने का वर्णन है—

तारुण्यकान्त्युपचितोऽपि सुवर्ण हार
ताम्बूल पुष्पविधिना समलकृतोऽपि ।
नारीजन प्रियम् (श्रियम्) उपैतिन तावदग्र्याम् (अग्र्याम्) ।
यावन्न पट्टमय वस्त्र युगानि धत्ते ॥

४७३ ई० के गुप्तकालीन शिलालेख के ताम्बूल के प्रसग से कुछ विद्वानो की

१ यथोक्तम् भद्रकल्पिकसूत्रे घोषदत्तो नाम
तथागतो यत्र नक्षत्रराजेन तथागतेन प्रथम बोधिचित्तम
उत्पादित ताम्बूलपत्र दत्वा गोपालकभूतेन, एवम

२ कोशाम्बी सस्करण ९ ७९, P T S ed ३१४ ।

३ अट्ठ क० ३।२०८ ।

४ जातक, १।२६६ २९१, २।३२०, ६ ३६७ ।

५ Tambula—Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute Vol XXXI, p 304

६ References to Tāmbula in Indian Inscriptions between A D 473 and 1800

७ Mandasor Silk Weavers' inscription (Fleet s Gupta Inscription No 18)

यह धारणा है कि ताम्बूल का सर्वप्रथम प्रयोग भारत मे सुमात्रा, जावा आदि द्वीपो से गुप्तकाल के आरम्भ में ग्रहण किया गया। इसका कारण विद्वान लोग यह बतलाते है कि गुप्तकाल मे समुद्र द्वारा भारत का सम्पर्क इन द्वीपो से था।

इसी प्रकार विक्रम सम्वत् ७४१ (सन् ६८५ ई०) के धनिक के नागर शिलालेख[1] मे इस प्रकार ताम्बूल का उल्लेख मिलता है—

व्यालोललोचनजलप्लुतिलाञ्छितानि लम्बालकानि ललितस्मितवर्जितानि।

त (ता) म्बूलरागरहिताधरभाजि यस्य कोपश्चकार वदनान्यरिसुन्दरीणाम् ॥

यहा पर राजा के शत्रु की स्त्रियो के आसुओं द्वारा ताम्बूल के रग मिटने का उल्लेख है। सन् ९६२ ई० के मद्रास प्रान्त के बेलारी जिले के कन्नड शिलालेख मे 'तम्बूलम्' शब्द का प्रसग आता है।

प्रो० पी० के० गोद ने अपने एक लेख मे सन् ६३० से सन् १९०९ ई० के बीच भारतवर्ष के बाहर ताम्बूल के प्रयोग के उदाहरण दिए है।[2] उन्होंने कई साधनों से ताम्बूल के प्रसग लेकर उसका प्रयोग भारतवर्ष के बाहर दिखलाया है।

ताम्बूल के गुणा का उल्लेख सस्कृत साहित्य में बहुत मिलता है। सुभाषितरत्नाकर[3] के एक सुभाषित में ताम्बूल के हजारों गुणा का उल्लेख है—

ताबूलस्य गुणा सति सखे शतसहस्रश।

एकोऽपि च महान्दोषो यस्य दानाद्विसर्जनम् ॥

अर्थात् ताम्बूल के सहस्रों गुण है। दोष केवल यही है कि इसके देने के बाद अतिथि का गमन होता है। इस श्लोक के लेखक आदि का पता सुभाषित रत्नाकर मे नहीं दिया हुआ है। सूची मे विविध श्लोको के अन्तर्गत इसका प्रसग दिया है।

योगरत्नाकर[4] नाम के एक आयुर्वेद के ग्रन्थ में ताम्बूल के १३ गुणों का उल्लेख है—

---

१ Edited by S S Guleri in the Bhārata-Kaumadi (Dr R K Mookerji, Commemoration Volume) Allahabad, Part I—1945

२ Journal of the Travancore University Oriental MSS Library Vol VI—Studies in the History of Tāmbula—use of Tāmbula outside India between A D 630 and 1909

३ Ed by Krishna Shastri, P 242

४ आनन्दाश्रम, पूना से १९०० मे मुद्रित।

ताम्बूल कटुतिक्तमुष्णमधुर क्षार कषायान्वित।
वातघ्न कृमिनाशन कफहर दुर्गंधिनिर्णाशनम् ॥
वक्त्रस्याभरण विशुद्धिकरण कामाग्निसंदीपनम्।
ताम्बूलस्य सखे त्रयोदशगुणा स्वर्गेऽपि ते दुर्लभा ॥

यह श्लोक अन्य कई ग्रन्थों मे थोडे से हेर फेर के साथ मिलता है। भाडारकर इन्स्टीट्यूट पूना के दो हस्तलिखित ग्रन्थों मे इसी प्रकार का श्लोक मिलता है। प्रथम ग्रन्थ प्रस्तावरत्नाकर[१] है जिसके रचयिता पुरुषोत्तम के पुत्र हरिदास है। रचनाकाल सन् १५५७ ई० है। दूसरा धन्वन्तरि निघट्ट की एक हस्तलिपि है जिसमें २८ वे फोलिओ पर 'ताम्बूलवल्लीगुणा' शीर्षक के अन्तर्गत उपर्युक्त १३ गुणों का उल्लेख है।

नरहरि के राजनिघट्ट[३] (१४५० ई०) मे भी यह श्लोक आया है। शिवराज अथवा शिवदास द्वारा रचित ज्योतिर्निबन्ध[४] नामक धर्मशास्त्र के ग्रन्थ मे ताम्बूल पर २४ श्लोक मिलते है जिनमे उपर्युक्त श्लोक भी मिलता है। जल्हण की सूक्तिमुक्तावली मे भोजन शीर्षक के अन्तगत ताम्बूल पर भी कुछ श्लोक मिलते हैं। उनमे से दो तो वराहमिहिर (ए० डी० ५००) से उदधृत हैं तथा तीन श्लोक और हैं जिनके रचयिता का पता नहीं है। इन्ही तीन श्लोकों मे १३ गुणों वाला उपर्युक्त श्लोक भी सम्मिलित है। जल्हण की सूक्ति मुक्तावली का रचनाकाल १२५८ ई० माना गया है।

अत उपर्युक्त उद्धरणों से हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि ताम्बूल के १३ गुणों का विचार भारतवर्ष मे १२ वीं शताब्दी में प्रचलित था।

सुभाषितरत्न भाडागारम्[५] में उपर्युक्त १३ गुणों वाले श्लोक से मिलता-जुलता एक श्लोक ताम्बूल की प्रशसा मे मिलता है—

ताम्बूल मुखरोगनाशि निपुण सवर्धन तेजसो
नित्य जाठरवह्निवृद्धिजनन दुर्गन्धदोषापहम्।
वक्त्रालकरण प्रहर्षजनन विद्वन्नृपाग्रेरणे
कामस्यायतनसमुद्भवकर लक्ष्म्या सुखस्यास्पदम् ॥

---

१ No 320 of 1884–86

२ No 923 of 1884–87

३ आनन्दाश्रम पूना १८९६।

४ वही १९१९।

५ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९५२, पृ० १४५।

चारुचया नाम के एक हस्तलिखित ग्रन्थ म जिसके रचयिता भोजराज कहे गये है[1] ताम्बूल की प्रशसा इस प्रकार मिलता है—

मनसो हपग श्रेष्ठ रतिद मदकारणम्।
मुखरोगहर हृद्य दीपन बस्तिशोधनम् ॥
मुखशुद्धि कृमिहर ताम्बूल श्रीकर परम्।

ताम्बूल के गुणों के सम्बन्ध में अत्यधिक प्राचीन प्रसग वराहमिहिर की वृहत्सहिता का निम्नलिखित श्लोक है—

काम प्रदीपयति रूपमभिव्यनक्ति
सौभाग्यमावहति वक्त्रसुगधिता च ।
ऊर्जं करोति कफजाश्च निहन्ति रोगान्
ताम्बूलमेवमपराश्च गुणान् करोति ॥

इस प्रकार ताम्बूल की महत्ता का बहुत बडा इतिहास है। महाराज सोमेश्वर इस लता के महत्त्व से भली भाँति परिचित थे, यहाँ तक कि उन्होंने अपने उपभोगो की सूची मे ताम्बूल के सेवन को भी उपभोग माना है और इस उपभोग को एक साधारण उपभोग नहीं वरन् उत्तम उपभोग माना है—

इदानीमुत्तमो भोगस्ताम्बूलस्य निगद्यते।[2]

ताम्बूल का इतना महत्त्व था कि एक अधिकारी राजमहल मे ताम्बूल के लिए रखा जाता था और राजा स्नानगृह से निकल कर सुखमन्दिर में प्रवेश कर ताम्बूलाधिकारी को बुलाता और ताम्बूल का सेवन करता था।[3]

लघुहारीत[4], लघुआश्वलायन[5] तथा औशनस[6] मे भोजन के पश्चात् ताम्बूल के उपयोग का उल्लेख है। कामसूत्र[7] के अनुसार मनुष्य को प्रात उठकर

---

१ The Triennial Report (for 1893–94) by Sheshgiri Shastri, Ms No 51

२ मानसो० ३।४०।९५९।

३ स्नानगहादथागम्य प्रविश्य सुखमदिरम् ॥
ताम्बूलभोगमन्विच्छस्ताम्बूलस्याधिकारिणम ।
समाहूय महीपालस्ताम्बूलास्वादन चरत् ॥
मानसो० ३।४।९५९६० ।

४ लघुहारीत (आनन्दाश्रम, ३९)।

५ लघुआश्व० (आनन्दाश्रम) १।१६० ६१, २३।१०५।

६ औश० (जीवानन्द) भाग १, पृ० ५०९।

७ का० सू० १।४।१६।

शौचादि से निवृत्त हो, दर्पण में मुख देखकर, ताम्बूल का सेवन कर अपने कार्य मे लग जाना चाहिए—

स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्या गृहीतदन्तधावन
दृष्ट्वादर्शे मुख गृहीतमुखवासताम्बूल कार्याण्यनुतिष्ठेत् ॥

ताम्बूल के लिए अधिकारी की नियुक्ति सोमेश्वरदेव के समय की विशेष प्रथा थी। सम्भवत ताम्बूल का सेवन उस समय इतना होता था कि उसके लिए एक स्वतन्त्र अधिकारी की नियुक्ति की आवश्यकता थी। साधारणतया ताम्बूल का सेवन भोजनोपरान्त किया जाता है किन्तु सोमेश्वरदेव ने स्नान के पश्चात् ताम्बूल सेवन करने को लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि दिन मे कई बार ताम्बूल का सेवन किया जाता था क्योंकि दोनों समय भाजन के पश्चात् ताम्बूल का सेवन अवश्य होता होगा। इसके अतिरिक्त दरबार मे जाने के पूर्व भी ताम्बूल का प्रयोग राजा करता होगा और देर तक दरबार में बैठने पर बीच मे भी पान का सेवन करता होगा क्योंकि आस्थान भोग के अन्तर्गत ताम्बूलधारी लोगो का राजा के समीप होना आवश्यक बतलाया गया है।[1] ये ताम्बूलधारी व्यक्ति बहुत ही विश्वस्त होते थे। अत उचित समय पर ताम्बूल की व्यवस्था करने तथा उपयुक्त स्थान से सुपाडी तथा ताम्बूल में प्रयुक्त अन्य सुगन्धित पदार्थ जुटाने आदि के लिए अवश्य ही एक ताम्बूलाधिकारी की आवश्यकता रहती होगी। ११४७ ई० के कोल्हापुर के एक शिलालेख में ऐसा प्रसग मिलता है कि बम्मनय्या नामक मुख्यमन्त्री ताम्बूल विभाग का अध्यक्ष था।[2] यत्र तत्र कथा, आख्यायिका, काव्य, नाटक साहित्य मे ताम्बूलकरकवाहिनी स्त्रियों का उल्लेख अवश्य मिलता है। कादम्बरी में चन्द्रापीड राजा की करकवाहिनी पत्र लेखा का वर्णन बाणभट्ट ने बडे ही सुन्दर ढग से किया है।

ताम्बूल के साथ प्रयुक्त सर्वप्रथम पदार्थ सुपाडी है। सुपाडी के लिए सस्कृत में तीन शब्द मिलते है, क्रमुक, पूग तथा घोंटा। घोंटा शब्द अधिक प्रचलित नहीं है। साधारणतया क्रमुक और पूग शब्दो का ही प्रयोग होता है। सोमेश्वर-देव ने मानसोल्लास मे क्रमुक शब्द का प्रयोग किया है। ये तीनो शब्द आर्येतर भाषाओं से गृहीत मालूम पडते हैं। तामिल में सुपाडी के लिए 'अडैक्काई' तथा 'पाक्कु' शब्द मिलते हैं। आन्ध्र लोग 'वक्कलु' शब्द को भी प्रयोग में लाते हैं। मलयालम मे 'पाक' तथा 'अडैक्क' शब्द मिलते है। क्रमुक और

१ ताम्बूलधारिणो भक्ता विश्वस्ता खड्गधारिण ।
राज्ञ समीपे तिष्ठेयु सावधाना जितेंद्रिया ॥ ३ १२२ ।

२ Ins No 8 Kolhapur Inscriptions by K G Kundangar 1939-lines 34-34, p 82

पूग शब्द सम्भवत इ ही शब्दो से सम्बन्धित है। मराठी आदि भाषाओं मे 'वीडचे पान' (हिन्दी-बीडा का पान) शब्द भी प्रयुक्त करते है। इनमें से चीडचे अथवा बीडा द्राविडी 'बेट्टिल' आदि शब्दों से उद्धृत है।

सुपाडी का आर्थिक महत्त्व बहुत है।[१] भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग १ करोड डालर की सुपाडी का प्रयोग होता है। ५६००० टन से अधिक सुपाडी प्रतिवर्ष भारतवर्ष मे बाहर से मगाई जाती है। सीलोन, इन्डोनीशिया आदि देशो की उनके व्यय से बचा हुई सारा उपज भारतवर्ष में खप जाती है। भारतवर्ष में इसकी उपज इस प्रकार है—

बम्बई राज्य	२२७०० एकड
मद्रास	१०८६०० एकड
मैसूर	३४५०० एकड

बगाल और आसाम मे सभी राज्यो से अधिक सुपाडी पैदा की जाती है।

दसवी, ग्यारहवी सदी के लगभग कर्णाटक तथा दक्षिणी भारत के जिलो को मिलाकर बम्बइ राज्य मे सुपाडी की खेती बडे लम्बे पैमाने पर होती थी। इसका प्रमाण तत्कालीन शिलालेखों से प्राप्त होता है। धारवार जिले के गदग ताल्लुका मे होसूर नामक स्थान पर १०२८ ई० का जगदेकमल्लदेव प्रथम के राज्य का एक पाषाण शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमे सुपाडी के एक बगीचे के दान का उल्लेख है। इसी प्रकार धारवार जिले के १०६१ ई० के एक अन्य शिलालेख[3] मे ब्रह्मपुरी के ४०० महाजनो को प्रत्येक सुपाडी के बाग पर एक पण और १०० सुपाडी के देने का उल्लेख है। १०५० ई० के एक शिलालेख[४] में ईश्वर की सेवा के निमित्त विद्यानिधि नामक पडित को कुछ भूमि तथा अन्य वस्तुओं के साथ सुपाडी के पेडों की कुछ कतारों को दिए जाने का उल्लेख है। ११४२ ई० के एक शिलालेख[५] में वीरपाडवदेव नाम के एक अधिकारी तथा

---

१ The story of Pān–chewing in India by M Gowda–Botanical Museum Leaflets, Harvard University Vol 14 No 8, p p 181–214

२ Inscription No 65 on page 55 of Bombay Karnatak Inscriptions Vol I Part I Madras 1940, South Indian Inscriptions, Vol XI, Part I

३ Ibid, Ins no 96

४ Ins No 107 (p 82 of South Indian Inscriptions, Vol IX Part I Madras 1939)

५ Ins No 238 Ibid

कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा तीन लाख सुपाडियों की चुगी का दान भगवान् गौरेश्वरदेव के निमित्त दिए जाने का उल्लेख है।

इन प्रसगो से विदित होता है कि चालुक्यनरेश महाराज सोमेश्वर (११२६ ११३८ ईस्वी सन्) के समय मे उनके राज्य मे सुपाडी की खेती बहुतायत से होती थी। यह बात मानसोल्लास मे सुपाडी के विस्तृत वर्णन से पुष्ट हो जाती है। उसके राज्य में दो प्रकार की सुपाडियो की उपज होती थी। प्रथम प्रकार की सुपाडी की उपज नैलवर्तिपुर, ईश्वरपुर तथा काडिकापुर मे होती थी।[1] ये सुपाडिया पेड में अच्छी तरह पक जाने पर तोडी जाती थी। टूटने पर पाटल वर्ण की होती थीं। स्वाद मे कुछ कसैली और मधुर होती थीं। सम्भवत ये आजकल की चिकनी सुपाडी की भाति होती थीं। ये सुपाडिया तोडकर फैला दी जाती थीं और गर्म पानी से धोकर सुखाई जाती थीं और फिर आपस में रगड कर कस्तूरी के कल्क से युक्त छाया मे सुखाई हुई प्रयोग के उपयुक्त होती थी। दूसरे प्रकार की सुपाडिया वनवास नामक स्थान मे पैदा होती थी। ये सुपाडिया पकने के पूर्व ही तोड ली जाती थी और उन्हें विशेष विधि से पकाया जाता था।[2] ब्रिटिश एनसाइक्लोपीडिया मे कच्चा सुपाडियों को पकाने की विधि दी है[3]।

कच्ची सुपाडियो को पहले पानी मे उबाला जाता है, फिर उसके टुकडे करके धूप मे सुखाया जाता है जिससे वे टुकडे गहरे भूरे अथवा काले रग के हो जाते है। किन्तु इस क्रिया से सुपाडिया बहुत सख्त हो जाती है।

इस सम्बन्ध मे मानसोल्लासकार ने जो विधि बतलाई है उससे सुपाडियां मुलायम और खाने मे स्वादपूर्ण रहती होगीं। सोमेश्वरदेव का कथन है कि कच्ची सुपाडियों को छिलके सहित पहले बडे यत्न से पानी मे उबालना चाहिए। तत्पश्चात छिलका अलग करके छाया मे सुखाना चाहिए। उसके बाद चार टुकडे कर ताम्बूल के योग्य बनाना चाहिए।[4] इस क्रिया में उपर्युक्त क्रिया की अपेक्षा छिल्के सहित उबालने और छाया मे सुखाने का उल्लेख है

---

१ नैलवर्तिपुरोद्भूनास्तथेश्वरपुरोदभवान ।
काडिकापुरजा वापि क्रमुकोधानसुपाकिन ॥

मानसो० ३।४।९६१।

२ मानसो० ३।४।९६४।

३ They are prepared by boiling in water, cutting up into slices drying in the sun, by which treatment the slices assume a dark brown or black colour

४ मानसो० ३।४।९६३ ६५।

और सुखाने के बाद उसके टुकडे करने। इससे उनम कुछ कोमलता अवश्य रहती होगी।

सुगाडा के अतिरिक्त ताम्बूल के साथ अन्य सुगन्धित वस्तुए भी मिलाई जाती थीं, जैसे मोती की सीपी का चूर्ण, ईशावास कपूर, कस्तूरी का चिक्ना चूर्ण जावित्री आदि। ताम्बूल के साथ कपूर का प्रयोग मृच्छकटिक मे भी मिलता है, जिस समय शूद्रक वसन्तसेना के महल का वर्णन करता है—

दीयते गणिककाकामुकयो सकर्पूर ताम्बुलम्।[1]

निवेदन मन्त्र मे भी इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—

पूगीफलसमायुक्त नागवल्लीदलैर्युतम्।
कर्पूरचूर्णसयुक्त ताम्बूल प्रतिगृह्यताम्॥

जावित्री का प्रयोग अब भी बहुत से लोग पान के साथ करते हैं कस्तूरी का प्रयोग मुख को सुगन्धित करने के लिए किया जाता होगा। किंतु इस प्रकार ताम्बूल के साथ नाना प्रकार की अमूल्य सुगन्धित वस्तुए राजा एव धनिक ही कर सकते थे। साधारण जनता के लिए इस प्रकार नित्य ताम्बूल सेवन करना कठिन था।

अब प्रश्न उठता है कि ताम्बूल का सेवन किस प्रकार किया जाय। आजकल उत्तरी भारत के जिलों में पान में चूना तथा कत्था लेप दिया जाता है और सभी मसाले डाल कर उसका बीडा बनाकर खाया जाता है। दक्षिण के कुछ स्थानों पर यह रिवाज है कि पहले पान की पत्ती खा ली जाती है, उसके पश्चात् सुपाडी आदि। तामिल तथा कन्नड परिवारों में विवाह के समय एक उत्सव (तामिल नलगु, कन्नड नागोल) मनाया जाता है। सुमगलिया अथवा वयोवृद्ध स्त्रिया वर-वधू के चारो ओर एकत्र होती हैं और उन्हे ताम्बूल के प्रयोग की कला का ज्ञान कराती हैं। वे वधू से कहती हैं कि वह हल्का चूना लगा हुआ पान वर को दे और उसके बाद केवल सुपाडी। विवाह के पूर्व वर वधू ने ताम्बूल का सेवन नही किया होगा। विवाह के पूर्व ताम्बूल के निषेध का कारण सम्भवत यह हो सकता है कि प्रथमत यह जीभ को खुरदरी बना देता है, दूसरे इसके प्रयोग से एक प्रकार का नशा आता है तथा यह कुछ अश तक काम उत्पन्न करने में सहायक है। अतएव ब्रह्मचर्य जीवन मे इसका निषेध किया गया है और विवाह के अवसर पर इसका प्रयोग बतलाया जाता है।

हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार भी ताम्बूल का प्रयोग केवल गृहस्थों के लिए

---

१ मृच्छकटिक, चतुथ अक

कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा तीन लाख सुपाडियों की चुगी का दान भगवान् गौरे-श्वरदेव के निमित्त दिए जाने का उल्लेख है ।

इन प्रसगों से विदित होता है कि चालुक्यनरेश महाराज सोमेश्वर (११२६ ११३८ ईस्वी सन्) के समय मे उनके राज्य मे सुपाडी की खेती बहुतायत से होती थी। यह बात मानसोल्लास में सुपाडी के विस्तृत वर्णन से पुष्ट हो जाती है। उसके राज्य में दो प्रकार की सुपाडियों की उपज होती थी। प्रथम प्रकार की सुपाडी की उपज नैल्वर्तिपुर, ईश्वरपुर तथा काडिकापुर मे होती थी।[1] ये सुपाडिया पेड में अच्छी तरह पक जाने पर तोडी जाती थीं। टूटने पर पाटल वर्ण की होती थीं। स्वाद मे कुछ कसैली और मधुर होती थीं। सम्भवत ये आजकल की चिकनी सुपाडी की भाति होती थीं। ये सुपाडिया तोडकर फैला दी जाती थीं और गर्म पानी से धोकर सुखाई जाती थीं और फिर आपस में रगड कर कस्तूरी के कल्क से युक्त छाया में सुखाई हुई प्रयोग के उपयुक्त होती थीं। दूसरे प्रकार की सुपाडिया वनवास नामक स्थान में पैदा होती थीं। ये सुपाडिया पकने के पूर्व ही तोड ली जाती थीं और उन्हें विशेष विधि से पकाया जाता था।[2] ब्रिटिश एनसाइक्लोपीडिया में कच्चा सुपाडियों को पकाने की विधि दी है[3]।

कच्ची सुपाडियों को पहले पानी में उबाला जाया है, फिर उसके टुकडे करके धूप में सुखाया जाता है जिससे वे टुकडे गहरे भूरे अथवा काले रग के हो जाते हैं। किन्तु इस क्रिया से सुपाडिया बहुत सख्त हो जाती है।

इस सम्बन्ध में मानसोल्लासकार ने जो विधि बतलाई है उससे सुपाडिया मुलायम और खाने में स्वादपूर्ण रहती होगीं। सोमेश्वरदेव का कथन है कि कच्ची सुपाडियों को छिलके सहित पहले बडे यत्न से पानी में उबालना चाहिए। तत्पश्चात छिलका अलग करके छाया में सुखाना चाहिए। उसके बाद चार टुकडे कर ताम्बूल के योग्य बनाना चाहिए।[4] इस क्रिया में उपर्युक्त क्रिया की अपेक्षा छिल्के सहित उबालने और छाया में सुखाने का उल्लेख है

१ नैल्वर्तिपुरोद्भूनास्तथेश्वरपुरोद्भवान ।
काडिकापुरजा वापि क्रमुकौघानसुपाकिन ॥

मानसो० ३।४।९६१ ।

२ मानसो० ३।४।९६४ ।

३ They are prepared by boiling in water, cutting up into slices, drying in the sun, by which treatment the slices assume a dark brown or black colour

४ मानसो० ३।४।९६३ ६५ ।

और सुखाने के बाद उसके टुकड़े करने। इससे उनमे कुछ कोमलता अवश्य रहती होगी।

सुपाडी के अतिरिक्त ताम्बूल के साथ अन्य सुगन्धित वस्तुए भी मिलाई जाती थीं, जैसे मोती की सीपी का चूर्ण, ईशावास कपूर, कस्तूरी का चिक्ना चूर्ण, जावित्री आदि। ताम्बूल के साथ कपूर का प्रयोग मृच्छकटिक मे भी मिलता है, जिस समय शूद्रक वसन्तसेना के महल का वर्णन करता है—

दीयते गणिककाकामुकयो सकर्पूर ताम्बूलम्।[1]

निवेदन मन्त्र मे भी इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—

पूगीफलसमायुक्त नागवल्लीदलैर्युतम्।
कर्पूरचूर्णसयुक्त ताम्बूल प्रतिगृह्यताम्॥

जावित्री का प्रयोग अब भी बहुत से लोग पान के साथ करते हैं कस्तूरी का प्रयोग मुख को सुगन्धित करने के लिए किया जाता होगा। किंतु इस प्रकार ताम्बूल के साथ नाना प्रकार की अमूल्य सुगन्धित वस्तुए राजा एव धनिक ही कर सकते थे। साधारण जनता के लिए इस प्रकार नित्य ताम्बूल सेवन करना कठिन था।

अब प्रश्न उठता है कि ताम्बूल का सेवन किस प्रकार किया जाय। आजकल उत्तरी भारत के जिलों में पान में चूना तथा कत्था लेप दिया जाता है और सभी मसाले डाल कर उसका बीडा बनाकर खाया जाता है। दक्षिण के कुछ स्थानों पर यह रिवाज है कि पहले पान की पत्ती खा ली जाती है, उसके पश्चात् सुपाडी आदि। तामिल तथा कन्नड परिवारों में विवाह के समय एक उत्सव (तामिल नलगु, कन्नड नागोल) मनाया जाता है। सुमगलिया अथवा वयोवृद्ध स्त्रिया वर-वधू के चारों ओर एकत्र होती है और उन्हें ताम्बूल के प्रयोग की कला का ज्ञान कराती हैं। वे वधू से कहती हैं कि वह हल्का चूना लगा हुआ पान वर को दे और उसके बाद केवल सुपाडी। विवाह के पूर्व वर वधू ने ताम्बूल का सेवन नहीं किया होगा। विवाह के पूर्व ताम्बूल के निषेध का कारण सम्भवत. यह हो सकता है कि प्रथमत यह जीभ को खुरदरी बना देता है, दूसरे इसके प्रयोग से एक प्रकार का नशा आता है तथा यह कुछ अश तक काम उत्पन्न करने में सहायक है। अतएव ब्रह्मचर्य जीवन मे इसका निषेध किया गया है और विवाह के अवसर पर इसका प्रयोग बतलाया जाता है।

हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार भी ताम्बूल का प्रयोग केवल गृहस्थों के लिए

---

१ मृच्छकटिक, चतुर्थ अक

था। ब्रह्मचारी तथा यति के लिए इसका पूर्णरूप से निषेध था। जगन्नाथ पण्डितराज ने रसगगाधर मे साहित्य में अनौचित्य का उल्लेख करते हुए अनौचित्य के उदाहरण दिए हैं। उनमे ब्रह्मचारी और यति के द्वारा ताम्बूल-चर्वण में अनौचित्य दिखलाया है—

शूद्रस्य निगमाध्ययनम्। ब्रह्मचारिणो यतेश्च
ताम्बूलचर्वणम् ।

शिवपुराण के ब्रह्मचर्य प्रकरण[2] में एक ब्रह्मचारी के लिए सुख शय्या तथा आसन, वस्त्र, ताम्बूल, स्नान के बाद सजना, दन्तकाष्ठ तथा सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग दोष का साधन बतलाया है—

सुखशय्यासन वस्त्र ताम्बूल स्नानमडनम्।
दन्तकाष्ठ सुगन्ध च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम्॥

ब्रह्मचारी के लिए सयम का जीवन अपेक्षित था। उसके लिए उपभोग के सभी साधन वर्जित थे। सादा जीवन और उच्च विचार ही (Plain living and high thinking) उसका उद्देश्य था।

अग्निपुराण[2] में उपवास करने वाले व्यक्ति के लिए ताम्बूल का प्रयोग वर्जित है। बार बार जल न पीना चाहिए, दिन में सोना नहीं चाहिए और मैथुन से अलग रहना चाहिए —

असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात्।
उपवास प्रदुष्येत दिवास्वप्नाच्च मैथुनात्॥

आजकल भी उपवास करने वाले व्यक्ति सुपाडी का प्रयोग नहीं करते है।

हरिभास्कर अग्निहोत्र ने स्मृतिप्रकाश[3] नाम के धर्मशास्त्र के ग्रन्थ मे ताम्बूल के प्रयोग के विषय में अपने विचार प्रकट किए है। इस सम्बन्ध मे उन्होंने मार्कण्डेयपुराण, ज्योतिर्निबन्ध तथा स्मृतिकार वसिष्ठ और आश्वलायन के मतों का उल्लेख किया है। आश्वलायन के अनुसार अध्ययन की इच्छा वाले व्यक्ति को रात्रि में अधिक पान नहीं खाना चाहिए क्योंकि ताम्बूल के

१ Vide Prasastisamgraha by K Bhujabali Shastri (Jain Antiquary, Vol VI, No 2 June 1940)

२ Chapter 175, folio 123, Venkatesvar press Edition, Bombay

३ MS No 161 of Vis (1) in the Govt MSS Library at the B O R Institute, Poona

अधिक प्रयोग से शरीर पीला पड जाता है, दात कमजोर हो जाते है, आख और मुह मे रोग उत्पन्न हो जाते है और शक्ति का क्षय होता है—

विद्याकामो निश रात्रौ तांबूल न तु भक्षयत्।
तथा
पाडुत्व दतदौर्बल्यमक्षिरोग बलक्षयम्।
करोति मुखरोगाश्च ताबूलमतिसेवनात्॥

वसिष्ठ ने ताम्बूल के किसी पदार्थ का प्रयोग, यति, ब्रह्मचारी, विधवा तथा रजस्वला के लिए वर्जित बतलाया है। इसका प्रयोग मास और मदिरा के प्रयोग के समान है—

यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च रजस्वला।
प्रत्येक मासतुल्य स्यान्मेलन सुरया समम्॥ इति।

हरिभास्कर ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

क्रमुकादे प्रत्येक भक्षण मासमुदित सुरासमगनम् इत्यर्थ ।

इतिहासोपनिषद्[1] के अनुसार श्राद्ध करने वाले व्यक्ति को दन्तकाष्ठ तथा ताम्बूल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उसे बाल नही बनाना चाहिए, अपने घर अथवा दूसरे के घर भोजन नही करना चाहिए और कामवर्धक औषधियो को त्याग देना चाहिए—

दन्तधावनताम्बूलक्षौराभ्यजनभोजनम् ।
इत्यौषध परान्न च श्राद्धकर्ता विवर्जयेत्॥[2]

विलेपनोपभोग

सोमेश्वर के समय मे राजा अपने शरीर पर अनेक लेप करता था इसी कारण सोमेश्वर ने ताम्बूलोपभोग के पश्चात् विलेपनोपभोग का वर्णन किया है। इस प्रकरण मे अनेक प्रकार के सुगन्धित तैल तथा विलेपनों का वर्णन हुआ है। इस सभी लेपो को सोमेश्वर ने शरीर के लिए अत्यन्त सुख देने वाला एव लाभप्रद बतलाया है—

विलेपनोपभोगोऽय कथ्यते भोगिना प्रिय ।
अच्छ विलेपन रम्यमगसौख्यप्रदायकम्॥[3]

इन विलेपनो को सोमेश्वर ने भोगियों की प्रिय वस्तु बतलाई है। इससे विदित होता है कि यह लेप की क्रिया न केवल राजा के ही जीवन से सबधित थी

---

१ Vide Sadhale s upanısadvākyakosa, Vol I, 1940, p 290।

२ इतिहा० ४०।

३ मानसा० ३।५।९८०।

वरन् अन्य नागरिक जन भी इसका प्रयोग रुचि एव उत्साह से करते थे। सोमेश्वर ने ऋतुओ के अनुकूल विभिन्न प्रकार के लेपों का वर्णन किया है। सर्वप्रथम वे वसन्त ऋतु मे प्रयोग म लाए जाने वाले यक्षकदम नाम के लेप का वर्णन करते है। इस विषय मे उनका कथन है कि चदन, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी, कुकुम, सुरभी, केसर, ग्रन्थिपर्ण के चूर्ण से युक्त, जातीपूत के फल से युक्त तथा अच्छी प्रकार से धूप दिया हुआ लेप वसत काल म कक्ष भाग, कर्णसधियों, नाभि तथा वक्षण आदि भागो म करना चाहिए। यह वसन्त ऋतु का अति उत्तम लेप माना गया है—

> वसन्ते लेपन कुर्याद्यक्षकर्दममुत्तमम्।
> कक्षाभागे कर्णसन्धा नाभौ वक्षणयोरपि॥[1]

वसन्त के पश्चात ग्रीष्म काल मे सान्ध्य नामक लेप का प्रयोग होता था। इस विषय मे सोमेश्वर का कथन है कि यह लेप स्वेद की गन्ध को दूर करने के लिए लगाना चाहिए—

> स्वेदगन्धविनाशार्थं सान्ध्यारय लेपमाचरेत्॥[2]

इस सान्ध्य लेप के निमाण की विधि का भी मानसोल्लास मे वर्णन हुआ है। चदन के वृक्ष की जड, अत्यन्त तीव्र गध वाला ग्रथिकोटर, जो स्पर्श करने में शीतल, काटने पर लाल वण वाला, घिसने पर पीतवर्ण का, सूखने पर शुभ्र तथा स्वाद में तिक्त हो, पुन्नागकेसर, चदन तथा कर्पूर से युक्त, केतकी, मल्लिका तथा पाटल पुष्प की सुगन्ध से सुवासित, चद्रमा की किरणों में रखा हुआ तथा हिम डिंडीर से पाडुर कर यह लेप तैयार किया जाता था।[3] यह अत्यन्त सुगधित तथा शीतल होता था, इसी कारण सोमेश्वर ने इसे ग्रीष्म काल में राजा को लगाने का आदेश दिया है।[4] यह चदन की ही भाति भव्य होता है।

वर्षाऋतु में काश्मीर देश में उत्पन्न लाल हरिचदन तथा केसर को भली प्रकार पीस कर लाक्षाराग के सदृश आभा वाले कटु तैल मे मिलाकर जो कुकुम के लेप का निर्माण हो उसमें थोडी मात्रा में कर्पूर मिलाकर लेप तैयार किया जाता था। इसे वषा ऋतु में राजा अपने सम्पूर्ण शरीर पर लेप करता था।

---

१ वही ३।५ ९८३। २ वही ३।५।९८४।

३ मानसो० ३।५।९८४ ८७।

४ निदाघे शीतल लेप नप कुर्यात्समुज्ज्वलम्।
श्रीखड तादृश भव्य निघष्ट पेषित पुन॥
वही ३।५।९८८।

हेमन्त तथा शीतकाल में लगाए जाने वाले पुल्लिंग नाम लेप के निर्माण का भी सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यह लेप तरुण एव मदोन्मत्त मृग की नाभि से निकली हुई, गीले कुकुम के पिंजर मे रखकर चिकना की हुई, जलाने पर भस्म की अवस्था को न प्राप्त करती हुई, स्वाद म तिक्त, अत्यन्त हलकी तथा राजाओं के ही प्रयोग में लाई जाने वाली कस्तूरी से तैयार किया जाता था।[1] इस कस्तूरी को जल में पीसकर तब उसका लेप शरीर पर किया जाता था। गधिमाजार के बीजों को उसमें डालकर गरम तेलसे निकाल कर कडुये तेल के साथ लेप करना चाहिए अथवा उसमे निशाचूर्ण डाल कर उसे छाया में सुखावे तथा बेल, आम्र, जामुन तथा तुलसी के बीज से पूर्ण क्वाथ तैयार करे। उन पत्तो के क्वाथ से बीज निकाल्कर उन्हे खूब धोकर, उसके टुकडे कर, जल मे बीज, फल तथा उसका छाल को डालकर क्वाथ बनाकर उसमे तेल डाले। उस जल में पडे तेल को काचन तथा शुक्ति से तपाकर, उन्हें पीसकर उस तेल को सित तथा कर्पूर से धुपावे। इस प्रकार के तैयार किए हुए दिव्य गध वाले लेप को राजा को शिशिर तथा हेमन्त ऋतु मे लगाना चाहिए।[2]

अत्यन्त सुगधित चदन को पद्मकेसर के साथ मिलाकर उत्पल से आभासित लेप राजा शरद्काल मे लगावे तथा नवकेसर से उत्पन्न कुकुम को सुगन्धित तेल में डालकर उसका लेप तैयार करा कर उसका राजा शीतकाल में अनुलेपन करे।[3] इसके अतिरिक्त वस्त्र एव भूषा के अनुसार ही अपने शरीर पर अगराग का लेप करे—

वस्त्रभूषणानुसारेण श्रृङ्गारागविलेपनम् ॥[4]

इन अनेक प्रकार के सुगन्धित एव अनेक सुन्दर वर्णोंवाले लेपो को राजा अपने मस्तक, बाहुशिखर, वक्षस्थल तथा उदर पर प्रत्येक ऋतु के अनुसार लगाता था। इससे उसके शरीर की शोभा एव कान्ति की वृद्धि होती थी।[5] इन सभी विलेपनों का सोमेश्वर ने सुन्दर स्त्रियों के हाथ से ही शरीर पर लगवाने का आदेश दिया है—

---

१ वही ३।५।९९३ ९९५। २ वही ३।५।९९६ १००४।

३ उत्पलभासित लेप शरत्काले प्रशस्यते।

सुगन्धितैरसयुक्त शीतकालेऽनुलेपनम्।

॥

मानसो० ३।५।१००५ १००६

४ वही ३।५।१००६। ५ वही ३।५।१००७

तत समाचरद्रूप कान्ताकरमनोहरम् ॥[1]

ऋतुओं के अनुसार इस प्रकार के विभिन्न विलेपनो का वर्णन सोमेश्वर के वैज्ञानिक स्वास्थ्य विषयक ज्ञान को प्रकट करता है।

विलेपन का यह क्रिया भारतवर्ष म अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित है। विलेपन के अनेक प्रसग पुराणों मे प्राप्त होते है। श्रीमद्भागवत पुराण मे कुब्जा के शृगार के वर्णन के प्रसग म एक स्थल पर ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

देह्यावयोरगविलेपमुत्तम श्रेयस्ततस्ते नचिराद् भविष्यति ॥[2]

पुराणकाल म शरार पर कुकुम, अङ्गराग तथा चन्दन आदि का लेप करने की प्रथा अधिक प्रचलित थी—

।

आसिचती कुकुमरूषितौ स्तनौ तस्थावत्रधोमुरयतिदु खरुद्धवाक् ॥[3]

बुद्धकालीन समाज मे गध तथा विलेपनादि का अधिक प्रयोग होता था, किन्तु गौतम ने बौद्ध भिक्षु के लिए इन वस्तुओं के प्रयोग करने का निषेध किया है—

गध विलेपन धारण मडन विभूसनट्ठाना पटिविरतो समणो गोतमो ॥[4]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर भी विलेपन के निषेध का प्रसग प्राप्त होता है—

सेय्यथीद अजन गन्ध विलेपन मुक्खचुण्णक मुखलेपन दीघ दासानि इति वा, इति समणो गोतमो ॥

यह प्रसग इस बात को पूर्णरूप से स्पष्ट करते हैं कि उस समय में समाज मे शृङ्गार तथा विलेपनादि अधिक मात्रा मे प्रचलित था, इसी कारण गौतम ने विशेषरूप से श्रमण के लिए इन वस्तुओं को त्यागने का आदेश दिया है। बुद्ध के समय में लेप करने मे कस्तूरी, चन्दन, अगरु तथा केसर का ही प्रयोग विशेषरूप से होता था। बौद्ध साहित्य मे पिप्पला ग्राम में रहनेवाले एक निर्धन ब्राह्मण के विषय में जौ के चूर्ण का शरीर पर लेप करने का प्रसग प्राप्त होता है।[6]

वात्स्यायन ने भी कामसूत्र मे विलेपन करने का सर्वप्रथम पदार्थ अनुलेपन बताया है, जो सुगन्धित तेल मे मिलाकर तैयार किया जाता था—

---

१ वही ३।५।९८१। २ श्रीमद्भागवत पु० १०।४२।२।

३ श्रीमद्भागवत पु० १०।६०।२३।

४ दीघनिकाय, ब्रह्मजालसुत्त १० पृ० ६।

५ वही १६ पृ० ८।

६ थेरगाथा सयुक्त निकाय तथा अगुत्तर निकाय की अट्ठकथा मे।

अच्छीकृत चन्दनमन्यद्वानुलेपन ॥[1]

कामसूत्र में नागरिक के लिए प्रतिदिन लेप करने का विधान दिया है।[2] जयमगला टीका मे भी अनुलेपन के विषय मे इस प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है—

मात्रयेति, प्रभूतानुलेपनादिग्रहणाद्नागरक स्यात्, कायानुष्ठाने प्रस्तुतवात् ॥ किन्तु वात्स्यायन के समय में अन्य वस्तुओं के साथ-साथ चन्दन के लेप का प्रयोग अधिक होता था तथा स्त्री तथा पुरुष दोनों हा विलेपन करते थे।

सस्कृत साहित्य में स्त्री तथा पुरुष दोनों के शरीर पर किए जानेवाले लेपों का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है। आजकल भी यह प्रथा लुप्त नहीं हुई है। वर्तमान काल मे भा स्त्री तथा पुरुष अनेक प्रकार के तेल तथा सुगन्धित पदार्था से बने हुए लेपों का प्रयोग करते हैं।

अत प्रारम्भ काल से ही भारत में यह साधारण सी प्रथा रही है, किन्तु सोमेश्वर ने जो विभिन्न ऋतुओ मे विभिन्न प्रकार के किए जाने वाले लेपों के नामा का उल्लेख किया है उनमे से सम्भवत उनके समय मे ग्रीष्मकाल म सन्ध्या तथा हेमन्त एव शिशिरकाल मे पुल्लिग नाम के विलेपन का प्रयोग विशेष रूप से होता होगा। यह प्रसग सोमेश्वर के समय की विशेषता को प्रकट करता है। राजा तथा प्रजा दोनो ही सुख एव शान्तिपूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे और इसी कारण वे सभी अपने शरीर को विशेषरूप से सुन्दर एव आकर्षक बनाने के लिए अनेक प्रकार के विलेपनों का प्रयोग करते थे।

वस्त्रोपभोग

उचित प्रकार से विलेपन कर चुकने के पश्चात् सोमेश्वर महाराज ने राजा के लिए सुन्दर वस्त्र धारण करने का आदेश दिया है। उसी का विस्तृत वर्णन वस्त्रोपभोग के अन्तर्गत हुआ है। इस प्रकरण में सर्वप्रथम सोमेश्वर ने नवीन वस्त्र धारण करने के लिए अनेक तिथियों एव वारों के उल्लेख के साथ ही साथ उनके फल को भी बतलाया है। अश्विनी नक्षत्र में धारण किया हुआ वस्त्र अन्य वस्त्रो का देने वाला, रोहिणी नक्षत्र का वस्त्र धन की वृद्धि करने वाला, पुनर्वसु का वस्त्र धन प्राप्ति, पुष्य का वस्त्र सुख प्रदान करने वाला, उत्तरा का वस्त्र यशोलाभ, हस्ती का वस्त्र कार्य में सिद्धि प्रदान करने वाला, चित्रा का वस्त्र शुभसम्प्राप्ति कराने वाला, स्वाती का सौभाग्यसम्पदा का देने वाला, विशाखा का वस्त्र प्रीति को उत्पन्न करने वाला, मित्र नक्षत्र का वस्त्र मित्र का समागम कराने वाला, उत्तराषाढा का वस्त्र सन्तोष प्रदान करने वाला,

---

१ कामसूत्र सू० १४। २ कामसूत्र सू० १६, पृ० ४५ ४६।

धनिष्ठा का वस्त्र धान्यपूर्ण करने वाला, उत्तरा का वस्त्र शुभप्राप्ति कराने वाला तथा रेवती नक्षत्र मे धारण किया हुआ नवीन वस्त्र रत्न की वृद्धि करने वाला होता है।[1]

नक्षत्रो के पश्चात् नवीन वस्त्र धारण करने के लिए वारो एव उनके फलो का उल्लेख हुआ है। इसमे नवीन वस्त्र धारण करने के लिए विशेषत बुध, गुरु तथा शुक्र इन तीन वारों का उल्लेख हुआ है। बुधवार को नवीन वस्त्र धारण करने से भूरि धन की प्राप्ति होती है। गुरुवार को धारण किया हुआ वस्त्र प्रजा की वृद्धि का कारण होता है तथा शुक्रवार का वस्त्र आयु की वृद्धि करता है--

बुध धनागम विद्यात्प्रजावृद्धिर्भवेद्गुरौ।
आयु प्रवर्धते शुक नूतन वस्त्रधारणे।
॥[2]

उपर्युक्त नक्षत्रो तथा वारों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने ऐसे भी अवसरों का वर्णन किया है जिन अवसरों पर किसी भी नक्षत्र एव वार में नवीन वस्त्र धारण किया जा सकता है—

गृहोत्सवे विवाहे च परभूपालसगमे
उत्सवेषु च सर्वेषु गीतनृत्यविनोदने।
दानकर्मणि यज्ञे च तथा युद्धमहोत्सवे
जये नवाम्बर धार्यं न दुष्यति कदाचन॥[3]

अर्थात् गृहोत्सव, विवाह, अन्य राजा से मिलना, सभी प्रकार के उत्सवों, गीत, नृत्य, विनोद, दानकर्म, यज्ञ, युद्ध महोत्सव तथा विजय आदि ऐसे अवसर है जिन अवसरो पर नक्षत्रादि का ध्यान न कर नवीन वस्त्र धारण करना दोषपूर्ण नहीं माना जाता।

वस्त्रों के धारण करने का विधान सोमेश्वर ने विलेपन के पश्चात् दिया है।

---

१ अश्विनी वस्त्रदा प्रोक्ता रोहिणी धनवर्धिनी।

उत्तराया शुभप्राप्ति रेवनी रत्नवृद्धिकृत्॥

मानसो० ३।६।१००९–१०१२।

२ मानसो० ३।६।१०१३–१४।

३ वही ३।५।१०१४–१०१६।

इसी कारण शरीर पर विलेपन कर लेने के पश्चात् राजा वस्त्रभाण्डाधिकारी को बुलाकर उससे अनेक वस्त्र लाने की आज्ञा देता था।[1]

यह श्लोक इस बात को प्रकट करता है कि राजा के नित्य पहनने वाले कपडो को तैयार रखने तथा उसे पहनाने के लिए भी एक अधिकारी नियुक्त था जो वस्त्रभाण्डाधिकारी के नाम से प्रसिद्ध था।

इसके पश्चात् राजा के पहनने योग्य वस्त्रों का वर्णन हुआ है जिसके अन्तर्गत नाना देशों के बने हुए उत्तम एव बहुमूल्य वस्त्रों का उल्लेख हुआ है।[2] श्वेत रेखाओं से युक्त, नाना वण की रेखाओ वाले, पञ्चवर्ण वाले, सुरम्य चक्र रेखा से युक्त, तीन रेखाओं से सयुक्त, ऊर्ध्व भाग मे दूर-दूर रेखा वाले किन्तु मध्य में सूक्ष्म रेखा वाले, अगुल भर दूर रेखा वाले, मध्य मे सूक्ष्म रेखा से युक्त या दो अगुल दूर रेखा वाले तथा कहीं कहीं वृत्त रेखा वाले, चतुष्कोण की रेखा वाले, बिन्दु से युक्त, मजबूत, मनोरम, पतले, घने तथा बिरले, हल्के, बहुमूल्य, भारी, मोटे, प्रक्षालित किए हुए यन्त्र द्वारा रञ्जित, रक्त तन्तुओं से युक्त, अनेक वर्ण द्वारा बनाये गए, मजीठ के रस से लाल किए हुए लाक्षाद्रव से युक्त, कुसुम्भ के रस से रञ्जित, सिन्दुर से अरुण किए हुए, अभय रस से काले किए हुए, नीले, शुक के पिच्छ के सदृश वर्ण वाले, कोयल के कण्ठ की छवि को धारण करने वाले तथा अनेक प्रकार के तथा विविध आकार वाले विचित्र वस्त्रों का प्रसग प्राप्त होता है।[3]

इन अनेक प्रकार के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने उन्हे राजा को ऋतुओं के अनुसार पहनने का आदेश दिया है। वसन्त में राजा रेशम तथा कर्पास के सूक्ष्म वस्त्र धारण करे। ग्रीष्म ऋतु में सूक्ष्म तथा विविध सूत्रो से निर्मित श्वेत वस्त्रों को धारण करे।[4] वर्षाकाल मे मजीठ से लाल किए गए तथा पाटल, धूम्र आदि वर्ण के वस्त्र धारण करे—

माञ्जिष्ठानि च रक्तानि प्रावृट्काले विधारयेत्।
पाटलान्यभिरामाणि धूम्राणि मधुराणि च॥[5]

शरत्काल मे राजा भव्य घने तथा अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्रो को धारण करे तथा अगिका तथा पटीजात शीतकाल मे धारण करे ।

---

१ कृतानुलेपो राजेन्द्रो वस्त्रभाण्डाधिकारिणम ॥
मानसो० ४।६।१०१६।

२ मानसो० ३।६।१०१७–१०२०।

३ मानसो० ३।६।१०२१–१०३३।

४ वही ३।६।१०३४–३५।

५ वही ३।६।१०३६।

६ वही ३।६।१०३७–३८।

इस प्रकार ऋतुओ के अनुसार शीत वायु के चलने पर, प्रयाण के समय, जलक्रीडा के समय, नाना देशो से आये हुए अत्यन्त बहुमूल्य श्रेष्ठ एव अनेक वर्णवाले वस्त्रों को श्रृगारपूर्वक धारण करना ही वस्त्रोपभोग है।[१]

इस वस्त्रोपभोग के प्रसग को पढकर ऐसा विदित होता है कि राजा बहुत ही सुन्दर वस्त्रो को धारण करता था जिनमे विशेषरूप से रगे हुए वस्त्र होते थे। उस समय मे रगाई का काम बहुत होता था और अनेक प्रकार के रग एव छापों का प्रयोग होता था जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं—

रगे हुए वस्त्र

रगे हुए वस्त्रों को सोमेश्वर ने नाना प्रकार के वर्णों की रेखाओं से युक्त बतलाया है। इससे विदित होता है कि सम्भवत इन वस्त्रों को बाध कर रॅगा जाता होगा। अग्रेजी में यह रगाई टाई एड डाइ (Tie and dye) के नाम से प्रसिद्ध है और सस्कृत में उसके लिए भक्ति शब्द था। गुजरात मे इसका रूप भात (भक्ति–भत्ति–भात) है। पाटन मे जो पटोलो मे रगीन सूत की बिनाई द्वारा अनेक प्रकार की आकृतिया चित्रित की जाती हैं उनके लिए भी भात शब्द का ही प्रयोग होता है उदाहरणार्थ नारीकुजर भात, पानभात, रतनचौक भात, फुलवाडी भात, चौकडी भात, छाबडी भात, रास भात बाघकुवर भात[२]। इस रगाई के वस्त्र गुजरात, राजस्थान तथा पजाब आदि मे प्रसिद्ध हैं। यह वस्त्र सम्भवत डोरे बाध बाध कर रगे जाते होगे और सूखने पर डोरा खोल दिया जाता होगा।

इसी प्रकार पाच रगों से रगे हुए पचरगे वस्त्र भी राजा पहनता था।

छपाई के वस्त्र

छपाई के वस्त्रो मे अनेक प्रकार के छापों को प्रयोग होता था ऐसा प्राप्त प्रसग से विदित होता है —

१—वृत्ताकार छपाई   २—चतुष्कोण छपाई
३—चक्र की छपाई   ४—बिन्दुयुक्त छपाई

---

५ शीतवाते प्रयाणे च पापर्द्धौ वारिखेलने।
सूक्ष्माणि बहुमूल्यानि वर्णाढ्यानि वराणि च॥
नानाद्वीपसमुत्थानि श्रृगारे धारयेन्नृप।
एव यद्विभृयाद्वस्त्र वस्त्रभोग प्रकीर्तित॥

मानसो० ३।६।१०३९–४०।

१ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित—
एक सास्कृतिक अध्ययन पृ० ७४।

ये सभी वस्त्र अनेक प्रकार के वर्णा के होते थे। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने कई प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है—क्षौम, कार्पासक, रोमज, अंशुक। अमरकोष में 'क्षौम दुकूल स्यात्'[1] द्वारा दुकूल को क्षौम का ही पर्यायवाची शब्द माना है। क्षौम वस्त्र का प्राचीनकाल से ही भारतीय प्रयोग करते रहे है और और यह सम्भवत क्षुमा अथवा अलसी नामक पौधे के रेशों से बनता था। इसके अतिरिक्त भाग, सन, पाट अथवा पटसन के रेशो से भी वस्त्रों का निर्माण होता था किन्तु वे अधिक मुलायम न होते थे। चीनी भाषा में एक प्रकार की घास के रेशे से तैयार किये जाने वाले वस्त्र के लिए छुम शब्द का प्रयोग होता था—

Thus the words Chiu or Chiuma are used for the cloth made from the Chinese Boehmeria Niea [2]

इसी प्रकार की चीनी घास भारतवर्ष मे आसाम तथा बगाल मे उत्पन्न होती थी और इसे काखुर कहा जाता था। सोमेश्वर ने भी वगदेश मे बने वस्त्रों का उल्लेख किया है।[3]

सभी देश के वस्त्रों के साथ 'महाचीनभवानि च' का प्रयोग भी सोमेश्वर ने किया है। इससे विदित होता है कि चीनाशुक को भी राजा धारण करता था। प्राचीनकाल से ही भारत में दो प्रकार का अंशुक प्रयोग मे लाया गया है १—भारतीयांशुक, २—चीनांशुक। कालिदास ने भी चीनांशुक का प्रसग दिया है।[5] वह अंशुक अत्यन्त मुलायम सुन्दर रेशमी वस्त्र था। जैन आगम म पट्ट, मलय, असुग, चीनासुय तथा किमिराग इन पाच प्रकार के कीटज वस्त्रों मे भी चीनांशुक नाम रेशमी वस्त्रों मे लिया गया है। रोमज वस्त्र सम्भवत पशुओ के रोम से बने हुए ऊनी वस्त्र होते थे।

माल्योपभोग

वस्त्रों को सुचारु रूप से धारण कर लेने के पश्चात् सोमेश्वर ने माला को धारण करने का आदेश दिया है। इसी के सम्बन्ध में उन्होंने माल्योपभोग

---

१ अमरकोश २।६।११३।

२ Vivi Sylwan, Investigations of Silk from Edsen col and Lop-nor Stolkholm, 1949

३ वगदेशभवानि च। मानसो० ३।६।१०२०।

४ मानसो० ३।६।१०२०।

५ चीनांशुकमिव केतो प्रतिवात नीयमानस्य—अभिज्ञानशाकुतल।

६ जैन आगम अनुयोगद्वारसूत्र ३७, श्री जगदीश चन्द्र जैन कृत "लाइफ इन ऐंशियेंट इडिया ऐज डिपिक्टेड इन जैन कैनन" पृ० १२९।

का वर्णन किया है। माला को गूथने में चम्पक, मल्लिका, उत्पल, सुरभी, बकुल, मालती आदि पुष्पों का प्रयोग होता था। इन्ही पुष्पों द्वारा अनेक प्रकार की मालाओ का निर्माण होता था। चम्पक तथा मल्लिका के पुष्पो को नील कमल के पुष्पों में मिलाकर माला बनाने अथवा सुगन्धित तथा रक्त वर्ण के चम्पक पुष्प को रक्त एव सुगन्धित मल्लिका के पुष्प के साथ मिला कर माला बनावे, ऐसा सोमेश्वर ने आदेश दिया है। इसके अतिरिक्त मल्लिका तथा बकुल के पुष्प को मिलाकर, मल्लिका और उत्पल को मिलाकर, मालती तथा मल्लिका पुष्प को मिलाकर, मालती तथा पाटल पुष्प को मिलाकर, मालती और बकुल पुष्प को मिलाकर अथवा मालती तथा सुरभी पुष्प का मिलाकर शतपत्र तैयार करने का प्रसग मानसोल्लास में प्राप्त होता है।[1] यह शतपत्र अमरुक, पाटल, मल्लिका अथवा मल्लिका की गुच्छियों से पूर्ण होना चाहिए।[2] इस प्रकार के माल्य को राजा अपने सिर पर अथवा कठ में धारण करता था।[3] किन्तु विशेषरूप से यह माला सिर पर ही धारण की जाती थी—

बिभर्ति माल्य शिरसा नृपति स्वानुसारत ॥[4]

इतने प्रकार की बनाई जाने वाली मालाओं का यह प्रसग इस बात को पूर्णरूप से प्रकट करता है कि सोमेश्वर के समय मे प्रजा का साधारण से साधारण व्यक्ति भी पुष्प मालाओं से प्रेम करता था और विशेषरूप से माला शरीर को सुन्दर बनाने का साधन थी।

पुष्प तथा पुष्प से निर्मित मालाओं द्वारा अपने शरीर को सुसज्जित करने की प्रथा भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित है। माला धारण करने का प्रसग वात्स्यायन के कामसूत्र में प्राप्त होता है। वात्स्यायन के समय में प्रात काल उठकर दन्तधावनादि की क्रिया से निवृत्त होकर तथा शरीर पर लेपादि कर नागरिक माला धारण कर तब कोई कार्य करने के लिए निकलता था—

स प्रातरुत्थाय कृतनित्यकृत्य गृहीतदन्तधावन मात्रयाऽनुलेपन धूप स्रजमिति गृहीत्वा दत्वा सिक्थकमलक्तम च कार्यान्यनुतिष्ठेत् ॥[5]

इसके अतिरिक्त सिर पर भी माला धारण की जाती थी—

पुष्पास्तरणम्, माल्यग्रथनविकल्पा, शेखरकापीडयोजनम्। कर्णपत्रभगा ॥[6]

---

१ मानसो० ३।७।१०४२ ४५। २ वही ३।७।१०४६।
३ वही ३।७।१०४७ ४८। ४ वही ३।७।१०४७।
५ कामसूत्र सू० १६। ६ कामसूत्र, पृ० ३२।

गौतम बुद्ध के ममय म भी नागरिक जन पुष्पमालाओं से अधिक रुचि रखते थे। इसी प्रकार गौतम बुद्ध ने श्रमण के लिए माल्य धारण का निषेध किया है।[1] रत्नावली में अत पुर की वाटिकाओं मे लगी हुई चम्पक, बकुल, मालती तथा पाटलादि पुष्पों की वीथियों का वर्णन हुआ है। इन सभी पुष्पों की वीथिया इतने सुचारु रूप से लगाई गई थीं कि अधकार म भी पुष्प पहचानने में किसी को भ्रम न होता था—

> पालीय चम्पकाना नियतमयमौ सुन्दर सिंधुवार ।
> सान्द्रा वीथी तथेय बकुलविटपिना पाटला पक्तिरेषा ॥
> आघ्रायाघ्राय ग ध विविधमधिगतै पादपैरेवमस्मिन् ।
> व्यक्ति पथा प्रयाति द्विगुणगुणतरतमोनिह्नुतोऽप्येष चिह्नै[2] ॥

नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत चार प्रकार की मालाओ का उल्लेख हुआ है —

१ आवे य	३ प्रक्षेप
२ निबन्धनीय	४ आरोप्य

यह चारों प्रकार का म लाय गुथो तथा न गुथी हाने से दो दो प्रकार होती हैं। इस प्रक र मालाय कुल आठ प्रकार का होती है —

१ वेष्टित जो माला सपूर्ण शरीर को ढक ले।

२ वितत जो शरीर के एक भाग मे हो विस्तृत रहे।

३ सघात्य जो माला अनेक पुष्प समूहों से गुथी हुई हो।

४ ग्रथिमत् जिस माला के बीच बीच मे विषम गाठे हो।

५ अवलम्बित जो माला स्पष्ट हो अथात् पूर्ण रूप से दीखती हो।

६ मुक्तक जो माला केवल एक ही प्रकार के पुष्पों से गुथी हुई हो।

७ मजरी जब अनेक पुष्पमयी लताओं को माला रूप में धारण किया जाय। सभवत इसी प्रकार की माला वनमाला के नाम से प्रसिद्ध है।

८ स्तबक जब पुष्प गुच्छों की माला के रूप में धारण किया जाय।

सोमेश्वर ने इनमें से सभवत सघात्य, वेष्टित तथा मुक्तक मालाओ का ही वर्णन किया है। सघात्य माला के अन्तर्गत उन्होंने मालती, मल्लिका आदि अनेक पुष्प पुञ्जों से माला बनाने का आदेश दिया है। जो माला सिर पर तथा कठ मे धारण की जाती थी वह सपूर्ण सिर तथा पूरे वक्ष स्थल को ढक लेती थी, इसी कारण वह माला वेष्टित हो सकता है। केवल एक ही प्रकार

---

१ माला गन्ध पटिविरतो समणो गौतमा ॥
दीघनीकाय ब्रह्मजालसुत्त सू० १०, पृ० ६

२ रत्नावली ३।५३। ३ नाट्यशास्त्र अध्याय २३।

के पुष्पों द्वारा बनाने वाली जिस माला का सोमेश्वर ने वर्णन किया है वह सम्भवत मुकुक माला हो सकती है। किन्तु सोमेश्वर ने मानसोल्लास में इन मालाओं के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है।

माला साधारणत उस समय मे राजाओं के लिए अपने शरीर को सुसज्जित करने एव सुगधित बनाने का पूर्ण साधन थी। उस समय के राजाओं का पुष्पों से अधिक प्रेम था। नाट्यशास्त्र के अनुसार यौवन की प्रारम्भिक वय सधि की अवस्था में स्त्रियों में धम्मिल (जूडक रचना), केश विन्यास, वस्त्र निबन्धन, दन्त परिकर्म, परिष्करण, दर्पणेक्षण, पुष्प चयन, माल्यधारण, जल क्रीडा तथा लज्जा आदि चेष्टायें उत्पन्न होती हैं।[1] वराहमिहिर इस मत का अनुमोदन नहीं करते। उनका कथन है—

> रत्नानि विभूषयन्ति योषा भू यते वनिता न रत्नकान्त्या।
> चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गात्॥[2]

माला धारण करने की प्रथा पुराण काल में भी अधिकाशत प्रचलित थी, क्योंकि माला धारण करने के अनेक प्रसग पुराणो में प्राप्त होते है।[3]

सोमेश्वर ने जो 'बिभर्ति माल्य शिरसा नृपति स्वानुसारत,[4] का प्रयोग किया है, इससे विदित होता है कि दक्षिण में उस समय भी यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। महर्षि वाल्मीकि ने श्रीरामचन्द्रजी के चित्रकूट पर्वत पर निवास करने के प्रसग म सिर पर पुष्प माला धारण करने का उल्लेख किया है—

> कुर्वन्ति कुसुमापीडा शिरस्सु सुरभीनमी।
> मेघप्रकाशै फलकैर्दाक्षिणात्या नरा यथा॥[5]

इस प्रसग से भी विदित होता है कि रामायण काल मे दक्षिण में सिर पर माला धारण की जाती थी। अत यह सिर पर माला धारण करने की प्रथा सोमेश्वर की स्थानीय विशेषता को प्रकट करती है। आजकल भी दक्षिण प्रदेश में सिर पर जूडा बनाकर उस पर पुष्पमाला धारण करने की प्रथा है। मद्रास में शिखा में पुष्प माला धारण की जाती है।

सोमेश्वर ने माल्योपभोग प्रकरण के अन्तर्गत सिर एव कठ के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों में धारण की जाने वाली मालाओं का वर्णन नहीं किया

---

१ वही अध्याय २३। २ बृहत्सहिता ७४।२।

३ श्रीमद्भागवत पु० १०।६४।२९, १०।४१।४४, १०।२२।३, १०।६६।१३ तथा ९।१०।४२।

४ मानसोल्लास ३।७।१०४७। ५ वाल्मीकि० रा० २।९३।१३

है। यद्यपि माला धारण करना एक साधारण कृत्य है, किन्तु इसे भी सोमेश्वर ने उपभोग के अन्तर्गत लिया है।

भूषोपभोग

आभूषण भी प्राचीन काल मे राजा को विलासता, ऐश्वर्य एव वैभव के प्रतीक थे। इसी कारण सोमेश्वर ने माल्योपभोग के पश्चात् राजा के धारण करने योग्य आभूषणों का वर्णन किया है जिनके बनाने में विशेष रूप से सोना, चादी, हीरा, पन्ना, मौक्तिक, मणि तथा अनेक प्रकार के बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग होता था। इस प्रकरण के प्रारम्भ में सोमेश्वर ने अनेक प्रकार की मुक्ताओं, रत्नों, मणिया एव वस्त्रों के लक्षण तथा जातियों का वर्णन किया है[1]।

इन लक्षणादि के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने इस प्रकरण मे तीन प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया है[1]—

१—स्त्री पुरुषों के समान आभूषण।

२—स्त्रियों के आभूषण।

३—पुरुषों के आभूषण।

स्त्री पुरुषों के समान आभूषण—

स्त्री-पुरुषों के समान आभूषण निम्नलिखित है—

१ एकावली—विशाल मुक्ताओं द्वारा बनी हुई एक लड की माला एकावली कहलाती थी। इसे सोमेश्वर ने अत्यन्त श्रेष्ठ माना है—

स्थूलमुक्ताफलैः कार्या कण्ठे त्वेकावली वरा॥[2]

२ हार—गले का दूसरा आभूषण हार है जिसे स्त्रीपुरुष दोनो ही पहनते थे। बीच में मुक्ताओं को करके तीन, पाच तथा सत सरों को बनाकर उपान्त में सुमनोहर नीलमणि से मिलाए। इन सब को सुवर्ण की मृणाली नाल द्वारा बनाकर पक्ति रूप में स्थापित करे। इस प्रकार से सुवर्ण मृणाली द्वारा क्रमश गुथी हुई समान लडों वाली माला हार कहलाती थी।

३ वर्णसर—नील माणिक्य में मिलाकर पूर्व क्रम से बनाव। यह वर्णसर देखने में अत्यन्त मनोहर होता था।

४ ब्रह्मसूत्र—सर। लड। हीन सुवर्ण मृणाल से मुसहत अनाभिलम्बित आभूषण ब्रह्मसूत्र कहलाता था।

एत एव सरो हीना मृगालीभि सुसहता।
अनाभिलम्बिता भूषा ब्रह्मसूत्रमितीरिता॥[3]

---

१ मानसो० ३।८ १०४८—००६५। २ वही ३।८।१०६६।

३ वही ३।८।१०७२-७३।

५ पदक—सुवर्ण-निर्मित रत्नजटित हरिन्माणिक्य (पन्ना) तथा नील माणिक्य एव मणियों द्वारा नायक के मध्य प्रदेश को आवेष्टित करने वाला वक्ष स्थल का आभूषण पदक कहलाता था।

६ केयूरक—सिंह रत्न के समान आकार वाला नाना रत्नों से चित्रित सूसक के आलम्बन से युक्त केयूर नामक आभूषण बाहुदण्ड पर धारण किया जाता था—

सूसकैर्लम्बनैर्युक्त केयूर बाहुभूषणम्।[1]

७ कटक—सुवर्ण तथा मणि से पूर्ण, मुक्ता जाल से पूर्ण, पेचक पिच्छ से सयुक्त बाहुसन्धि का आभूषण जो सुवर्ण का बना होता था तथा चारो ओर से रत्नों से सुशोभित होता था।

गले, वक्ष स्थल तथा हस्ताभूषणों के वर्णन के पश्चात् अगुलियो मे पहनने योग्य अगुलीयक का वर्णन किया है। उस समय अनेक प्रकार की सुन्दर अगूठियों का प्रयोग होता था।

८ द्विहीरक (अगुलीयक)—इसमें दो वज्रो के मध्य मे हरिन्माणिक्य तथा नीलमणि होती थी।

९ वज्र—अरकोण से निवेशित, वज्र से सुशोभित मध्य में रत्न से जटित वज्र कहलाती थी।

१० रविमण्डल—गोलाकार वज्रो से वेष्टित, मध्य मे मणियों से युक्त रवि मण्डल कहलाती थी।

११ नन्द्यावर्त—आकार में चौकोर क्रमश उन्नत होती हुई वज्र के मध्य मणियो से सुशोभित अगूठी नन्द्यावर्त कहलाती थी।

१२ नवग्रह—माणिक्य की सुरग, मुक्ता, प्रवाल, मरकत, पुष्पराग, वज्र, नील, गोमेद तथा वैडूर्य इन नौ प्रकार के रत्नों द्वारा निर्मित अगूठी नवग्रह कहलाती थी।

१३ वेष्टक—वज्र से वेष्टित वज्रवेष्टक तथा अन्य रत्नो से पूर्ण अगूठी वेष्टक कहलाती थी।

१४ त्रिहीरक—दो हीरों के मध्य जब अत्यन्त उत्तम एव बहुमूल्य हीरा जड़ा जाय ऐसी अगूठी त्रिहीरक कहलाती थी।

१५ शक्तिमुद्रिका—यह अगुली के वलय में वज्र से आवेष्टित होती थी।

इन अगूठियों के अतिरिक्त अन्य रत्नों द्वारा जटित अनेक वर्ण एव आकार

---

१ वही ३।८।१०७७।

वाली शुभ मुद्रिकाये बनती थीं।[1] कर्णा के आभूषणों म निम्नलिखित आभूषण थे[2]—

१६ मुक्ताताडक—जो केवल सुन्दर मुक्ताओं द्वारा बनता था। सुवर्ण के वलय में केवल मुक्ता जडकर यह बनता था।

१७ द्विराजिक—दो वलयों के मध्य जिसमे मुक्ताफल विराजित हों और मध्य में नीलमणि जटित हो। इसी प्रकार त्रिराजिक भी बनती थी।

१८ पूर्णमध्य—जिसके मध्य का पूर्ण भाग मुक्ताओं द्वारा जडा हुआ हो।

१९ वज्रगर्भ—जिसमें बाहर मौक्तिकों की पक्ति हो तथा वज्र भी बीच में जडा हो।

२० मण्डन—जो बाहर से मुक्ता पक्ति से सुशोभित मध्य में मणियों से सयुक्त वज्र से जटित होती थी। इसी प्रकार जो जो मणि मध्य में रहता था उसी की सज्ञा देकर उसका नाम पडता था।

२१ कुण्डल—जिसमें वज्र पक्ति सोपान की भाति जटित हो।

इतने आभूषणों के वर्णन के पश्चात सोमेश्वर स्त्री-पुरुषों के अलग अलग आभूषणों का वर्णन करते है।[3]

स्त्रियों के आभूषण[4]

१ हसतिलक—यह अश्वत्थ पत्र की शका को उत्पन्न करने वाले सुवर्ण मिश्रित माणिक्य वज्रादि से खचित, मुक्ताओं से युक्त होता था। मुक्ताओं के पार्श्व में सूसक विराजमान रहता था। और उसके वाह्य भाग में अनेक प्रकार के रत्न जडे होते थे। इस आभूषण के उपर अनेक प्रकार के वज्र, मुक्ता तथा माणिक्यों के बन्धन बने होते थे। इस प्रकार का बना हुआ आभूषण हसतिलक कहलाता था। इसे स्त्रिया अपने सामन्त (बालों पर) म धारण करती थीं।[5]

२ दण्डक—यह कञ्चन पट्टों से बधा हुआ वलय की आकृति का होता था। इसके अर्ध्व भाव में मुक्ताजाल बना होता था।

३ चूडामण्डन—दण्डक से कुछ बडा बनाया गया आभूषण चूडामण्डन कहलाता था। यह अत्यन्त उत्तम सिर का आभूषण माना गया है। यह आभूषण केतकी पुष्प की शका को उत्पन्न करने वाला स्वर्ण का बना होता था और दण्डक आभूषण के ऊपर पहना जाता था—

---

१ वही ३।८।१०८९–९०।   २ वही ३।८।१०९१–९७।

३ वही ३।८।१९८।   ४ वही ३।८।११०२–२६

५ वही ३।८।११०२ "तदिद हसतिलक योषित्सीमन्तभूषणम्"

क्रमशो वर्धमान तच्चूडामण्डनमुत्तमम् ॥
केतकीदलसकाश कनत्काञ्चनकल्पितम् ।
दण्डकस्योर्ध्वभागस्य भूषण तदुदाहृतम् ॥[1]

४ पद्म—सुवर्ण का बना हुआ पद्म की आकृति वाला अनेक रत्नो से जटित आभूषण पद्म कहलाता था।

चूडिभूषण—सुवर्ण निर्मित सुन्दर पुष्पों से युक्त तथा बडे माणिक्य, नीलमणि एव मुक्ता की लडियों से सुशोभित आभूषण चूडि कहलाता था।

६ मुकुल—मुक्ता, नील मणि द्वारा बना हुआ पिचुमन्द के आकार वाला माणिक्य, गारुड हीरक आदि मणियों से जटित आभूषण मुकुल कहलाता था। यह स्त्रियो के कर्ण का प्रिय भूषण था।[2]

७ सारिका—जिसके बाह्य भाग मे नील निर्मित लटकने वाली लडी लगी होती थी और नौ तथा दस स्थूल मुक्ताओं को डालकर गले के बराबर के आकार का बनता था। इसे सारिका कहते थे। इसे स्त्रिया अपने गले प्रदेश में धारण करती थीं।

८ बाहुबलय—यह स्वर्ण से निर्मित रत्न, मुक्ता, नील माणिक्य से जटित सिंह के मुख के आकार का बना होता था। इसे स्त्रिया हाथों मे धारण करती थीं।

९ चूडक—सूक्ष्म काञ्चन की शलाका से पूर्ण अनेक प्रकार के बहुमूल्य वज्र, मुक्ता आदि से जटित आभूषण चूडक कहलाता था। यह स्त्रियो की शोभा की वृद्धि करने वाला प्रकोष्ठ भाग में पहना जाने वाला आभूषण था—

अनेनैव प्रकारेण वज्रमाणिक्यमौक्तिकै ।
चूडक मण्डन स्त्रीणा प्रकोष्ठस्य विभूषणम् ॥[3]

१० अर्धचूडक—इसी प्रकार से अर्ध बलय से पूर्ण बनाया हुआ आभूषण अर्धचूडक कहलाता था—

अनेनैव प्रकारेण तदर्धेन विनिर्मितम्।
अर्धचूडकमितिख्यात स्त्रीणा प्रियतम सदा ॥[4]

११ काञ्चीदाम—यह सुवर्ण से बना हुआ, रत्न जटित, लटकते हुए सूत्रों से आबद्ध, सुवर्ण की बनी हुई घर्घरिकाओं के शब्द से युक्त चार अगुल के विस्तार के बराबर प्रमाण वाला आभूषण काञ्चीदाम कहलाता था। इसे स्त्रिया अपने कटि प्रदेश में धारण करती थीं।

---

१ वही ३।८।११०३-४। २ वही ३।८।११०७।
३ वही ३।८।१११४। ४ वही ३।८।१११५।

१२ पादचूडक—हस्तचूडकवत् का जघा काण्ड के प्रमाण का बना हुआ नाना रत्नों से खचित आभूषण पादचूडक कहलाता था। इसे स्त्रिया पैरो मे धारण करती थीं।

१३ कटक—सुवर्ण का बना हुआ तीन भागो मे खण्डन किया हुआ, सन्धिप्रदेश म कील से जटित, सुवर्ण विन्दु से पूर्ण चार, छ अथवा आठ पंक्तियों से युक्त शब्द करने वाला, कान्ति युक्त अनेक रत्नों से जटित आभूषण कटक कहलाता था। इसे रानिया अपने पैरों मे धारण करती थीं।

१४ पादघर्घरिका—तीन अथवा पाच अथवा अनेक रत्नों में जटित शृङ्खलाओं से युक्त, सन्धिप्रदेश में कील मे जटित, नाद करने वाला अत्यन्त शोभायुक्त, आभूषण पादघर्घरिका कहलाता था।

१५ राढाका—पादघर्घरिका के रूप से कुछ समानता रखनेवाला ध्वनि-हीन पैरों का आभूषण राढाका कहलाता था—

> ईद्रूपसमाकारा नानारत्नैर्विनिर्मिता।
> ध्वनिहीना सुशोभाढ्या राढाका परिकीर्तिता॥[1]

१६ अन्दुका—वक्र आकार वाला कटक के आकार का निर्मित आभूषण अन्दुका कहलाता था—

> आयताश्च सुवक्राश्च कटकाकारनिर्मिता।
> अन्दुका इति विख्याता योषिता पादभूषणम्॥[2]

१७ यमला—काञ्चन से निर्मित स्थूल तथा ध्वनियुक्त आभूषण यमला कहलाता था। इसे स्त्रिया अपने पैरों की तर्जनी म धारण करती थी।

इस प्रकार के स्त्रियों द्वारा शरीर के विभिन्न अगों में धारण किए जाने वाले आभूषणों के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर पुरुषों के आभूषणों का वर्णन करते हैं[3]।

पुरुषा के आभूषण—

१ शेखर—यह आभूषण राजा के शिखर भाग को सुशोभित करता था।

२ मुकुल—मुकुल की आभा वाला शिर पर धारण किये जानेवाला आभूषण।

३ शिरोवेष्टन—केवल लडियों युक्त शिर के सम्पूर्ण भाग को सुशोभित करने वाला आभूषण शिरोवेष्टन कहलाता था।

इस प्रकार से यह तीन राजा के शिर पर धारण किए जाने वाले आभूषण

---

१ मानसो० ३।८।११२२। २ वही ३।८।११२५।

३ वही ३।८।११२७–२९।

प्राचीन काल के सभी आभूषणों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है[1]—

१ आवेध्य—ताडी, कुण्डल, कान में पहने जाने वाले अलकार जो अग को छेदकर पहने जाते थे।

२ निबन्धनीय—बाध कर पहने जाने वाले आभूषण जैसे श्रोणीसूत्र (करधनी) मेखला, चूडामणि, शिर का आभूषण।

३ प्रक्षेप्य—उमिका, कटक, मजीर आदि आभूषण जो अग मे प्रक्षेप पूर्वक पहने जाते थे।

४ आरोप्य—जो अग पर अलग से आरोपित किये जाय जैसे हार, माला नक्षत्र मालिका आदि।

सोमेश्वर ने इन चारो ही प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया है जैसे कुण्डल आदि आवेध्य, काचीदामादि[3] निबन्धनीय, कटक[4] आदि प्रक्षेप्य तथा हारादि[5] आरोप्य अलकारो के अन्तर्गत आ जाते है।

बुद्ध काल में भी आभूषणो का प्रयोग अधिक मात्रा मे स्त्री तथा पुरुष दोनों ही करते थे किन्तु विभूषणों का प्रयोग बौद्ध भिक्षु के लिए वर्जित था। समवाय सुत्त में विभूषण को बनाने तथा पहनने की अनेक प्रकार की विधियों 'आभरणविहिम' का उल्लेख हुआ है।[7]

मेघदूत की टीका में मल्लिनाथ ने आभूषणो के वर्गीकरण पर प्रकाश डाला है। रसाकर नामक ग्रन्थ में चार प्रकार[9] के आभूषणों का प्रसग प्राप्त होता है—

१ कचधाय—केश में पहने जाने योग्य आभूषण।

२ देहधार्य—देह मे धारण करने योग्य।

३ परिधेय—पहिनने के वस्त्रादि।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद पृ० ७६।

२ मानसो० ३।८।१०९७। ३ वही ३।८।१११७।

४ वही ३।८।१०७९। ५ वही ३।८।१०६९।

६ दीघ निकाय ब्र० सु० १०।

———विभसनट्ठाना पटिविरतो समणो गोतमो।

७ ए० वेकटसूबिया–दिकलाज–पूची १।

८ मेघदूत २–११।

९ कचधाय देहधाय परिधेय विलेपन।

चतुर्धा भूषण प्राहु स्त्रीणामन्यथदेशिकम्॥ रसाकर।

४ विलेपन—चदनादि का शरीर पर लेप ।

इसके अनुसार पहनने योग्य वस्त्रा तथा विलेपनादि को भी आभूषण माना गया है क्योंकि इनमे भी शरीर की शोभा की वृद्धि होती है ।

सोमेश्वर ने विलेपनादि को आभूषण के अन्तर्गत नहीं लिया है । सोमेश्वर ने इस प्रकरण में जिन आभूषणों का उल्लेख किया है वे सभी चद्र, सूर्य, मूट, रारवडी, केतकी, कमरपट्टा आदि नामों से महाराष्ट्र मे कुछ दिन पूर्व तक प्रयोग मे लाए जाते थे । सारीक नामक आभूषण अब भी महाराष्ट्र मे पहना जाता है और सारी के नाम से प्रसिद्ध है ।

सोमेश्वर ने इतने प्रकार के सब अगों मे पहने जाने वाले आभूषणो का वर्णन किया किन्तु नाक में पहने जाने वाले किसी प्रकार के भी आभूषण का प्रसग मानसोल्लास में नहीं प्राप्त होता । इससे विदित होता है कि उनके समय में स्त्रिया नाक मे आभूषण नही धारण करती थीं । सस्कृत-साहित्य मे भी नाक मे पहनने वाले आभूषणों के प्रसग नहीं प्राप्त होते । इसका सम्भवत यही कारण हो सकता है कि नाक में आभूषण पहनने की प्रथा मुगल काल से ही प्रारम्भ हुई है । मुगलों के समय में मुगल इतने निर्दयी थे कि वे स्त्रियों को बेचकर उससे व्यापार करते थे और बेचते समय उनकी नाक मे नाथ सी डाली जाती थी । उसी समय से नाक मे आभूषण पहनना प्रारम्भ हुआ होगा । विवाह के समय कन्या की नाक में नथ पहनाई जाती है और वह शुभ मानी जाती है, किन्तु उसका अभिप्राय यही हो सकता है कि विवाह के दिन से कन्या बिके हुए धन के समान हो जाती है । माता पिता का उस पर से अधिकार हट जाता है और श्वसुर के गृह से सम्बन्धित अनेक बन्धन एव उत्तरदायित्व उसके ऊपर आ जाते हैं इसी कारण उसी प्रतीक के रूप मे कन्या विवाह मे नथ को अपनी नाक में धारण करती है ।

आसनोपभोग

राजा के लिए प्रयोग में लाये जाने वाला आसनों का सोमेश्वर देव ने विस्तार पूर्वक वर्णन किया है । इसके प्रकरण के अन्तर्गत उन्होंने नौ प्रकार के आसनों का उल्लेख किया है जो चम्पक, आम्र, मधूक, पनस तथा उदुम्बर के वृक्ष की लकडी के बनते थे—

१ मगलासन—यह अत्यन्त विशाल होता था और इसमे चार पाये होते थे । यह आसन चारा ओर से चौकोर, काञ्चन की शोभा वाला तथा अत्यन्त मनोहर होता था[1] ।

---

१ मानसो० ३।९।११३४ ।

२ पवित्रासन—श्रीपणा की लकड़ी का हस्त मात्र के आकार का, बिना रत्नों वाला अत्यन्त विस्तृवत पीठ पवित्रासन कहलाता था[1] ।

३ मज्जनासन—शाक, दारू आदि की लकडी का सुदृढ़, चार पायों से युक्त पीठ मज्जनासन कहलाता था इसका प्रयोग स्नान के समय ही होता था[2] ।

४ सुखासन—यह ईटो से बना हुआ होता था। इसके पृष्ठ भाग पर धारियां बनी होती थी। यह अत्यन्त स्वच्छ एव चिकनी जडाऊ भूमि की शोभा को धारण करने वाला पीठ होता था जो कपास से भरे हुए तथा छागीपट्ट से आच्छादित एव हसपिच्छों की निर्मित गद्दी से युक्त होता था ।

५ पट्टगद्दिका—मूर्णा गर्भित रत्न छाग चर्म से तथा नाना प्रकार के विचित्र रगों से युक्त अत्यन्त विस्तृत आसन पट्टगद्दिका कहलाता था[4] ।

६ भूशय्यासन—पट्टगद्दिका आसन पर ही यदि हस पिच्छ फैलाकर श्वेत पट्टों से बाध दिया जाय तो वही श्वेत शोभा से युक्त आसन भूशय्यासन कहलाता है। यह सगीत के प्रसग में, गज, वाजि विनोद के समय तथा सुख सवाद के समय प्रयोग में लाया जाने वाला उत्तम आसन था[5] ।

७ लौहासन—जिसमें पाच, सात अथवा नौ लौह निर्मित पाये हों, जिसका आधार भी लोहे का हो तथा ऊपर भी लोहे का जाल हो तथा छदिका के कपडे मे कपास भरा आसन हो वह लौहासन कहलाता था ।

८ धारासन—शाक, दारु की लकडी से बना हुआ हाथी दात से चित्रित तथा अनेक वर्णों एव आकृतियों से पूर्ण पृष्ठभाग मे एक ही फल वाला आसन धारासन कहलाता था। यह थोडा सा ऊँचा बनाया जाता था[7] ।

९ सिंहासन—अत्यन्त सुन्दर सोने का बना हुआ आसन सिंहासन कहलाता था। इसके ऊर्ध्व भाग में आठ गरजते हुए सिंहों का मूर्तियां तथा नीचे के भाग मे तीन रत्न जडित वेदियां बनी होती थीं सिंहों की आकृतियों से पूर्ण होने के कारण यह सिंहासन कहलाता था। इसका प्रयोग राजा अपने दरबार में बैठने के समय करता था। यह राजा के लिए अत्यन्त प्रिय एव उत्तम आसन है[8] ।

इन सभी आसनों में सोमेश्वर ने पूतासन को देव काय के लिए, सुख पूर्वक बैठने के लिए ममलासन तथा राजदरबार के लिए सिंहासन को उपयुक्त बतलाया है—

---

१ वही ३।९।११३५ । २ वही ३।९।११३६ ।

३ वही ३।९।११३७–३८ । ४ वही ३।९।११३९ ।

५ वही ३।९।११४०–४१ । ६ वही ३।९।११४२–४३ ।

७ वही ३।९।११४४–४५ । ८ वही ३।९।११४६–४७ ।

पूतासन देवकार्यं सु वाया (ग) मगलासनम् ।
स्वैरमन्यानि पीठानि सहमास्थानमण्डपे ॥[1]

इस आसन के प्रकरण म मभवत पीठ (पाटा, चौकी) तथा आसन (सुखपूवक बैठने की छोटी शय्या की भाति) इन दो प्रकार के बैठने योग्य आसनो का वर्णन किया गया है। यह सभी आसन किसी न किसी कार्य को करने म राजा द्वारा प्रयोग में लाये जाते थे। इनके वर्णन को पढकर राजा की दिन चया के बहुत कुछ ज्ञान हो ज ता है। इन समो अ सनों को प्रयाग मे लाने वाला राजा प्रतिभावान् कहलाता था ।

इन सभी आसनों को राजा अपने दैनिक जीवन में ही प्रयोग करता था। अत यह आसन मुख्य रूप से पाच प्रकार के थे—

१ आराम पूर्वक बैठने वाले।
२ स्नान के समय प्रयोग में लाये जाने वाले।
३ भोजनादि के समय काम में लाये जाने वाले।
४ क्रीडा सम्बन्धी।
५ पूजा सबन्धी।

कालिका पुराण[3] में देवी देवताओ के लिए पौष्प, दारुज, वास्त्र, चार्म्मण तथा कौश आसनों के प्रयोग का आदेश दिया है। सोमेश्वर ने देव कार्य के लिए पूतासन अथवा पवित्रासन के प्रयोग का उल्लेख किया है[4] जो श्रीपर्णी की लकडी का बना होता था। सम्भवत पूतासन से उसका तात्पर्य कालिका पुराण मे कथित दारुजासन से है।

उपर्युक्त आसनों के अतिरिक्त कालिका पुराण में पाच अन्य आसनों का उल्लेख हुआ है जिसके नाम ये हैं—पद्मासन,स्वस्त्यासन, भद्रासन वज्रासन तथा वीरासन[5]। सम्भवत सोमेश्वर द्वारा कथित मगलासन तथा सिंहासन कालिका पुराण के स्वस्त्यासन तथा वीरासन से समता रखते है। कालिका पुराण में आसनासीन होने की जो विधिया बतलाई गई है उनसे इस बात की पुष्टि

---

१ वही ३।१।११४८।
२ एतानि पीठान्यध्यास्ते राजा विभवभूषित ३।१।११४९।
३ आसन प्रथम दद्यात् पौष्प दारुजमेव वा।
वास्त्र वा चार्म्मण कौश मण्डलस्योत्तरे सजेत् ॥
कालिका पु० अ० ६७।
४ मानसो० ३।१।११४८। ५ कालिका पु० अ० ६७।

हो जाती है। स्वस्त्यासन पर आसीन होने के लिए उक्त पुराण मे इस प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है—

> जानूर्व्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।
> ऋजुकायो विशेन्मन्त्री स्वस्तिक तत् प्रचक्ष्यते ॥[1]

यहा पर मन्त्री शब्द का अर्थ मन्त्रणा करने वाले अर्थात् राजा से प्रतीत होता है। वीरासन के लिए भी इसी प्रकार की उक्ति है—

> एकपादमध कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम्।
> ऋजुकायो विशेन्मन्त्री वीरासनमितीरितम् ॥[2]

यहा पर दरबार मे राजा के बैठने की विधि का ही चित्रण है।

चामरोपभोग

आसनोपभोग के पश्चात् राजा पर डुलाये जाने वाले चमर के उपभोग का वर्णन सोमेश्वरदेव ने किया है। इस प्रकरण में राजा पर चमर डुलाये जाने के सोमेश्वर ने तीन कारण माने है—शोभा, वैभव तथा स्वेदापनयन—

> वीजनैश्चतुरस्रैश्च वीजयन्ति सुमध्यमा।
> शोभार्थं विभवार्थं च स्वेदापनयनाय च ॥[3]

इन्हीं तीन उद्देश्यों से जो चामर राजा के ऊपर डुलाया जाता है उसी को सोमेश्वर ने चामरोपभोग माना है।

सर्वप्रथम वे राजा के ऊपर चमर डुलाने के एव स्थान का वर्णन करते हैं कि जिस समय राजा, अत्यन्त रमणीय सुखशील, विशाल, रत्नों की शोभा से देदीप्यमान, सुवर्ण स्तम्भों से विभूषित, मनोहर चित्रों से चित्रित भित्तियों वाले, अनेक वर्ण वाले वितान से आच्छादित आस्थानमण्डल में अत्यन्त स्वच्छ कुट्टिम पर रखे हुए दिव्य सिंहासन पर विराजमान हो उस समय शरत्कालीन चन्द्रमा के भ्रम को उत्पन्न करने वाले, यश के पुञ्ज से श्वेत, सुवर्ण दण्ड से आच्छादित विचित्र रत्नकान्ति से आभासित मयूरपिच्छ से निर्मित अथवा चमरी पुच्छ से निर्मित, सहस्राक्षों वाले मयूर पिच्छ के चामर को वराङ्गनायें अपने हाथों द्वारा डुलाती हैं।[4] इसी प्रसग मे अनेक प्रकार के चामरों का प्रसग देते हुए सोमेश्वर ने उन्हें विभिन्न देशों तथा विभिन्न जातियों की स्त्रियों द्वारा डुलाने का आदेश दिया है। कुन्तलदेश की श्यामल वर्ण की सुन्दर स्त्रिया कूर्चक के द्वारा बने हुए अत्यन्त रमणीय, सुमनोहर वाल व्यञ्जन द्वारा राजा पर हवा करती हैं। अत्यन्त सुन्दर कामिनिया अनेक पट्टो निर्मित चन्द्रमण्डल

---

१ वही ६७। २ वही अ० ६७।
३ मानसो० ३।११।११५९। ४ वही ३।११।११५१–११५५।

की शका को उत्पन्न कर देने वाले सुन्दर व्यञ्जन को डुलाती है तथा मृग के समान लोचनों वाली स्त्रिया अत्यन्त शुभ तथा रत्नो से अलकृत ताम्रपत्र से निर्मित व्यजन के द्वारा हवा करती है। इस प्रकार सुन्दर कटि से सुशोभित (सुमध्यमा) स्त्रिया राजा पर उसकी शोभा एव वैभव की वृद्धि तथा शीतलता प्रदान करने के हेतु उसपर व्यजन डुलाती है।[१]

इस प्रकरण के अन्तर्गत चार प्रकार के चमरों एव व्यजनों का वर्णन किया गया है—१—मोर पिच्छ अथवा चमरी पुच्छ का चमर २—कूर्चों से बना हुआ वालव्यजन। ३—अनेक पट्टों से बना गोलाकार व्यजन। ४—ताम्रपत्र का बना हुआ व्यजन। इन चारों प्रकार के चामरों द्वारा राजा के स्वेद का निवारण किया जाता था। इन चामरों के वर्णन में जो दो प्रकार के व्यजनों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है सम्भवत उनका प्रयोग ग्रीष्मकाल मे अधिक हवा करने के लिए तथा राजा का स्वेद निवारण कर उसे शीतलता प्रदान करने के हेतु किया जाता होगा और मयूर पिच्छ तथा कूर्चादि के बने हुए चामरों का विशेष रूप से शिशिर, हेमन्त एव शरद् आदि ऋतुओं मे होता होगा क्योंकि इनसे वायु का प्रवाह बहुत कम मात्रा मे होता है और यह राजा के वैभव के प्रतीक हैं।

भारतवर्ष के प्राचीनकाल से ही चामर वीजन ऐश्वर्य का प्रतीक माना गया है। पुराणों में भी रत्न जटित दण्ड से युक्त वालव्यजन डुलाये जाने के प्रसग प्राप्त होता है—

वालव्यजनमादाय रत्नदण्ड सखी करात्।
तेन वीजयती देवी उपासाङ्कक ईश्वरम्॥[२]

शारगधर पद्धति में भी चामर को श्री की वृद्धि करने वाला तथा राजा की शोभा को बढाने वाला माना गया है—

चामर श्रीकर दिव्य राज्य शोभाकर परम्।[3]

इसके अतिरिक्त चामर सदा से ही राजाओं के लिए साधारण सी वस्तु रही है। किन्तु सोमेश्वर के विषय में अनेक देश की सुन्दर स्त्रिया राजा पर शनै शनै चामर डुलाती थीं जिससे राजा को विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता था। इसी कारण सोमेश्वर ने इसे उपभोग के अन्तर्गत ही माना है।

पञ्चतन्त्र[४] में भी चामर को राजा के वैभव तथा भोग का प्रतीक माना है—

१ वही ३।१०।११५१–११६०। २ श्रीमद्० १०।६०।७।
३ शा० प० १४१३। ४ पञ्चतन्त्र।३।२६६।

गुणेषु रागो व्यसनेष्वनादरो
रति सुभृत्येषु च यस्य भूपते ।
चिर स भुङ्क्ते चलचामराशुका
सितातपत्राभरणा नृपश्रियम् ॥

यहा पर 'भुङ्ते' शब्द से चामर के भोग से सम्बन्ध प्रतीत होता है। भोजराज के युक्ति कल्पतरु में चामर के उद्देश्य तथा उपकरणों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।

आस्थान भोग

आस्थान भोग के अन्तर्गत सोमेश्वर ने राजा के सजे हुए दरबार का वर्णन किया है जिसमें सभी दरबारियों का अपने अपने योग्य उचित आसन पर बैठने का वर्णन किया गया है। इस प्रकरण के प्रारम्भ मे चामर व्यञ्जन आदि से युक्त अत्यन्त श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान राजा का वर्णन किया गया है। सर्व प्रथम राजा सबको आह्वान का समाचार प्रतीहारी द्वारा सबके पास देता था। दौवारिक आये हुए व्यक्तियों को अन्दर प्रवेश कराता था।

राजा के दरबार में निम्नलिखित व्यक्ति प्रवेश करते थे—

१ राजा के अन्त पुर को स्त्रिया
२ अन्य आमन्त्रित स्त्रिया
३ राजकुमार
४ पुरोहित
५ अमात्य, मन्त्री तथा सचिव
६ मण्डलाधीश्वर
७ राज्य के प्रमुख अधिकारी (अफसर)
८ भट्ट, चारण, वन्दी, वैतालिक, अक आदि
९ सहायता प्राप्त करने के इच्छुक राजा।

सवप्रथम दौवारिक राजा के प्रासाद में जाना था और पर्दों से ढकी हुई पालकियों में बैठी हुई, विचित्र छत्र की छाया से आवेष्टित हिलते हुए चामरों से युक्त, सुन्दर स्त्रियो को राजदरबार की ओर लाता था। उन पालकियों के साथ अन्त राजदरबार के भृत्य रहते थे, सौविदल्ल हाथ में बेत लिए हुए अपनी तर्जनी से 'अपसर्प', 'गच्छ गच्छ'[1] कहता हुआ व्यक्तियों की भीड को सामने से हटाता था और जनवर्जित मार्ग से पालकियों को नृप स्थान में लाता था। इसी प्रसग में सोमेश्वर ने उन स्त्रियो के शृगार वेशभूषा तथा वस्त्रों का वर्णन किया है[2]। ये स्त्रिया नृपस्थान में प्रवेश कर अपना अपना आसन ग्रहण

१ मानसो० ३।११।११।११६५। २ वही ३।११।११६६–११७३।

करती थीं। इनके आसन राजा के चारों और रहते थे सामने नही।[1]

यह प्रसग तत्कालीन समाज पर भी बहुत कुछ प्रकाश डा.ता है। यद्यपि राजप्रासाद की स्त्रिया परदा करती थी किन्तु राजदरबार मे आने का उन्हे पूर्ण अधिकार था। राजा के द्वारा दिए गए निर्णय मे उनका भी हाथ रहता था और वे राजस्थान की शोभा का एक महान् अग मानी जाती थीं। वे राजमहिषिया सभी प्रकार के आभूषणों वस्त्रों एव विलेपनों से सुशोभित होकर राजदरबार मे आती थीं।

इन स्त्रियों के साथ ही साथ दरबार में कुछ अन्य देशो की भी आमन्त्रित की गई स्त्रिया आती थीं जिनका वर्णन सोमेश्वर ने आगे किया है। वे अनेक प्रकार के वाहनों पर चढकर राजदरबार में आती थी।[2] कोई घोडे पर कोई घोडी पर चढकर तथा कोई पैदल ही चलकर राजा का मन मोहित एव प्रसन्न करने के लिए आती थीं।[3]

इन सभी देश की स्त्रियों के वर्णन में सोमेश्वर ने अपने देश की स्त्रियों का कोई विशेष वर्णन नहीं किया है। यद्यपि वह कन्नाडी राजा था, कन्नडी भाषा समझता था तथा कन्नडी मातृभाषा वाले राष्ट्र पर राज्य करता था फिर भी उसने अपने देश का वर्णन न किया। सम्भवत सोमेश्वर ने कर्णाटक देश को ही कुन्तलदेश माना है। पश्चिम प्रदेश के चालुक्य नरेश कुन्तलप्रभु कहलाते थे और कल्याण नगरी उनकी राजधानी थी। सोमेश्वर भी पश्चिम के चालुक्यो के वश का था और कल्याण ही उसकी राजधानी थी।

ये सभी स्त्रिया स्वय राजदरबार की आभूषण थी—

आस्थानभूषणा सर्वा समागत्य नृपालयम्।
प्रवेश्योभयपार्श्व च पृष्ठभागे च सस्थिता ॥[4]

ये स्त्रियाँ कभी कभी अपने तीक्ष्ण कटाक्षों द्वारा राजा को देखकर धीरे धीरे हस देती थीं। राजा भी उनका बडा सम्मान करता था और उनके हसने पर स्वय भी सिञ्चित लता की भाति हर्षित हो उठता था।

स्त्रियों के पश्चात् राजदरबार में गुण तथा आकार में राजा के ही समान, अलकारों से अलकृत राजकुमार आकर अपने पिता को प्रणाम करते थे, और राजा के द्वारा सकेत किए हुए आसन पर बैठते थे। उनका आसन राजा के ही समीप होता था[5]। उसी के सामने पुरोहित का आसन रहता था और उस

---

१ वही ३।११।११७४–७६।
२ वही ३।११।११७७–७८।
३ वही ३।११।११७८–७९।
४ वही ३।११।११८५–८७।
५. वही ३।११।१२०२–३।

पर रत्न जटित कुण्डलों से युक्त श्वेत वस्त्र को धारण कर पुरोहित युवराज के समीप ही आकर बैठ जाता था।[1]

पुरोहित के पश्चात् राजा के अमात्य मन्त्री तथा सचिव आकर राजा द्वारा निर्दिष्ट आसनों पर बैठ जाते थे। ये राज्य के अत्यन्त आवश्यक अंग है और स्वामी अथवा राजा के बाद द्वितीय महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते है।[2]

इनके पश्चात् विभिन्न मण्डलों के अधिकारी राजदरबार मे प्रवेश करते थे। इन अधिकारियों के पश्चात् भट्ट, सूत मागध, नर्तक, चारण, वैतालिक आदि राजदरबार मे प्रवेश करते थे। ये सब और राजा के यश का तथा उसकी विजय का गान करते थे—

> शौर्योदार्यैस्तथा युक्ता नृपचित्तानुरञ्जका ।
> वार वार समन्तात्ते जयजीवेति वादिन ॥
> उपासीरन्नृपश्रेष्ठ सेवाधर्मविशारदा ।
> तच्चित्तवेदिन सव विनयानतमस्तका ॥[3]

ये उपर्युक्त सभी व्यक्ति राजा की सेवा में उपस्थित रहते थे। राजा दरबार में सर्वश्रेष्ठ स्थान ग्रहण करता था। सब लोगों के यथास्थान बैठ जाने पर तथा वन्दीगणों द्वारा जय गान हो जाने पर राजा प्रतिहारी को उन अन्य राजाओं को दरबार मे बुलाने का आदेश देता था जो अपनी रक्षार्थ उसके समीप आते थे। वे प्रतीहारी के साथ दरबार मे आकर भूमि पर झुककर राजा को प्रणाम करते थे। राजा उन्हें उठने का आदेश देता था और सम्मान पूर्वक राजाओं के योग्य आसन पर उनको बैठाकर सतोषपूर्वक महाप्रीति को उत्पन्न करने वाले वचनों द्वारा उनका श्रम दूर करता था। इसके अतिरिक्त राजा उन्हे दिव्य वस्त्र, विचित्र पट्ट, स्वर्णाभूषण, रत्नजटित आभूषण, सुन्दर हाथी, घोडे, ग्राम, पुर तथा देश आदि देकर उन्हें सन्तुष्ट करता था।[4]

इस प्रकार उनको सन्तुष्ट कर सम्मानपूर्वक राजा विदा करता था। इसके अतिरिक्त किसी को राजा प्रसन्न दृष्टि द्वारा, किसी को मधुर शब्दों द्वारा, किसी को प्रभूत दान द्वारा किसी को सम्मान द्वारा प्रसन्न करता था—

> काश्चित्प्रसन्नया दृष्ट्या काश्चिन्मधुरभाषितैं ।
> काश्चित्प्रभूतदानेन काश्चिन्मानेन हर्षयेत् ॥[5]

यहाँ पर सोमेश्वर ने यह पूर्णरूप से स्पष्ट कर दिया है कि जो कोई भी अन्य

१ वही ३।११।१२०३–४। २ वही ३।११ १२०५।
३ वही ३।११।१२३१–३२। ४ मानसो० ३।११।१२३७–३८।
५ वही ३।११।१२४०।

राजा उसके दरबार मे आवे तो उसको तुष्ट करना तथा सम्मानित करना राजा का परम कर्तव्य है।

अन्य देश के राजाओ को सम्मानित करने के साथ ही साथ राजा कुमार, मन्त्रि, अमात्य, सचिव, मण्डलाधीश्वरों, ठनट, सेवक तथा दक्ष पुरुषो को भी यथायोग्य सम्मान, हास्य, मधुरभाषणादि द्वारा प्रसन्न करता था। तत्पश्चात् राजा सभा को विसर्जित कर अपनी महिषियो के साथ केलि गृह म जाता था और उनके साथ क्रीडा करता हुआ उन्हे सन्तुष्ट करता था।[1] इस प्रकार से सभा म सतुष्ट करता हुआ राजा उन्नति, यश एव वैभव को प्राप्त करता है—

करोत्यास्थानमित्थ य पार्थिव प्रथितोन्नति ।[2]

यह प्रकरण सोमेश्वर के राजदरबार का पूर्ण एव स्वाभाविक चित्र उपस्थित करता है। दरबार मे बहुत से व्यक्ति होते थे इससे विदित होता है कि दरबार बहुत बडे हाल में लगता होगा। स्त्रियों को भी उनके दरबार मे सम्मान प्राप्त था। राजा प्रत्येक देश की स्त्री का बडा ही आदर करता था। अन्य राजा भी रक्षार्थ उसके समीप आते थे। राजा के दरबार मे प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान प्राप्त था। पुरोहित का उपस्थित रहना भी दरबार मे आवश्यक था। सम्भवत पुरोहित राजा को प्रत्येक कार्य को धर्म द्वारा सम्पादित करने का आदेश देता होगा। राजा प्रत्येक विषय में अमात्य, सचिव, मन्त्रिगणों से सलाह लेता था। इसी कारण इन सबकी उपस्थिति आवश्यक थी। स्त्रियो की तथा कुमारों की उपस्थिति भी दरबार म आवश्यक थी। राजा के बाद होने वाले युवराज का आसन राजा के बिल्कुल समीप होता था। उसी के समीप पुरोहित बैठता था। इससे वह युवराज प्रारम्भ ही से धर्मानुकूल अर्थ के सेवन को समझ लेता था और प्रत्येक के साथ सुचारु रूप से आदर करने तथा जनप्रिय बनने के साधनों का उसे ज्ञान हो जाता था। स्त्रिया कभी कभी अपने तीक्ष्ण कटाक्ष राजा पर डालती थीं। राजा भी उनकी दृष्टि द्वारा मनोरञ्जन करता था।

इस प्रकार महाराज सोमेश्वर का दरबार धर्म, अर्थ तथा काम के सेवन का आश्रय था। वन्दीगण जयघोष करते थे जिसे राजा तथा प्रजा दोनो ही सुनकर प्रसन्न होते थे। इसी कारण सोमेश्वर ने आस्थानमण्डप के लिए 'जनवल्लभ' शब्द का प्रयोग किया है—

अधुनाऽऽस्थानभोगोऽय कथ्यते जनवल्लभ ।[3]

---

१ मानसो० ३।११।१२४३। २ वही ३।११।१२४४।
३ वही ३।११।११६१।

यह 'जनवल्लभ' शब्द राजा का जनप्रियता के साथ ही साथ उसकी शासन की योग्यता, वैभव एव ऐश्वर्य को भी प्रकट करता है।

दरबार म स्त्रिया का प्रवेश भारत मे सोमेश्वर के पूर्व भी होता था। बाण ने हर्षचरित मे हर्ष के दरबार का वारविलासिनियों का बहुत सुन्दर चित्र खींचा है किन्तु वे वारविलासिनिया दरबार म नर्तकिया के रूप मे आती थीं।[1] सोमेश्वर के दरबार मे रानिया राजप्रासाद की अन्य स्त्रिया तथा विभिन्न देशो की स्त्रिया आती था।

पुत्रभोग

सोमेश्वर ने पुत्रोपभोग प्रकरण के अन्तगत पुत्र से सम्बन्धित सभी बातों का उल्लेख किया है। उनके कथन के अनुसार बालक के उदर में आने के पूर्व से लेकर विवाह तक के उसके सब सस्कार उचित रीति एव कथित विधान द्वारा करे। इन सभी सस्कारो का विस्तृत उल्लेख पूर्व मे किया जा चुका है। पुत्र का विवाह हो जाने पर अपनी प्रिया के साथ उसे रमण करने दे तथा उनके श्रेष्ठ रूपवान् तथा शीलवान् पुत्र पुत्रियो को अपनी गोद से खिलाकर लालन पालन करे। इस प्रकार से सब कुछ करता हुआ राजा जिस सुख का अनुभव करता है वही पुत्रोपभोग है। पुत्रोपभोग के अन्तर्गत शिशु को शिक्षा दिलाकर उसका विवाह कर उसके पुत्र पुत्रियों का लालन पालन करना आ जाता है—

> निर्भरानन्दसदोह पुत्रभोगमवाप्नुयात्।
> एव शिशूल्लालयित्वा शिक्षयित्वा विवाह्य च॥
> तत्प्रजा पालयेद्यत्तु पुत्रभोग प्रकीर्तित।
> कथित पुत्रभोगोऽय सोमेश्वर महीभुजा॥[2]

इसी पुत्रभोग के प्रकरण में बालक की क्रीडाओं का भी वर्णन सोमेश्वर ने किया है। जब बालक थोडा बडा हो जाता है तो माता पिता उसके अस्फुट एव अर्धभाषित शब्द तथा उसके गालिदान को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और उसके घुटनों से चलने तथा उसके चलने के प्रयत्न करते समय गिरने को देख कर अत्यन्त आनन्द का अनुभव करते हैं—

> अर्धार्धभाषित तेषा गालिदान मनोहरम्।
> जानुचक्रमण पश्येत्स्खलित च पदक्रमम्॥[3]

माता के हाथ का अवलम्ब लेकर बालक जब शनै शनै चलने का प्रयास करता

---

१ वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित—एक सास्कृतिक अध्ययन पृ० ४७।

२ मानसो० ३।१२।१३४०-४१। ३ वही ३।१२।१२६८।

है और अन्त में माता की गोद मे बैठ जाता है। उस समय फलादि के प्रदशन द्वारा पिता उसे माता की गोद से लेने का प्रयास करता है[१]। पिता पुत्र के वात्सल्य से वशाभूत होकर कभी उसे अक मे लेता है कभी हृदय पर रखता है कभी स्कन्ध प्रदेश पर उसका सिर रखकर लेता हे कभी हाथों पर लेता है।

इसी के आगे सोमेश्वर छोटे शिशु को पहनाये जाने वाले सूत्रों एव आभरणों का वर्णन करते है। लाज से आच्छादित रक्षामन्त्र के पत्र से आवेष्ठित, मूगा तथा व्याघ्र नख से सुशोभित, चित्र मे युक्त कपर्दक तथा छोटे शख से युक्त कण्ठसूत्र, पञ्चलोहे के ककण से विभूषित तथा कटिप्रदेश तथा पैरो म स्वर्ण घर्घरिका से युक्त, कर्ण प्रान्त म कर्णपाली तथा स्वर्ण कुण्डल से युक्त तथा अश्वत्थ पत्र की शका को उत्पन्न करने वाले शिर के भूषण से सुशोभित अलकों वाला बालक भा अपने माता पिता को देखकर इधर उधर दौडता है। पिता ऐसे सुकुमार बालक के अगों का आलिंगन कर उसके वदन का चुम्बन कर सुख का अनुभव करता है[३]।

सोमेश्वर ने बालक को योगान्द्र विष्णु (कृष्ण) तथा गगाधारी शिव का रूप माना है और उसे नरक से त्राण करने वाला बतलाया है। सदैव प्रसन्न तथा नग्न रहने और मिट्टी से धूल धूसरित होने के कारण वह दिगम्बर तथा जटिल विभृति को धारण करने वाले गगाधारी शिव के समान होता है। उस व्यक्ति को सोमेश्वर ने बडा पुण्यवान् बतलाया है जो पुत्र के शरीर के स्पर्श के सुख को प्राप्त करता है।

इसी प्रकार का प्रसग अभिज्ञानशाकुतलम् मे भी प्राप्त होता है। पुत्र के शरीर को धूल से धूसरित हुई देह वाली शकुन्तला को धन्य माना गया है—

---

१ मातृहस्तावलम्बन ललित गमन शन ।
फलप्रदशनाद्बालमानीत मातुरङ्कत ॥ मानसो० ३।१२।१२६९।

२ रक्षामन्त्राक्षरै पत्रैर्लाक्षया परिवेष्टित

पञ्चलौहसुक्लप्तैश्च वलयैभूषिताङिघ्रकम ॥
मानसो० ३।१२।१२७०–७२।

३ वही ३।१२।१२७३–७६।

४ जटिल भूतिभूषाढ्य गगाधरमिवात्मजम।
विष्णुरुद्रसमाभास नरकत्राणकारकम ॥ मानसो० ३।१२।१२७७।

५ वही ३।१२।१२७८।

धन्यास्तदगरजसा मलिनी भवन्ति ।[1]

अन्नोपभोग

पुत्रभोग के पश्चात् महाराज सोमेश्वर अन्नभोग का विस्तृत उल्लेख करते हैं। इस प्रकरण से पता चलता है कि वे नाना प्रकार के व्यञ्जनों के प्रेमी थे। वे उन व्यञ्जनों के पकाने की विधियों से परिचित थे। नित्य नये नये सुस्वादु व्यञ्जनो का उपभोग करते हुए वे सुखपूर्वक जीवन बिताते थे।

सोमेश्वर ने निरामिष तथा सामिष दोनों प्रकार के व्यञ्जनों का उल्लेख किया है, विशेषत सामिष भोजन पर अधिक प्रकाश डाला है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे मास के अधिक प्रेमी थे।

सोमेश्वर का कथन है कि बान्धव मण्डलाधीश, सामन्त, भट्ट आश्रित, सुहृद, भृत्य, नृत्तवाद्यविशारद सबको बुलाकर उचित स्थान देकर पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्रों के साथ राजा को भोजन करना चाहिए।[2] राजा को सुन्दर तथा उचित मात्रा के अनुसार भोज्य, भक्ष्य, पेय, लेह्य तथा चोष्य इन पाचों प्रकार का भोजन करना चाहिए।[3]

निरामिष भोजन

निरामिष भोजन के अन्तर्गत सोमेश्वर ने चावल, दाल, रोटी, पूडी आदि अनेक प्रकार की वस्तुओ को बनाने की विधि का वर्णन किया है। सोमेश्वर चावल के बडे प्रेमी थे। उन्होंने रक्तशालि, महाशालि, गन्धशालि, कलिंगक, मुण्डशालि, स्थूलशालि, सूक्ष्मशालि तथा सषष्ठिक—इन आठ प्रकार के चावलों के लक्षणों का वर्णन किया है।[4] रक्त वर्ण वाला शालि रक्त, बडी आकृतिवाला महाशालि, सुगन्धियुक्त गन्ध, कलिंगदेश में उत्पन्न कलिंगक, शूकरहित मुण्ड, मोटा स्थूल, सूक्ष्म चावल सूक्ष्म तथा साठ दिन में पकने वाला सषष्ठिक शालि होता है।[5] यह सषष्ठिक धान अब भी उत्तरी भारत के गावों में साठिया धान के नाम से प्रसिद्ध है। सोमेश्वर ने इन सभी प्रकार के चावलों को विधिपूर्वक पकाने का सुन्दर तथा अच्छी प्रकार पके हुए भात को ही राजा को खाने के योग्य बतलाया है।[6] महाराज नल ने भी प्रारम्भ में किंचिद् गर्म जल से धोने का आदेश दिया है—

क्षालयेत्तान् बुध सम्यगीषदुष्णेन वारिणा।[7]

---

१ अ० भ० शा० ७।१७। २ वही ३।१३।१३४२–४४।

३ वही ३।१३।१३४४–४५। ४ वही ३।१३।१३४५–४६।

५ वही ३।१३।१३४६–४८।

६ एव भक्त सुपक्व यद्राजयोग्य तदुत्तमम। मानसो० ३।१३।१३५७।

७ नल पाकदर्पण पृ० ६।

इसके अतिरिक्त चावल मे पकते समय दूध तथा मट्ठा डालने का भी विधान बतलाया है।[1] इस प्रकार का चावल आयु तथा आरोग्य को बढाने वाला होता है—

इद तण्डुलसूभतमायुरारोग्यवर्धनम् ॥[2]

चावल के पश्चात् राजमुद्ग, निष्पाव, चना, काली अरहर, उरद, मसूर तथा राजमाष—इन सात प्रकार की दालों का उल्लेख किया है।[3] सम्भवत. ये सभी प्रकार की दाले उनके राज्य क्षेत्र मे उत्पन्न होती होगी। ये दाले अपनी रुचि के अनुसार सम्पूर्ण तथा खण्डित दोनो ही प्रकार से बनाकर खाई जाती था। उत्तरी भारत मे किन्ही किन्ही क्षेत्रो मे माष आदि दालो को पूरी पूरी बनाना अपशकुन माना जाता है और उन्ह किसी खराब दिनों मे ही बनाया जाता है।

सोमेश्वर ने चना, राजमाष, मसूर तथा राजमुद्ग आदि दालों को चक्की द्वारा दलकर उनके खण्ड कर उन्हें पकाने का आदेश दिया है। इसी प्रकार अरहर की दाल भी यन्त्र द्वारा दलकर सूप मे पछोर कर पकाने योग्य होती थी। इससे विदित होता है कि चक्की तथा सूपादि यन्त्रा का प्रचलन उस समय भी होता था।

सोमेश्वर ने सभी दालों को धीमी आग मे पकाने का आदेश दिया है। दाल के बन जाने पर उसमे हिगु जल डाला जाता था। यह हिगु का प्रयोग सोमेश्वर के स्थान की अथवा समय की विशेषता को प्रकट करता है। उत्तरी प्रदेशो की ओर हिंगु चूर्ण अथवा जमी हुई हिंगु का प्रयोग बिल्कुल थोडी मात्रा में होता है। किन्तु उनके समय मे हिगु को जल मे भिगोकर हिंगु जल ही दाल में अधिक मात्रा में डाला जाता था।

भोजन सबधी पदार्थों में सोमेश्वर ने दोसा तथा इदली आदि नामो का उल्लेख किया है जो आज भी तामिल तथा कनाडी भाषा में प्राप्त होते है। मण्ड, पोलिका, वटिका, कटकर्ण आदि अब भी मराठियों के प्रिय भोजन हैं।[5] दालों के अतिरिक्त रोटी का भी प्रयोग वे करते थे। रोटी का प्रयोग भारतवर्ष मे वैदिक काल से ही होना प्रारम्भ हो गया था। इसके लिए पक्ति (पकाई जाने के कारण) शब्द का प्रयोग होता था। सोमेश्वर ने नौ प्रकार की पोलिकाओं

१ तत्रैव तु सदा सिंचत् तक्र क्षीर पयाऽथवा—नल—पाकदर्पण पृ० ६।

२ नल—पाकदर्पण प० ६। ३ मानसो० ३।१३५७–५८।

४ मानसो० ३।१३।१३६८।

५ मराठी–माडे पोळी, वडे, कडकणे आदि।

का वर्णन किया है[१] अगारों पर पकाइ जाने वाला अगार पोलिका'। [२] पोलिका का ही भाति भरी तेल या घी की कडाही म पकाई जाने वाली पौलिका सोहल[२] कहलाती थी। उत्तरा क्षेत्रो म ग्रामो मे सम्भवत आज भी इसी सोहल (पूडी) को सोहारी के नाम से पुकारते है। इसी प्रकार अन्य अन्नो के तथा पिष्ट द्वारा वाहल्लिका, पत्रका, उत्म्भर, परिका, दोष।[७] वटिका,[८] कञ्जिका,[९] (काजी के बडे), घारिका,[१०] आदि अनेक प्रकार के भाजन बनते थे।

सामिष भोजन

मास भोजन के अन्तर्गत सोमेश्वर ने विशेष रूप से सुअर तथा मत्स्य के मास द्वारा बनी हुई वस्तुओ का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त सारग, हरिण, शश, आजिक आदि पशुओं का मास भी भोजन म प्रयोग किया जाता था।[११] सुअर के शरीर पर के रोमा को अलग कर क उसे पकाने का आदेश सोमेश्वर ने दिया है। उसके बालो को दूर करने के लिए दो प्रकार की विधियों का वर्णन हुआ है।

१ सुअर को श्वेत वस्त्र से ढक कर एक बडे मिट्टी के वर्तन से खौलता हुआ जल दण्ड लगे हुए गण्डक से लेकर सुअर के शरीर पर तब तक खूब डाला जाता था जब तक उसके रोम जड से उखड न जाते थे तब उसे साफ कर उसे पकाया जाता था।[१२]

२ इसके अतिरिक्त सुअर के रोमों को मिट्टी से लेपकर उसके सूखने पर घास की अग्नि उसपर जलाकर उसके रोमों को साफ कर दिया जाता था।[१३]

सुअर के साफ हो जाने पर उसके मास के खण्ड बनाकर उसमे अनेक प्रकार के मसाले, केसर हिंगु, कर्पूर, हरिद्रा आदि मिला कर उसे बनाया जाता था।[१४]

मत्स्यो मे भी बडिश, पाठीन आदि मछलियाँ विशेष रूप से खाइ जाती थी[१५]। मछलियों के शिर को छेदकर पूछ तथा पक्षों को अलग कर उनके

---

१ मानसो० ३।१३।१३८२। २ वही ३।१३।१३८४।
३ अभिलषितार्थ चिन्तामणि। ३।१३।१५६६।
४ वही ३।१३।१५६७। ५ वही ३।१३।१५६९।
६ वही ३।१३।१५७१। ७ वही ३।१३।१५७४।
८ वही ३।१३ १५८५। ९ वही ३।१३।१५८५।
१० वही ३।१३।१५८५। ११ वही ३ १३।१५९८–१६०२।
१२ वही ३।१३।१६०८–९। १३ मानसो० ३।१३।१४२९–१४३०।
१४ वही ३।१३।१४३१–१४६८। १५ वही ३।१३।१५२४–१५२६।

पेट को यन्त्र द्वारा चीर कर तेल तथा नमक द्वारा उनका तब तक घर्षण किया जाता था जबतक उनकी गन्ध नष्ट न हो जाय। तब उन्हे पानी से धोकर हल्दी का चूर्ण उसमे मिलाकर टुकडे करके बनाया जाता था। इसम लवण, मिर्च, शुण्ठा, जीरक, पाण्डु आदि मिलाया जाता था।[१] मास के भोजन मे मासवट का कोशाल[३] पूरभण्टाक,[४] वट्टिमक आदि भोजन विशेष प्रकार से बनाये जाते थे।

शाकाहार

सोमेश्वर के समय म अनेक प्रकार के शाकों का प्रयोग होता था—

फलशाक पत्रशाक कन्दशाक च मूलकम्।
पुष्पशाक शिम्बिशाक पक्वापक्वविभेदत ॥[६]

इन शाको का भी मास की हा भाति बनाया जाता था।[७] इन शाको मे आम्र, जम्बू, बाजपुर, मल्लातक, श्रीफल, पनस, कदला आदि का निमाण विशेष रूप से किया जाता था।

दधि-दुग्ध-मिश्रित आहार

भोजन के साथ दुग्ध तथा दधि की बनी हुई अनेक वस्तुए खाई जाती थीं। गाय अथवा भैस के दुग्ध को धीमी अग्नि म पकाया जाता था। जब वह आधा अथवा तीन भाग रह जाता था तो उसे उतार कर उसमे शर्करादि मिलाकर लेह्य पदार्थ बनाया जाता था। इसी प्रकार दुग्ध के आधे रह जाने पर उसमे तक्र डाल दिया जाता था। जब वह जम जाता था तो उसे मथकर उसमे हींग जीरा आदि की धूप दी जाती थी तब उसे भोजन के बीच मे पीया जाता था।[१] यह सम्भवत उस समय में किसी वस्तु को बघारने की प्रथा थी। इसी प्रकार से मथे हुए दधि मे इलायची तथा शक्कर डाल कर तथा पकते हुए चावल का पाना निकाल कर उसमें मट्ठा शक्कर मिला कर पीने की भी प्रथा थी'[१]।

इसके अतिरिक्त अनेक पके हुए फलो के रस मे भी शक्कर डाल कर खाने के साथ पिया जाता था ।

१ वही ३।१३।१५२५–१५८७। २ वही १।१३।१४८१।
३ वही ३।१३।१४८२। ४ वही ३।१३।१४८४।
५ वही ३।१३।१४८७। ६ वही ३।१३।१५४८।
७ वही ३।१३।१५४९। ८ वही ३।१३।१५५०–१५६४।
९ वही ३।१३।१५६५–६७। १० वही ३ १३।१५६८–७०।
११ वही ३।१३।१५७३। १२ वही ३।१३।१५७८–८४।

राजा सभी अपने परिवार के व्यक्तियों तथा मण्डलाधीशों के साथ भोजन करता था। उसके लिए खाने के लिए विशेष रूप से सुवर्ण पात्रों का प्रयोग किया जाता था। वह पूर्व दिशा की ओर गद्दे पर भोजन करने बैठता था और घृतयुक्त मुद्ग से भोजन प्रारम्भ करता था। इसी भोजन के मध्य में वह खीर मधुर फल के रस तथा मिष्ठानादि को भी खाता था और दूध आदि का पान करता था।[१]

विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न प्रकार के स्वादपूर्ण भोजन का सोमेश्वर के समय निमाण होता था। वसन्त ऋतु में कटु, ग्रीष्म में मधुर तथा शीतल, हेमन्त में स्निग्ध तथा उष्ण, शिशिर ऋतु मे उष्ण तथा अम्ल रस से पूर्ण भोजन करने का आदेश सोमेश्वर ने दिया है[२]।

सोमेश्वर का यह अन्नोपभोग का प्रकरण उनके पाकशास्त्र के ज्ञान को प्रकट करता है। सोमेश्वर ने विशेष रूप से नल के पाकदर्पण का ही आधार लिया है। किन्तु मास से बने हुए भोजन में उनकी अपनी मास विषयक रुचि झलकती है।

वात्स्यायन ने भी माम को भून कर उसके उपदशा को बनाकर खाने का उल्लेख किया है—

भ्रष्टमासोपदशानि पानकानि
यथादेशसात्म्य च।[3]

बौद्ध साहित्य में अनेक प्रकार के सुन्दर व्यञ्जनों को तैयार करने के प्रसग का उल्लेख हुआ है। समवायसुत्त में 'अण्णविहितम्' (अन्नविहितम्) शब्द अनेक प्रकार के सुन्दर भोजनों के बनाने की विधि से ही सम्बन्धित है[४]। दीघ निकाय में भी 'अन्नसन्निधि' का प्रसग प्राप्त होवा है[५]। आर्य वाङ्मय के अन्तर्गत भोजन सम्बन्धी विधि को भी एक अलग शास्त्र माना गया है जो सूपशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उल्लेख मत्स्य पुराण में हुआ है।[६] इस पाकशास्त्र मे नल तथा भीम बडे प्रवीण थे। सुश्रुत सहिता में ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

---

१ वही ३।१२।१५४४–१५९७।

२ वही ३।१३।१५९८–१६००।

३ वात्स्यायन कामसूत्र सूत्र १५।१७।

४ ए० वेंकटसूबिया—दिकलाज—सूची १।

५ दीघ निकाय ब्रह्मजाल सुत्त सू० १२।

६ मत्स्यपुराण २१५।२२।

विशेषत सूदेभ्यो ज्ञेया । सट्टकस्तु–
लवगव्योषखण्डैस्तु दधि निर्मथ्य गालितम् ।
दाडिमीबीजसयुक्त चन्द्रचूर्णावचूर्णितम् ॥
सट्टक तु प्रमोदाख्य नलादिभिरुदाहृतम् ॥[1]

इस उपर्युक्त प्रसग से यह स्पष्ट है कि नल ने पाक सम्बन्धी कोइ ग्रन्थ अवश्य लिखा, किन्तु उस ग्र थ के नाम का उल्लेख नहा हुआ है । सम्भवत वह ग्रन्थ यही पाक दर्पण है, जिसका आधार सोमेश्वर ने अधिकाशत ग्रहण किया है ।

पानीय भोग

अन्नभोग के पश्चात् जल पीने के विधान का भी सुचारु रूप से वर्णन मानसोल्लास मे हुआ है । सर्वप्रथम इस प्रकरण में भोजन के साथ जल पीने के नियम का उल्लेख हुआ है —

मध्ये मध्ये पिबेद्वारि स्तोक स्तोक सुशीतलम् ।
भोजनस्य च रुच्यर्थं पाकार्थमशनस्य च ॥[2]

अथात् भोजन स्वादपूर्ण लगने के लिए तथा उसके पचनार्थ भोजन करते समय बीच बीच मे थोडा थोडा शीतल जल ग्रहण करना चाहिए । इसके अति रिक्त जिस समय भी पिपासा जाग्रत हो उसी समय जल को इच्छानुसार पिए क्योंकि इसमे समय का निदश नहीं है—

पिपासाया च जाताया स्वेच्छया पीयते जलम् ।
नियमो नात्र कालस्य तृषावेगो न धार्यते ॥[3]

इन नियमो के पश्चात् प्राणियों के लिए जल के महत्त्व का प्रदर्शन सोमेश्वर ने किया है कि प्राणियों के प्राण जल पर ही आधारित रहते हैं क्योंकि चेतना हीन व्यक्ति मे भी जल सिंचन द्वारा चेतना का सञ्चार हो उठता है ।[4]

नौ प्रकार के जलों का उल्लेख मानसोल्लास मे हुआ है[5]—

---

१ सुश्रुत सहिता—सूत्रस्थान ४६।४४८–५६ ।

२ मानसो० ३।१४।१६०२ । ३ वही ३।१४।१६०३ ।

४ असव प्राणिनामापो जीवित यत्तदाश्रितम ।
मूर्च्छिता अपि जीवन्ति यतस्तोयेन सिञ्चिता ॥
मानसो० ३।१४।१६०४ ।

५ दिव्य (व्या) न्तरिक्ष नादेय नैझर सा रस जलम ।
भौम चौण्ड च ताडाकमौद्भिद नवधा स्मतम ॥

१ दिव्य—स्वाती नक्षत्र में बादलो से घिरा हुआ सूर्य रश्मियो से मिश्रित तथा सब दोषों को नाश करनेवाला स्वादपूर्ण जल।

२ आन्तरिक्ष—वर्षाकालीन मेघों से बरसा हुआ, स्फटिक के समान निर्मल जल।

३ नादेय—पर्वत से निकली हुई नदी मे तथा प्रशस्त भूमि मे स्थित रहनेवाला इन्द्रनीलमणि की प्रभा से युक्त जल।

४ नैर्झर—पर्वत शिखर को भेद कर निकला हुआ निर्मल, हल्का, शीतल तथा स्वादयुक्त जल।

५ सारस—बालू के मध्य बनाये हुए गड्ढे मे एकत्र जल अथवा नदी एव पर्वत से एकत्र किया हुआ कुमुद एव अम्भोज से युक्त जल।

६ भौम—वापी तथा कूप से निकला हुआ नीलोत्पल की प्रभा को धारण करनेवाला निर्मल, मधुर एव सुस्वादु जल।

७ चौण्ड—स्वच्छ दीर्घ शिलाओ के मध्य अतसी पुष्प के सदृश निर्मल तथा मधुर जल।

८ ताडाक—पालिबन्धन द्वारा कुल्या मे भर जानेवाला जल जिसमे प्रति वर्ष नवीन जल मिश्रित होता रहे।

९ औद्भिद।

सोमेश्वरदेव ने उद्भिद जल के लक्षण का उल्लेख नहीं किया है। केवल आठ प्रकार के जलों के ही लक्षण मानसोल्लास में प्राप्त होते है।[1] औद्भिद जल का लक्षण भावप्रकाश में इस प्रकार से प्राप्त होता है—

जो जल भूमि के निम्न भाग को विदीर्ण कर महती धारा मे बहता है उसे औद्भिद जल कहते है।[2]

इन नौ प्रकार के जलों के अतिरिक्त नारियल से निकले हुए स्वादुपूर्ण एव मनोहर वार्क्ष नामक जल का वर्णन किया है और इसे जीवन के लिए अत्यन्त उत्तम बतलाया है।[3] नारियल से उत्पन्न होने के कारण सम्भवत इसका नाम वार्क्ष पडा है।

ऊपर जो दस प्रकार के जलों का वर्णन हुआ है ये स्वाभाविक जल है।

---

१ मानसो ३ १४।१६०६-१६१४।

२ विदार्य भूमिं निम्ना य महत्या धारया स्रवेत।
तत्तोयमौद्भिद नाम वदन्तीति महर्षय ॥—भावप्रकाश।

३ दशम केचिदिच्छन्ति वार्क्ष जीवनमुत्तमम।
नारिकेलसमुद्भूत स्वादु वृष्य (श्च) मनोहरम ॥
मानसो० ३।१४।१६१५।

इनके अतिरिक्त सोमेश्वर ने जो पिण्डवास[1] तथा पुष्पवास[2] नामक अन्य दो जलो का वर्णन किया है ये सुगन्धियों से सुवासित किए हुए रहते है और पीनेमे अधिक स्वादपूर्ण लगते है।

दिन म सूर्य की रश्मियो से सतप्त, रात्रि मे चन्द्र किरणो से शीतल, कर्दम तथा शेवाल से युक्त, नीलोत्पलदल की भाति श्यामल, कषाय तथा मधुर जल मे कणा, मुस्तक, इलायची तथा चन्दन आदि मर्दित कर खादिर (लकडी) के अगारों पर पका कर मिट्टी के बर्तन मे रखकर उसे सब दोषो को हरनेवाले निर्मल जल में डाल दे ऐसा जल पिण्डवास कहलाता है और यह बडा ही स्वादपूर्ण होता है ऐसा विचक्षणों का मत है—

कणामुस्तकसयुक्तमेलोशीरकचन्दनै ।
मर्दित मृत्तिकापिण्ड खदिरागारपाचितम् ॥
निक्षिपेन्निर्मले तोये सर्वदोषहरे शुभे।
कथित पिण्डवासोऽय सलिलेषु विचक्षणै ॥[3]

इसके अतिरिक्त जो जल सहकार के रस, पाटल तथा चम्पक आदि पुष्पों से एक निश्चित काल तक सुवासित किया हो उस जल को पुष्पवास कहते है।[4]

सोमेश्वर ने भोजन के बीच बीच में थोडा थोडा जल पीने का निर्देश किया है और उसे पाचन का कारण माना है उसका प्रसग प्रबन्धचिन्तामणि मे भी इस प्रकार होता है कि थोडा थोडा बार बार पानी पीने से उदर में अग्नि की वृद्धि होती है और वही पाचन में सहायक होती है[5]।

अन्त में सोमेश्वर पूर्वोक्त नाना प्रकार के जलों को ऋतु के अनुसार राजा को पीने का उपदेश देते हैं।

दिव्य शरदि पानीय हेमन्ते सरिदुद्भवम्।
शिशिरे वारि ताडाग वसन्ते सारस पय ॥
निदाघे नैर्झर तोय भौम प्रावृषि पायते।
हसोदक सदा पथ्य वार्क्ष पेय यथारुचि ॥[6]

अर्थात् हसोदक तो सदैव और वार्क्ष जल अपनी इच्छा अनुसार पीना

१ वही ३।१४।१६२०। २ वही ३।१४।१६२१।
३ वही ३।१४।१६१९–१६२०। ४ वही ३।१४।१६२१।
५ अत्यम्बु पानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बु पानाच्च स एव दोष ।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद् भूरि ॥
प्रबन्धचिन्तामणि।
६ मानसो० ३।१४।१६२७–१६२९।

चाहिए किन्तु शरद ऋतु मे दिव्य जल, हमन्त म नादेय, शिशिर म ताड ग, वसन्त मे सारस, ग्रीष्म मे नैझर तथा वर्षा मे भौम जल पिए। यह पानीय भोग सोमेश्वर के चिकित्सा विषयक ज्ञान को प्रकट करता है।

साथ ही सोमेश्वर ने यह भी कहा है कि प्यास लगने पर इच्छानुसार जल पीना चाहिए। इस सम्बन्ध मे काल का कोई नियम नही है क्योकि प्यास का आवेग रोका नही जा सकता[1]। जल पीने के सम्बन्ध म अनेक प्रसग आयुर्वेद तथा अन्य ग्रन्थों मे प्राप्त होते है। किन्तु उनमे से बहुत से नियम सोमश्वर को मान्य नहीं। सोमेश्वर द्वारा कथित जल का पान अपनी विलक्षणता को प्रकट करता है।

पादाभ्यगोपपभोग

पानीय भोग के पश्चात् सोमेश्वर ने पादाभ्यग के उपभोग का वर्णन किया है। यह पादाभ्यग राजा का नित्य का कम था जो सुन्दर दासियो द्वारा किया जाता है। पादाभ्यग के विषय मे सोमेश्वर ने राजा का इस प्रकार का आदेश दिया है—

वामपार्श्वे शयान सन्पादावभ्यञ्जयेत्सुखी।[3]

अथात् वाम पार्श्व की ओर लेटकर राजा पादाभ्यग करावे। पादाभ्यग के लिए सोमेश्वर ने घृत, शतधौत नवनीत, दही, तेल, दुग्ध, तक्र, चन्दन के क्षोद का जल आदि पदार्थ बताए है।[4] इन सभी वस्तुओं का अभ्यङ्ग अशोक के पल्लव के सदृश कोमल हस्तोंवाली सुन्दर कामिनियों द्वारा करवाये। उपयुक्त वस्तुओं के अनुसार करवाना चाहिए। इसका वर्णन सोमेश्वर ने सुचारु रूप से किया है—

वसन्ते सर्पिषा दध्ना शीतेन पयसाऽपि वा।
निदाघे नवनीतेन काञ्जिकेन सफेनकै॥
वर्षासु वसयाभ्यड्यो पादौ तक्रेण वा पुन।
शतधौतेन शरदि सर्पिषा चन्दनोदकै॥
हेमन्ते शिशिरे चैव तैलनाभ्यञ्जयेत्पदे।
पश्चात्प्रक्षालयेत्पादौ सुखस्पर्शेन पायसा॥[5]

---

१ पिपासायां च जातायां स्वेच्छया पीयते जलम्।
नियमो नात्र कालस्य तृषावेगो न धायते॥
मानसो० ३।१४।१६०३।

२ पिवेद घटसहस्र तु यावन्नाभ्युदिता रवि।
उदिते तो सहस्राशौ बिन्दुरेका थटायते॥ प्रब न्धचिन्तामणि।

३ मानसो० ३।१५।१६३१। ४ वही ३।१५।१६३१–३२।

५ वही ३।१५।१६३४–३६।

अर्थात् वसन्त ऋतु मे घृत तथा दधि से, शीतकाल मे दुग्ध से, ग्रीष्मकाल मे नवनीत तथा फेन युक्त काञ्जी से, वर्षाकाल मे तक्र तथा वसा (चरबी) से, पादाभ्यग करवाना चाहिए तत्पश्चात् ऋतुओं के ही अनुसार स्पर्श करने मे सुख प्रदान करनेवाले जल से पादप्रक्षालन करवाना चाहिए। यह अभ्यग का वर्गीकरण सोमेश्वर के स्वास्थ्य विषयक वैज्ञानिक अनुभव को प्रकट करता है।

इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने पादाभ्यग के लिए एक प्रकार के चूर्ण का भी प्रयोग करने का आदेश दिया है जो मसूर तथा जौ के आटे मे हल्दी का चूर्ण मिलाकर उबटन किया जाता था। इसके लगाने के पश्चात् राजा को सुखस्पर्श जल द्वारा चरण धुलवा डालना चाहिए[1]। सोमेश्वर ने अभ्यग का वास्तविक अर्थ सम्भवत मलने तथा दाबने से लिया है और यह सभी प्रकार के अभ्यग भोजन के उपरान्त नित्य होना चाहिए यही पादाभ्यग का उपभोग है—

एव य कारयेद्राजा भोजनादूर्ध्वमन्वहम्।[2]

सोमेश्वर ने अभ्यग का अर्थ मर्दन एव मालिश से लिया है और विशेष रूप से उन्होने चरण मर्दन का ही वर्णन किया है, किन्तु यह मर्दन एव सवाहन की क्रिया भारतवर्ष मे प्राचीन काल से ही प्रचलित है और यह क्रिया भी चौसठ कलाओ के मध्य गिनी गई है। वात्स्यायन के समय मे नागरक सवाहन अथवा अभ्यग करवाने के विशेष प्रेमी थे।[3] कादम्बरी के अनुसार स्नान, पूजा तथा भोजनादि को समाप्त कर नागरक विश्राम करता था और एक प्रकार की धूम्रवर्ति (चुरुट) का पान करता था। तत्पश्चात् ताम्बूल खाकर लेटता था और तब कोई सवाहक धीरे धीरे उसके चरण दबाता था।[4] दीघनिकाय मे भी सवाहन क्रिया का उल्लेख हुआ है और इसे एक आनन्दप्रद क्रिया मानी है। मृच्छकटिक म भी ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि चारुदत्त का एक उत्तम सवाहक था, जो सवाहन कला में अत्यन्त निपुण था और दरिद्र होने के कारण बाद में जुआ का व्यसनी हो गया था। जब चारुदत्त की प्रेमिका वसन्तसेना ने उसे देखा तो उसके सवाहन की प्रशसा की थी। इस प्रकार से अधिकाशत सवाहन का कार्य पुरुष ही करते थे।

---

१ मसूरयवापष्टश्च हरिद्राचूर्णमिश्रितै।
उद्धर्त्य च पुन पादौ क्षालयेत्सुखवारिणा॥
मानसो० ३।१५।१६३७।

२ वही ३।१५।१६३८।

३ उत्सादने सवाहने केशमर्दने च कौशलम्, कामसूत्र २–४५।

४ कादम्बरी कथामुख भाग। ५ दीघनिकाय १।७।

कि तु सोमेश्वर ने मर्दन क्रिया का अभ्यग नाम दिया है और उसके समय म यह कार्य विशेष रूप से स्त्रिया करती थीं। पादाभ्यग करवाते समय सोमेश्वर ने बाई ओर लेटने का आदेश दिया है। मराठी म इसे वामकुक्षी कहते है। कुछ आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रथो मे ऐसा भी आदेश दिया गया है कि भोजन करने के पश्चात् सर्वप्रथम सौ पद चले तब सीधे लेटकर आठ श्वासे, सोलह श्वासे दाहिनी ओर तथा बत्तीस श्वास बाई ओर लेट कर ले। सम्भवत यह क्रिया भोजन के पाचन मे सहायक सिद्ध होता है।

यानोपभोग

यानोपभोग के अन्तर्गत सोमेश्वर ने नौ प्रकार[१] के यानों का वर्णन किया है—

१ दोला—स्वर्ण शृखला की भाति पट्टों से सुशोभित, शय्या की भाति तकिया से युक्त दिव्य पट्ट की प्रभा को धारण करने वाला, दो व्यक्ति के चढने योग्य एक दण्डिक वाला यान दोला यान कहलाता है।

२ सुखासन—हाथी दात से बना हुआ, सुवर्ण तथा रत्नादि से विभूषित, शार्दूलचर्म से आच्छादित दो दण्डिकाओ से युक्त, हसशय्या से समन्वित चार व्यक्तियों के चढने योग्य आसन सुखासन कहलाता है।

३ हस्तियान—सामने से जो विपुल स्कन्ध वाला, मृदु सचार करने वाला, चलाने पर तेज चलने वाला यान नाग कहलाता है ऐसा विद्वानो का मत है।

४ करिणी - सुवर्ण स्तम्भ से युक्त, मुक्ता की लडियों से युक्त, ऊर्ध्व प्रदेश में काञ्चन कलशों से सुशोभित, मयूरपिच्छ अथवा पुच्छों से आच्छादित, सुन्दर चामीकर से छिपी हुइ, पुष्पों से सुशोभित करिणी का यान करणी यान कहलाता है।

५ अश्वतरी—उपवेश म स्थिर तथा धीर चित्त वाली, चलने मे थोडा अधिक जोर से चलने वाली, दौडने में अत्यन्त मनोहर तथा सभी प्रकार से निर्भय, चारु चामीकर से आसन्न तथा पुष्पक से सुशोमित, अस्खलित पदन्यास वाली घोडी का यान अश्वतरी यान कहलाता था। इस यान को सोमेश्वर ने अत्यन्त श्रेष्ठ यान बतलाया है।[२]

---

१ मानसो० ३।१६।१६३९–४० ।
दोला सुखासन हस्ती करिण्यश्वतरी हय ।
रथा नौ प्लवकश्चेति नवधा यानमुच्यते ॥

२ चारुचामीकरच्छन्नपुष्पकेणोपशोभिता ।
अस्खलन्ती पदन्यासे यानेष्वश्वतरी वरा ॥ मानसो० ३।१६।१६४९ ।

६ हययान—मयूर तित्तिर मराल तथा चतुष्क इन चार गतियो से सुशोभित जो अश्व का यान है वह हययान कहलाता है। यह चारों प्रकार की गतियाँ चतुष्क गति के नाम से प्रसिद्ध है—

मयूरगतिको वाह्यस्तित्तिरीगतिसन्निभ ।
मरालगमनो वाऽपि चतुष्कगतिशोभित ॥[१]

इन गतिया के विषय म ऐसा वर्णन हुआ है कि शीघ्र चलते समय जब घोड की पुच्छ तथा ग्रीवा विशेष रूप से प्रकम्पित हो उसे मायूरी गति कहते है—

गच्छत कम्पनेऽश्वस्य पुच्छग्रीव विशेषत ।
त्वरिता गतिरित्यर्थं मायूरीति निगद्यते ॥[२]

जहाँ शीघ्र पैर रखने पर भी घोडे की पूछ नही हिलती उसे तैत्तिरी तथा जहाँ पार्श्वों की ओर डोलने पर घोडा हसवत् चलता तथा शिर हिलाता है उसे मराली गति कहते है।[3]

जहाँ पर घोडा चारों पैरो द्वारा समान गति से ललित चाल चलता है वह चतुष्क गति कहलाती है यह उत्तम तथा अत्यन्त सुखदायिनी गति है—

चतुष्कागतिराख्यातान्नुत्तमा सुखदायिनी[४]

हययान में प्रयुक्त अश्व मे इन चारों प्रकार की गतियों का होना आवश्यक था।

७ रथ—दो चक्रो (पहियो) से युक्त, चार अथवा दो घोडों से युक्त, उन्मत्त हाथियो के भव्य चित्रों से सुशोभित, सुदृढ तथा नाना वर्ण की पताकाओं से सुशोभित उत्तम रथ का आरोहण रथयान कहलाता है। यह यान राजाओं के ही योग्य बतलाया गया है।[५]

---

१ मानसो० ३।१६।१६५० । २ वही ३।१६।१६४१ ।

३ शीघ्र पदानि कुरुते यत्र पुच्छ न कम्पते ।
सागतिस्तैत्तिरी ज्ञेया हयवाहनकोविदै ॥
पार्श्वाभ्या दोलना यत्र हसवदगच्छनो हरे ।
शिरोऽपि म (विधु) नुते तद्ध मराली गतिरीदृशी ॥
मानसो० ३।१६।१६५२-५३ ।

४ वही ३।१६।१६५४ ।
इस श्लोक मे अनुत्तमा शब्द त्रुटिपूण विदित होता है उत्तमासुखदायिनी शब्द ही उपयुक्त होगा।

५ उत्तम स्यन्दनो याने नृपाणामेव निर्मित ॥
मानसो० ३।१६।१६५६ ।

८ नौयान—शाक की लकडी के बने हुए फलको से आच्छन्न, वल्कल से आवेष्टित गम्भीर जल म चलने वाला नौयान होता है।[1]

९ प्लवक—यह वेणु तथा अन्य वृक्षों की पत्तियों से बनता था। आकार में गोल होता था तथा चारों ओर से चमडे से ढका होता था। यह यान जल में चलने वाली आनन्ददायिनी नाव की भाति होता था।[2]

इतने प्रकार के यानो का राजा यथायोग्य प्रयोग करता था।

उपर्युक्त यानों मे करिणी तथा अश्वतरी यान में 'चारुचामीकरच्छन्न पुष्पेणोपशोभिता' पाद का समानरूप से प्रयोग हुआ है इससे विदित होता है कि करिणी तथा अश्वतरी (घोडो) दोनों पर ही पुष्पक रखा जाता होगा। मराठी म इसी पुष्पक को 'अम्बरी' कहते हैं।

भोजराज ने युक्तिकल्पतरु मे दो प्रकार के यानों का उल्लेख किया है—चतुष्पदयान यथा द्विपदयान। इन दोनों के गुणों तथा दोषों का भी भोजराज ने विस्तृत उल्लेख किया है। चतुष्पदयान के सम्बन्ध में उनका कथन है कि वह गुणों से युक्त होना चाहिए। शुभकामनाओं वाला व्यक्ति कभी दोषयुक्त चतुष्पदयान को न छूता है न उसकी ओर देखता है।[3]

द्विपदयान के महाराज भोज ने अनेक भेद बतलाये हैं किन्तु उनमें दो मुख्य हैं—सामान्य तथा विशेष।[4]

छत्रोपभोग

यानोपभोग के पश्चात् सोमेश्वर ने छत्रोपभोग का वर्णन किया है। यह उपभोग राजा के लिए अत्यन्त प्रिय उपभोग माना है क्योंकि राजवल्लभ[5]

---

१ शाकजै फलकश्छन्ना या च वल्कलवेष्टिना।
आयता सुदृढा नीरे सा नौयान प्रशस्यते ॥
मानसो० ३।१६।१६५७।

२ वेणुकम्राभिर योय गुम्फितो वर्तुलाकृति ।
पिनद्धचमणो बाह्ये प्लवकोऽय जलेचर ॥ वही ३।१६।१६५८।

३ वरमयानमपोषणमेव वा वरमिवा यशरीरमपाषणम।
न खलु दोषयुत च चतुष्पद स्पृशति पश्यति शोभनचेतन ॥
भोजराज—युक्तिकल्पतरु।

४ मानुषै पक्षिभिर्वापि तथा यैर्द्विपदरपि।
यान स्याद् द्विपद नाम तस्य भेदो ह्यनेकधा ॥
सामान्य च विशेष च तस्य भेदो द्विधा भवेत् ॥
भोजराज युक्तिकल्पतरु।

५ मानसो० ३।१७।१६६०।

शब्द का प्रयोग हुआ है। इस प्रकरण मे चार प्रकार के छत्रो का वर्णन किया है[१]—

१ पुण्डरीकसितच्छत्र—नाना वर्ण के सूत्रो द्वारा बने हुए पञ्जर पर आच्छादित मुक्ता लडियों से पूर्ण, नीलवर्ण के विद्रुम एव मुक्ताओं से सुशोभित काञ्चन जात के कलश से पूर्ण छत्र जो सुवर्णपट्ट से निबद्ध दण्ड द्वारा धारण किया जाता था।

२ मेघडम्बर—जो वर्ण के पट्ट द्वारा आच्छादित अनेक वर्ण की विचित्र झल्लरियो से युक्त रजतदण्ड द्वारा धारण किया जाता था।

३ चामर—जो श्वेत छत्र द्वारा ढका हुआ अनेक मणियों से जटित, सुवर्ण कलाप एव चद्रिका से पूर्ण, सुवर्ण तथा हाथी दाँत के बने हुए दण्ड द्वारा धारण किया जाता था।

४ पिच्छ छत्र—जो मयूरपिच्छो द्वारा बनाया जाता था। यह देखने में अत्यन्त सुन्दर होता था।

ये सभी छत्र तथा चामर राजप्रासादो म ही प्रयोग मे लाये जाते थे और राजा के आतप को दूर कर उसे शीतलता प्रदान करते थे।

भोजराज के युक्तिकल्पतरु मे दो प्रकार के छत्रों का उल्लेख मिलता है—विशेष तथा सामान्य[२]। राजा का छत्र विशेष छत्र के अन्तर्गत आता है। महाराज सोमेश्वर ने राजा द्वारा प्रयुक्त विशेष छत्रों का ही उल्लेख किया है क्योकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सुवर्ण तथा रजत के दण्ड से युक्त तथा रत्नादि से जटित छत्र राजा ही धारण कर सकता है। शब्दरत्नावली मे छत्र को नृप का चिह्न माना है[३]। जटाधर ने भी छत्रको नृपलक्षण मान कर उसके भेदों का उल्लेख किया है।[४]

बृहत्सहिता में अनेक प्रकार के छत्रों के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है।[५] समवाय सुत्त[६] में एक स्थल पर 'छत्तलक्खणम्' (छत्रलक्षणम्) का प्रयोग हुआ

---

१ वही ३।१७।१६६३–६७।

२ विशेषश्चाथ सामान्य छत्रस्य द्विविधा भिदा।
राज्ञश्छत्र विशेषाख्य सामान्यञ्चा यदुच्यते॥
भोजराज–युक्तिकल्पतरु।

३ छत्रे कनकदण्डे तु रागश्रृङ्गमुदाहृतम्।
नृपलक्ष्म भवेत्तत्तु यच्छत्र पृथिवीभुजाम्॥ शब्दरत्नावली।

४ आतपत्र च राज्ञस्तु नृपलक्ष्म सित तु तत्।
पुण्डरीकमथो भद्रासन राजासन तु यत्॥ जटाधर।

५ बृ० स० अध्याय ७३। ६ समवायसुत्त २–२–२६।

जिससे विदित होता है कि बुद्धकाल मे भी छत्र का प्रयोग होता था।
इस प्रकार से छत्र विषयक तो अनेक प्रसग प्राप्त होते हैं क्योंकि सभी राजा त्र को अवश्य ही धारण करते थे, किन्तु यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय यह छत्र राजा की शोभा को बढाने के साथ ही साथ राजा की रक्षा का भी तीक है। यह छत्र इस बात की ओर सकेत करता है कि यद्यपि राजा इतने श्वर्यशाली पद पर आरूढ होने के कारण सुख के साथ साथ अनेक आपत्तियों घिरा है, किन्तु फिर भी जनता छत्र के रूप में सदैव राजा की रक्षा करने के ए तत्पर है।

शय्योपभोग

छत्रभोग के पश्चात् शय्या के उपभोग का मानसोल्लास मे विस्तारपूर्वक र्णन हुआ है। इस प्रकरण मे सोमेश्वर ने सात प्रकार की शय्या एव आठ कार के मञ्चों का वर्णन किया है। शय्या के सात प्रकार निम्नलिखित है[1]—

१ हसपिच्छमयी—जो चम की शय्या हस के पिच्छों को बिछा कर बनाई ाती थी।

२ तूलजा—जो शाल्मलीवृक्ष से निकली हुई तूल द्वारा भरकर बनाई ाती थी।

३ कपासजा—रुई भरकर जो शय्या बनती थी। यह कपास को धनुष ारा धुनकवा कर मजबूत वस्त्र के अन्दर भरकर के बनाई जाती थी।

४ केसरजा—जो केसर, नागपुष्प, सुरभि, कुकुम आदि पुष्पों की पत्तियाँ ाल डाल कर बनाई जाती थी। इस पर कमल बिखरे होते थे।

५ पल्लवजा—कमल, कल्हार आदि पुष्पों के पत्रों को बिछाकर जो कोमल ाय्या तैयार की जाती थी।

६ कुसुमजा—इस शय्या के निर्माण में मल्लिका, चम्पक तथा अन्य ुगन्धित पुष्पों का प्रयोग किया जाता था। यह शय्या कामकेलि के समय ायोग में लाई जाती थी।

७ तोयजा—चमडे के बने हुए बडे तथा लम्बे थैले में शीतल जल भर र यह तैयार की जाती थी।

---

१ हसपिच्छमयी काचिच्छाल्मली तूलजा परा।
कर्पासरचिता चान्या केसरैरितरा कृता।
पल्लव कल्पिता काचित् काचित्कुसुमनिर्मिता॥
पानीयपूरिता काचिच्छय्येय सप्तधा स्मता।
मानसो० ३।१८।१६७०–७२।

इन सभी शय्याओ का सोमेश्वर ने राजा के लिए समय तथा ऋतु के अनुसार प्रयोग करने का आदेश दिया है। वसन्त ऋतु मे राजा हसपिच्छो से निर्मित तथा पुष्पपत्रो से निर्मित शय्या का प्रयोग क्रीडा के समय करता था—

वसन्ते हसजा शय्या क्रीडाया पुष्पपत्रजा ॥[१]

ग्रीष्म ऋतु मे राजा शयन के लिए तूलजा शय्या का प्रयोग करता था किन्तु मध्याह्न के समय जलपूर्ण (तोयजा) शय्या का प्रयोग करता था। हेमन्त, शिशिर तथा वर्षा ऋतु मे शीत के निवारणार्थ कर्पास की बनी हुई शय्या का प्रयोग करता था।

भावप्रकाश में शय्या के गुणों पर सुचारुरूप से प्रकाश डाला गया है। उसके अनुसार शय्या आनन्ददायिनी, पुष्टि, निद्रा तथा धृति को प्रदान करने वाली और श्रमानिल को हरण करनेवाली होती है।[२]

याज्ञवल्क्य ने शय्या के दान को अत्यन्त सुखप्रदान करने वाला बतलाया है—

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम्।
यान वृक्ष प्रिय शय्या दत्वात्यन्त सुखी भवेत्॥[३]

विष्णुपुराण में शय्या के प्रयोग के सम्बन्ध में लिखा है कि गृहस्थ को चाहिए पैर धोकर तथा शुद्ध होकर सायकाल भोजन करने के उपरान्त दारूमयी शय्या का सेवन करे। प्रयोग मे लाई जानी वाली शय्या न बहुत बडी हो न टूटी हो, न मलिन हो, न जन्तुमयी हो—

कृतपादावशौचश्च भुक्त्वा साय ततो गृही।
गच्छेत् शय्यामस्फुटितामेव दारूमयीं नृप॥
नाविशाला न वै भग्ना नासमा मलिना न च।
न च जन्तुमयीं शय्यामधिगच्छेदनास्तृताम्॥[४]

शय्या के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने निम्नलिखित आठ प्रकार के मञ्चों का वर्णन किया है[५]—

१ मानसो० ३।१८।१६९२।

२ सुखशयासन हृद्य पुष्टिनिद्राधृतिप्रदम।
श्रमानिलहर वृष्य विपरीतमतोऽ यथा॥ भावप्रकाश।

३ याज्ञवल्क्य १।२११। ४ विष्णु पु० अश ३ अध्याय ११।

५ दन्ताघ्रि लौहचरण साष्टापदपदस्तथा।
वरश्च बलन चैव वेत्रित पट्टिकामय॰
दोलाक्षश्चेति कथिता मञ्चा विद्वद्भिरष्टधा॥
मानसो० ३।१८।१६७२-७३।

१—दन्ताग्रिमञ्च—गजदन्त से ही बनता था और उसमें चार पाये भी हाथीदांत के ही होते थे।

२—लौहमञ्च—लौह से निर्मित और उसी से निर्मित पायों वाला मञ्च लौहचरण मञ्च कहलाता था।

३—चतुष्पद—चामीकर से बना हुआ अनेक प्रकार की रचना से युक्त आठ पायों वाला मञ्च चतुष्पद कहलाता था।

४—वरमञ्च—यन्त्रिपत्र द्वारा किये जाने पर जो अत्यन्त सरस एवं सुन्दर नाद को विस्तारित करता है वह वरमञ्च होता है। यह कामुकों द्वारा काम-केलि के समय प्रयोग में लाया जाता था।

५—बलमञ्च—जो प्रवेश करने मात्र से ही ऊपर नीचे होता था और देखने मे अत्यन्त सुन्दर लगता था वह बलमञ्च कहलाता था। इसका दूसरा नाम लवमञ्च भी था—

दृढाङ्घ्रि चारुरूपश्च लवमञ्च प्रकीर्तित ॥[1]

६—बेत्रमञ्च—जो बाहर से अलग अलग तथा भीतर से घने बेत से बिना होता था और कुटिल चरणों से युक्त होता था वह बेत्रमञ्च कहलाता था।[2]

७—पट्टिकामञ्च—रुई से बना जो अनेक प्रकार की दीर्घ तथा विचित्र वर्णवाली पट्टिकाओं से युक्त हो ऐसा मञ्च पट्टिकामच कहलाता था।

८—दोलामञ्च—यह चन्दन तथा देवदारु की लकडी से बनता था और सुवर्ण की आभा को विस्तारित करनेवाला अनेक दिव्यरत्नों से जटित तथा उन्मत्त गजों से सुशोभित सुवर्ण की शृङ्खलाओं द्वारा बाध कर लटकाया जाता था। यह किञ्जिल्क की शय्या से युक्त होता था और झूले की भाति इधर उधर हिलता था। यह मञ्च अत्यन्त सुख प्रदान करनेवाला होता था। इस मञ्च का प्रयोग शरत्काल मे राजा क्रीडार्थ करता था।

श्रीमद्भागवत पुराण म मल्ललीला के प्रसग में विविध मचों का उल्लेख हुआ है।[3] कथासरित्सागर में भी मचक का उल्लेख हुआ है।[4]

इतने प्रकार की शय्या तथा मञ्चों का प्रयोग राजा शयन, विश्राम एव क्रीडा के हेतु करता था। इसीको सोमेश्वर ने शय्याभोग कहा है—

---

१ मानसो० ३।१८।१६७३। २ वही ३।१८।१६८८–८९।

३ मचा क्रियन्ता विविधा मल्लरगपरिश्रिता। श्रीमद्० १०।३६।२४।

४ वारिधानी तु कुम्भश्च माज्जनी मचकस्तथा।
अह च मत्पतिश्चेति युग्मत्रितयमेव नौ॥
कथासरित्सागर २७।९१।

एव विधेषु मञ्चेषु शय्यास्वेवविधासु च।

शेते विशाम्पतिर्यत्तु शय्याभोग प्रकीतित ॥[1]

धूपभोग

शय्याभोग के पश्चात् उत्कृट सुगन्धि वाले धूपा का वर्णन सोमेश्वर महाराज ने किया है। इसके अन्तर्गत सोमेश्वर ने तीन प्रकार के मुख्य धूपों का वर्णन किया है—

१—चूर्णधूप—लाख, गुग्गुल, राल, कुष्ठुरु, सिल्हक, चन्दन, दारु, सरल, लघुकोष्ठ को जब बालक मासी, कुकुम, पथ्या, कस्तूरी तथा पूतिका बीज, शख नाभि, नख चूर्ण के साथ लेकर द्रव वस्तु को त्याग कर श्वेत घृत, मधु तथा गुड को मिलाकर कर्पूर द्वारा जब धूप दी जाती है उसे चूर्णधूप कहते है। यह अत्यन्त उत्तम धूप मानी गइ है।

द्विगुण लवुकर्पूर चूर्णधूपोऽयमुत्तम ।[2]

इन्हीं पदार्थों से युक्त धूप का उल्लेख अग्निपुराण मे भी प्राप्त होता है—

पुष्पाणि च सुगन्धीनि धूपञ्च घृतसयुतम्।

गुग्गुल कुकुम चैव देवदारु तुरुष्ककम्॥

सिल्हक चन्दन काष्ठ श्रीवास चागुरु तथा।

सर्ज्जरस नख चैव दैवे पैत्रे च कर्मणि॥

इन पदाथा से युक्त धूप को दैव तथा पैत्रकर्म के योग्य बतलाया गया है। अत यह अवश्य ही उत्तम प्रकार की धूप होगी।[3]

२—पिण्डधूप—इन्हीं सब वस्तुओं मे सिल्हक मिलाकर उसमें मधु, घृत तथा गुड मिलाकर उसका पिण्ड बनाकर जो धूप दी जाती है वह पिण्डधूप है।[4]

३—वर्तिधूप—इन्हीं सब वस्तुओ को दुग्ध मे पीसकर घृत, मधु में मिलाकर शुष्क वर्त्तिका द्वारा जो धूप दी जाती है उसे वर्त्तिकाधूप कहते हैं।[5]

कालिकापुराण मे चूर्ण यथा वृत्तधूप का उल्लेख मिलता है—

क्षोदे वृत्ते च गदिता धूपा एते उदाहृता[6]।

वृत्तधूप का अर्थ सम्भवत वर्तिकाधूप से है। साथ ही पिण्डधूप का भी प्रसग प्राप्त होता है—

---

१ मानसो० ३।१८।१६९५–९६।

२ मानसो० ३।१९।१७००।

३ अग्नि पु० भोजनविधाननामाध्याय।

४ मानसो० ३।१९।१७०१। ५ वही ३।१९।१७०१–२।

६ कालिका पु० अ० ६८।

पत्रिवाह पिण्डधूप सुगोल कण्ठ एव च।[1]

इन सभी धूपों का वर्णन कर उन्हे देने के विविध उपायो का उल्लेख किया है। सुवर्ण का खग मृग अथवा किसी अन्य पशु की आकृति का छिद्रयुक्त सम्पुट बनवाकर उसमे अगार रखकर पिण्डधूप दिया जाता है और उस पशु के मुख, नासिका आदि के छिद्रो द्वारा धूप धूम बाहर आता है।

अगार से गर्भित तथा चक्रदण्ड से सयुक्त पात्र म धूप के चूर्ण (चूर्णधूप) को बारम्बार बिखेरे। हस्तिदन्त के बने हुए अनेक दण्ड वाले सूचि से सयुक्त पात्र के सूचिकाग्र मे वर्ति डालकर अग्नि से जलाये और जब पात्र के रन्ध्रो से धूप धूम निकलना बन्द हो जाय तो करण्ड दण्ड से युक्त हाथो से उसे घुमावे। यह धूप से समन्वित करण्ड दण्ड या तो राजा अपने मुख के सम्मुख या अपनी प्रिया के मुख के सम्मुख रखे। इस धूप को खोम्मर पर फके। इस प्रकार वस्त्र से आच्छादित अपनी शय्या को धुपाये। वत्तिधूप विशेषत धौतवस्त्रो (सारियों) एव केशो के धुपाने में प्रयोग मे लाई जाती थी इन तानो के प्रयोग के विषय में सोमेश्वर ने लिखा है—

पञ्चपैर्धौतवासासि पिण्डकश्चूर्णकैरपि।
गृह च पिहितद्वार निरोधितगवाक्षकम्॥

इस प्रकार विलासी, चतुर तथा विनोदी राजाओं के लिए धूम्र से पूर्ण पिण्डधूप का प्रयोग करे।

कालिकापुराण मे धूप की बडी प्रशसा मिलती है। उसके अनुसार धूप नासिका तथा अक्षिरन्ध्रों को सुख पहुँचाने वाला होता है। और इसकी सुगन्ध अत्यन्त मनोहर होती है। निस्ताप धूम्र से युक्त होने के कारण ही यह धूप कहलाता है और देवताओं को प्रसन्न करनेवाला है।[3]

श्रीमद्भागवतपुराण मे भी धूप विषयक अनेक प्रसग प्राप्त होते है। इस समय मे अन्य वस्तुओं के साथ ही साथ धूप देने के लिए अगरु का विशेष-रूप से प्रयोग होता था—

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना।
धूपैरगुरुजै राजन् जालरन्ध्रविनिर्गतैः॥

१ वही।

२ नासाक्षिरन्ध्रसुखद सुगन्धोऽति मनोहर। कालिका पु० अ० ६८।

३ धूमो निस्तापो यस्य जायते।
स धूप इति विज्ञेया देवाना तुष्टिदायक॥ कालिका पु० अ० ६८।

४ श्रीमद्० पु० १०।६०।२५। ५ श्री० पु० १०।६०।५।

बृहत्संहिता मे अनेक प्रकार का सुगन्धित वस्तुओं को मिलाकर धूप बनाने का उल्लेख हुआ है और इसका प्रयोग उत्सवों एव धार्मिक कृत्यो के समय होता था ।[1] वात्स्यायन ने धूप बनाने को 'गधयुक्ति' कला माना है ।[2] ललित विस्तर मे भी 'गधयुक्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है जो उस समय मे बनने वाले सुगन्धित धूप की ओर सकेत करता है[3]। दीर्घनिकाय मे धूप बनाने के लिए 'गन्धसन्निधि' शब्द प्राप्त होता है ।[4] इस प्रकार धूप का प्रयोग सदा से ही भारत में प्रचलित रहा है। वतमान काल म भी धूप का प्रयोग चूर्ण तथा वर्तिका के रूप मे होता है।

योषिद् भोग

स्नान, विलेपन, माल्य धारण किए हुए, सुन्दर वस्त्र तथा बहुमूल्य आभूषण धारण किए हुए, धूप से सुवासित राजा के योग्य सोमेश्वर ने योषिद्भोग का वर्णन किया है। सोमेश्वर सर्वप्रथम इस प्रकरण मे स्त्रियों के श्रेष्ठगुणो के विषय मे वर्णन करते हैं। अचापल्य, भय, लज्जा, दाक्षिण्य, अनुकूलता, मधुरस्वरता, दक्षता, पटुता, प्रियवादिता, शुचिता, गुरुशुश्रूषा म रति, धर्मज्ञ, सत्यवादिता, सभी कर्मों में कुशलता, हृष्टता, स्मितहासिता, पति के दोष को छिपाना आदि स्त्रियों के प्रधान गुण सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास मे बतलाया है।[5]

गुणों के पश्चात् गुणों के अनुसार स्त्रियों की श्रेष्ठता का विचार किया गया है। सभी स्त्रियों में रूपवती स्त्री श्रेष्ठ है, रूपवती में यौवनपूर्ण यौवनवती में गीतज्ञा, गीतज्ञा स्त्रियों मे नर्तकी श्रेष्ठ है—

स्त्रीणा रूपवती श्रेष्ठा सुरूपासु सयौवना।
सयौवनासु गीतज्ञा गीतज्ञास्वपि नर्तकी
उत्तरोत्तरमेतासु श्रेष्ठम् पूर्वगुणै सह ॥[6]

---

१ बहृत्सहिता अध्याय ७७।

२ ए० वेंकटसूबिया दिकलाज सूची ३ कामसूत्र पृ० ३२–३३।

३ ललितविस्तर पृ० ८६। ४ दीघनिकाय ब्रह्मजाल सुत्त ६।

५ अचापल्य भय लज्जा दाक्षिण्यमनुकूलता।
मधुरस्वरता दाक्ष्य पटुत्व प्रियवादिता ॥
मान शुचित्व दाक्षिण्य गुरुशुश्रूषण रति ॥
धमज्ञताजव सत्य कौशल सवकमसु।
हृष्टता स्मितहासित्व पतिदोषनिगूहनम ॥
कथिता मुनिभिरेते योषिता प्रवरा गुणा।
मानसो० ३।२०।१७१३–१६।

६ वही ३।२०।१७१६–१७।

इन स्त्रियों म उत्तरोत्तर गुणो वाली स्त्रिया पूर्व के गुणों से श्रेष्ठ है। इन सभी गुणो से युक्त स्त्री इस पृथ्वी पर मिलना दुर्लभ है[1]।

इन्हा गुणों के ही आधार पर छ प्रकार की स्त्रियो का उल्लेख सोमेश्वर ने किया है—मृगी, पद्मिनी, चित्रिणी, बडवा, शखिनी तथा हस्तिनी। इनमें से मृगी तथा पद्मिनी उत्तमजाति वाली, चित्रिणी तथा बडवा मध्यमजाति वाली तथा शखनी और हस्तिनी अधमजाति की स्त्रिया कही गई हैं—

मृगी च पद्मिनी चैव चित्रिणी वडवा तथा।
हस्तिना शखिनी चेति षड्विधा जातिरिष्यते॥
आद्ये द्वे उत्तमे तत्र मध्यमे मध्यसस्थिते।[2]
अन्यस्थिते कनिष्ठे च त्रिधा जात्या प्रकीतिता॥

इस प्रकार उत्तम, मध्यम तथा अधम ये तीन प्रकार की जाति वाली स्त्रिया होती है। इनम से उत्तम तथा मध्यमजाति वाली स्त्रियों को सोमेश्वर ने भोग योग्य बतलाया हे और अधमजाति की स्त्रियों से सदैव बचने का आदेश दिया है—

हस्तिनी शखिनी चेमे भोगाय परिवर्जयेत्।[4]

इन जातियों का वर्णन करने के पश्चात् सभी प्रकार की स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक किया है।

मृगी जाति की स्त्रियों के गुण—

पैरों में कोकनद की छाया से युक्त गूढ गुल्फ से सुशोभित, गोल जघन प्रदेश वाली, सुन्दर उरू वाली, पीवर जघन-स्थल वाली, अश्वत्थदल की शोभा के सदृश गुह्याग वाली, उन्नतस्तन वाली, कोमल बाहुयुगल, ताम्र की काति से युक्त नखवाली, प्रवालमणि के सदृश दन्तपक्ति वाली, दाडिम की शका को उत्पन्न कर देने वाली रसना से युक्त, समान कपोल वाली, शुक्ति के सदृश कर्ण वाली, सुन्दर नासिका वाली, दीर्घ तथा भयभीत मृगी की दृष्टि से युक्त नेत्रों वाला, वक्र तथा दीर्घ भ्रूलता से युक्त, अष्टमीचन्द्र के सदृश भाल वाली, गज, तथा मृग के समान गति वाली, क्षण में रुष्ट तथा तुष्ट होने वाली, रति कर्म में लालसा रखने वाली, चञ्चल तथा दृढ चित्त वाली तथा सदैव प्रिय वचन बोलने वाली स्त्री मृगी जाति की होती है[5]—

एतैर्गुणै समायुक्ता मृगी जात्योपलक्षिता[6]।

---

१ एत सवगुर्णैयुक्ता दुलभा रमणी भुवि। वही ३।२०।१७१८।

२ मानसो० ३।२०।१७१८–१७२०।

३ वही ३।२०।१७२० मध्यमोत्तमजातीया भोगयोग्या वरस्त्रिय।

४ वही ३।२०।१७२१। ५ वही ३।२०।१७२१–१७३०।

६ वही ३।२०।१७३१।

पद्मिनी जाति वाली स्त्रियों के लक्षण—

मधुवर्ण वाली, सुन्दर नखपंक्ति से युक्त चरण वाली, सहत अंगुलियों तथा लाल कमल की शंका को उत्पन्न कर देने वाले समान चरणयुगल वाली, सुवृत्त गूढ गुल्फ वाला, चरण के अनुरूप जंघा वाली, रम्भास्तम्भ के समान ऊरु वाली, त्रिवली से युक्त हस्त वाली, श्रीफल के समान स्तन वाली, वर्तुलाकार बाहु शिखर वाली, पल्लव के सदृश कोमल तलों से युक्त सुकुमार हस्तवाली, त्रिरेखा से युक्त ग्रीवा वाली, बिम्बफल के सदृश अधरों वाली, पके हुए अनार के समान जिह्वा वाली, कान्तियुक्त दांतों वाली, तिलपुष्प के सदृश सुन्दर नासिका वाली, नीले कमल की नाल के सदृश श्रवण वाली, शोभायुक्त तथा उज्ज्वलकांति से युक्त गण्डस्थल वाली, कुन्दपत्र के सदृश उदर वाली, रक्तवर्ण के नेत्र वाली, श्यामल पक्ष वाली, चञ्चल दृष्टि वाली कामदेव के (चलाते हुए) धनुष के सदृश वक्र भ्रूलता वाली, अष्टमी के चन्द्र की भांति ललाट से युक्त, घने, लम्बे सूक्ष्म केशों वाली, नये बांस के सदृश सुन्दर कान्तिमय वर्ण वाली, उन्मत्त हाथी के सदृश गति वाली, शिरीष पुष्प के सदृश मृदुल शरीर वाली, पद्म पुष्प की गन्ध के सदृश सुगन्धि से युक्त शरीर वाली, कमल पुष्प के अन्दर की गन्ध से स्पर्धा करने वाला, विनोद की सिंधु, कोकिल के आलाप के सदृश सुख दायिनी, सुन्दर ध्वनि वाली, पवित्र, थोडा भोजन करने वाली, भूषणों से थोडी प्रीति रखने वाली, श्वेतपुष्प में रति करने वाली, मानिनी, अधिक लज्जापूर्ण, गुरुदेव की अर्चना में आसक्ति रखने वाली, सम्भोग के समय लज्जा करने वाली, चतुर, दानवती, बन्धु से प्रीति करने वाली, सत्यवादिनी, दृढ प्रीति करने वाली स्त्री[1] पद्मिनी जाति की होती है। ऐसा विद्वानों का मत है—

एतैर्गुणैः समायुक्ता पद्मिनी कीर्तिता बुधैः ॥

चित्रिणी के लक्षण—

लघु तथा रम्य पादतल वाली, क्षीण जंघा से सुशोभित, किञ्चित वक्र उरुओं वाली, पृथुल जघन स्थल वाली, सुन्दर मध्यप्रदेश से युक्त, पीन, वृत्त तथा रम्य पयोधर वाली, विशाल वक्ष स्थल वाली, कोमल करतल तथा सरल अंगुलियों वाली, सुन्दर कण्ठ वाली, किंचित उन्नत अधरवाली, सुन्दर दांतों वाली, समान (न बडी न छोटी) तथा सुन्दर नासिका वाली, सुन्दर कर्ण वाली, अर्ध निम्ब पत्र के समान दीर्घ तथा तीक्ष्ण नेत्रवाली, सुन्दर तथा रमणीय भ्रू एवं भाल वाली, वक्र तथा कृष्ण केशों वाली, गीत, नृत्य, वाद्य से प्रेम करने वाली, ललित गति वाली, सूक्ष्म स्वर बोलने वाली, कला कौशल से प्रीति रखने वाली, सुन्दर-श्यामल वर्ण वाली, गौर श्यामल वर्ण के आभूषण तथा वस्त्रों की इच्छा करने

१ वही ३।२०।१७३१–४९। २ वही ३।२०।१७४९।

वाली, रति से विचित्र प्रेम करनेवाली स्त्री चित्रिणी जाति की होती है।[1]

विचित्रे च रते प्रीतिश्चित्रिण्या लक्षणान्वितम्।[2]

बडवा स्त्री के लक्षण—

आरक्तक के सदृश सुशोभित पादनख वाली, वृत्त, दीर्घ तथा मांसयुक्त जघाओं वाली, किञ्चित वक्र उरु वाली, गम्भीर नाभिमण्डल वाली, क्षीण उदर वाली, वृत्तस्तन तथा आयत चूचुकों वाली विशाल हृदयवाली, वृत्त, दीर्घ तथा मांसल भुजा वाली, लाल कमल के सदृश करपल्लव वाली, कोमल, दीर्घ तथा स्थूल अगुलियों वाली, मोटे तथा रमणीय दांतों वाली, स्थूल तथा लम्ब कानों वाली, नीलोत्पल की प्रभा के समान श्याम नेत्रोंवाली, वक्र तथा स्थूल भ्रूओं से युक्त, उन्नत निम्न भाल प्रदेश वाली, मोटे, दीर्घ, घने केशों वाली, मृदु गति वाली, गम्भीर तथा मधुर वाणी बोलनेवाली, चञ्चल चित्त वाली, कोमल शरीर वाली, सदैव बुभुक्षा तथा निद्रा से पीडित, स्निग्ध कामुक की कामना करनेवाली स्त्री बडवा जाति की होती है।[3]

इन चार प्रकार की उत्तम तथा मध्यम स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन करने के पश्चात् सोमेश्वर ने शंखिनी तथा हस्तिनी स्त्रियों को अत्यन्त अधम जाति की स्त्रियां बतलाया है और उनके लक्षण इस प्रकार दिए हैं—

दुर्गन्धा दुःस्वभावा च तस्माद्भोगे विवर्जिते।[4]

शंखिनी तथा हस्तिनी स्त्रियों के शरीर से सदैव दुर्गन्ध आती है और वे दुःस्वभाव वाली होती हैं इसी कारण सोमेश्वर ने उनके साथ भोग करने का निषेध किया है।

स्त्रियों के विभाजन के विषय में कामशास्त्र के रचयिताओं ने ३ मुख्य आधार माने हैं—

१—सेक्स का मनोविज्ञान।

२—शरीर विज्ञान।

३—स्वाभाविक गुण।

शरीर विज्ञान के आधार पर शारीरिक लक्षणों को देखते हुए कामशास्त्र के रचयिताओं ने १—पद्मिनी, २—चित्रणी, ३—शंखिनी, ४—हस्तिनी—ये चार प्रकार की स्त्रियाँ बतलाई हैं। सोमेश्वर ने भी सम्भवतः इन्हीं उपर्युक्त आधारों पर ही स्त्रियों का विभाजन किया है। वे भी शरीर विज्ञान के आधार पर स्त्रियों के शारीरिक लक्षणों के अनुसार उन्हें चार प्रकार का बतलाते हैं पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी। इनमें से पद्मिनी, तथा चित्रिणी,

१ मानसो० ३।२०।१७४९–१७५७। २ वही ३।२०।१७५८।
३ वही ३।२०।१७५८–६६। ४ वही ३।२०।१७६७।

का विस्तृत वर्णन मानसोल्लास म हुआ है। इसके अतिरिक्त मृगी तथा बडवा इन दो प्रकार की स्त्रियों का विस्तारपूर्वक वर्णन और हुआ है।

सम्भवत सेक्स मनोविज्ञान के आधार पर भी सोमेश्वर तीन प्रकार की स्त्रियाँ मानते है—१—मृगी, २—बडवा, ३—हस्तिनी। स्त्रिया की हस्तिनी जाति दोनों ही विभाजनों मे समान है। इसी कारण सोमेश्वर ने उन दोनों को एक ही प्रकार मान लिया। इस प्रकार से सोमेश्वर ने मृगी, पद्मिनी, चित्रिणी, बडवा, शखिनी तथा हस्तिनी इन छ प्रकार की स्त्रियों का उल्लेख किया है।

इन दो विभाजनों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने आन्तरिक स्वभाव एव स्वाभाविक गुण के आधार पर स्त्रियों की उत्पत्ति अनेक अशों द्वारा बतलाई है। जिस अश से जिसकी उत्पत्ति होगी उसी के अनुरूप उसका स्वभाव भी होगा। इसके अन्तर्गत ग्यारह प्रकार की स्त्रियों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है जो क्रमश निम्न प्रकार से है—

१ देवाशकोद्भवा—अस्वेद वाली, सुगन्धियुक्त, चिरकाल तक पलक न मारने वाली, स्थिर स्तन वाली, मिताहारी, वली आदि से वर्जित, श्वेत भूषाम्बर से प्रीति करनेवाला, गौर अथवा श्यामवर्ण वाली, प्रसन्न, त्यागशीला, शौचाचार से समन्वित स्त्री देवाशकोद्भवा होती है।[1]

२ सिद्धाशकसमुद्भवा—सुसस्थान वाली, सुन्दर तथा कृश गात्र वाली, खिले कमल के सदृश सुन्दर मुखवाली, तरगित केशराशि वाली, सुन्दर पलकों वाली, दृढस्तन वाली, पतले मध्यप्रदेश से युक्त, सुन्दर नितम्बो से युक्त, कोमल करों वाली, प्रियभाषिणी कला को जाननेवाली, सदैव साहस से प्रेम करनेवाली, स्त्री सिद्धाशकसमुद्भवा होती है।[2]

३ गन्धर्वांशकसम्भवा—अत्यन्त रमणीय निम्नप्रदेश से युक्त शफरी के सदृश चञ्चल नेत्रवाली, सुन्दर मध्य प्रदेश से युक्त, पुष्प के सदृश कान्तिमयी नखपक्ति वाली, न बहुत मोटी न पतली, गीत, वाद्य से सदैव प्रेम करनेवाली, पुष्प की सुगन्धि में आसक्त, सगीत मे निपुण, अत्यन्त सुन्दर, स्वच्छन्द, हँसने में चतुर इन लक्षणों से युक्त स्त्री गन्धर्वाशकसम्भवा कहलाती है।[3]

४—अप्सरोशकसम्भवा—पूर्णचन्द्र के सदृश सुन्दर मुख वाली, कृशोदरी, उन्नतभाल वाली, वक्र भ्रू तथा चञ्चल नेत्र वाली, तन्वी, श्यामल तथा हरित

---

१ अस्वेदा च सुगन्धिश्च चिरकालनिमेषिणी।

ईदृग्लक्षणसम्पन्ना योषिद्देवाशकोद्भवा। मानसो० ३।२०।१७६८–७०।

२ मानसो० ३।२०।१७७०–१७७३।

३ मानसो० ३।२०।१७७३–७६।

वर्ण वाली, घने वृत्त तथा लघुस्तन वाली, जघन स्थल से सुशोभित, सुन्दर उरु तथा वृत्त जघा वाली, निलामा, स्वेद से हीन, कृश अगुलियों से युक्त, छोटे नग्नो वाली, सुगन्धित स्वद से पूर्ण, गीत, नृत्यादि कलाओं मे दक्ष, सम्भोग के समय चित्त का हरण करने वाली, मुग्धता तथा निदग्धता से सयुक्त अनुराग करने वाली, विलास-विभ्रमों से पूर्ण, विचित्र वस्त्रों स प्रेम करने वाली, नर्म हास करने मे चतुर आदि लक्षणों से युक्त अप्सरोशकसम्भवा स्त्री है[1]।

५—विद्याधराशकसम्भवा—सहकार के फल के सदृश मुख वाली, सुन्दर भौंहों वाली, देखने मे तीक्ष्ण अपागों वाली, स्वच्छ गण्डस्थल वाली, वृत्त एव पीन पयोधरों वाली, कान्तिपूर्ण दांतों वाला, सुन्दर रेखा से युक्त कन्धर वाली, पतले मध्य प्रदेश वाली, माल्यग्रथन में कुशल, चपला, पति को उद्वेजित करने वाली, अधिक धन की इच्छा वाली स्त्री विद्याधराशकसमुद्भवा होती है।[2]

६—गुह्यकाशसमुद्भवा—दीर्घ मुखवाली, निम्न नासिका वाली, लघु लोचन वाली, त्रिकोण भाल प्रदेश से युक्त, घने नील केशराशि से युक्त, कृश तथा खण्डित कटि प्रदेश वाली, विशाल जघनस्थल से युक्त, छोटे नखों वाली, छिपी वस्तु को छिपाने वाली स्त्री गुह्यकाशसमुद्भवा होती है।

७—किन्नराशकसमुद्भवा—दीर्घ नेत्रवाली, पृथुल हस्त वाली, विशाल वक्ष स्थल से युक्त, समान नासिका वाली, बडे दांतों वाला, सुन्दर ग्रीवा वाली, भूषण से सदैव प्रीति करनेवाली, मृदुल भुजाओं से युक्त, श्लक्ष्ण कक्ष वाली, कठिन हाथों वाली, विशाल जघनस्थल वाली, शोभित शरीर वाली, किञ्चित वक्र जघा वाली, चचल चित्त वाली, पुष्प की माला बनाने तथा विलेपन में चतुर, अपने प्रिय को ताम्बूल प्रदान करने वाली, सुन्दर, श्यामवर्ण वाली, मन को रमाने वाली—इन गुणों से युक्त स्त्री किन्नराशकसम्भवा होती है।[4]

८—यक्षाशकसमुद्भवा—कृशागी, गौरवर्ण वाली, लघुकुचों वाली, विशाल नेत्र वाली, कृशोदरी, लघु श्रोणी, सदा भीरु तथा दृढता धारण करने वाली, सुगन्धित पुष्प तथा माला आदि में आसक्ति रखने वाली, शुद्धासन से प्रेम करने वाली, ज्योत्स्ना में विहार करने वाली, जलक्रीडा में अत्यधिक आसक्ति रखने वाली, कुटिल, रहस्य की खोज में तत्पर, इन लक्षणों से युक्त स्त्री यक्षाशक समुद्भवा होती है।

९—नागाशकसमुद्भवा—कृशागी, कान्ति से पूर्ण, किञ्चित रक्त तथा पीत वर्ण के नेत्र वाली, सुन्दर गण्डस्थल वाली, स्निग्ध तथा घने केशराशि से युक्त, किञ्चित् विकृत जघा वाली, लीला कुटिलगामिनी, नित्य ही गृह में रहने वाली,

१ वही३।२०।७८–८१। २ वही ३।२०।१७८५–१७९८।
३ वही ३।२०।१७८५–१७८८। ४ वही ३।२०।१७८८–९३।
५ वही ३।२०।१७९३–१७९६।

दुग्ध, शक्कर तथा मदिरा से प्रेम करने वाली, सखियो को शीघ्र ही मिला लेने वाली, गौर श्यामवर्ण वाली स्त्री नागाशकसमुद्भवा होती है[1]।

१०—पित्र्यशकसमुद्भवा—वक्र केशों वाली, दीर्घ भ्रू तथा दीर्घ नेत्र वाली, वृत्त स्तन वाली, छोटे शरीर वाली, श्यामा, समान उदरवाली, उत्तुङ्ग जघनस्थल वाली, श्लक्ष्ण जघा से युक्त, कोमल अङ्घ्रितल वाली, ताम्रवर्ण के नखो वाली, कातर, गूढ रहस्यपूर्ण कार्य करने वाली, दूसरे के घर का भोजन पसन्द करने वाली—इन लक्षणो से युक्त स्त्री किन्नराशकसमुद्भवा होती है[2]।

११—ऋष्यशकसमुद्भवा—स्मितमुखवाली, विशालाक्षी, मृदुल भुजा वाली, कृश कटि प्रदेश से युक्त, सुन्दर नितम्बो वाली, रमणीय जघा वाली, कोमल पादतल वाली, दृढचित्त वाली, देवता मे भक्ति रखने वाली, पतिव्रता, ऋजु स्वभाव वाली, शीघ्र ही क्रुद्ध तथा प्रसन्न होने वाली, थोडा भोजन करने वाला, धर्मज्ञा स्त्री ऋष्यशकसमुद्भवा होती है[3]।

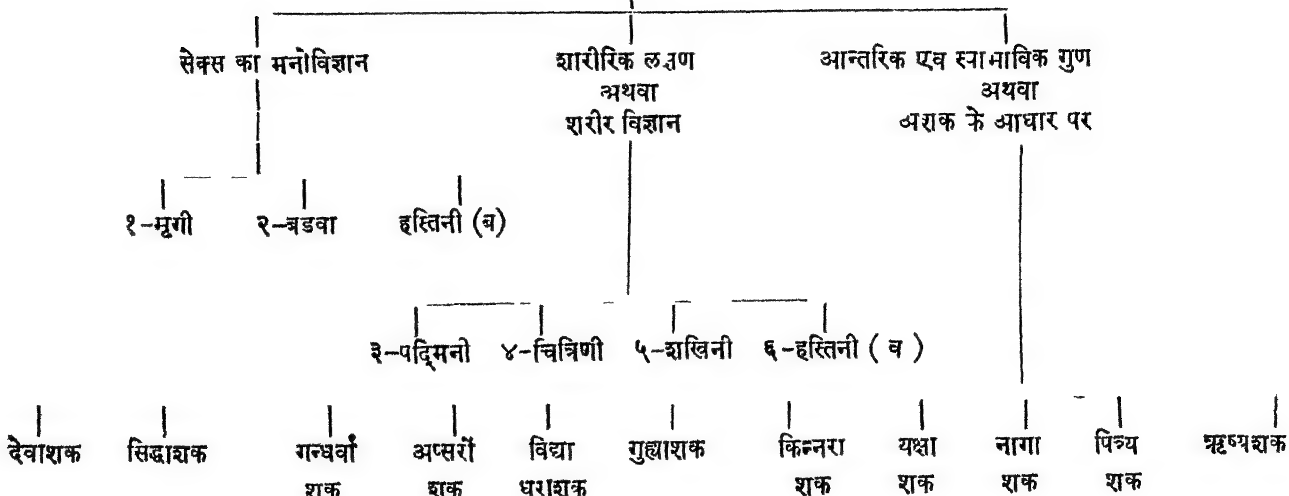
इस प्रकार सोमेश्वर ने अशको से उद्भूत ग्यारह प्रकार की स्त्रिया बतलाई है। यह विभाजन शारीरिक लक्षणा के साथ ही साथ विशेषत आतरिक एव स्वाभाविक गुणो एव अवगुणो पर ही आधारित है। प्रत्येक भाग के अन्तर्गत स्त्री के स्वाभाविक गुणो का विशेष ध्यान देकर वर्णन किया गया है। सोमेश्वर ने इस प्रकरण के पूर्व ही कहा है कि सभी गुणों से युक्त स्त्री ससार मे मिलना दुर्लभ है। अत उपर्युक्त सभी प्रकार की स्त्रियो में शुभ लक्षणो एव गुणों के साथ अवगुणों का भी कथन हुआ है। इन सबमें देवाशकसमुद्भवा प्रकार की स्त्री सर्वगुणसम्पन्न है और इसमे सम्भवत कोई अवगुण भी नहीं है। वह सभी देवियो के समान गुणो को धारण करती है और वह सभी स्त्रियो मे अलौकिक एव श्रेष्ठ है। सोमेश्वर ने इसी कारण देवाशकसमुद्भवा स्त्री को ही अपनी भार्या बनाने का राजा को आदेश दिया है—

देवाद्यशकसम्भूता राज्ञी कार्या महीभुजा।[4]

इन अशकों के अतिरिक्त ऋक्ष, वानर, मार्जार, दैत्य, दानव, राक्षस, पिशाच, खर, शार्दूल मत्स्य, सौरिभ, सारमेय, नकुल, रुरु, काक, गौ, वृश्चिक, हस, नक्र, कुक्कुट आदि पशुओं के नामों का उल्लेख किया है जिनके आधार पर भी स्त्रियों के विभाजन हो सकते हैं।[5] इस प्रकार से तो स्त्रिया अनेक प्रकार की हो जाती हैं किन्तु विशेष रूप से यह उक्त ग्यारह ही प्रसिद्ध है। अत सोमेश्वर स्त्रियों का विभाजन निम्न प्रकार से करते हैं—

---

१ वही ३।२०।१७९६–९९। २ वही ३।२०।१७९९–१८०२।
३ वही ३।२०।१८०२–१८०५। ४ मानसो० ३।१०।१८१०।
५ वही ३।२०।१८०५–१८०७।


स्त्रियों के विभाजन के आधार
सेक्स का मनोविज्ञान
शारीरिक लक्षण
अथवा
शरीर विज्ञान
आन्तरिक एव स्वाभाविक गुण
अथवा
अशक के आधार पर
१–मृगी
२–वडवा
हस्तिनी (व)
३–पद्मिनी
४–चित्रिणी
५–शखिनी
६–हस्तिनी (व)
देवाशक
सिद्धाशक
गन्धर्वा
शक
अप्सरों
शक
विद्या
धराशक
गुह्याशक
किन्नरा
शक
यक्षा
शक
नागा
शक
पित्र्य
शक
ऋष्यशक

राजा अपने राज्य का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति होता है इसी कारण उसकी महिषी क्षत्रियवर्ण की तथा सर्वश्रेष्ठ गुणों तथा लक्षणो से युक्त होनी चाहिए। किन्तु यदि राजा चाहे तो रूप यौवन से युक्त, गीत नृत्य कला आदि मे दक्ष, चित्त को जानने वाली, प्रेम पर निर्भर रहने वाली, सम्भोग सुख के साम्राज्य का सवर्धन करने में चतुर, वैश्य अथवा शूद्रकुल मे उत्पन्न हुई स्त्री के साथ भी केवल भोग कर सकता है किन्तु वह उसकी महाराज्ञी नहीं बन सकती[1]। इन सभी गुणों का वर्णन पूर्व में ही सोमेश्वर श्रेष्ठ स्त्री के लक्षणों के अन्तर्गत कर चुके है।

रूप लावण्य से युक्त, यौवन सम्पदा से सम्पन्न, विलासपूर्ण स्त्रियों को दिव्य रत्न के आभूषण, वस्त्र, माला तथा विलेपन, यान, आसन तथा सम्मान, हास्य तथा स्पर्श के द्वारा, क्रीडा, प्रियसलाप, सम्भोग द्वारा उनको प्रसन्न करे। इसके अतिरिक्त वस्त्राभूषण के दान, ताम्बूलचर्वण, प्रेम पर निभर सवाद तथा वनक्रीडाओं द्वारा भी उन स्त्रियों को राजा प्रसन्न करे। इसके अतिरिक्त भोजन, स्नान, पादाभ्यग, अङ्गमर्दन, केशसवाहन, दिव्यगन्धविलेपन, गीत वाद्य सुनने, नृत्य देखने, जलक्रीडा आदि के समय उन सुन्दर, शुभ लक्षणो वाली स्त्रियों को लगावे[2]। यही योषिद्भोग है।

स्त्रियों के लक्षणों पर भारतीय साहित्य मे विशाल साहित्य का सृजन हुआ है। वात्स्यायन का कामशास्त्र तो स्त्रियों से सम्बन्धित ग्रथ ही है, किन्तु बौद्ध साहित्य में भी स्त्रियों के लक्षणों पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डाला गया है। समवाय सुत्त मे इत्थी लक्खणम्[3] (स्त्रीलक्षणम्) का प्रयोग हुआ है। दीर्घ निकाय[4] में भी स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन हुआ है जिनका ज्ञान बौद्ध भिक्षु के लिए वर्जित था। ललितविस्तर में कुमारी गोपा के प्रसग में शुभ स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन हुआ है[5]। बृहत्सहिता में भी वराहमिहिर ने स्त्रियों के लक्षणों का उल्लेख किया है।[6]

---

१ अवरोधवधू कान्ता कुर्याद् भागाय भूपति —मानसो० ३।२०।१८१२।
२ मानसो० ३।२०।१८१३।
३ ए० वेकटसूबिया—दिकलाज सूची १ समवायसुत्त २–२–२६।
४ दीघनिकाय–ब्रह्मजाल सुत्त सू० २२ पृ० ११।
५ ललितविस्तर १।२७। ६ बृहत्सहिता अध्याय ७०।

पचम अध्याय

सोमेश्वर तथा विनोद

शस्त्र विनोद

उपभोगों के पश्चात् सोमेश्वर ने २० प्रकार के विनोदा का वर्णन किया है—

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यन्ते विनोदा हर्षहेतव ।
विशति सख्यया ते स्युर्लक्ष्यलक्षणसयुता ॥[१]

सर्वप्रथम सोमेश्वर ने शस्त्र विनोद का वर्णन किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने अनेक प्रकार के शस्त्र, उसके प्रकार, उनके स्थान, चलाने की विधि तथा लक्ष्यों का वर्णन किया है। इस शस्त्र विद्या में राजा को चतुर तथा जितश्रम होना चाहिये —

क्षुरिकाखड्गकोदण्डचक्रकुन्तगदादिषु ।
शस्त्रेषु विविधैन्यास शिक्षितश्च जितश्रम ॥[२]

इस प्रकरण में सोमेश्वर ने क्षुरिका, खडग, धनुष, चक्र, भाला तथा गदा इन शस्त्रों के द्वारा हस्त लाघव एव चातुर्य दिखाने का वर्णन किया है।

यह शस्त्रविनोद एक प्रकार के निश्चित स्थान पर होता था जिसे खुरली कहते थे। वहा पर राजा शस्त्र विद्या के ज्ञाताओं, सेवक, सचिवों, कुमारों, पण्डितो, कवियों, देश देश की भाषा के ज्ञाताओं, पाठकों, गायकों, सूतों, मागधों, बन्दीगणों अन्त पुर की स्त्रियों, अपनी महाराज्ञी, विलासिनी स्त्रियों तथा वेश्याओं को बुलाता था।[३] वे सभी लोग खुरली मे आकर उचित स्थानों पर बैठ जाते थे। राजा का आसन सबके बीच में होता था। राजा चिकने श्वेत वस्त्रा को, घुटनों तक लम्बे वीर कच्छ (कमर की पेटी) पाच वर्ण के चित्रित सुन्दर वस्त्र धारण करता था। वीर कच्छ मे भव्य क्षुरिका लगी रहती थी। वह पूर्ण चन्द्र के आकार के सदृश चन्दन के चिह्न बाहुदण्ड के ऊर्ध्व भाग मे लगाता था।[४] मस्तक पर काजल की एक रेखा तथा उसके दोनों ओर श्वेत रेखाएँ बनाता था—

---

१ मानसो० ४।१।१।   २ वही ४।१।२।

३ तत्तद्विद्यान् समाहूय सेवकासचिवादिकान।
विलासिनीमनकान्ता प्रसिद्धा पण्ययोषित ॥ वही ४।१।३५।

४ वही ४।१।६।   ५ वही ४।१।७,१०।

ललाटे तिलक कुर्यान्मध्ये कज्जलरेखया।
तस्या पार्श्वे च रेखाभ्या सिताभ्या परिभूषयेत्॥[1]

इस प्रकार का त्रिपुण्ड का तिलक वह मस्तक पर धारण करता था। इससे विदित होता है कि सोमेश्वर वैष्णव सम्प्रदाय का मानने वाला था। मध्वाचार्य के चलाये हुए वैष्णव सम्प्रदाय के व्यक्ति आज भी अपने मस्तक पर त्रिपुण्ड धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त राजा शेष के फण के सदृश चिह्नो से अपने वक्ष स्थल को विभूषित करता था। व्याघ्र तथा मृग की पुच्छ वह अपने शिर पर धारण करता था—

शेषभोगोपमा चर्चा चन्दने नीरसि न्यसेत्।
द्वीपिपुच्छाजिनेन थ कुर्याच्छिरसि शेखरम्॥[2]

सम्भवत सिर पर धारण किया हुआ व्याघ्र पिच्छ राजा की वीरता का द्योतक होता था। राजा कण्ठ में स्वर्ण मेखला, हाथो में ककण तथा कानों मे स्वर्णपत्र धारण करता था। इस प्रकार से सुन्दर वीर मूर्ति वाला राजा खुरली मे आकर प्रेक्षको के मध्य मे बने अपने आसन पर बैठता था।

एव रचितश्रृङ्गारो वीरमूर्तिर्मनोहर।
प्रविशेत्खुरली रम्या प्रेक्षकै परिशोभिताम्॥[4]

तत्पश्चात् राजा स्वय उठकर अपने समान प्रतिरोधी को बुलाकर शस्त्रों को चला कर शस्त्र विनाद द्वारा अपना मनोरञ्जन करता था। उसके प्रतिरोधी भी उचित रूप से श्रृगार किए रहते थे।[5]

शस्त्री

सर्वप्रथम राजा शस्त्री द्वारा विनोद करता था। राजा अपनी इच्छा से अगुष्ठ के पर्वों से नापी हुई शस्त्री लेता था। उसकी नाप करने मे शस्त्री के मुष्टि भाग की गणना नहीं होती थी—

अगुष्ठपर्वमानेन माननीयासिधेनुका।
मुष्टिभाग परित्यज्य गणयेदङ्गुष्ठत॥[6]

---

१ मानसो० ४।१।११। २ वही ४।१।१२।
३ वही ४।१।१३। ४ वही ४।१।१४।
५ विहितोचितश्रृगारो शस्त्रविद्याविशारदम्।
प्रतियोगिनमारथाय शस्त्रविद्या विनोदयेत्॥४।१।१५।
तत स्वय समुत्थाय प्रमोदनमथाचरेत्" ॥४।१।१६।
६ मानसो० ४।१।१७।

सोमेश्वर ने अगुष्ठ के पर्वों द्वारा ही शस्त्री की माप करने का आदेश दिया है क्योंकि उन्होंने अगुष्ठ के प्रथम पर्व को आयु बढाने वाला, द्वितीय पर्व को लक्ष्मी प्रदान करने वाला तथा तृतीय पर्व को मृत्यु का कारण माना है। अत इस प्रकार से शस्त्री को नापने के पश्चात् यदि वह अगुष्ठ के तीसरे पर्व पर समाप्त हो तो राजा को चाहिये कि उस शस्त्री को तुरन्त अपने से अलग कर दे—

> आयुर्लक्ष्मीर्मृतिश्चेति समुच्चार्य पुन पुन ।
> आयुर्लक्ष्मीपदे शस्त्री वर्ज्या मृत्युपदे स्थिता ॥[1]

मृत्यु पद के अतिरिक्त अन्य दोनों पर्व पर समाप्त होने वाली शस्त्री राजा के लिये उत्तम है। सभवत इस प्रकार की प्रथा अन्य वस्तुओं को नापने के लिये भी उस समय दक्षिण में प्रचलित होगी। आजकल भी उत्तरी भारत के अधिकाशत ग्रामों में इस प्रकार की प्रथा प्रचलित है। ग्राम की स्त्रिया जब सूप आदि खरीदती हैं तो वे सूप के अग्र भाग में बने हुए काले बन्धनों को क्रमश दूध, पूत, धन, दरिद्र इस प्रकार कहकर गिनती हैं। यदि वह काले बन्धन दूध, पूत, अथवा धन पर समाप्त होते है तो वे उसे ले लेती है, दरिद्र पर समाप्त होने वाले सूप को वे नहीं ग्रहण करतीं। सभवत यह प्रथा भी अगुष्ठ के पर्वों की गणना का ही प्रतिरूप है। शस्त्री ग्रहण करते समय उसकी धार का भी राजा को ध्यान रखना चाहिये। तीक्ष्ण धार वाली दृढ शस्त्री उत्तम है—

> तीक्ष्णधारा दृढा लघ्वी तिर्यग्रेखाविवर्जिता ।
> अभिन्नधारा नात्युच्चैर्नीचैस्तिष्ठेत्ससौष्ठवम् ॥[2]

उत्तम शस्त्री के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने ऐसे ग्यारह स्थानों का वर्णन किया है जिनके आधार पर शस्त्री चलाई जाती थी —

१ भैरव स्थान—वाम पैर को आगे कर दाहिने हाथ में शस्त्री ग्रहण कर सिर के बराबर उठाकर चलावे,

२ पल्लीवाल—छुरी लिये हुए दाहिने हाथ को पीछे कर बाये हाथ को आगे फैलाकर शस्त्री को धारण करे।

३ शुनक—क्षुरिका इसके अग्रभाग में हाथ को समान रूप से फैलाकर आगे की ओर झुके,

४ नूक—दाहिने हाथ को फैलाकर शस्त्री को नीचे की ओर कर दण्ड को हृदय पर रखे।

---

१ मानसो० ४।१।१८। २ वही ४।१।१९।

५ विनूक—क्षुरिका के अग्रभाग को ऊचा कर दण्ड को छिपा कर विनूक स्थान ग्रहण करे।

६ लुलित—वाम भाग की ओर शस्त्री से पूर्ण हाथ कँपाता हुआ ले जाये।

७ नद्य—क्षुरिका को आगे फैला कर दण्ड को वक्ष स्थल पर सकुचित कर ले।

८ नट्टेक—असिधेनु को वक्ष स्थल पर रखकर हाथ को आगे फैलावे।

९ रोपितक—बाये हाथ को फैलाकर घुटनो के मध्य भाग से होकर छुरी के अग्रभाग द्वारा भूमि को छुवे।

१० पोत्तागुंल—छुरी पकडे हुए हाथ को सिर पर रखकर बाये हाथ को आगे की ओर फैलावे।

११ व्याघ्र नख—असिधेनु ग्रहण किए हुए दाहिने हाथ को व्याघ्र की भाति झटके के साथ फेक दण्ड को नीचे करे।

छुरी चलाने में इन सभी स्थानों का आश्रय राजा ग्रहण करता था।[1]

इन स्थानको के पश्चात् आठ प्रकार की गतियो का वर्णन सोमेश्वर ने किया है। असिधेनु चलाते समय इन्हीं गतियों के अनुसार चलना पडता था—

१ पदग्राह गति–बाये पैर को आगे करके पीछे से दाहिने पैर से उसे छूकर पुन और आगे बाया पैर करके पीछे से फिर दक्षिण पैर द्वारा उसे छुए।

२ पदप्राप्ति—आगे स्थित हुए पैर के पीछे से दूसरे पैर द्वारा आघात करे। इसी प्रकार बार बार करे।

३ अनुक्षेप गति—पैरों को फक कर धीरे धारे उन्हे पीछे करे, इस प्रकार सर्पण विसर्पण करे।

४ सर्पिका–चलते समय पैरो को धीरे से झटके के साथ सर्प की भाँति चलावे।

५ मत्तेभ–पैरों को थोडा सा आकुचन कर लीला पूर्वक घूमकर गज की भाति उन्मत्त गति करे।

६ वायसी—जिघृक्षा के द्वारा गति को कर पीछे हटे।

७ बाकोटी—पैरों की अगुलियों से पृथ्वी को छुये।

८ पञ्चानन—शरीर को सकुचित करके सिह के सदृश लाघे। छुरिका को चलाने में राजा इन अनेक प्रकार की गतियों द्वारा सचरण करता था।[2]

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने क्षुरिका के चालन का प्रकार बतलाया है। शस्त्री को थोडा सा आकुञ्चित कर भुजा को थोडा हिलाकर चारों ओर घुमाकर

---

१ मानसो० ४।१।२३।३१।   २ वही ४।१।३६ ४१।

चलावे। कभी उसे ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, कक्षाओं तथा कण्ठ प्रदेश की ओर पैरो द्वारा गति करते करते ले जाय।[१] इस प्रकार से धारण तथा मारण के समय अमोघ आशा का दिग्दर्शन राजा करता था—

> विद्युत्पञ्जरमध्यस्थमिवात्मान प्रदर्शयेत्।
> चारणो धारणो चैव धारणो मारणो तथा॥
> अमोघा दर्शयेदाशा दुर्निवारो भयकर।
> शस्त्री प्रदर्शयेदेव दुष्टाशयबिभीषणीम्॥[२]

वह शस्त्री का अनेक प्रकार से चालन कर अमोघ वारो का प्रदर्शित करता था।

इस साधारण शस्त्री के पश्चात् वह चार वितस्त की शस्त्री को ग्रहण कर दक्षिण पैर को आगे कर दण्ड को हृदय पर रख कर पूर्व की ही भाति कर ताल से समन्वित होकर सचार कर अपना पाद लाघव प्रदर्शित करता था। उसे धाराघात विधि कहते थे। इसी का कुछ विद्वान खोञ्जन विधि भी कहते हैं। यह दोनों ही नाम उपयुक्त हैं—

> खोञ्जन च तथा चान्ये प्रवदन्ति मनीषिण।
> मतद्वयानुसारेण धारावातैश्च खोञ्जनै॥[४]

इसी प्रकार राजा शस्त्री तथा असिधेनुका द्वारा अनेक प्रकार की गतियों एव आघातों को प्रदर्शित कर सब का मनोरञ्जन करता था।[६]

खड्ग विनोद

छुरिका के प्रचालन के पश्चात् राजा खड्ग द्वारा प्रेक्षकों का विनोद करता था। जिस खड्ग को राजा चलाता था वह भी शस्त्री की भाति ही अगुष्ठ पर्व से नापी हुई होती थी—

> छुरिकोक्तप्रमाणेन गणयेत् खड्गमुत्तमम्॥[७]

पाच अगुल के खड्ग को सोमेश्वर ने उत्तम, २५ अगुल के खडग को कनिष्ठ तथा इनके बीच के प्रमाण के खड्ग को मध्यम माना है।

---

१ मानसो० ४।१।४२ ४३। २ वही ४।१।४४ ४५।

३ "चतुर्वितस्तिका शस्त्रीमादाय नृपतिस्तत।" वही ४।१।४६।

४ 'सम्भारै कथितै पूर्व दर्शयेत्पादलाघवम्।
धाराघातो विधिस्तस्या कथित पूर्वसूरिभि॥"
वही ४।१।४८।

५ वही ४।१।४९। ६ वही ४।१।५० ५३।

७ वही ४।१।५४।

पचाशताङ्गुलै श्रेष्ठ पञ्चविशतिको वर ।
अनयोर्मध्यमानेन मध्यम परिकीर्त्यते ॥[१]

अत राजा को जहाँ तक हो सके उत्तम तथा मध्यम प्रकार के खड्ग को ही लेना चाहिये ।

सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के खड्गों का वर्णन किया है और इनके विभाजन के दो आधार माने हैं—१ वर्ण के अनुसार, २ पोगर के अनुसार ।

वर्ण के अनुसार असि, कृपाण आदि भेद है ।[२] पोगर के अनुसार रोहिणी वाह, गोजिह्वापल्लव, निर्वह, भद्राग आदि १४ प्रकार के खड्गो का उल्लेख किया है ।[३]

अनेक प्रकार के खड्गों के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने पाच प्रकार के खड्ग के स्थानों का वर्णन किया है । खड्ग विषयक लाघव दिखाते समय राजा उसी प्रकार कोश से खड्ग शीघ्रता से निकालता था जैसे बिल से सर्प शीघ्र ही फुफकार मारता हुआ निकल पडता है ।[४] वह दाहिने हाथ मे खड्ग पकडता था और बाये हाथ में ढाल लेकर पूर्वोक्त रीति से सचार करता था ।

चर्म वा फलक वापि गृह्णीयाद्वामपाणिना ।
पाणिना भ्रामयेत्खड्ग चर्म वामेन चाल्येत् ॥[५]

खड्ग को सिर पर तथा ढाल को वक्षस्थल पर रखकर दाहिना पैर आगे कर शिखरक स्थान, ढाल से पूर्ण बायॉ हाथ आगे फैलाकर तब उसे कर्ण के समीप खींचकर कापोलक, वक्षस्थल पर से ढाल को हटाकर खड्ग को वहीं पर ले जाकर श्रीवत्स, खड्ग को पृथ्वी की ओर करके भूमण्डल स्थान, कुक्षि स्थान में खण्ड को रख उसकी नोक तिरछी कर वक्ष स्थल की ओर कर ढाल को आगे फैलाकर तीक्ष्णाग्र स्थान प्रदर्शित करता था ।[६]

इस प्रकार के स्थानों को प्रदर्शित कर राजा खड्ग के आघातों को प्रदर्शित करता था । सोमेश्वर ने पाच प्रकार के आघातों का उल्लेख किया है । चरण पर किया जाने वाला आघात कडग, दक्षिण अग पर किया जाने वाला आघात दोलग, वामभाग में किया जाने वाला आघात पोगर, मस्तक पर किया जाने वाला आघात कालवल्क, नाभि से लेकर कण्ठ पयन्त प्रदेश मे किया जाने

---

१ मानसो० ४।१।५५ । २ वही ४।१।५८ ५९ ।
३ वही ४।१।६० ७२ । ४ वही ४।१।७३ ।
५ वही ४।१।७४ । ६ वही ४।१।७५ ८० ।

वार वार मुनय कहलाता था।[1] इसी प्रकार के अनेक आघातों का प्रदर्शन कर राजा अपना हस्तलाघव प्रेक्षकों को दिखलाता था। इन सभी प्रकार से आघातों के प्रयोग के साथ ही साथ उनसे बचने के उपायों का भी राजा प्रदर्शन करता था।

सञ्चरेत्परघातार्थं शून्य पश्येत्पराङ्गकम्।
पञ्चघातप्रयोग च पञ्चघातनिवारणम्॥
पादलाघवसस्थान चालन खड्गचर्मणा।
प्रदर्श्य रञ्जयेद्राजा सर्वाश्च खुरलीगतान्॥[2]

कार्मुक विनोद

खड्ग के बाद राजा धनुष विषयक हस्तलाघव को प्रदर्शित करता था। धनुष ग्रहण करते समय राजा के हाथ की अगुलिया एक प्रकार के चमडे से रक्षार्थ ढकी रहती थीं।[3] पके बास का बना, भव्य, गोल तथा सिन्दूर से रञ्जित, लाक्षारस में आलिप्त, कान्तिपूर्ण, स्नायु से बद्ध, स्वर्ण पद से आच्छादित, नाना प्रकार के रत्नों से जटित, तीन पाच अथवा सात पर्वों से युक्त, अर्क वृक्ष के वल्कल से निकली अथवा मौवा की बनी हुई चिकनी तथा दृढ ज्या से युक्त धनुष को राजा विनोद के लिये धारण करता था।[4] दो सहस्र दूरी तक जाने वाला उत्तम, डेढ सहस्र दूरी का मध्यम तथा एक सहस्र कोस की दूरी पर जाने वाला धनुष मृदु अथात् कनिष्ठ होता था—

सहस्र सार्धसाहस्र द्विसहस्रमिति क्रमात्।
बलाना सख्यया युक्त मृदु मध्य तयोत्तमम्॥[5]

राजा दोनों कन्धो को ऊचा कर, वक्षःस्थल को फैलाकर प्रकम्पित मुष्टि द्वारा पकड कर उसे बाहर की ओर खींचता था और डोरी को खींच कर हनु से

---

१ कडग चरणे विन्द्याददोलग दक्षिणाङ्गजे।
पोगर वामभागे स्यात्कालवल्क तु मस्तके॥
आनाभिकण्ठपर्यन्त खडगाग्रेण तु भेदनम॥
मुनय नाम तत्प्रोक्त कौक्षेयकविचक्षणैः।
वारण हनन तेषु पञ्चघातेषु पाटवम॥
मानसो० ४।१।८०-८२।

२ वही ४।१।८४-८५।

३ वही० ४।१।८६ बद्धगोधाङ्गुलीत्राणस्ततो गृह्णीत कार्मुकम।

४ वही ४।१।८६-८९। ५ वही ४।१।९०-९१।

चार अगुल दूर रखकर लक्ष्य को सामने रखकर उसे चलाता था।[1]

राजा धनुष को चलाते समय तीन प्रकार के पादो का प्रदर्शन करता था जो क्रमश आलीढक[2] (पैर को चापस्थान तक ले जाकर उसको तिरछा फैलाकर पीछे दूसरा पैर लाकर पाच बितस्त की दूरी पर रखना), अत्यालीढक[3] (पैरो को फैलाकर) तथा समपाद (तीन बितस्त तथा एक बितस्त की दूरी पर रखकर) है। पादो के साथ ही साथ सोमेश्वर ने मण्डल, जात तथा अभिजात नाम के स्थानों का उल्लेख किया है।[5]

इन स्थानों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने कुछ आसनों का भी उल्लेख किया है। वह इन्हीं का आश्रय लेकर धनुष चलाता था—

१ दार्दुर—पाछे की ओर पैरों को फेंक कर हसपाद प्रदर्शित कर दोनों पैरो के घुटनों से पृथ्वी को छुए।

२ पद्मासन—पादतलों को नीचे करे।

३ गरुड—बाये घुटने को पृथ्वी पर रखकर दक्षिण पैर को आगे चलावे।

४ स्वस्तिकदर्दुर-दक्षिण पैर को स्वस्तिक के आकार का बना कर बाया दर्दुर की भाति रखे।

५ जानुपीडन—घुटनों द्वारा धरती पर जोर लगावे।

६ शयनासन—उत्तान अथवा अनुत्तान होवे,[6] इनमें दार्दुर को अत्यन्त प्रौढ[7] तथा स्वस्तिक दर्दुर आसन को मृगया के योग्य बतलाया गया है—

दक्षिण स्वस्तिकाकार वाम दर्दुरवत्पदम्।
आसन मृगयायोग्य कुर्यात्स्वस्तिकदर्दुरम्॥[8]

उपर्युक्त आसनों, पादों आदि का आश्रय लेने के पश्चात् राजा कुछ मुष्टियो का प्रदर्शन करता था। सोमेश्वर ने मानसोल्लास मे दो प्रकार की मुष्टियों का वर्णन किया है—

१ प्रयोग मुष्टि—जो ६ प्रकार की है।[9]

२ बध मुष्टि—जो सात प्रकार की है।[10]

---

१ मानसो० ४।१।९२ ९७। २ वही ४।१।९७ ९९।
३ वही ४।१।९९। ४ वही ४।१।१०० १०१।
५ वही ४।१।१०१ १०३। ६ वही ४।१।१०४ १०८।
७ आसन दादुर कृत्वा प्रौढि प्रकटयेन्नप। वही २।१।१०५।
८ वही ४।१।१०७। ९ वही ४।१।१०९ ११५।
१० वही ४।१।११५ २३।

मुष्टियों तथा लक्ष्य के अनुसार धनुष चलाने के नियमों का भी सोमेश्वर ने वर्णन किया है। जब मुष्टि तथा बाण को कर्ण से ऊपर कर नीचे की ओर बाण मारा जाय तो कैशिक, कर्णाग्र से मुष्टि को छूती हुई रखकर नीचे की ओर बाण चलाने पर सात्वत विधि होती है। समान (सामने) लक्ष्य होने पर वार्षगण्य विधि द्वारा बाण मारा जाता है। मुष्टि को कर्णाग्र से नीचे कर लक्ष्य पर बाण मारने पर भरत तथा बाहु शिखर पर मुष्टि करके उच्च तथा दूर लक्ष्य पर बाण मारने से स्कन्धन्यास विधि होती है।

लक्ष्य तीन प्रकार के होते है—मनुष्य की ऊँचाई के मान से हृदय के सामने का लक्ष्य सम, इससे ऊँचा उच्च तथा उससे नीचे नीच लक्ष्य होता है।[२]

राजा विनोद के समय कठिन से कठिन लक्ष्य बनवा कर उस पर निशाना मारता था। इस लक्ष्य के लिये हाथी के चर्म की मोटाई को ही प्रमाण माना गया है। इसी कारण सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के उपकरणों द्वारा हाथी के चर्म के समान मोटाईवाला लक्ष्य बनाने का वर्णन किया है। सौ गौ का सूखा हुआ चर्म दिन रात जल में रखे। इस प्रकार १६ अगुल का वह दृढ चर्म रज्जु द्वारा बाध दे तत्पश्चात् बेधने पर वह हाथी की खाल के समान ही हो जायगा।[3] इसी प्रकार २० घोडों की खाल, सात वर्ष के भैंसे के सींग का मध्य भाग, एक हाथ विस्तृत गोल कछुये का पृष्ठ कपाल, १६ अगुल विस्तृत दारुसार, कुम्हार के चक्र से निकली हुई मिट्टी, नौ अगुल का सूखा पिण्ड, छ अगुल का मोटा रुई का पुञ्ज आदि वस्तुये हाथी के चर्म के ही समान मोटी होती है।[४] अत इन्हीं को विनोद के समय हाथी की खाल का प्रमाण मान कर इस प्रकार राजा बेधता था कि पृथ्वी पर बाण न लगने पाता था—

> भित्वा तानि विनिर्गत्य निर्भिद्याग्रेण भूतलम्।
> यथावत्तिष्ठते बाणस्तथा विध्येत्क्रियायुत ॥[५]

लक्ष्यों की ही भाति तीन प्रकार के सम, ऊर्ध्व तथा नीच सन्धान भी होते है।[६] ऊर्ध्व तथा दूर पर स्थित लक्ष्य के लिये नीच सन्धान, नीच लक्ष्य में उच्च सन्धान तथा सम लक्ष्य में समसन्धान प्रयोग में लाने का आदेश

---

१ मानसो० ४ १।१२४ २८।

२ उर सम सम लक्ष्य मनुष्योत्सेधमानत ।
तदूर्ध्वमुच्च लक्ष्य स्यात्तदधो नीचमुच्यते ॥ वही ४।१।१२९

३ वही ४।१।१३० ३१। ४ वही ४।१।१३३ ३६।

५ वही ४।१।१४६। ६ वही ४।१।१४७ ४८।

सोमेश्वर ने दिया है।[1] सोलह अगुल का चौडा लक्ष्य स्थूल तथा दो अगुल चौडा लक्ष्य सूक्ष्म होता है, शब्द से अनुमित लक्ष्य परापर होता है—

षोडशाङ्गुलवृत्त तु स्थूल लक्ष्यमुदाहृतम् ।
अगुलद्वितय सूक्ष्म पञ्चगुञ्जाशिरोरुहम् ॥[2]

२००, १५० तथा १०० धनु की दूरी पर रहने वाले लक्ष्य को क्रमश सोमेश्वर ने उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकार का लक्ष्य माना है।[3] इसके अतिरिक्त तिर्यक्, धावन्, गच्छन्, भ्रामन् तथा उत्पतन् पाच चल लक्ष्यों को भी राजा आकाश, पृथ्वी तथा जल इन सभी वस्तुओ मे बेधता था—

तिर्यग्धावस्तथा गच्छन्भ्राम्यश्चैव तथोत्पतन् ।
आकाशे भूतले तोये तेषा स्थानमुदाहृतम् ॥[4]

राजा इन सभी प्रकार के लक्ष्यों को बनाकर एक बाण, दो बाण तथा अनेक बाण एक साथ छोडकर अपना हस्त लाघव प्रदर्शित करता था।[5]

सभी वस्तुओ के बेधने के साथ ही साथ राजा राधाबेध, खर्जूरीबेध, यमलार्जुन बेध, विकटार्जुन बेध, अर्धचन्द्राह्वय तथा माला विद्याधर आदि कुछ ऐसे कुतूहल प्रधान बेधों का प्रदर्शन करता था जिनके द्वारा प्रेक्षक विस्मय में पड जाते थे।

राधाबेध

एक स्तम्भ के ऊपर चक्रयन्त्र में मछली कील द्वारा जड दी जाती थी जो वायु से प्रेरित होने पर घूमती रहती थी। राजा नीचे पात्र मे रखे जल मे उसकी छाया देखकर उसकी ऑख को बेधता था।[6] यह विधि सम्भवत मत्स्य बेध का ही दूसरा रूप है। द्रौपदी के स्वयवर के समय अर्जुन ने मत्स्य बेध

---

१ ऊर्ध्वदूरस्थिते लक्ष्ये नीचसन्धानसगति ।
नीचलक्ष्ये तथा चोर्ध्व समलक्ष्ये समभवेत् ॥
मानसो० ४।१।१४९।

२ वही ४।१।१५०।   ३ वही ४।१।१५३।

४ वही ४।१।५२   ५ वही ४।१।१५५।

६ स्तम्भस्योपरिवि यस्तचक्रयन्त्र सुकीलितम् ।
वायुप्रेरितपत्रस्तु भ्राम्यमाण द्रुत झषम् ॥
पात्रमध्ये स्थिते तोये वीक्ष्य विध्यान्विलोचने ।
प्रत्यालीढस्थितो राज राधाबेध प्रदर्शयेत् ॥
वही ४।१।१५८ १५९

कर ही द्रौपदी को ग्रहण किया था। राजा द्रुपद की भी ऊपर घूमती हुई मछली की आँख को नीचे जल मे देखकर बेध देने का शर्त थी—

इद धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणा शृण्वन्तु ये भूपतय समेता।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वम् शरै शतैर्व्योमचरैर्दशार्द्धै ॥[1]

खर्जूरीबेध

खजूर के वृक्ष के समान दारु का वृक्ष बनाकर उसमें राजा बाणों द्वारा ही कटक तथा पत्र बनाकर अपनी प्रेयसियों का चित्त प्रसन्न करता था।[2]

पत्रच्छेद

एक शूद्र को आगे खडा करके उसके वक्ष स्थल पर एक पत्र रखकर दूर खडा होकर राजा उस पत्र को लक्ष्य बनाकर इस प्रकार बेधता था कि उस शूद्र के शरीर पर बाण न लगने पाता था। यह अत्यन्त विस्मयपूर्ण बेध है—

पत्रच्छेदमिद चित्र चित्तभ्रान्तिकर नृणाम्।
रस विस्मयमातन्वन्दर्शयेद्वेधमुत्तमम् ॥[3]

यमलार्जुन बेध

एक ही सन्धान में लगे हुये दो बाणों द्वारा दो भिन्न लक्ष्यों को बेधता था।[4]

विकटार्जुन

ऊँचे पर स्थित लक्ष्य को एक ही बाण द्वारा बेध कर राजा विकटार्जुन बेध सब प्रेक्षकों को दिखाता था।[5]

अर्धचद्राह्वय

तर्जनी तथा अगुष्ठ को अर्ध चन्द्राकृति का बना कर उसके आगे चार अगुल दूर पर तृणकाण्ड रखकर राजा उसे बेधता था। यह अर्धचद्राह्वय कहलाता था।[6]

मालाविद्याधर

दूर पर स्थित लक्ष्य पर दो बाण इस प्रकार राजा मारता था कि वे आगे पीछे जाते थे। यह मालाविद्याधर बेध था—

---

१ महाभारत १ ६१।

२ खर्जूरीसदृशाकार कृत्वा दारुमय तरुम।
नाराचै शतशो विध्येत्स्थाने कण्ठपत्रयो ॥
पत्राणि कटकाश्चैव सायकैरेव कल्पयेत्।
खर्जूरीवेधन चित्र प्रेयसीनाम् प्रदर्शयेत् ॥

३ मानसो० ४।१।१६३। ४ वही ४।१।१६४।

५ वही ४।१।१६५। ६ वही ४।१।१६६ १६७।

पूर्वापरस्थित लक्ष्य प्रविध्यन्नवनीपति ।
मालाविद्याधर चित्र दर्शयेच्चित्रवेष्टितम् ॥[1]

इसी तरह ८४ प्रकार के धनुष सम्बन्धी आसनों को राजा प्रदर्शित करता था जिसमें पचास अत्यन्त कठिन हैं—

चतुभिरधिकाशीतिश्चित्राणामवनीभुजा ।
इत्थ प्रदर्शनीया स्यात् द्वापञ्चाशच्च दुष्करा ॥[2]

सस्कृत साहित्य में इसी प्रकार चौरासी योनियों, चौरासी हठयोग के आसन तथा कामशास्त्र में चौरासी आसनो का वर्णन हुआ है। इससे विदित होता है कि चौरासी सख्या भारतीयो को प्राचीन काल से ही अत्यन्त प्रिय रही है। इस प्रकार से राजा अनेक प्रकार के चित्र बेध द्वारा धनुर्विद्या सम्बन्धी लाघव को प्रदर्शित करता था।[3]

चक्र विनोद

धनुष के लाघव के पश्चात् राजा आठ अथवा छ आरों का चक्र लेकर सिहकणा मुष्टि बनाकर चक्र द्वारा लक्ष्य को बेधता था। थोडा सा तर्जनी क सकुचित कर वाम तथा दक्षिण में घुमाकर जोर से चक्र फेकता था।[4]

कुन्त विनोद

चक्र के लाघव के पश्चात् राजा कुन्तो को धारण कर उनके उत्कर्ष का प्रदर्शन करता था। कुन्तों के विषय में महाराज सोमेश्वर ने पैदल, घोडा तथा हाथी के सवारों के लिये विभिन्न प्रकार के कुन्तों का वर्णन किया है। भूमि से सात अरत्नि का कुन्त पैदलों के लिये, छ अरत्नि का घोडों के लिये तथा नौ अरत्नि का हाथी पर चढे व्यक्तियों के लिये लेने का आदेश दिया है। इस प्रकार से तीन प्रकार के कुन्तों का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है—

सप्तारत्निर्भवेद्भूमौ षड्रत्निस्तु वाजिनि ।
वारणो च नवारत्नि कुन्तदण्डास्त्रय स्मृता ॥[5]

इसके साथ सोमेश्वर ने जर्जर, जीर्ण, स्थूल ग्रन्थि तथा कृशग्रन्थि दण्ड से युक्त कुन्त को वर्जित बतलाया है क्योंकि इस प्रकार के दण्ड से पूर्ण कुन्त विघ्न उत्पन्न कर सकता है—

त्रिशूली जर्जरो जीर्णो व्रणकोशसमन्वित ।
स्थूलग्रन्थि कृशग्रन्थिर्दूरपर्वभिरायत ॥

---

१ मानसो० ४।१।१६९। २ वही ४।१।१७०।
३ वही ४।१।१७१। ४ वही ४।१।१७२ १७३।
५ वही ४।१।१७५।

एवंविधेन दण्डेन युक्तं कुन्तं विवर्जयेत्।
सदोषं विघ्नकारित्वात्कुन्तकर्मणि निन्दितम् ॥[1]

कुन्त में लगे हुए दण्ड के विषय में सोमेश्वर ने इस प्रकार लिखा है—

निष्कोशः सरणः शुद्धः पक्ववंशः सुभूमिजः।
कुन्ते प्रशस्यते दण्डः सर्वकार्यस्य साधकः ॥[2]

इस प्रकार का शुद्ध पके बांस का बना हुआ दण्ड सिद्धिकारक होता है। कुन्त के फल का अग्रभाग २० अंगुल का होना चाहिये तथा वह कर्तरी युक्त होना चाहिये—

फलमग्रे भवदेकविंशत्यंगुलमानतः।
अंकुशेन फलस्याधो युक्तं पृष्ठे च कर्तरी ॥[3]

इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के सवारों के लिये विभिन्न फलों का वर्णन किया गया है जिसमें पदाति का कुन्त विशेष रूप से बडा होता है।

भूमि से कुन्त को उठा कर दाये हाथ मे लेकर अशनि के अग्रभाग से उत्तान मुष्टि द्वारा तथा वाम हाथ मे कुन्त लेकर उत्तान मुष्टि द्वारा अनेक प्रकार के स्थानों को राजा प्रदर्शित करता था। कुन्त सम्बन्धी तीन प्रकार के आवर्तों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है। मणिबन्ध द्वारा घुमा कर कुन्त चला कर कंकणावर्त, स्कन्ध के ऊपर से घुमा कर कुन्त चला कर कण्ठावर्त तथा पृष्ठ भाग की ओर से घुमाकर पृष्ठावर्त का प्रदर्शन राजा करता था। जिस जिस अंग की ओर से घुमाकर कुन्त चलाया जाता था उसी उसी नाम से वह आवर्त सिद्ध होता था—

कक्षाया च तथावर्तं तजन्या तु तदान्वयम्।
यत्र यत्र प्रदेशे तु भ्रामयेत्कुन्तमुत्तमम्।
तत्तन्नाम्ना तथावर्तं दर्शयेत्कुन्तकोविदः ॥[5]

इसके अतिरिक्त कुन्त के फल को चलाकर उसके द्वारा दिशाओं को प्रदर्शित

---

१ मानसो० ४।१।१७६–७७। २ वही ४।१।१७८।

३ वही ४।१।१७९।

४ चालयन् मणिबन्धेन कंकणावर्तमाचरेत्।
स्कन्धे चावर्तयन् कुन्तं कण्ठावर्तं प्रदर्शयेत् ॥
पृष्ठे च भ्रामयेत् कुन्तं पृष्ठावर्तं निदर्शयेत्।"
वही ४।१।१८४ १८५।

५ वही ४।१।१८५ १८६।

करता हुआ राजा दूसरे को मारने का सकेत करता था तथा अकुश को खींचकर उसके द्वारा कर्तरी को प्रदर्शित करता था ।[1] इस प्रकार अनेक प्रकार के हाव भाव द्वारा राजा अपने प्रेक्षकों का मनोरञ्जन करता था ।

गदा विनोद

कुन्त के चालन के पश्चात् राजा गदा द्वारा प्रेक्षको का विनोद करता था । राजा का गदा विशेष रूप का बनी होती थी । वह गदा लौह, दारु सार आदि की बनी होती थी और रत्न तथा सुवर्ण आदि से भूषित होती थी ।[2] यह गदा स्थूलोदरी, स्थूलाग्रभाग से युक्त, समदन्त से सुशोभित तथा दृढ मूलदेश से युक्त होता थी—

"स्थूलोदरी च स्थूलाग्रा समदन्ता परा शुभाम् ।
प्रगृह्य मूलदेशे तु खड्गवद्दृढमुष्टिना ॥[3]

इस प्रकार की गदा को राजा दोनो हाथो द्वारा आगे पीछे, दाये, बाये करके घुमाता था । इसके साथ ही साथ वह गदा को चला कर दूसरे के घात, प्रहार, उपन्यस्त, अपन्यस्त, आवर्तन तथा परिवर्तन को प्रदर्शित करता था । इस प्रकार गदा विद्या को राजा विनोद के लिये दुरली मे बैठे हुए व्यक्तियो को प्रदर्शित करता था ।[4]

इन अनेक प्रकार के अस्त्र का घात प्रतिघात दिखला कर राजा इस विनोद को समाप्त करता था । तब उसकी महाराज्ञी उसके नजर न लगने के लिये उसके ऊपर आरती उतारती थी, वन्दीगण स्तुति करते थे, कविगण तथा गायक उसके गुणों का गान करते थे तथा पुरोहित एव प्रमुख विप्रगण "प्रसन्न रहो, बढो, करो" ऐसा आशीर्वाद देते थे—

नीराज्यमानो राज्ञीभि स्तूयमानश्च वन्दिभि ।
कविभिर्वर्ण्यमानश्च गीयमानश्च गायकै ॥

---

१ मानसो० ४।१।१८७ ।

२ गदा लोहमयी कुर्याद्दारुसारमयी तथा ।
घनेन निर्मिता वापि रत्नकाञ्चनभूषिताम ॥' वही ४।१।१८९ ।

३ वही ४।१।१९० ।

४ भ्रामयेत्करयुग्मेन करेणैकेन वा पुन ।
विचरे मण्डलैश्चित्रै सव्यैश्चैवापसव्यकै ॥
गतागतैश्च गोमूत्रैरुप्लव नुत्प्लुतैरपि ।
पातयन्परघाताश्च प्रहाराशाश्च दर्शयेत् ।
दर्शयेत्तु गदाविद्या विनोदाय महीपति ॥ वही ४।१।१९१ १९३ ।

आशीभिर्वर्धमानश्च जयजीवति वादिभि ।
पुरोध प्रमुखैर्विप्रैर्नन्दवर्धस्वभाषिते ॥[१]

राजा उन सबको अञ्जलिबद्ध हाथो से प्रणाम करता था और अपने राजमदिर को चला जाता था।

सोमेश्वर ने इस प्रकरण मे शस्त्रो एव अस्त्रों के चलाने, उनसे लक्ष्य बेधने तथा उनके हाव भावों को प्रदर्शित करने का वर्णन किया है। शस्त्रों का आलोचनात्मक अध्ययन राजनीति के प्रकरण में हो चुका है।

प्राचीन काल से ही भारतीय राजा अस्त्र शस्त्रों के चलाने के बडे प्रेमी रहे हैं। समवायसुत्त में धनुर्वेद (धनुवेदम्) का सुन्दर वर्णन हुआ है और वह भी एक कला मानी गई है। उस समय के व्यक्ति धनुष पर सुन्दर ढग से बाण चढा कर अपने लक्ष्य को बेधते थे।[२] चर्म (ढाल) के लक्षणों का तथा उसके प्रयोग का उन्हें पूर्ण ज्ञान था।[४]

ललित विस्तर में भी धनुष के प्रयोग का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। व्यक्ति धनुष चलाने में अत्यन्त निपुण थे और मर्मबेधी, शब्दबेधी तथा दृढ प्रहार करने वाले बाणों को चला लेते थे।[५] इसमें क्रमश मर्म को समझ कर शब्द का अनुमान लगाकर तथा दृढ, स्थित एव अचूक बाण मारा जाता था। सोमेश्वर ने धनुष बाण से लक्ष्य बेधने में खर्जूरी,[६] राधावध[७] आदि बेधों का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि धनुष का प्रयोग उनके समय में विशेष रूप से होता था। ललितविस्तर में एक स्थान पर 'अक्षुण्णवेधित्वम्' का प्रसग प्राप्त होता है। यह कुन्त से सम्बन्धित कला थी। लक्ष्य को देखकर उसे बेधने के लिये सुन्दरता से भाला फेका जाता था।[८]

कादम्बरी मे चाप, चक्र, चर्म, कृपाण, शक्ति, तोमर, परशु, गदा आदि आयुधों का उल्लेख हुआ है।[९] उस समय के नागरिक इन सभी आयुधों को चलाने की कला से परिचित थे।

---

१ मानसो० ४।१९४ १९५।

२ ए० वेकटसूबिया 'दि कलाज' सूची १। ३ वही।

४ "चम्मखेडडम चम्मलक्खण समवायसुत्त २।२।२६।

५ ए० वेकटसूबिया 'दि कलाज' सूची २।

६ वही ४।१।१६०,१६१। ७ वही ४।१।१५८,१५९।

८ ए० वेंकटसूबिया दि कलाज' सूची २।
ललित विस्तर पृ० १७८।

९ चापचक्रचमकृपाणशक्तितोमरपरशुगदा प्रभृतय आयुधविशेषा।
कादम्बरी पैरा ७५।

शुक्रनीतिसार में ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि उस समय मे व्यक्ति बाण तथा भालों द्वारा हुये घावों को ठीक करने की कला को जानते थे ।[१]

इन सब प्रसगों से विदित होता है कि आयुधो को चलाने की कला से भारतीय प्राचीन काल से ही परिचित रहे हैं, किन्तु सोमेश्वर का प्रसग इस बात को स्पष्ट करता है कि सम्भवत उनके समय मे शस्त्र विनोद करने के लिये एक उत्सव होता होगा जिसमें राजा आयुधों को चलाकर निजाव लक्ष्यो को बेधता था जिससे अन्य व्यक्तियों का भी विनोद होता था और उसका भी आयुधो को चलाने का अभ्यास हो जाता था ।

शास्त्र विनोद

शास्त्रों पर किया जाने वाला तर्क भी अधिकाश रूप मे राजा का हार्दिक मनोरञ्जन करता था । इस शास्त्र विनोद के अन्तर्गत सोमेश्वर ने राजा के विद्वानों के साथ होने वाले पारस्परिक तर्क का वर्णन किया है । सोमेश्वर को साहित्य, काव्य, नाटक, गद्य, चम्पू , अलकार, छन्द आदि सभी विषयो का पूर्ण ज्ञान था । इसी कारण वह कभी-कभी विद्वान व्यक्तियों को बुलाकर उनसे तर्क करता था ।

देवताओं का पूजन कर ब्राह्मणों को दान देकर राज्य के कार्यों से निवृत्त होकर, उचित भोजन ग्रहण करके राजा अपना शृगार कर सभा मण्डप के मध्य मे स्थित शुभ आसन पर आकर बैठता था और विनोद करने के लिये वह सभी प्रसिद्ध कवियों, गायको, वादियों, वाग्मियों, पण्डितों, सब शास्त्रो के विद्वानों को अपने सभा मण्डप मे बुलवाता था ।[२] वे सभी व्यक्ति आकर राजा का अभिनन्दन कर राजा के चारों ओर यथायोग्य आसनो पर बैठ जाते थे । वहा पर सभा में शब्द की कला में दक्ष, प्रतिभावान् तीनों रत्नों का अभ्यास करने वाले, सभी व्यापारो के ज्ञाता, भाव, छन्द को समझने वाले ज्ञाता कवियों को राजा सुन्दर काव्य पढने का आदेश देता था—

आज्ञापयेत्कवीन्राजा काव्य पठत सुन्दरम् ।
पठ्यमाने तत काव्ये गुणान् दोषान् विचारयेत् ॥[३]

कवियों के गुणों के विषय में सब गुणों के साथ "रत्नत्रयकृताभ्यासान्"[४] तीनो रत्नों का अभ्यास करने वाले का वर्णन किया है । यह शब्द अनेक अर्थों

---

१ ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची ८ ।
शुक्र नीति सार ।
२ मानसो० ४।२।१९८ २०३। ३ वही ४।२।२०४ ।
४ वही ४।२।२०२ ।

की ओर सकेत करता है। यह पद तीन गुणों—सत्व रजस् तथा तमस् का द्योतक हो सकता है। इसके अतिरिक्त रत्नत्रय 'त्रित्रयी' ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का भी सूचक हो सकता है, अथात् जिन विद्वानों ने तीनों वेदों का अध्ययन पूर्ण रूप से कर लिया है। काव्य के ओज, माधुर्य तथा प्रसाद इन तीन गुणों के अर्थ को भी प्रकट करने वाला 'रत्नत्रय' शब्द हो सकता है, अथात् जो सुन्दर काव्य कर सकते है। इस प्रकार रत्नत्रय के अनेक अर्थ हो सकते है किन्तु यह पद बौद्ध धर्म के लिए अधिक उपयुक्त हो सकता है क्योंकि अभ्यास शब्द नित्य पालन करने वाले कृत्यों की ओर सकेत करता है। बौद्ध धम के अनुयायी बुद्ध, धम्म तथा सघ के उपदेशों का प्रतिक्षण अभ्यास करते रहते है। इसके अतिरिक्त वेदत्रय के पक्ष में भी उपयुक्त जान पडता है क्योंकि यह शास्त्र विद्या विनोद के प्रकरण मे प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ यही उपयुक्त हो सकता है कि जिन्होंने तीनों वेदों का अभ्यास कर लिया है।

राजा इन उपर्युक्त सभी गुणों से युक्त व्यक्तियों से अपना-अपना काव्य पढने की आज्ञा देकर उनके गुण दोषों पर विचार करते हुये उनसे तर्क करता था।[1]

काव्य के गुण दोषों को समझने के लिए सोमेश्वर ने काव्य के गुणों, रीति, छन्द, अलकार, गुण, द्रव्य, क्रिया आदि का पूर्ण ज्ञान आवश्यक बतलाया है। इसी कारण उन्होने इन सभी विषयों के लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

सोमेश्वर ध्वनि को काव्य की आत्मा (काव्यस्यात्मा ध्वनि) नहीं मानते हैं। वे अर्थ को काव्य में विशिष्ट स्थान देते हैं और अर्थ को ही काव्य की आत्मा मानते हैं—

शब्द शरीर काव्यस्य प्राणोऽर्थ परिकीर्तित ।
अलकारास्तदाऽकार रसाभावाश्च चेष्टितम् ॥[2]

इस प्रकार सोमेश्वर ने आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धान्त को नहा माना है। सम्भवत यह सिद्धान्त उस समय तक उन तक नहीं पहुँचा था क्योंकि आनन्द-वर्धन ने इसकी रचना काश्मीर में की थी। अथवा यदि वह जानते भी होंगे तो वे स्वीकार नहीं करते। इससे विदित होता है कि अर्थ के आधार पर ही काव्य की आलोचना होती थी।

इसके बाद गुणों के आधार पर राजा काव्य की आलोचना करता था। इसके लिये उसने ओज, माधुर्य, प्रसाद, समता, कान्ति, समाधि, औदार्य, अर्थ,

१ मानसो० ४।२।२०४।   २ वही ४।२।२०५।

व्यक्ति, सौकुमार्य आदि दस गुणो का वर्णन किया है।[१] इसी के अन्तर्गत इन्होने औदाय (शब्द विशेषणो से युक्त) ओज (विकट अक्षरो की सन्धि तथा समासों से युक्त) कान्ति (लोक के अनुसार सभाव्य कथन) समाधि (दूसरे धर्म का अन्यत्र प्रतिपादन) माधुर्य (कर्ण को सुख देने वाले शब्दार्थों से युक्त) आदि सभी गुणों की परिभाषा दी है। औदार्य, ओज, कान्ति तथा समाधि की सोमेश्वर द्वारा कथित परिभाषा काव्यादर्श मे दी हुई दण्डी की परिभाषा से मिलती जुलती है। दण्डी ने भी काव्य के अन्तर्गत दस गुणों को माना है।[२]

इसके बाद सोमेश्वर ने वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली वृत्ति का वर्णन किया है साथ ही साथ सम, अर्धसम तथा विषम छन्दो का[३] वर्णन है। इसके बाद अलकारो के लक्षणों तथा उदाहरणों का वर्णन किया है।[४] अलकारों के पश्चात् महाकाव्य के लक्षणों[५] तथा दस प्रकार के नाटको का उल्लेख है।[६] विधियो का वर्णन भरतमुनि के अनुसार किया है। तत्पश्चात् रस पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।[७] इन सभी आधारो पर राजा काव्य के गुण दोषों पर विचार करता था।

काव्य सम्बन्धी तर्क के पश्चात् राजा न्याय सम्बन्धी विषयों पर तर्क करवाता था[८] जिसका विषय गति, वाद्य तथा नृत्य से सम्बन्धित होता था—

कुलेन विद्यया ख्यात्या समयोर्वाद इष्यते।
वादस्य विषयो गीत नृत्त वा वाद्यमेव वा॥[९]

इस तर्क के लिये राजा दो समान विद्वान् व्यक्तियो को चुनता था और गीत, वाद्य, नृत्त से सम्बन्धित विषयों पर वाद-विवाद करवाता था। उस वाद का आधार प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, निगम तथा उपनय होते थे।

स्वपक्षे साधन यत्र परपक्षे च दूषणम्।
सिद्धान्तेनाविरोधश्च सम्बन्धश्च प्रतिज्ञया॥
हेतुदृष्टान्तयोर्योगो निगमोपनयौ तथा।
पक्षस्य प्रतिपक्षस्य ग्रहो वाद स उच्यते॥[१०]

इन्हीं आधारों पर पक्ष तथा विपक्षी दोनों ही वाद विवाद करते थे।

---

१ मानसो० ४।२।२०७ २११।
२ दण्डिन् काव्यादश।
३ मानसो० ३।२।२१५ २४।
४ वही, द्वितीय खण्ड, पृ० १७४ १८२
५ वही ४।२।१२० २८ पृ० १८२,१८३।
६ वही ४।२।१२९।
७ वही ४।२।१४०।
८ वही ४।२।१७३।
९ वही ४।२।१७४।
१० वही ४।२।१७५।

इस प्रकार से राजा शास्त्र विनोद कर अपना समय प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करता था। विनोद के समाप्त हो जाने पर वह कवियों तथा तार्किकों को अत्यधिक मात्रा में दान देता था—

इति शास्त्रविनोदेन दिनशेष नयेन्नृप ।
कवीना तार्किकाणाश्च प्रसाद भूरि दापयत ॥[1]

सोमेश्वर का यह शास्त्र-विनोद का प्रकरण इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि उन्हे साहित्य एव न्याय के सभी विषयों का पूर्णरूपेण ज्ञान था। इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में सबसे अधिक वह काव्य तथा न्यायशास्त्र को ही प्रधानता देता था और उनमें विशेष रुचि रखता था। राजा सभी कवियों एव तार्किकों का विशेष रूप से आदर करता था। काव्य शास्त्र के अन्तर्गत वह सभी आधारो द्वारा काव्य के गुण दोषों पर विचार करता था। न्याय शास्त्र के अन्तर्गत जो वाद विवाद वह करवाता था वे नीरस न होकर सरस होते थे। यह प्रकरण सोमेश्वर की ज्ञानी एव विद्वान् प्रजा की ओर भी सकेत करता है।

भारतवर्ष मे प्राचीन काल से ही राजा लोग काव्य तथा शास्त्र विनोद के प्रेमी रहे है। यह उक्ति तो प्रसिद्ध ही है "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्"। इसी कारण राजा के दरबार म सात अगों का होना आवश्यक माना जाता था

विद्वास कवयो भट्टा गायका परिहासका ।
इतिहासपुराणज्ञा सभा सप्ताङ्गसयुता ॥

इनमें विद्वान् तथा कवियों का राजा नाना भाव से सम्मान करता था। वासुदेव, शातवाहन, शूद्रक, साहसाक आदि राजाओ ने इस विनोद को अत्यधिक मात्रा मे प्रोत्साहन दिया और ये लोग शास्त्रों से बडा ही प्रेम रखते थे।

शास्त्र द्वारा विनोद करने के भारतवासी सदा से प्रेमी रहे है। वात्स्यायन के समय में काव्य तथा कला आदि से सम्बन्धित कुछ गोष्ठिया होती थीं जहा पर नागरक आकर शास्त्र सम्बन्धी अनेक विषयों पर वाद विवाद करता था—

मानसी काव्यक्रिया, काव्यसमस्यापूरणम्,
पुस्तकवाचनम्, सपाठ्यम्, दुर्वाचकयोगा,
म्लेच्छितविकल्पा, देशभाषाविज्ञानम्, अभिधान
कोष, छन्दोज्ञानम्, नाटकाख्यायिकादर्शनम्,
॥[2]

---

१ वही ४।२।२०३, ४।

२ कामसूत्र पृ० ३२, ३३ तथा ए वेकटसुब्बिया दि कलाज सूची ३।

इसके अतिरिक्त वेश्या के भवन में भी कला तथा काव्य से सम्बन्धित आलाप एव वाद विवाद होते थे—

> वेश्याभवने सभायामन्यतमस्योदवसिते वा समानविद्या
> बुद्धिवित्तवयसा सह वेश्याभिरनुरूपैरालापैरासनबन्धो
> गोष्ठी। तत्र चैषा काव्यसमस्या कलासमस्या च ॥[1]

इसी प्रकार से शिष्ट शास्त्र सम्बन्धी हास्य करने की गोष्ठिना भी होती थी।[2]

इन गोष्ठियों से विद्वानो का मनोरञ्जन भी हो जाता था और सिद्धि एव ज्ञान की भी प्राप्ति करते थे—

> या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी।
> परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्बुध ॥
> लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया।
> गोष्ठ्या सह चरन् विद्वाल्लोके सिद्धिं नियच्छति ॥[3]

बुद्ध के समय में भी वेद, पुराण, इतिहास, व्याकरण, शिक्षा, छन्द, ज्योतिष, अर्थविद्या तथा हेतु विद्या आदि से सम्बन्धित वाद विवाद समाज में प्रचलित थे।[4]

कादम्बरी मे भी बाण ने राजा शूद्रक के दरबार मे होने वाले शास्त्र विनोद का बडा ही सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। इसमें कवियो को अनेक प्रकार की समस्याये दी जाती थीं, जिनकी वे पूर्ति करते थे। इसके अतिरिक्त शास्त्र, नाटक, काव्य, पुराण, शिल्प, छन्द, सर्वदेशभाषा आदि पर भी मनन एव वाद विवाद होता था।[5] सोमेश्वर एक श्रेष्ठ कवि एव नैयायिक था इसी कारण उसके दरबार में होने वाले वाद विवाद शास्त्र, काव्य तथा न्याय पर ही आधारित थे।

गजवाह्यालीविनोद

गज भी राजा के मनोविनोद के साधन थे। गजों का विनोद एक प्रकार की वाह्याली मे होता था। राजा वहीं पर आकर गजों की क्रीडा देखता था। इस प्रकार में सर्वप्रथम सोमेश्वर ने गजो के भोजन उनके भेद, चिकित्सा तथा उनके द्वारा किए जाने वाले युद्ध का वर्णन किया है। यवनों से युद्ध करने के

---

१ कामसूत्र सू० ३४ ३५ ।
२ गोष्ठीषु हास्य ट्रिवेन्ड्रम सिरीज पृ० ६९।
३ कामसूत्र सू० ५१, ५२। ४ ललितविस्तर पृ० १७८।
५ पुस्तकव्यापार काव्यानि नाटकानि ॥
कादम्बरी कथामुख भाग, पैरा ७५।

लिए मोमेश्वर ने गजों का लडने के योग्य बनाने का आदेश दिया है और इस कार्य के लिए मद ही उनका गुण बतलाया है इसी कारण मद की वृद्धि का यत्न राजा को करवाना चाहिए—

मद एव गुणस्तस्मात्तदर्थं यत्नमाचरेत्।
बृहणै कवलैर्यूष्यैस्तदामञ्जनकारणै ॥[१]

मद से हीन गज न दौड सक्ता है और न युद्ध ही उचित रीति से कर सकता है। इसी कारण उसकी मद वृद्धि कर उसे यवना से युद्ध करने के योग्य बनाना चाहिए[२]। सोनेश्वर ने जो यवनों से गजों का युद्ध करने का वर्णन किया है इससे विदित होता है कि सोमेश्वर के समय ही महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किया था। उसी की ओर यह यवन शब्द सकेत करता है।

गज की मदवृद्धि, मुख वर्धन, कर वृद्धि, कर शुद्धि तथा गन्ध एव वर्ण की शुद्धि के लिए औषधि देनी चाहिए[३]।

हाथी के मद की वृद्धि के लिए सोमेश्वर ने विशेष रूप से बृहण नामक औषधि को देने का आदेश दिया है। इस औषधि को देने से गजा मे मद की वृद्धि होती है और हाथी सात प्रकार की शोभाओं को धारण करता है—

१ सजातरुधिरा—हाथी के शरीर में रक्त की वृद्धि होती है उसके शरीर की छाया सुन्दर बन जाती है।

२ प्रतिच्छन्ना—कण्ठ, मणिबन्ध, वक्ष स्थल, कक्षाओं में मास की वृद्धि हो जाती है।

३ पक्षलेपिनी—सभी सन्धियों, वदन, गात्र तथा दोनों पार्श्वों में पीनता आ जाती है।

४ वरिष्ठाद्युति—कक्षाओं, कन्दराओं तथा दन्तों के दोनों पार्श्वों में धातु-साम्य तथा सकामता के कारण शून्यता हो जाय।

५ समकल्प—गज के दोनों वक्ष एव कक्ष समता को प्राप्त हो जाते हैं, वह निद्रालु, मन्दगामी, दीर्घस्वास लेने वाला हो जाता है।

६ व्यतिकीर्णिका—चलने में मास हिलता है।

---

१ मानसो० ४।३।२०७।

२ सग्रामार्थं श्रमस्तेषा कार्यो यवनयोधने।
मदहीना न धावन्ति न युध्य ते मतगजा ॥ वही ४।३।२०६।

३ व्यस्तारकारकैश्चार्यैमुखवर्धनकैरपि।
करवृद्धिकरैर्योगैं करशुद्धिकरैरपि ॥ वही ४।३।२०८।

७ प्रोणिका—पृष्ठवश के निमग्न हो जाने पर कदली के उत्तानपत्र की भाति शोभा हो जाय।[1]

समकल्प शोभा को हाथी के लिए अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है क्योंकि समकक्षों वाला हाथी युद्ध, आरोहण तथा विनोद मे उत्तम माना जाता है—

युद्धेऽध्वनि विनोदे च समकक्षा प्रशस्यते ॥[2]

मद की वृद्धि के साथ ही साथ कोप की वृद्धि का भी उपाय गज के लिए करना चाहिए। वृहती फल की मूल, शुण्ठी तथा सैन्धव से युक्त लेप, तैल मिश्रित दारुरजनी तथा तगर का लेप, पिप्पली, मरिच, शुण्ठी तथा मर्कटी फल का तैलयुक्त कट नामक लेप कोप को बढाता है। इसके अतिरिक्त राजिका, पीलुमूत, नागर, पिप्पली आदि का बना पिण्ड गज के कोप को बढाता है। ये कटकादि लेप हैं—

कोपदीपनयोगास्तु कथिता ये कटादिषु।
पूर्वेद्युस्ते विधातव्या धावेच्चाहवकर्मणि ॥[4]

इसी प्रकार मुखवर्धन, कटशोधन, मदभेदन, मदवृद्धिकर, मदगन्धप्रवर्तन आदि अनेक औषधियो का प्रयोग गज को कराने का आदेश सोमेश्वर ने किया है।

सोमेश्वर ने मृग, मन्द्र, भद्र इन तीन प्रकार के मुख्य गजों का उल्लेख मानसोल्लास में किया है। इन सभी के लक्षणों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन मानसोल्लास में हुआ है।[5] मृग, मन्द तथा भद्र जातियो के अतिरिक्त कुछ मिश्रित जाति के गजों का भी उल्लेख मानसोल्लास मे हुआ है। दो जातियों के सयोग से मिश्र तथा तीन जाति के मिश्रण से गज सकीर्ण जाति का होता है—

मिश्रस्तूभयसयोगे सकीर्णस्त्रिगुणो मत ।[6]

मिश्र जाति के गज छ प्रकार के हैं—

भद्रमन्द्रो भद्रमृगो मन्दभद्रस्तथापर ।
मन्दमृगो मृगभद्रो मृगमन्दश्च मिश्रक ॥[7]

---

१ मानसो० ४।३।४७३ ४८०।
२ वही ४ ३।४७७।
३ वही ४।३।४६५ ४६९।
४ वही ४।३।४७०।
५ वही ४।३।२११-२३०।
६ वही ४।३।३३०।
७ वही ४।३।३३१।

इसी प्रकार सकीर्ण गज भी चार प्रकार के होते है—

भद्रमन्दमृगश्चैको भद्रो वा मृग मन्दयो ।
मन्दभद्रमृगश्चान्यो मन्दो वा मृगभद्रयो ॥
गुणाधिक्येन नामैषा वर्णाद्वा मुख लक्षणात् ।
मिश्रसकीर्णजातीना नाम लक्षणमीदृशम् ॥
मिश्राणा मिश्रचारस्तु सकीणाना तथ द्वय ।
शुद्धसकीर्णमिश्राणा जातिभेद इतीरित ॥[१]

इन सभी प्रकार के गजों मे भद्र जाति का उत्तम, मन्द जाति का मध्यम तथा मृग जाति का कनिष्ठ गज होता है। इन्हीं के मिश्रण से मिश्र तथा सकार्ण गज भी उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ प्रकार के होते है —

एतेषा उत्तमो भद्रो मन्दो मध्यमलक्षण ।
मृग कनिष्ठो मिश्राणा सकीर्णानामय क्रम ॥[२]

गज का इन जातियो में शारीरिक लक्षण एव रूप का ध्यान रखा गया है किन्तु श्लेष्म, पित्त तथा वायु के अनुसार भी गज शुद्ध, मिश्र तथा सकीर्ण जाति के होते है। श्लेष्म एव कफ प्रधान गज सात्विकी एव उत्तम प्रकार का, पित्त प्रधान गज राजसी एव मध्यम प्रकार का तथा वायुप्रधान गज तामसी एव अधम प्रकार का होता है। ये सभी गज शुद्ध, मिश्र तथा सकीर्ण जाति के होते है।[३]

सत्व के आधार पर भी सात्विकी, राजसी तथा तामसी, इन तीन प्रकार के गजों का उल्लेख मानसोल्लास मे हुआ है। मेघावी, स्निग्ध वर्ण वाला कामुक, दीर्घायु, अन्वर्थवेदी गज सात्विकी, वेगवान्, शूर प्रज्ञावान्, उत्तान वेदी तथा दुष्ट गज राजसी तथा क्लेश से कर्म को करने वाला, शीघ्र भूलने वाला, प्रत्यर्थ वेदी गज तामसी बतलाया गया है।[४]

---

१ मानसो० ४।३।२३२ २३४। २ वही ४।३।२३५।

३ श्लेष्मपित्तानिलाख्याता धातूनामपि जातिवत् ।
शुद्धा मिश्राश्च सकीर्णा भेदा ज्ञेया विचक्षणै ॥
सात्त्विकी कफत पित्ताद्राजसी तामसी चलात ।
प्रकृतिर्मिश्रसकीर्णा विज्ञेया पूर्ववद् बुधै ॥
मानसो० ४।३।२३६-३७।

४ मेघावी स्निग्धवणश्च दीप्ताग्निर्मितभोजन ।
अन्वथवेदी दीर्घायु कामुक सात्त्विको गज ॥
वेगवान् बहुभुक् शूर प्रज्ञावांश्चलमानस ।

सोमेश्वर ने गज की १२ प्रकार की मदावस्थाओं का वणन किया है। गज की पाच प्रकार की अन्तर्वता तथा सात प्रकार की वाह्य मदावस्थाये होती है —

तत सजातशोभस्य मदावस्थास्तु दन्तिन ।
अन्त पञ्च मदे सप्त द्वादशेति समीरिता ॥ [1]

सात प्रकार की बाह्य अवस्थाओं मे पाच अवस्थाये गज के लिए हितकारी हैं। मद की प्रथम अवस्था प्राप्त होने पर पृष्ठ तथा मेढ्र भाग समान हो जाता है, आखे किञ्चित् रक्त वर्ण की हो जाती है, गज बीथी में पैर रखने पर हाथियों से क्रुद्ध हो जाता है, दाँतो से पृथ्वी को खीचता है, धूल में खेलने का प्रेमी तथा पक को लपेटने मे तत्पर हो जाता है। यह मद की प्रथम अवस्था सञ्चित कहलाती है।[2] जब गज स्वल्पनिद्री, बहुक्रोधी, रक्त नेत्र वाला हो जाता है तब वह कोपावस्था नामक दूसरा मदावस्था को प्राप्त करता है—

स्वल्पनिद्रो रुषा युक्तो जृम्भते यस्तु सन्ततम्।
बहुक्रुद्धो रक्तनेत्रो कोपावस्था द्वितीयकी ॥[3]

अनुबन्धिनी नामक तृतीय मदावस्था को प्राप्त करने पर गज आलान पर नही बँधता, वृक्ष शाखा का आश्रय ग्रहण कर अपना कन्धराओ को फैलाता है, गमन करने मे चतुर, शोभा से युक्त मुख वाला, कर का चुम्बन करने वाला, तिरछी दृष्टि से देखने वाला तथा हृष्टपुष्ट होता है। इस अवस्था म गज के अर्ध कपोल से चलते समय मदस्राव होता है।[4] और नेत्र दान वारि से भरे रहते हैं तथा वह मेघ के सदृश गर्जन करता है —

पुष्करे सीकरस्रावी निर्भयोऽर्धकपोलिके।
गच्छन्नीषन्मदस्रावी दानत प्रतिभूयसा ॥
दानप्रवाहौ मिलितौ नेत्रयोर्दूषितामया ।
मेघवद्गर्जित यस्य पूवलक्षणलक्षित ॥[5]

जब गज विनोद तथा युद्ध कर्म म निपुण, सर्वसत्त्वों से पूर्ण तथा राजा

उत्तानवेदी दुष्टश्च राजसोऽयमनेकप ।।
क्लेशेन कम गृह्णाति गहीत विस्मरत्यपि ।
प्रत्ययवेदी निद्रालुस्तामसो द्विरद स्मृत ।। वही ४।३।२३८ २४०

१ मानसो० ४।३।४८१ । २ वही ४।३।४८२–४८४ ।
३ वही ४।३।४८५ । ४ ४।३।४८६–४९४ ।
५ मानसो० ४।३।४९२–४९३ ।

के वहन करने योग्य हो जाता है तब वह गन्धचारिणी अवस्था को प्राप्त करता है।[1] इसके अतिरिक्त जब उसके आठ स्थानों से सदैव मदस्राव होता रहता है तब गज क्रोधिनी अवस्था को प्राप्त होता है—

कर्णयोस्स्तनयोरक्ष्णो कटयोस्तालुपुष्करे।
रोमहर्षेषु कोशेषु स्रवत्स्थासु सर्वदा॥
आरोहत्यवसी यस्यामवस्था क्रोधिनी तु सा॥[2]

यह पाच प्रकार की अवस्थाये गज के लिए अच्छा होती है।

इसके पश्चात् गज विनोद का सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। राजा सर्वप्रथम गजाध्यक्ष को बुलाकर गजों को तैयार कर लाने का आदेश देता था। नगर भर में वीरसूड, मृदग, ढक्का, जयघटा आदि का नाद कराया जाता था। रात्रि के प्रथम प्रहर मे वीरसूड का नाद होने पर गजों के परिचारक गजों को चारों ओर से घेर कर उनको युद्ध के लिए तैयार करने के लिये घोर सिंहनाद कर क्रोध उत्पन्न करते थे। उनके रव को सुनकर राजा उन लोगों को शृगार के लिये पट्ट, पट्टिका, श्वेत दुकूल आदि प्रथक् प्रथक् देता था तथा गजों के शृगार तथा मर्दन के लिए तेल, सिन्दूर आदि दिलवाता था।[3]

गज विनोद के एक दिन पूर्व गज के कोपोद्दीपन के लिए उन्हें पिण्ड दिये जाते थे।[4] विनोद के दिन हाथी को भोजन तथा पानी कुछ नहीं दिया जाता था। उनके जघनस्थलों में तैल मर्दन किया जाता था तथा मस्तक पर सिन्दूर का तिलक लगाया जाता था, उनको शृङ्गारादि से विभूषित कर उनके महामात्र उनको भिन्न भिन्न आलानों में दूर दूर बाध देते थे।[5]

इन गजों का विनोद वाह्याली में होता था। यह वाह्याली १०० धनुष के बराबर लम्बी तथा ६० धनुष के बराबर चौडी होती थी। उस वाह्याली की

---

१ बहुगन्धिमदस्रावी समकक्षो घनश्रिया।
हृषकोऽप्यधिको यत्र विनोदायोधने क्षम॥
सवसत्वजिघासु स्यादारूढस्य वशानुग।
राजवाह्यो गजो यत्र सा भवेद् गन्धचारिणी॥
मानसो० ४।३।४९४–९६।

२ मानसो० ४।३।४९७–४९८।

३ शृगारार्थ नपो दद्यात्तेषा तेषा पथक पृथक।
मण्डनार्थं मदेभाना तैल सिन्दूरमेव च॥ मानसो० ४।३।५०८।

४ वही ४।३।५१०। ५ वही ४।३।५१३।

मिट्टी पत्थर तथा कण्टकादि से शून्य, अपांसुल, समतल एव चिकनी होती थी तथा वह पूर्व की दिशा की ओर ऊँची होती थी। उसमे दो विशाल द्वार होते थे। उनके आगे दो अत्यन्त विशाल तोरण पूर्व दिशा की ओर मुख करके बनाये जाते थे।[१] वाह्याली के दक्षिण की ओर मध्य भाग मे ऊँचा सुन्दर आलोक मन्दिर बनता था। यह अत्यन्त ऊँचा होता था और इसके चारो ओर गहरी खाई होती थी। यह अनेक प्रकार के रत्नों, सुवर्ण आदि से जटित, सुधा के सदृश धवल तथा रत्नजटित भूमि होती थी। उस परिखा पर फलक द्वारा सीढियों से पूर्ण मार्ग बनाया जाता था। इस प्रकार का गृह बनवाने से गज उस मन्दिर तक न पहुँच सकते थे।[२] इसी प्रकार से दक्षिण भाग के समीप ही कुछ पीछे परिखा से पूर्ण, ऊँचा, चित्रो से पूर्ण भित्ति वाला, सुरम्य, विशाल, आठ स्तम्भो से पूर्ण, स्थूल, हाथियो के वक्ष स्थल की ऊँचाई के बराबर पूर्व के द्वार के समीप उत्तर दिशा की ओर एक अन्य मण्डप बनाया जाता था।[3] इस प्रकार के लक्षणों से पूर्ण वाह्याली का निमाण गज विनोद को देखने के लिए होता था।

इस वाह्याली का निमाण हो जाने पर जब राजा अपनी अर्चना समाप्त कर चुकता था तब महत्तर राजा को इसके बन जाने की सूचना देता था। राजा नगर में डोंडी पिटवाता था जिसमें तोंदवाले मोटे व्यक्तियो, गर्भिणी स्त्रियो, बालवृन्दों तथा पादाग से हीन व्यक्तियों को उस वाह्याली में आने का आदेश नही दिया जाता था—

> आघोष्य डिण्डिम राजा पुरवीथ्या चतुष्पथे।
> तुन्दिलैर्गर्भिणीवृन्दैर्बालै पादागकुण्ठितै ॥
> न यातव्य न यातव्य कौतुकादर्शनोत्सुकै।
> विषमा मत्तमातगा मारयन्ति कृतान्तवत् ॥[४]

यह प्रसग इस बात को ओर सकेत करता है कि राजा अपनी प्रजा का पूर्णरूपेण ध्यान रखता था।

इस घोषणा के अतिरिक्त राजा गजों के आगे दौडने के लिए एक ऐसे परिचारक के लिए घोषणा कराता था कि कोई है ऐसा वेगवान दौडने वाला व्यक्ति जो गज के आगे दौड सके—

---

१ वही ४।३।५१५–१७। २ वही ४।३।५१८–२१।
३ वही ४।३।५२३। ४ वही ४।३।५२८–२९।

अन्या च घोषणा कुर्याच्च कश्चित्पादवेगवान् ।
धनलुब्धो द्विपस्याग्र स धावतु स धावतु ॥[1]

राजा अपनी रानियों तथा कुमारों के लिए वस्त्र तथा आभूषण भेजता था। सबके तैयार हो जाने पर उन अलंकृत महाराज्ञिया तथा अन्य स्त्रिया को बजते हुए घण्टों से पूर्ण, सिन्दूर से सुशोभित मस्तक वाले हाथिया पर चढाकर तब राजा स्वय चढकर सूर्यास्त के आतप के कुछ शान्त हो जाने पर सामन्त, अमात्य तथा मन्त्रियों के सहित वाह्याली मे आता था। सर्वप्रथम महाराज्ञियाँ तथा कुमार उतर कर, मण्डलाधीशा, सामन्त, अमात्यां के साथ प्रकाश के आश्रय से आलोक मन्दिर म प्रवेश करते थे। तब राजा स्वय हथिनियों पर से उतर कर परिखा पर सेतुमार्ग से सीढियों पर चढता हुआ आलोक मन्दिर मे आता था।[3]

वाह्याली में सबके प्रवेश करने पर वीरस्तुड की ध्वनि की जाती थी। उसको सुनकर उत्साह से प्रफुल्लित हो राजा गजाध्यक्ष को बुलाकर परिचारकों को लाने का आदेश देता था। उनके आने पर राजा उनसे हाथियों के आगे दौडने का कारण पूछता था। तब वे लोग कहते थे—महाराज हम लोग मत्सरपूर्ण है, हम स्वर्ण के इच्छुक हैं—

आवा मत्सरिणौ देव वय कनककाङ्क्षिण ।
मया द्विपासन रुद्धमह परिभवान्वित ॥[4]

यह परिकारक गति के अनुसार उत्तम, मध्यम तथा तीन हीन प्रकार के होते थे—

उत्तमो मध्यमो हीनस्त्रिविध परिकारक ।
एतेषा लक्षण वक्ष्ये जवोत्कर्षात्पृथक् पृथक् ।[5]

वाह्याली की भूमि तीन भागो में अलग अलग विभक्त रहती थी—

---

१ मानसो० ४।३।५३० ।

२ तत सम्प्राप्य वाह्यालीमुपवेश्य करेणुका ।
उत्तारयेत्ततः कान्ता पुरस्ताच्च प्रवेशयेत् ॥
कुमारमण्डलाधीशसामन्तामात्यमा यकान ।
सेवकान्विविधानन्यानालोकेन प्रवेशयेत् ॥ मानसो० ४।३।५३७-५३८ ।

३ मानसो० ४।३।५३९-५४० । ४ वही ४।३।५४४ ।

५ वही ४।३।५४६ ।

१—द्विपभूमि
२—नृपभूमि
३—परिकरभूमि[१]

इनमे जो परिकर तीसरी भूमि को छोडकर अन्य दो भूमियों मे गज के आगे दौडता है वह उत्तम, मध्यम जाति के नाग के समक्ष जो इसी प्रकार दौडता था वह मध्यम तथा कनिष्ठ नाग के समक्ष जो इसी पूर्वोक्त प्रकार से दौडता था वह कनिष्ठ होता था।[२] परिचारकों की ही भाति हाथी भी तीन प्रकार के होते थे। अग्रिम पदाक के पीछे होकर जो आगे हो जाता था वह उत्तम जव वाला, परिकार की गति से दस धनुष आगे होने वाला भी उत्तम जव वाला होता है। इसी प्रकार मध्यम तथा कनिष्ठ हाथियों के लक्षणों का भी वर्णन हुआ है।[3]

जो परिकारक गज के साथ दोडने मे पीछे रह जाता था वह हीन तथा समान रहने पर समान समझा जाता था। जो तीसरी भूमि को छोडकर दो भूमि तक गज के आगे दौड जाता था वह परिचारक जयी हो जाता था।[४] किन्तु जो परिकारक निश्चित मार्ग से हटकर अलग दौडता था वह पराजित हो जाता था। ये परिकारक अन्य व्यक्तियो के प्रमोदार्थ दौडते थे और यदि विजयी होते थे तो धन प्राप्त करते थे। पराजित हो जाने पर धन भी नहीं प्राप्त होता था और यदि हाथी के द्वारा पकड लिया जाता था तो अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता था—

तुम्बिका वा परित्यज्य वीथिं हित्वाऽन्यतो व्रजेत्।
सर्पवद्वापि य सर्पेद्धृतो वा सम्पराजित ॥
परार्थं धावमानस्तु जयी चेद्धनमाप्नुयात्।
पराजये धन नास्ति कुञ्जरेण हतो हत ॥[५]

गजों के पीछे दौडने में परिकर के मध्य कुछ प्रतिज्ञाये होती थीं। दन्ती के जघनस्थल में चूर्ण के द्वारा चिह्न बना दिये जाते थे और दूसरा उसे पोंछ लेता था यही प्रतिज्ञा होती थी। इस प्रतिज्ञा को पूरा कर देने पर वह जयी

---

१ प्रथमा द्विपभूमि स्यात्मध्यमा नपतेर्मही।
तृतीया परिकारस्य भूमिरेव त्रिधा मता ॥ मानसो० ४।३।५४७।

२ मानसो० ४।३।५४८—५५०।

३ मानसो० ४।३।५५१ ५५५। ४ वही ४।३।५५९ ५६१।

५ वही ४।३।५६२, ५६३।

समझा जाता था किन्तु प्रतिज्ञा पूर्ण न कर पाने पर या तो मारा जाता था अथवा हाथी जयी होता था—

जघने दतयोर्वापि कुर्याच्चूर्णेन लाञ्छनम् ।
माष्टि वा तत्कृते चान्य प्रतिज्ञा धावनन्विदम् ॥
प्रतिज्ञापारगो य स्याज्जयस्तस्य प्रकीर्तित ।
प्रतिज्ञापगमे वापि मारणे वा गजो जयी ॥[1]

इसी प्रकार जय विजय के सम्बन्ध में अन्य प्रतिज्ञाये भी रहती थीं।[2] गज विनोद से सम्बन्धित यह प्रथा इस बात की ओर सकेत करती है कि सोमेश्वर की प्रजा के लोग राजा के विनोद तथा धन के लोभ के समक्ष अपने जीवन की भी चिन्ता न करते थे।

इस विनोद के साथ ही साथ गज विनोद के लिए राजा चोर को भी हाथ बधवा कर हाथी के समक्ष दौडाता था। यदि वह जीवित रह कर विजयी होता था तो पाप से मुक्त कर दिया जाता था अन्यथा हाथी के चरणतलो का शिकार हो जाता था—

बद्धहस्तो यदा चोर पुरो धावति हस्तिन ।
गतापराधो जीवेच्चेद्धत पापात्प्रमुच्यते ॥[3]

यह दृष्टान्त इस बात को स्पष्ट करता है कि राजा के राज्य में चोर को इसी प्रकार का दण्ड दिया जाता था। राजा का दण्ड बडा ही न्यायसगत था।

इस प्रकार के विनोद के वणन के पश्चात् सोमेश्वर ने गजारोहण के लक्षणों का भी वर्णन किया है। गजारोहण के दस प्रकार थे।[4]

इसके साथ ही साथ तीन प्रकार के गजों के आसनों का भी उल्लेख हुआ है—

प्रविश्यासनमुत्कृष्ट मध्य मध्यसमासनम् ।
पादाग्रेणावकृष्ट स्यादासन त्रिविध स्मृतम् ॥[5]

---

१ वही ४।३।५६४,५६५। २ वही ४।३।५६६–५७१।

३ वही ४।३।५७२।

४ गात्राभ्यामपराभ्या च पार्श्वाभ्यामपि रज्जुभि ।
कर्णौ धृत्वा मुखे प्रोक्त वृक्षादेरधिरोहणम ॥
एतान्येवावरोहे स्युरापात कणतो रणे ।
एव दशविध प्रोक्तमवरोहणलक्षणम ॥ वही ४।३।५७७–५७८।

५ मानसो० ४।३।५७९।

भद्रादि जातियों के लिए युद्ध के समय उत्कृष्ट आसन, दौडने के समय मध्यासन तथा मृग जाति के गजों के लिए अवकृष्ट आसन उपयुक्त है।[१] इसी प्रकार जानु सन्धि के अनुसार भी सम, दृढ तथा सलग्न तीन प्रकार के आसन उपयुक्त है—

सम दृढ च सलग्न जानुसन्धिसमाहितम् ।
आसनत्रितयऽप्येव सौष्ठव परिकल्पयेत् ॥[२]

आसनो के अतिरिक्त गजो के लिए प्रयोग मे लाई जाने वाली अनेक प्रकार की प्रणिधियों का वर्णन किया है। यह पार्श्वावनत,[३] पृष्ठावनत,[४] उपलापन,[५] प्रज्ञापन,[६] तर्जन,[७] प्रतिक्षित,[८] प्रहत, अदीर्ण[९] ईषत्स्पृष्ट[११] प्रणिधि है। प्रणिधि की परिभाषा सोमेश्वर ने निम्न प्रकार से दी है—

गजस्य प्रेरणार्थं यत् पुरस्ताद्रासन वपु ।
करोतु यन्ता प्रणिधिर्नाम्नासावनतो मत ॥[१२]

अकुश के द्वारा हाथी पर होने वाले घात भी अनेक प्रकार के होते है—

अधाङ्गुल निमग्नश्चेदकुश करिमस्तके ।
प्रणिधानाभिधो घातो विधेयाना विधीयते ॥
द्वि यगुलप्रमाणस्तु घात पोडिको मत ।
द्वाभ्या कराभ्यामुत्क्षिप्य स घात क्षिप्तक स्मृत ॥
सृणिपार्श्वेन घातोऽय भवेत्तारितकाभिध ।
आराघातस्तत प्रोक्तस्तोद इत्यभिधानत ॥[१३]

गज के मुख को एक वस्त्र द्वारा ढक दिया जाता था। उसके चारो ओर हथसवार तथा घुडसवार लोग रहते थे और सब वाह्याली मे आते थे—

तस्मात्तादृग्विध नाग मुखपट्टावृतेक्षणम् ।
वस्त्रोदरसमाकीर्णाकर्णद्वितयर अकम् ॥

---

१ मानसो० ४।३।५८०–५८१ । २ वही ४।३।५८२ ।
३ वही ४।३।५८४ । ४ वही ४।३।५८५ ।
५ वही ४।३।५८६ । ६ वही ४।३।५८७ ।
७ वही ४।३।५८८ । ८ वही ४।३।५८९ ।
९ वही ४।३।५९० । १० वही ४।३।५९१ ।
११ वही ४।३।५९२ । १२ वही ४।३।५९३ ।
१३ वही ४।३।५९३–५९५ ।

आरोहेरतेर्हयारूढै सादिभि परिवेष्टितम्।
कृतान्तमिव दुर्धर्षं बाह्याली भूमिमानयेत् ॥[3]

इसी समय हाथी से कुछ दूर पर वीरसूड का वाहन होता था और परिकर हाथी के समक्ष लाया जाता था। उस समय हाथी के मुख पर का आवरण हटा दिया जाता था जिससे हाथी परिकर को देख ले।[4] परिकर को देखते ही हाथी क्रुद्ध होकर उसके पीछे दौडता था। उसी समय घोडे आदि भी दौडते थे और हाथी परिकर को छोडकर अश्वो के पीछे दौडने लगता था। इस दौड मे वह अनेक प्रकार से शुण्ड द्वारा सबको मारता था। हाथी के इस क्रोध को देखकर उसके समक्ष हथिनियों का यूथ आता था और वे हथनिया उसे अपने वश मे कर लेती थीं—

एकत करिणीयूथमन्यतो हयवृन्दकम्।
नराणा युगल तस्मिन् सगत नैव दृश्यते ॥
निर्जन्तुक तदा जात बाह्यालीभूमिमण्डलम्।
कथचिन्नीयते कृच्छ्रात्सादिभिस्तोत्रपाणिभि ॥

आजकल भी बडौदा में हाथियों का इसी प्रकार का विनोद होता है। इसे डागदारी कहते है।

गज सम्बन्धी अनेक प्रसग भारतीय साहित्य म प्राप्त होते हैं। बृहत्सहिता तथा बौद्ध साहित्य[7] में गज के लक्षणों पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डाला गया है। ललितविस्तर में हाथी के सिर का आश्रय ग्रहण कर चढने का प्रसग प्राप्त होता है। वात्स्यायन ने गज की पीठ पर उचित रूप से बैठने की भी एक प्रकार की कला मानी है।[8] शुक्र के समय में हाथियों की पारस्परिक दौड द्वारा

---

१ मानसो० ४।३।६३०–३१।

२ वीरसूडरव भूरि कारयेत्तस्य दूरत।
द्वारप्रवेशनात् पूर्वमादिशेत् परिकारकम् ॥
अपसाय हयारोहानुत्सृजेत्कणक दुकौ।
मुखपट्ट समुत्क्षिप्य परिकार प्रदर्शयेत् ॥ मानसो० ४।३।६३२–६३३।

३ मानसो० ४।३।६३६। ४ वही ४।३।६३७–६४०।

५ वही ४।३।६४१–४२। ६ बृहत्सहिता अध्याय ६७।

७ समवाय सुत्त २।२।२६ तथा दी०नि० १।२२।

८ ए० वेंकटसुबिया—दिकलाज सूची २।

९ वही सूची ३।

व्यक्तियों का मनोरजन होता था।[1] सोमेश्वर ने भी हाथी की दौड द्वारा मनोरजन करने का प्रसग दिया है, कि तु उस दौडते हुए हाथी के समक्ष पुरुष का दौडना उनके समय की अपनी विशेषता थी। इसके अतिरिक्त चोर को हाथी के समक्ष हाथ बाधकर दौडाया जाता था यह प्रसग सोमेश्वर के निष्पक्ष न्याय की ओर सकेत करता है। यद्यपि यह प्रथा अत्यन्त क्रूर थी, किन्तु चोर के लिए महान् शिक्षा प्रस्तुत करती थी।

इसके बाद दो गजों मे युद्ध होता था। ये दोनो गज परस्पर अपनी शुण्डों द्वारा एक दूसरे पर आघात करते थे। ये घात १४ प्रकार के होते थे। इन सभी आघातो द्वारा गज परस्पर लडते थे। दोनों गजों के सम्मुख आ जाने पर अथवा अपने गज के गिर जाने पर उसको चाप द्वारा खींच लिया जाता था।

राजा विजयी व्यक्तियो को वस्त्र, धन, काञ्चन तथा आभूषण आदि देता था और अन्त में हथिनियों पर चढ कर अपने राजमदिर को चला जाता था।

इस प्रकार के हस्तियुद्ध का प्रसग दीघनिकाय मे प्राप्त होता है जो तत्कालीन समाज में प्रचलित था और बौद्ध भिक्षुओं के लिए वर्जित था।[3] शुक्र ने भी हस्ति युद्ध का वर्णन किया है।[4]

वाजिवाह्याली विनोद

गजवाह्याली विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने वाजिवाह्याली विनोद का वर्णन किया है। सर्वप्रथम उन्होने वाजि विनोद के लिए बनने वाली वाह्याली की भूमि का वर्णन किया है। वह कीचड, पाषाण तथा शकु से हीन, न बहुत मुलायम न बहुत कठिन भूमि में अत्यन्त विशाल वाह्याली राजा बनवाता था—

अकर्दमामपाषाणा गर्तशकुविवर्जिताम् ।
न मृद्वीं नातिकठिना प्रागुदीचीप्लवा शुभाम् ॥
विशाला सुषमा श्लक्ष्णा वाह्यालीं कारयेन्नृप ॥[5]

दो द्वारों से युक्त उत्तरदिशा की ओर वायु के अनुकूल अथवा दक्षिण दिशा की ओर दर्शन मण्डप बनवाया जाता था। उस वाह्याली का निर्माण हो जाने

---

१ वही सूची ८।

२ मानसो० ४।३।६४५–६५४।

३ दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त, सू० १३ पृ० ७।

४ ए० वेंकटसूबिया—दिकलाज़ सूची ८।

५ मानसो० ४।४।६६२ ६६३।

पर तथा गृहकारकों के निवेदन करने पर हयाध्यक्ष को बुलाकर राजा घोडों को वाह्याली में लाने की आज्ञा देता था।[1]

घोडों के आ जाने पर विनोद कराने के पूर्व राजा इनको देश, नाम, आवर्त, वर्ण, सत्त्व, छाया, गन्ध, गति तथा आकार के अनुसार परीक्षा करता था—

समानीतास्ततो वाहानवलोक्य महीपतिः ।
तेषां जातीः परीक्षेत देशनामविभेदतः ॥
आवर्तवर्णसत्त्वानि छायागन्धगतिस्वराः ।
आकारश्चाष्टधाऽश्वानां श्रेष्ठमध्यकनीयसाम् ॥[2]

नकुल ने भी अश्वों की परीक्षा के आवर्तादि यह आठ लक्षण बतलाये हैं—

इदानीं लक्षणं कृत्स्नं तुरगाणां प्रवक्ष्यते ।
आवर्तवर्णसत्त्वानिछायागन्धगतिस्वराः ॥
शरीरं चैव वाहानां प्रोक्तं लक्षणमष्टधा ॥[3]

सोमेश्वर की प्रथम पंक्ति आवर्त ... स्वरा तो पूर्ण रूप से नकुल से उद्धृत प्रतीत होती है।

सर्वप्रथम महाराज सोमेश्वर ने देश के नामों के अनुसार अश्वों का विभाजन किया है। उनके कथनानुसार देशनामानुसार सात उत्तमोत्तम अश्व, ५ उत्तम प्रकार के अश्व, १४ मध्यम वर्ग के तथा १३ निम्न कोटि के अश्व होते हैं।[4] इनके अतिरिक्त २६ भेद और हैं जिनके विषय में केवल यही कहकर छोड दिया है कि वे कलियुग में नहीं होते। इसी कारण उनके नामों को नहीं गिनाया है —

षड्विंशतिविभेदाः स्युः राज्ञा ज्ञेयास्तुरंगमाः ।
न जायन्ते कलौ यस्मात्तस्मान्न गणिता मया ॥[5]

सोमेश्वर ने १—काम्बोज, २—यवन, ३—तेजी, ४—वाल्हीक, ५—चातल, ६—तोखारक, और ७—सकेकाण नाम के उत्तमोत्तम घोडों का वर्णन किया है।[6] नकुल ने काम्बोज के स्थान पर कामोज नाम दिया है। यह अश्व रूप, कुल, गति वर्णादि सबमें श्रेष्ठ है। सोमेश्वर ने जो यवन अथवा यवनोद्भूत अश्वों का उल्लेख किया है वे सम्भवतः अरबी घोडे रहे होंगे

---

१ मानसो० ४।४।६६६ । २ वही ४।४।६६७-६८ ।
३ नकुल—अश्वशास्त्र पृ० २१ । ४ मानसो० ४।४।६६९-६७४ ।
५ वही ४।४।६७५ । ६ वही ४।४।६६९ ।

क्योंकि अरब के घोडे आज भी प्रसिद्ध है। नकुल ने भी अपने अश्वशास्त्र मे यवन अश्वो की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है—

चारुनयनकपोलास्तनुहनु वक्रास्तुरगमा शस्ता।
यवनास्तुरगा विपुला पृथुघन वक्षोललाटनयना स्यु ॥
दीर्घा सुकुक्षिका सुखुरा लघुक्रमा शस्ता।
प्रियदर्शना सुवर्णा स्पष्टायततनुमहाकाया।
तेज सत्वोपेता तनुत्वचश्चापि सूक्ष्मरोमाण ॥[1]

बाह्लीक अश्वो की परिभाषा नकुल ने भी दी है और उन्हे वर्णरूपादि मे काम्भोजों के सदृश माना है। ये महागति वाले तथा रूप और सौन्दर्य से युक्त होते हैं। नकुल ने जो तुषार नामक घोडों का वर्णन किया है, सम्भवत उन्ही का सोमेश्वर ने तोखार अथवा तोकार[3] नाम दिया है।

इसी प्रकार सोमेश्वर ने १—पोट्टार, २—कान्दलेय, ३—यौधेय, ४—वाजपेयक, ५—वनायुज और ६—पारसीक इन छ उत्तम प्रकार के अश्वों का वर्णन किया है।[4] इनमें से नकुल ने वनायुज अश्व का वर्णन किया है और सम्भवत कान्दलेय तथा यौधेय नामक अश्वों का क्रमश कादरेय[5] तथा गौधेय[6] नाम दिया है। ये अशुद्धिया हस्तलिपियों के पाठ भेद के कारण हो सकती है।

महाराज सोमेश्वर ने चौदह प्रकार के मध्यम वर्ग के अश्वो का उल्लेख

---

१ अश्वशास्त्र नकुल—कुललक्षणाध्याय।

२ प्रियदशना मनोज्ञास्तेजोजवसत्वमयुक्ता।
एव तुषारकाश्वा जवसत्वबलान्विता महाकाया।
अश्वशास्त्र।

३ तोकारदेशसम्भूत सवलक्षणसयुतम। मानसो० ४।४।८१६।

४ पोट्टारा कान्दलेयाश्च यौधेया वाजपेयका।
वनायुजा पारसीका षडेते चोत्तमा हया ॥
मानसो० ४।४।६७०।

५ पृथुजघनान्दृढपादा सुकुक्षिका शुभाकारास्तुरगा।
अश्वास्तु कादरेया दृढपादा सूक्ष्मवालरोमाण।
अश्वशास्त्र—कुललक्षणाध्याय।

६ दृढपादा अक्रूरा शशिवर्णा प्रायशस्तेऽश्वा।
यौधेया भारसहा सुखुरा वृत्तायतघनग्रीवा ॥
अश्वशास्त्र—कुललक्षणाध्याय।

घोडो के लक्षण आदि का विस्तृत वर्णन कर सोमेश्वर ने घोडों के विनोद का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने इसी पूर्वाक्त प्रकार के शुभ लक्षणों से युक्त राजोचित अश्वो को विनोद के लिए शिक्षा देने का आदेश दिया है

महाजवा महाप्राणा नृपाणामुचिता हया ।
एव रूपगुणोपेतान् शिक्षितानश्वग्राहकै ॥[1]

विनोद के लिए सुवर्ण पट्टों द्वारा घोडो का वक्ष स्थल सजाया जाता था। मस्तक पर सुन्दर पट्ट बाधे जाते थे। कनक की शृखलाएँ उनके डाली जाती थीं। ग्रीवा में कुकुम का लेप किया जाता था।[2] इस प्रकार सजे हुए अश्वो के वाह्याली मे आ जाने पर राजा स्वय वस्त्राभूषणों द्वारा शृगार कर अत्यन्त सुन्दर घोडे पर चढ कर वाह्याली मे आता था। अत्यन्त चतुर अश्वारोही दो भागों मे आठ आठ की सख्या मे विभक्त किए जाते थे।[3]

राजा के साथ अन्त पुर की स्त्रिया, कुमार, सचिव, अमात्य, मन्त्री तथा अन्य बहुत से व्यक्ति रहते थे। राजा घोडे पर अपनी प्रिया के साथ सुखपूर्वक बैठकर मण्डप मे आता था।[4] तब राजा स्वय काम्बोज अश्व पर चढकर विनोद के लिए वाह्याली मे प्रवेश करता था—दोनों पक्षो की ओर दो तोरण तीन धनुष की दूरी पर बने होते थे। तोरण तथा स्तम्भों के मध्य चार धनुष की दूरी रहती थी। वहा से कन्दुक के निष्कासन द्वारा जय पराजय का अनुमान किया जाता था।[5] जिन व्यक्तियों के द्वारा गेद निकाल दिया जाता था वही विजयी होते थे। अश्वविनोद के समय कृष्णचर्म से आच्छादित मुख वाली पाच अगुल परीणाह की हेम पट्ट से विभूषित एव रत्न जटित गेद्दिका सब अश्वारोही धारण करते थे। राजा अपने पक्ष के लोगों को तोरण के समीप स्थापित करता था और सब लोग उसी गेद्दिका के अग्रभाग द्वारा गोल, चिकने, पारिभद्र की लकडी के बने हुए चमडे से आच्छादित, लाल वर्ण के गेद को पृथ्वी पर फेंकते थे। एक पक्ष के व्यक्ति पुन गेद को सघर्ष द्वारा लौटा देते थे और इसी बीच

१ मानसो० ४।४।७७९। २ वही ४।४।७८४ ७९१।
३ वही ४।४।७९७। ४ वही ४।४।७९९ ८००।
५ वही ४।४।८०१ ८०२।
६ शोणेन चमणा नद्धा मुखे कृष्णेन गुण्ठिता।
पचागुलपरीणाहा गेद्दिकाश्चापमात्रिका ॥
शोभिना हेमपट्टेन क्वचिद्रत्नविभूषिता ।
प्रगृह्य गेद्दिका सर्वे पक्षद्वितयसादिन ॥ सोमेश्वर—मानसो० ४।४।८०४–५।

में कोई अन्य व्यक्ति वेग पूर्वक आकर कन्दुक को पकड लेता था फिर वह कन्दुक प्रतिपक्षी की ओर फेंक दिया जाता था।[1]

इसी प्रकार एक दूसरे की ओर सघर्षों द्वारा कन्दुक को उछालते हुए विनोद करते थे। कोई अनेक घातो द्वारा गद को फेकता था, कोई आगे की ओर अथवा पीछे की ओर फेंकता था। कोई तिरछे आघात करता था, कोई बाहर फेंकता था, कोई हसता हुआ गेहिका के अग्र भाग से गेद को दूसरे से ले लेता था। एक आकाश मे स्थित गेद को गेहिका के अग्र भाग से धारण करता था तथा दूसरा अश्वारोही उसको आकाश से ले आता था। इस प्रकार जो सकुल घात द्वारा गेद को पृथ्वी तथा आकाश से लाकर तोरण के अतिम भाग से बाहर निकाल देता था वही विजय प्राप्त करता था—

गगनस्थ पर सादी गे (गोहि)काग्रेण धारयेत्।
अपरश्चाश्ववारोऽपि तमादायाम्बरान्नयेत्॥
एव सकुलघातेन क दुक भुवि चाम्बरे।
नयन्तस्तोर स्यान्तर्बहिनिष्कास्य कन्दुकम्॥
जय लभन्ते ऽपचास्तूर्यनादविजृम्भितम्।[2]

इस प्रकार से अश्व पर चढ़कर कन्दुक विनोद द्वारा राजा के विजय प्राप्त करने पर तूर्यवाद होता था। राजा खेल के पश्चात् घोडे पर से उतर कर वन्दियों द्वारा स्तुति किया जाता हुआ तोरखारी घोडे पर बैठता था।[3] तत्पश्चात् अन्य व्यक्ति भी घोडों पर वेठते थे। राजा दढ़तापूर्वक घोडे की दोनों वलों को खींचकर दाये तथा बाये और घुमाकर शब्दों द्वारा घोडे को रोक कर, उसे जाघों द्वारा पीडित कर, उचित रूप से अश्व पर बैठ कर वाहन विद्या के उत्कर्ष को प्रदर्शित करता था।[4]

अश्व विद्याविशारदों के द्वारा प्रेक्षक लोगों का मन प्रसन्न करने के पश्चात् राजा की महाराज्ञिया राजा की आरती करती थीं। तत्पश्चात् राजा अश्ववाहकों को सुवर्ण, वस्त्र, अलकार पारितोषिक के रूप में देता था। गायक लोग राजा का स्तुति करते थे, कविगण उनके यश का गान करते थे। तब राजा राजमन्दिर में प्रवेश करता था।[5]

यह घोडे पर चढ़कर गद खेलने की प्रथा भारतवर्ष में बहुत दिनों से प्रचलित है, किन्तु पूर्व में इसका नाम वाजिवाह्य क्रीडा थी। इसके अतिरिक्त

---

१ मानसो० ४।४।८०६ ८०९। २ वही ४।८१३ ८१५।
३ वही ४।४।८१६ ८१६। ४ वही ४।४।८१८ ८२३।
५ वही ४।४।८२४ ८२७। ६ भारतीय सस्कृति अक, पृ०७२५।

बुद्ध काल मे यह अश्व सम्बन्धी मनोरजन अश्वो को परस्पर लडवा कर किया जाता था। यह भी एक प्रकार का विनोद था जो बौद्ध भिक्षु के लिए वर्जित था—

नच्च गीत वादित

वस धावन अस्स युद्ध

एवरूपा विसूक दस्सना पटिविरतो

समणो गोतमो ति ॥[१]

वर्तमान काल मे भी यह विनोद प्रचलित है जो Horse Polo (अश्वकन्दुकक्रीडा) नाम से प्रसिद्ध है।

अक विनोद

तुरग वाह्याली विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने अक विनोद का वर्णन किया है। इस प्रकरण में सर्वप्रथम उन्होने अक की परिभाषा दी है। जो व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से समान अस्त्र लेकर लडता है वही व्यक्ति अक कहलाता है।[२]

सोमेश्वर ने इस प्रकरण मे आठ प्रकार के अकों का वर्णन किया है—

१ परिभूताक-गाली, केश खींचे जाने, ताडनादि से जिसका अनादर होता है।

२ मत्सराक—एक ही वेश्या के लिए जो ईर्ष्या के कारण दूसरे व्यक्ति से युद्ध करता है।

३ भूम्यक—गृह तथा क्षेत्रादि को हरने के कारण सीमा के बहाने से तथा भूमि को प्राप्त करने के लोभ से जो युद्ध करता है वह भूम्यक होता है।

४ विरुदाक—एक व्यक्ति को उद्देशित करके सभी व्यक्ति उसके विरुद्ध चिल्लायें, काहल बजाये, दिन में भैसे पर चढकर दीप जलाने तथा सभी मार्गों में तृण बिखेर दे।

५ विद्याक—शस्त्र विद्या से सम्बन्धित जो युद्ध किया जाता है वह युद्ध करने वाला विद्याक होता है।

६ वैराक—पिता आदि को मारने से उत्पन्न वैमनस्य का स्मरण कर जो दूसरे से युद्ध करता है।

---

१ दीघनिकाय—ब्रह्मजाल सुत्त–सू० १३ पृ० ७।

२ येन वा युध्यते सावमेक खलकधामनि।
समेनास्त्रेण यस्तज्ज्ञैरक स परिकीर्तित ॥

मानसोल्लास ४।५।८१८, ८२९

७ द्रोहाक—अपराध करने पर उसका निवारण करने के लिए राजा जिस को लडवाता है वह द्रोहाक है।

८ प्रायश्चित्ताक—जो मोह से वशीभूत होकर पाप कर डालता है और विरक्त मन से राजा के समीप आकर शिकायत करता है उसके निवारणार्थ राजा जिसको लडवाता है वह प्रायश्चित्ताक है।
इस प्रकार से आठ प्रकार के अक उस समय मे होते थे।[2]

इन आठों प्रकार के अकों में परस्पर जिन दो व्यक्तियों म वैमनस्य होता था उनको राजा दोनों में युद्ध करवा कर शान्त करता था। सोमेश्वर ने इसे धार्मिक कृत्य माना है—

> इत्थमाष्टविधानकान्योधयन् पृथिवीपति ।
> पाप नाप्नोति तेषा च व्याजपाप व्यपोहति ॥[3]

इन आठों प्रकार के अकों के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने उनके लडाने के लिए विशेष प्रकार के स्थान का वर्णन किया है। उन अकों का युद्ध कराने के लिए राजा को एक अत्यन्त ऊँचा, वृत्त, मजबूत, सोलह हाथ विस्तीर्ण तथा ४८ हाथ परीणाह का, बत्तीस खम्भों से तथा एक द्वार से युक्त खलक बनवाना चाहिए। उन खम्भों को निम्ब पत्र की पताकाओं से सुशोभित करवाये। द्वार की सीढियों तथा तोरण से युक्त हो तथा खलक में दडधारी व्यक्ति अधिष्ठित हो।[4] खलक के समान ही ऊचाई पर राजा को देखने का स्थान बनवाना चाहिए जो चौकोर, विशाल आँगन से पूर्ण, वितान से आच्छादित, मध्य भाग में वेदिका से युक्त, अत्यन्त चिकनी तथा श्वेत भूमि से युक्त तथा सुवर्ण पट्ट से आच्छादित स्तम्भों से युक्त हो—

> खलकेन समोत्सेधे कुर्याद्वीक्षणमडपम् ।
> विशाल चतुरस्र च सवितान च सागणम् ॥
> मध्ये वेदिकया युक्त चित्रभित्तिसमन्वितम् ।
> सुधाधवलित रम्य श्लक्ष्णकुट्टिमशोभितम् ॥
> स्वर्णपट्टपिनद्धैश्च स्तम्भै सुपरिमडितम् ॥[5]

इस प्रकार के वीक्षण स्थल से राजा खलक में युद्ध करते हुए अकों को देखता था। इन अकों के युद्ध के लिए रविवार का दिन निश्चित किया जाता था—

---

१ मानसोल्लास ४।५।८३०,४० । २ वही ४।५।८४१ ।
३ वही ४।५।८४१,८४२ । ४ वही ४।५।८४२ ४५ ।
५ वही ४।५।८४५,४७ ।

तत प्रभाकरे वारे कृतपूर्वाह्लिकक्रिय ।
निवर्त्य भोजन राजा भवेत्सम्भृतमडन ॥[1]

उस दिन के पूर्व शनिवार को राजा उन दोनो अकों (जिसमें विवाद के कारण वैनमस्य होता था) का बुलाता था और उनकी अनेक प्रकार की शौर्य एव उत्साहपूर्ण प्रतिज्ञाओं को सुनकर उन्हे लिखवाता था—

वारे शनैश्चरे सोऽयमकानाहूय योधयेत् ।
प्रतिज्ञा शृणुयात्तेपा विविधा शौर्यशालिनी ॥

ब्रुवतामेवमन्योन्य प्रतिज्ञा लेखयेन्नृप ।[2]

जिस समय वे दोनो अक राजा के समक्ष अपनी अपनी प्रतिज्ञाओ को सुनाने के लिए उपस्थित होते थे उस समय उनके पारस्परिक वैमनस्य के भावों का सोमेश्वर महाराज ने बडी ही स्वाभाविकता के साथ वर्णन किया है । दोनो ही अक राजा के समक्ष अपनी अपनी बात कहते थे । यदि उनमें से एक व्यक्ति दूसरे को रोकने को, नोचने को तथा भगाने को कहता था तो दूसरा उसे मार डालने, पैर तोड देने, हस्तहीन कर देने आदि की धमकी देता था—

प्रधावाम्यहमित्येको रुणध्मीति तथापर ।
खोद्धामीति तथा चैके धारणामीति चापर ॥
अपसर्पामि नेत्येकश्च सर्पामीति कश्चन् ।
मारयाम्यहमित्येको म्रियेऽह नेति चापर ॥
शस्त्र्या शल्लिकया स्पर्शे हनिस्यामीति कश्चन् ।
अस्त्रशस्त्रै तवागानि दारयामीति चेतर ॥
छिनद्मि पाद धावन्त घ्नन्त हस्त निहन्म्यहम् ।
दृड छिनद्मि निक्षिप्त गात्र विध्याम्युपागतम् ॥[3]

इस प्रकार की एक दूसरे के प्रति उत्साह, शौर्य एव घृणा पूर्ण वाणी को सुनकर राजा उन सबको लिखवा कर उन्हे विदा कर देता था ।

रविवार को दिन के अन्तिम प्रहर मे राजा उन अको के युद्ध को देखने के लिए अपनी रानियों, भृत्यों, मन्त्रियो, अमात्यों, मडलाधीश्वरों, अन्य मडल के

---

१ मानसोल्लास ४।५।८५४ । २ वही ४।५।८४८ ८५३ ।
३ वही ४।५।८४९ ८५२ ।

भूपालो के समेत वीक्षणमडप में आकर अपने आसन पर बैठता था।[1] सभी लोगो के यथास्थान बैठ जाने पर तूर्यनाद से प्रसन्न होते हुए, सिह के समान गर्जन करते हुए, काहल, वाद आदि बजाते तथा एक दूसरे के प्रति विरुद्ध बाते करते हुए हथिनियों पर चढ़कर अक्र खलक मडल में आते थे।[2] उनकी वेशभूषा भी बडी विचित्र होती थी। कोई हरा, कोई पीला, कोई काला तथा कोई श्वेत वस्त्र धारण करता था। कोई त्रिबिन्दु, त्रिशूल तथा मडलाकृति का मस्तक पर तिलक धारण करता था। कोई घुटनों तक का वस्त्र पहनता था तो कोई अनेक आभूषण धारण करता था। इस प्रकार की विचित्र तथा विभिन्न प्रकार की वेशभूषा मे अक गण खलक म प्रवेश करते थे और कूमासन (घुटनों के बल भूमि पर बैठकर सिर भूमि पर रखकर) मे बैठकर राजा को प्रणाम करते थे।

तब राजा प्रत्येक प्रकार के प्रतिद्वन्द्वी को अलग अलग लडवाता था। उदाहरणार्थ स्त्री मत्सर से युक्त को मत्सर करने वाले के साथ लडाता था—

क्षितीश परिभूतेन योधयेत्परिभावकम्।
स्त्रीमत्सरसमायुक्त मत्सरेणेव योधयेत्॥
सविरोधौ क्षितेरर्थं योधनीयो परस्परम्।
विरुद योधयेद्राजा विरुदप्रतिरोधिना॥
विद्याक समविद्येन तद्विधेनैव योधयेत्।
वैराकौ वैरिणा सार्धं योधनीयौ महीभुजा॥
द्रोहाक तादृशेनैव वध्यन सह योधयेत्।
पापिन पापशुध्यर्थं पापिना सह योधयेत्॥
दडधारधृत दडमकयोर्मध्यवर्तिनम्।
अपनीय ततो मुञ्चेद् द्वावकौ युद्धलालसौ॥[4]

---

१ मानसो० ४।५।८५६ ५७। २ वही ४ ५।८५७ ५८।
३ हरितागरागका केचि केचित्पीतागरागिण।

त्रिबिन्दु बिन्दुमाल च त्रिशूल मडलाकृति।

पीतलोहितपट्टैश्च शोभिताश्चावलम्बने॥ वही ४।५।८५९ ८६३।
४ वही ४।५।८६५ ८६९।

इस प्रकार आठों प्रकार के अकों को उनके विरोधी अकों के साथ समान अस्त्र शस्त्र अथवा दण्ड देकर राजा दोनों को परस्पर युद्ध करने की आज्ञा देता था।

इन दोनों अकों के पारस्परिक युद्ध का बडा ही विकराल एव भयानक वर्णन हुआ है। दोनों ही अक परस्पर लडते लडते क्रुद्ध होकर एक दूसरे को नोचते, खोचते, मारते, भगाते तथा शस्त्र प्रहार करते थे। किसी के सभी अग रुधिर से सन जाते थे, किसी की अँतडियाँ निकल आती थीं, किसी के अग कट कट कर गिर जाते थे। अन्त मे युद्ध बन्द करने के लिए राजा उन दोनो के मध्य एक दड लगवा देता था।[1]

इस प्रकार से राजा दोनो अकों की ओर से निष्पक्ष होकर दोनो में युद्ध करवाता था। जो अपने विरोधी अक को मार डालता था उसे तो ईश्वरप्रदत्त विजय प्राप्त होती थी। दोनो अको मे जो अपनी की हुई किसी विशेष प्रतिज्ञा का पालन करता था उसे राजा स्वय अत्यधिक वस्त्र, काचन, भूषण, ग्राम, अश्व, निष्क तथा वृत्ति का दान कर उसे प्रसन्न कर उसे विजयी होने की घोषणा करता था।[2] युद्ध मे मृत्यु को प्राप्त हुए अक के परिवार के रक्षणार्थ तथा उसकी क्रिया के लिए बहुत सा सोना दया के रूप मे दान करता था। इस प्रकार वह दिन का शेष समय व्यतीत करता था—

मृताना बन्धुरक्षार्थं परलोकक्रियाकृते।
कृपादान प्रदातव्य काञ्चन भूरि भूभुजा।
एवमुक्तविनोदेन दिनशेष समाप्य च॥[3]

यह प्रकरण पूर्णरूप से सोमेश्वर के राज्य मे दिये जानेवाले निष्पक्ष न्याय की ओर सकेत करता है। उनके राज्य मे जो भी वैमनस्य की बात व्यक्तियो के बीच उत्पन्न होती थी वे व्यक्ति तुरन्त ही राजा के समीप अपनी-अपनी शिकायत लेकर जाते थे। राजा उन्हें सुनता था और निष्पक्ष होकर उन्हे परस्पर युद्ध करने का आदेश देता। राज्य मे किसी को अपने आप परस्पर हत्या करने का अधिकार न था। उन दोनो का निर्णय स्वय सम्पूर्ण सभा के समक्ष हो जाता

१ मुच मुचेति जल्पन्तौ खोचखोचेतिभाषिणौ।
स्खलद्गतियुतौ वीरौ क्षिपन्तौ पुरत सह॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ लम्बमानान्त्रमालिकौ।
क्षुरिकाया विभिन्नाया पतिताया करादपि॥
विच्छिन्नशस्त्रबाहौ च चरणे परिखण्डिने।
निवारणाथ युद्धस्य दड मध्ये निवेशयेत्। मानसो० ४।५।८७१ ७७३।

२ वही ४।५।८७४-८७६। ३ वही ४।५।८७६, ८७७।

था। इससे राजा के ऊपर भी किसी प्रकार का लाछन नही लगता था और वे दोनो भी परस्पर युद्ध कर अपना निर्णय स्वय कर लेते थे। इस अक युद्ध द्वारा किसी भी बात में बहुत से व्यक्तियो को फसने, गवाही देने अथवा दड मिलने का प्रश्न नही उठता था। युद्धका विषय केवल दो अको तक ही सीमित रहता था। सीमित सख्या मे युद्ध कताओ को अक सज्ञा से अभिहित किया जाता था। इस प्रकार का प्रसग अन्य किसी भी स्थान में नहीं प्राप्त हाता। यह सोमेश्वर कालीन राज्य की ही विशेषता थी।

मल्लविनोद

अक विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने मल्ल विनोद का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि मल्लो के युद्ध द्वारा भी राजा का बडा मनोरञ्जन होता था। सोमेश्वर ने इस प्रकरण में मल्लो के प्रकार, उनके भोजन, उनको दी जाने वाली दाव पेच तथा चालों की शिक्षा तथा उनके पारस्परिक युद्धादि के विषयो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सर्वप्रथम उन्होंने ज्येष्ठिक, अन्तर्ज्येष्ठिक तथा गोवल इन तीन प्रकार के मल्लों का उल्लेख किया है।[१] ज्येष्ठिक उत्तम प्रकार का मल्ल होता था, क्योंकि उसमें अधिक मात्रा में शारीरिक बल तथा गुण होते थे। अन्तर्ज्येष्ठिक मल्ल में इन गुणों की न्यूनता होती थी इस कारण यह मध्यम प्रकार का मल्ल होता था।[२] गोवल में सभी गुणो एव शक्ति की अधिक न्यूनता होने के कारण यह कनिष्ठ प्रकार का मल्ल होता था—

ततोऽपि हीयमानश्चेदतैरेव गुणैस्तथा।
गोवलो नाम मल्लोऽसौ नियुद्धे वेगवान्वर ॥[3]

ये सभी मल्ल शारीरिक शक्ति के अनुसार ही युद्ध करते थे। इसी कारण केवल बत्तीस वर्ष की अवधि ही इनके युद्ध के लिए उपयुक्त बतलाई गई —

द्वात्रिंशतावत्सराणा पाल्यशो देशविश्रुत ॥[४]

आयु के अनुसार भी अनेक प्रकार के मल्लों का उल्लेख मानसोल्लास मे

---

१ मल्लास्तु त्रिविधा ज्ञेया उत्तमा मध्यमोऽधम ।
उत्तमो ज्येष्ठिको नाम मध्यमोऽन्तरज्येष्ठिक ।
कनिष्ठो गोवलो ज्ञेय कायप्राणगुणोत्तरान ॥ मानसो० ४।६।८७९, ८८०

२ ज्येष्ठिक कथ्यते मल्ल प्राणविद्याधिकोऽपि वा ।
अर्धेन ज्येष्ठिमल्लस्य कायप्राणगुणस्तु य ।
हीयमानो भवे मल्लो नाम्ना सोऽन्तरज्येष्ठिक ॥ वही ४।६।८८३ ८८४

३ वही ४।६।८८४ ८८५ । ४ वही ४।६।८८६ ।

हुआ है। बीस वर्ष की आयु वाला मल्ल भविष्णु, तीस वर्ष का मल्ल प्ररूढ कहलाता था —

आविंशतेर्वत्सरेभ्यो भविष्णुर्मल्ल उच्यते ।
तत ऊर्ध्वं त्रिंशदब्दात्प्ररूढ परिकीर्तित ॥[१]

भविष्णु प्रकार का मल्ल अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकार का मल्ल होता था और वह प्रारम्भ से ही वेगवान्, शक्तिशाली, सरस तथा महान्‌काय होता था।[२]

राजा इन्हीं श्रेष्ठ प्रकार के मल्लो को अपना मनोरजन करने के लिये अपने यहा रखता था और उनको पूर्णरूप से पुष्ट करने के लिये उन्हे पौष्टिक पदार्थों को खिलवाता था। इसके साथ ही साथ वह यह शर्त उनके समक्ष रखता था कि बत्तीस वर्ष की आयु के पश्चात् भी समय पडने पर उन्हे युद्ध करना पडेगा।[३] इस शर्त से विदित होता है कि सम्भवत राजा मल्लविनोद का बडा प्रेमी था और इसी कारण वह उनके स्वास्थ्य का विशेष रूप से ध्यान रखता था। इन भविष्णु तथा प्ररूढ मल्लो का अत्यन्त पौष्टिक भोजन द्वारा पुष्ट किया जाता था और उन्हे माष (उरद की दाल), मास, दही तथा दुग्ध मिश्रित पिष्ट खाने को दिया जाता था।[४] इसके अतिरिक्त उन्हें स्त्रियो के दर्शन, स्पर्श, सलाप तथा सगम से दूर रखा जाता था, जिससे वे अपनी शक्ति को नष्ट न कर सके। सभी मल्लो मे भविष्णु मल्ल का विशेष रूप से यत्नपूर्वक पालन किया जाता था और उसकी शारीरिक शक्ति की यत्नपूर्वक रक्षा की जाती थी।[५] इनकी रक्षा के लिये इन्हें एक अध्यक्ष के निरीक्षण में रखा जाता था। यह अध्यक्ष सदैव इनके साथ रहता था और एक दिन बीच मे छोडकर उनका गोवलादि मल्लो के साथ युद्ध करवाता था, जिससे वे थकित न हो। इन सभी मल्लों को अलग अलग गृहो मे रखा जाता था।[६]

इन मल्लो का अध्यक्ष इन्हे सब प्रकार के सस्थानों (दावो) तथा सब प्रकार के विज्ञानों को प्रयोग करने का नियम बतलाता था। सोमेश्वर ने अर्धाङ्कक[७] (एक मल्ल के प्रोत्तान होकर गिर पडने पर काख को उलटपुलट कर अपने पार्श्व द्वारा अन्य के कपोल को दबाना), करवल (मल्ल के प्रोत्तान

---

१ मानसो० ४।६।८८१। २ वही ४।६।८८५।

३ पूर्णासु तासु पालीषु वर्तयिष्ये नियोधनम ।
एव समादिशन्मल्लान सर्वान क्षोणिपति स्वय ॥ वही ४।६।८८७।

४ वही ४।६।८८८ ९०। ५ वही ४।६।८९० ९१।

६ वही ४।६।८९१,९२। ७ वही ४।४।८९४ ९५।

८ वही ४।६।८९७।

होकर गिर पडने पर काग्र को आगे करके सिर पह कुमासन में बैठ कर उसे पीडित करे अथवा अपने दोनों चरणों से उसे गिराने के लिये उसके उदर से उच्च स्थान पर आघात करे, यह करवल स्थान है), जठरस्थान[1] (स्वय गिर कर पैरों से अन्य मल्ल के मध्य भाग पर आघात करना) तथा पृष्ठस्थान[2] (अन्य मल्ल के पराङ्मुख होकर स्थित होने पर अथवा गिरने पर पार्श्वों द्वारा कक्ष का लघन करे) इन चार सस्थानो का वर्णन किया है। इनका उचित रूप से दृढ अभ्यास मल्ल को कराया जाता था —

सस्थानानि च चत्वारि कल्पयेयुर्दृढानि च।[3]

इन सस्थानो के प्रयोग के पश्चात् उन्हें विज्ञानो का अभ्यास कराया जाता था। सोमेश्वर ने विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी है

स्वरूपेण तथा नाम्ना विस्तरेण यथागमम्।
अर्धाङ्गस्थानकस्थेन मल्लेन स्थूलवर्ष्मणा॥
पीडनान्मुखदेशस्य विज्ञान स्यात्तदेव तु।[4]

विज्ञान अनेक प्रकार के होते है। विभिन्न अगो एव स्थितियो में विभिन्न प्रकार के विज्ञानों का प्रयोग होता है। इन्हीं को मल्लों द्वारा पेच भी कहा जाता है। सोमेश्वर ने ग्यारह प्रकार के शिरस्थानक विज्ञानो का उल्लेख किया है —

१ पादमोटन —अर्धाङ्गक स्थान मे स्थित होकर बाहर पैर फेंके।

२ बाहुमोटन[5]—शिरस्थान मे स्थित हो कर शिर को पकड कर बाहुओं को नीचे कर शरीर को दबाना।

३ बाहुसी[7]—हाथों को फैला कर पाश में बाध कर दबाना।

४ गुणाल[8]—जघाओं द्वारा भुजाओं को दबा कर शिर पर प्रहार कर कक्ष को बाहर खींचना। यह प्राणघातक विज्ञान होता है।

५ उत्तरढोकर[9]—शिर को भुजाओ द्वारा पकड कर एक दूसरे की जघा में जघा भिडा कर गिराना।

६ पार्ष्णिक[10]—शिर पर बैठ कर सक्थियुग्म को पकड कर कक्ष में दबाना।

१, वही ४।६।८९८। २ वही ४।६।८९८ ९९।
३ वही ४।६।८९३। ४ वही ४।६।९०० १।
५ मानसो० ४।६।९०१ २। ६ वही ४।६।९०२ ३।
७ वही ४।६।९०२ ३। ८ वही ४।६।९०४ ५।
९ वही ४।६।९०५ ६। १० वही ४।६।९०७।

७ पट्टिश—घुटनो के उत्तान हो जाने पर कटियन्त्र द्वारा दबाना।

८ छुडुकी[2]—बाहु की सन्धि अर्थात् हाथो को मिला कर खूब जोर से दबाना।

९ अन्तरछुडुकी[3]—बाहुओ से अर्धभाग मे स्थापित कर पूर्ववत् जोर से दबाना।

१० ढोकर[4]—मन्या को कक्ष मे दबा कर भुजाओ को एक दूसरे से मिला कर गले को हस्तप्रकोष्ठों द्वारा पाडित करना।

११ तुयाष्टि—अर्वागक स्थान मे स्थित हो कर भुजाओं से मध्य प्रदेश को ऊँचा कर पार्श्वों द्वारा कठ को तथा अपनी जघाओ द्वारा कक्ष को दबाना, यह शिरस्थानक विज्ञान है।

इसके अतिरिक्त करवल स्थान मे स्थित होकर दूसरे मल्ल के मुख को अपने उदर द्वारा दबा दे जिससे उसका सास रुक जाय। इसे पादमुद्दवड विज्ञान कहते है। इसी प्रकार निम्नलिखित अन्य विज्ञानों का उल्लेख मिलता है[7]—

मुखपट्टक—हृदय द्वारा मुख को दबाना।

मुस्तिक—दोनो हाथो से मुख को दबाना।

कुट्टान—करवल स्थान मे स्थित होकर मणिबध द्वारा दूसरे के शरीर को दबाना।

चरणपट्टिश—भुजाओं द्वारा मध्य भाग को पकड कर जघा को दबा ।

लोलपादक—जघाओं द्वारा उरुओ को दबाना।

सन्देश—बाहुओं को बाहर फैला कर दबाना।

टोकार—जानुसधियों को दबाकर कक्ष को हाथों द्वारा बाहर खींचना।

जवलशख—उरुओं द्वारा मध्य प्रदेश को दबाकर कक्ष मे पैरों को बाध कर हाथों द्वारा जघा को पकड कर दबाना।

कक्षवड—एक दूसरे के पैरों को दबाना।

सुमुखी—अगो को सकुचित कर मध्यप्रदेश में स्थापित हो कर अन्य मल्ल के सब अगों को पीडित करना।

---

१ मानसो० ४।६।९०७ ८। २ वही ४।६।९०८ ९।

३ वही ४।६।९०९ १०। ४ वही ४।६।९१० १२।

५ वही ४।६।९१२ १३।

६ मानसो० ४।६।९१५ पादमुद्दवड नाम्ना विज्ञान श्वासरोधनम।

७ वही ४।६।९१५ ३३।

दागुलि—उरुओं से मध्य प्रदेश को पीडित कर न्या को कक्ष में दबा कर कण्ठ को दबाना।

गरुडपक्ष—कर बन्धनो द्वारा मन्या को दबा कर शिर को नीचे कर उरुओं से मध्य प्रदेश को दबाना।

वेष्टन—पृष्ठ के बल मल्ल के लेटने पर पृष्ठभाग का भुजाओं के द्वारा खीचना।

अगवलन—जानुसन्धियो को जघाओं मे डाल कर मुख को नाचा कर वक्ष स्थल द्वारा उसके शरीर को दबाना।

सदुपवेटन—म या को कक्ष के अन्दर डाल कर हाथी को गरुडपक्ष की भाति फैला कर मध्य प्रदेश को दबाये।

चतुरगुलम्—अगुष्ठ को छोड कर अन्य चारों अगुलियो को दबाना।

मुद्रक—एक दूसरे की भुजाओ म भुजाओं का बाधना।

डोक्कर—हाथो पैरो तथा शिर को पैर द्वारा दबाना।

इन स्थानक तथा विज्ञाना के प्रयोग के अभ्यास के साथ ही साथ मल्लों को दाव पेचों से अपनी रक्षा करने के उपायों का जानना भी आवश्यक है। तभी वह युद्ध मे सफल हो सकते है। इसी कारण सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के बचने के उपायो का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ यदि एक मल्ल कुडिका विज्ञान का प्रयोग करे तो दूसरा उसके मुख के ऊपर जघा को डाल कर अपने को हटा ले, बाहुमोटन के विज्ञान में हाथों को मिला कर और दबाकर अपने को छुडा ले। इसी प्रकार अनेक प्रकार के उपायों एव चालो द्वारा अपने को बचाने का आदेश मल्ल को दिया है।[२]

मल्ल का अध्यक्ष इन सभी प्रकार के दाव पेचों एव चालों का ज्ञान मल्ल को करवाता था किन्तु वह इन सभी का उचित रूप से प्रयोग तभी कर सकता था जब उसमें शारीरिक बल की वृद्धि हो। इस कारण उससे अनेक प्रकार के श्रम कराये जाते थे। सोमेश्वर ने मल्ल के लिये पाच प्रकार के श्रमों को करने का आदेश दिया है। ज्येष्ठिक मल्ल को विशेष रूप से प्रात काल उठकर कोई अत्यन्त भारी वस्तु उठानी चाहिये यह भारश्रम[3] कहलाता था। इसका अभ्यास मल्ल प्रात काल ही करता था।[४] इस प्रकार की क्रिया आजकल भी अपने शरीर के वजन को बढाने के लिये पहलवान लोग पहिया लगी हुई बहुत भारी

१ मानसो० ४।६।९१५ ९३३। २ वही ४।६।९३४ ९४१।

३ वही ४।६।९४२ ९४५।

४ स च प्रभाते कर्त्तव्यो विज्ञानोपायसिद्धित ॥

मानसो० ४।६।९४३।

एव मोटी शलाका को उठाते है। इसे Weight lifting कहते है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन मल्ल कोस अथवा दो कोस तक बाहर टहलने जाता था। इसे भ्रमण श्रम कहते थे।[१] पुष्करी, तडाग अथवा नदी मे कण्ठ तक के जल मे जाकर अपने शरीर को पुष्ट करता था। यह सलिलश्रम[२] कहलाता था। सायकाल के समय अपने हाथो को जोर से एक दूसरे पर दबाकर तथा हाथो द्वारा अपनी भुजाओ को जोर से पकडता था। इसे बाहुपेल्लण[३] कहते थे। इससे उसके हाथो द्वारा किसी वस्तु को पकडने का शक्ति की वृद्धि होती थी। इसके अतिरिक्त चदन के द्वारा निर्मित अत्यन्त मजबूत, मोटे तथा चिकने स्तम्भ मे मल्ल अपने शरीर, बाहु एव वक्ष स्थल आदि को घिसकर अपने शरीर के अगो को पुष्ट करता था यह स्तम्भ श्रम कहलाता था। आजकल पहलवान स्तम्भ द्वारा अपने शरीर का घर्षण कर अपने अगो को पुष्ट करते है, उस स्तम्भ को मल्ल स्तम्भ कहते हैं।

इन श्रमों द्वारा पूर्ण रूप से हृष्ट पुष्ट हो जाने पर सभी मल्ल अपने अध्यक्ष के साथ आ कर राजा से कहते थे कि हम लोगों की अवधि पूर्ण हो गई है और हम लोगों ने श्रम करके अपने शरीर को खूब पुष्ट बना लिया है। अब आप हमे लडाइये—

विज्ञापेयु महीपाल मल्लाध्यक्षपुर सरा।
पाल्य पूर्णा इहास्माक पोषिता च निजा तनु॥[४]
जितश्रमा वय जाता नियोधय महीपते।[५]

इस प्रकार की उनकी प्रार्थना को सुन कर राजा उनके गुणो पर विचार करता था। गुणो के अनुसार सोमेश्वर ने बारह प्रकार के मल्लो का वर्णन किया है। उदाहरणाथ महान् शरीर वाला मल्ल भारी, अत्यन्त बली मल्ल प्राणी, सुशिक्षित मल्ल ऊर्जल, अपने स्थान पर स्थित रहने वाला मल्ल सस्थाननिरत तथा युद्ध में न थकने वाला मल्ल बहुयोधी कहलाता था।[६] विज्ञान के द्वारा पकडे

---

१ मानसो० ४।६।९४५ ९४६। २ वही ४।६।०४७ ९४८।
३ वही ४।६।९४८ ९४९। ४ वही ४।६।९४९ ९४२।
५ वही ४।६।९५३ ९५४।
६ महाकायस्तु यो मल्लो भारी स परिकीर्तित।
बलाढय कथ्यते प्राणी ऊज्वलश्च सुशिक्षित॥
सस्थाननिरतो ज्ञेयो य स्थाने सुस्थितासन।
श्रम न याति यो युद्धे बहुयोधी स कथ्यते॥
मानसो० ४।६।९५५ ५७।

जाने पर भी जो न बोलता है और न छोड़ता है तथा नीचे गिर पड़ता है वह सम्बद्ध, बल को सहन करने वाला बलनेसह, विज्ञान की रक्षा करने वाला रक्षणक, शीघ्रता से प्रयुक्त हुये विज्ञान को शीघ्र ही नष्ट कर देने वाला ढकण, दूसरे की क्रियाओं की त्रुटि देख कर अपना उपाय चलाने वाला दर्शन, उचक कर कण्ठ में चिपट जाने वाला लगन तथा मर्यादा की रक्षा करने वाला मल्ल नियत होता है।[1] इन सभी प्रकार के गुणों के अनुसार प्रत्येक मल्ल को सर्वप्रथम समझना राजा के लिये आवश्यक है क्योंकि समान गुणों वाले मल्लों को ही परस्पर लड़वाना चाहिये—

भेदेह्वादशभिर्युक्तान्मिथस्तेषां नियोधने ॥[2]

राजा के सामने आकर वे दोनों ही समान गुण वाले मल्ल परस्पर हाथ मिलाते थे। यह प्रथा आजकल भी है। दो मल्ल जब युद्ध करते हैं तो सबसे पहले भूमि की मिट्टी हाथ में लगाकर ताल ठोंक कर हाथ मिलाकर युद्ध प्रारम्भ करते हैं। वे दोनों मल्ल राजा के समक्ष अपने अपने जोशपूर्ण वचन एक दूसरे के प्रति बोलते थे। कोई कहता था कि मैं अपनी शक्ति से दो मल्लों को गिरा दूंगा, कोई ज्येष्ठिक मल्ल कहता था मैं तीन मल्लों को मार डालूंगा, कोई कहता था मैं एक ही विज्ञान के प्रयोग द्वारा इसे गिरा दूंगा। इस प्रकार की उनके द्वारा कही हुई प्रतिज्ञाओं को राजा ध्यानपूर्वक सुनता था।[6] और करस्फालन द्वारा युद्ध का निश्चित कर मल्ल चले जाते थे। उस दिन रात्रि में उनके शरीर पर खूब तैल मर्दन किया जाता था।

राजा उसी समय अपने गृहाध्यक्ष को बुलाता था जिसे महत्तर कहते थे। राजा उसे अखाड़े के बनाने का आदेश देता था क्योंकि इसी में मल्लों का युद्ध कराया जाता था। यह अखाड़ा सोलह स्तम्भों से पूर्ण, पश्चिम भाग की ओर

१ मानसो० ४।६।९५७–९६२। २ वही ४।६।९५५।

३ नियुद्धं योजयेद्राजा करास्फालनपूर्वकम ।। वही ४।६।९६३।

४ घटिकाभ्यन्तरे देव मोटयेत्प्रतिरोधिनम ।
मल्लद्वयं मोटयामि जल्पन्येवं तथापर ।।
मल्लत्रयं भिनद्मीति वदेद्योऽपि ज्यष्ठक ।
विज्ञानेनाहमेकेन पातयामीति भाषते ।।
मानसो० ४।६।९६४–६५।

५ प्रतिज्ञा ते च जल्पन्ति शृणुयात्ता नराधिप ।।
वही ४।५।९६३।

६ वही ४।६।९६६।

विस्तृत एव चौकोर तथा एक ऊँची डेढ हाथ की वेदिका से युक्त होता था। उस वेदिका की आग्नेय दिशा मे श्रीकृष्ण भगवान् का (श्रीकृष्ण का मल्ल रूप अत्यन्त पूजनीय है) मण्डप बनता था। वेदिका के अगले भाग को ओर दस हाथ विस्तृत तथा तीस हाथ परीणाह के दो गड्ढे बनते थे। उन्हें ग्राम की मुलायम मिट्टी से पूरा जाता था। उस मिट्टी को किंचित् जल से गीला किया जाता था और फिर उसे कुदाल द्वारा खोदा जाता था। तब उस मिट्टी के ककर्णों को दूर करने के लिये उसे चलनी द्वारा छाना जाता था। तब मिट्टी चिकनी, कुछ गीली तथा शुद्ध बनाई जाती थी। इस प्रकार के अखाडे का निर्माण महत्तर करता था और प्रातःकाल वह राजा को अखाडे के तैयार हो जाने की सूचना देता था।[1]

राजा तब मल्लाध्यक्ष को बुलाता था[2] और मल्लो को अखाडे मे लाने का आदेश देकर[3] स्वय भोजन से निवृत्त हो कर सायकाल के समय शृगार कर अपने पुत्रों, मित्रों तथा अत पुर की स्त्रियों समेत अखाडे मे आकर वेदिका पर बैठता था और सब के बैठ जाने का निरीक्षण करता था।[4]

अखाडे में आने के पूर्व राजा मल्लों के शृगार करने के लिए शृगार की सामग्री, तूर्य, तथा चढने के लिये हस्तिनियों को भेजता था। वे मल्ल अपने सभी अगों में चदन का लेप कर, आभूषणों से सुसज्जित होकर, थोडा दधि भात खाकर, अक्षत तथा दूब हाथ मे लेकर हथिनियों पर चढ़ कर अखाडे में आते थे। अखाडे मे उचित रूप से सब के बैठ जाने पर जो पूर्व में करस्फालन कर चुके थे ऐसे उन मल्लों को बुलाकर उन्हें मुक्त कर परस्पर लडने की आज्ञा देता था।[5]

दोनों मल्लों के युद्ध का सोमेश्वर ने बडा स्वाभाविक वर्णन किया है। वे दोनों मल्ल कच्छ को कसकर, जूडा बाधकर, परस्पर एक दूसरे की ओर हाथ फैलाकर युद्ध प्रारम्भ करते थे—

चल्लण (वल्लभ) परिधास्य च दृढकच्छा विवेष्ट्य च ।
जूडक वधयित्वा तु भुजावास्फाल्य सम्मुखौ ॥
नियुध्येतामुभौ मल्लौ रोधने प्रतिरोधने ॥[6]

---

१ मानसो० ४।६।९६७–९७३।

२ "तत कौतुकसयुक्तो मल्लाध्यक्ष समादिशेत्। वही ४।६।९७४।

३ "आवाह्याखिलान् मल्लान् नियुद्धायेति भूपति"। वही ४।६।९७५।

४ वही ४।६।९८०–९८३। ५ वही ४।६।९८३–९८४।

६ वही ४।६।९८४,९८५।

तत्पश्चात् वे दोनो मल्ल प्रकोष्ठ धारण, मणिवध को छुडाकर पातन तथा अव-पातन, बाहुसघट्टन, पादघट्टन, पीडन, लगन, भ्रमण, फूत्कार आदि अनेक स्थान, विज्ञान एव वचनोपायों द्वारा लडते थे[1] और लडते लडते वे स्वेद तथा कीचड से पूर्ण हो जाते थे तथा व्याकुल हो कर फूत्कार छोडने लगते थे—

मुचन्त श्वासफूत्कार दृश्यन्ते ते समाकुला ।[2]

जब दोनो ही मल्ल समान रूप से व्याकुल हुये दिखाई पडते थे तो दोनों ही समान समझे जाते थे[3] किन्तु जो थकित नहीं होता था अथवा अपने प्रविरोधी का कोई अग तोड डालता था तब उसकी विशेष रूप से विजय समझी जाती थी—

अश्रमस्य जय दृष्यान्मोटनाच्च विशेषत ।
एव नियोध्य तान् सवान् सजयान् भूरिकाचनै ॥[4]

मल्ल-युद्ध मे परस्पर एक दूसरे के अगों को तोड डालना यह दक्षिण में होने वाले मल्ल युद्ध की विशेषता है। सोमेश्वर दक्षिण का ही राजा था अत यह पक्ति उसके राज्य म होने वाले मल्ल युद्ध को प्रदर्शित करती है। भारतवर्ष के उत्तरी प्रदेशो मे केवल एक मल्ल को चित्त लिटा देने पर ही दूसरे मल्ल की विजय समझी जाती है। दक्षिण में मल्ल युद्ध अत्यन्त भीषण होता था।

मल्लों के विजय की घोषणा कर देने पर राजा उन्हें वस्त्र आभरणादि पारितोषिक के रूप में देता था और उन्हें विसर्जित करता था[5]। तब अपने सेवकों से घिरा हुआ राजा मल्लों द्वारा प्रदर्शित किए गये युद्ध की आलोचना करता था और तब अपने राज मदिर में प्रवेश करता था।

भारतवर्ष में मल्ल युद्ध के प्रसग प्राचीन साहित्य में प्राप्त होते हैं। महा भारत तथा पुराणो में भी इस युद्ध का उल्लेख हुआ है। महाभारत में भीम अत्यन्त योधा मल्ल माने गये हैं। मत्स्य राजा की सभा में भीम का जीमूत नामक मल्ल के साथ युद्ध हुआ था।[6] युद्ध के समय मल्ल कच्छा अर्थात् लगोट बाँधते थे। कच्छा बाघने का प्रसग सोमेश्वर ने भी दिया है। इसके साथ ही साथ उन्होंने जूडा बाधने का भी विधान बताया है। इसके अतिरिक्त कृतदाव, प्रतिकृत, सन्निपात, अवधूत, प्रमाथ, प्रच्यावन, उन्मथन, वराहोद्धृत-

---

१ मानसो० ४।६।९८६ ९८९ । २ वही ४।६।९९१ ।
३ द्वावप्येवविधौ दृष्ट्वा समीकुर्यान्नृपेश्वर । वही ४।६।९९१ ।
४ वही ४।६।९९२ । ५ वही ४।६।९९३ ।
६ महा० विराट पव अध्याय १२ ।

निस्वन, तलाव्य, वज्र, प्रहृति, शवघट्टन, प्रकर्षण, अभ्याकर्षण तथा विकर्षण आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख महाभारत मे हुआ है। यह सभी मल्ल युद्ध मे प्रयोग किए जाने वाले विज्ञान है। इनमे से शवघट्टन (जघाओ से रगेदना), प्रहृति (फैली अगुलियों द्वारा मारना), तथा तलाव्य (अगुष्ठ तथा तर्जनी को छोडकर तीन अङ्गुल्यियो द्वारा प्रहार करना), आदि का ही सोमेश्वर ने क्रमश चरणपट्टिश,[1] (पैरों मे पैर मिला कर मारना), मुस्तिक[2] (फैले हाथो द्वारा मुह पर मारना), तथा चतुरगुल[3] (एक, दो, तीन, अथवा चार अङ्गुलियों से मारना), नाम दिया है। इसके साथ ही साथ सोमेश्वर ने भी मल्ल युद्ध मे सन्निपात, अवधूत आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है[4]।

श्रीमद्भागवत पुराण मे भी परिभ्रामण, विक्षेप, परिरम्भ, अवपातन, उत्सर्पण, उन्नयन, स्थापन तथा चालन आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख हुआ है—

> परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनै ।
> उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्य प्रत्यरुन्धताम् ॥
> उत्थापनैरुन्ननैश्चालनै स्थापनैरपि ।
> परस्पर जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मन ॥[5]

इन सभी दाव-पेचों के द्वारा श्रीकृष्ण ने कस की मल्ल शाला में चाणूर नामक मल्ल को पराजित किया था। इन दाव पेचों का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे हुआ है[6]। इनमें से सोमेश्वर ने भी परिभ्रामण,[7] अन्योन्यप्रतिरोध,[8] उन्नयन,[9] उत्सर्पण, अपसर्पण[10] आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। श्रीमद्भागवत पुराण मे कश की मल्लशाला का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। इनमे सभी मल्ल आकर पूजा करते थे। मल्लशाला मल्ल युद्ध के समय मालाओं तथा

---

१ मानसो० ४।६।९१८। २ वही ४।६।९१६।

३ एकद्वित्र्यगुली मुक्त्वा चतुरगुलम ॥ वही ४।६।९३०,९३१।

४ सन्निपातावधूतैश्च ॥ वही ४।६।९८९।

५ श्रीमद्भा० पु० १०।४४।४,५। ६ श्रीमद्भा० १०।४४।८-५०।

७ मानसो० ४।६।९८८। ८ रोधने प्रतिरोधने ॥ वही ४।६।९८५।

९ बाहुभ्यामु नयन् ॥ वही ४।६।९१२।

१० आश्लेषै पीडनैश्चैव विश्लेषैरपसर्पणै ॥ वही ४।६।९८७।

पताकाओं द्वारा सजाई जाती थी। नगर के सभी व्यक्ति आकर मल्लों का युद्ध देखते थे' और उस मल्ल शाला में मल्ल क्रीडा महोत्सव होता था—

व्युष्टाया निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्य समुत्थिते।
कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम्॥
आनचु पुरुषा रंगतूर्यभेर्यश्च जघ्निरे।
मचाश्चालकृता स्रग्भि पताकाचेलतोरण॥[१]

पुराणों में श्रीकृष्ण का मल्ल रूप अत्यन्त पूजनीय माना गया है[१]। इसी कारण सोमेश्वर ने भी मल्लशाला में श्रीकृष्ण का मन्दिर बनवाने का आदेश दिया है। वर्तमान काल मे श्रीकृष्ण के स्थान पर हनुमान् जी की मूर्ति स्थापित की जाती है। वात्स्यायन के समय मे भी मल्लों के युद्ध को देख कर नागरक अपना मनोरजन करता था। सभी नागरक मल्ल युद्ध देखने के प्रेमी थे।[३]

बौद्ध साहित्य में बाहुयुद्ध तथा मुष्टियुद्ध नाम की कलाओं का उल्लेख हुआ है। सम्भव 'बाहुजुद्धम्' तथा 'मुट्ठिजुद्धम्' आदि शब्द मल्ल युद्ध (कुश्ती) के लिये ही प्रयुक्त हुए हैं[४]। ललितविस्तर में भी लिपि, मुद्रा, सखना, धनुर्वेद आदि कलाओं के साथ मल्ल युद्ध का उलेख हुआ है। शुक्र ने भी 'सध्या घातामृष्टिभेदै मल्लयुद्धम्'[६] कह कर अपने समय मे होने वाले मल्ल युद्ध की ओर सकेत किया है। वर्तमान काल में भी इस युद्ध की प्रथा है जिसे Wrestling कहते हैं और गामा आदि मल्ल प्रसिद्ध भी हैं।

समवाय सुत्त में भी दो प्राणियों के द्वारा किये जाने वाले विजय पराजय वाले युद्ध को 'सजीवम्' नाम दिया है[७]। वात्स्यायन ने भी मन द्वारा निर्दिष्ट समाह्वय को सजीव द्यूत के अन्तर्गत माना है। दशकुमारचरित में भी इसी प्रकार का प्रसग प्राप्त होता है।[९] मनु ने प्राणियों के युद्ध को समाह्वय नाम दिया है।[१०]

---

१ श्रीमद्भा० १०।४२।३४-३८। २ वही १०।४२।३२-३३।
३ मल्लयोयुद्धे—कामसूत्र सू० ५७ पृ० ८४।
४ ए० वेंकटसूब्बिया 'दिकलाज' सूची १ ललितविस्तार पृ० १७८।
५ वही सूची २ ललितविस्तार पृ० १७८।
६ वही सूची ८ शुक्रनीतिसार।
७ वही सूची १।
८ वात्स्यायन कामसूत्र पृ० ३१।
९ दशकुमारचरित १ ४२।२। १० मनु० ९।२२३।

कुक्कुट विनोद

मल्ल विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने ताम्रचूडविनोद का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। मुर्गे द्वारा प्राचीन काल मे राजा लोग विशेष रूप से अपना मनोरजन करते थे। सर्वप्रथम इस प्रकरण में सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के मुर्गों के शरीर के लक्षणो का वर्णन कर उनकी अनेक प्रकार की जातियो का उल्लेख किया है। श्वेत पाद, पाडु वर्ण नखों वाला, श्वेत आखों वाला, शख ध्वनि के सदृश नाद करने वाला, तीक्ष्ण अग्रभाग से युक्त, कम्बु ग्रन्थि के सदृश शीर्ष वाला मुर्गा शख जाति का होता है।[१] पाडु वर्ण की छाया से युक्त चरण वाला, दीर्घ तथा कृश अगुलियो वाला मुर्गा कुक्कुट जाति का होता है। उन्नत, वृत्ताकार तथा श्वेत चरणों वाला, विशाल वक्षस्थल वाला युद्ध करने मे शूरवीर मुर्गा अशु जाति का होता है।[३] सूक्ष्म सार वाला, लाल पैरों वाला, श्वेत आखों वाला, दीर्घ शब्द करने वाला मुर्गा नार जाति का होता है।[४] पीले चरणो वाला, श्वेत अथवा कृष्ण बिन्दुओं से युक्त, कास्य वर्ण वाला कृष्ण नखो से युक्त तथा रक्त नेत्रों वाला काला अथवा चितकबरा मुर्गा कुक्कुट जाति का होता है।[५] श्यामल शक्ति वाला किंचित् पाडु वर्ण की रेखाओ से युक्त मुर्गा अतेग जाति का होता है।[६] कृष्ण वर्ण का, वक्र तुड से युक्त, युद्ध मे कुशल, दीर्घ अगो वाला जोर का शब्द करने वाला मुर्गा श्रोणि होता है।[७] काले पैरों वाला कृष्ण दीर्घ पक्षो वाला, युद्ध मे अपने सिर को बचाने वाला मुर्गा सर्प जाति का तथा हरित छाया से युक्त पैरों वाला, श्वेत आखों वाला, बर्तुल आकार वाला मुर्गा कूर्म जाति का का होता है।[८]

इन अनेक प्रकार के मुर्गों की जातियो के वर्णन के पश्चात् मुर्गे के अग प्रत्यगो पर उगने वाले पिच्छों के नामों का सोमेश्वर ने उल्लेख किया है। कन्धरा पर उगने वाले पिच्छ केसर, त्रिकस्थान पर उगने वाले पिच्छ अन्तरक, पुच्छ में सिक्थ, भुज तथा शाखा आदि मे उत्पन्न हुए पिच्छ महिला पिच्छ तथा उन्हीं पिच्छों के ऊर्ध्व भाग में उगने पर वे पुपिच्छ तथा बाहर के स्थान में उगे हुए पिच्छ योषित्पिच्छ कहलाते है।[९] इसके अतिरिक्त निर्मास पादतलो वाला, ह्रस्व चरण वाला, वृत्तआर तथा चिकनी एव गोल जघाओ वाला,

---

१ मानसोल्लास ४।७।९९९–१००१।

२ वही ४।७।१००१–१००३।

३ वही ४।७।१००३ १००४।

४ वही ४।७।१००४ १००५।

५ वही ४।७।१००५–१००७।

६ वही ४।७।१००७,१००८।

७ वही ४।७।१००७–१००९।

८ वही ४।७।१०१०,१०११।

९ वही ४।७।१०११–१४।

किञ्चित् वक्रपादों वाला, विशाल क्रोड देश से युक्त, दीर्घ तथा मोटी गर्दन वाला, स्थूल शिर तथा छोटी आखों वाला, सुन्दर शरीर वाला, घने तथा दार्घ केसर वाला, उन्नत स्कन्ध, कर्कश पिच्छ, कूर्म के सदृश विस्तृत पृष्ठ प्रदेश तथा लघु महिला पिच्छ से युक्त मुर्गा श्रेष्ठ बतलाया गया है।[1] ऐसे सुन्दर एव श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त मुर्गे को राजा को अपने यहा रखकर उचित प्रकार से पोषण करवाना चाहिए।[2]

सोमेश्वर देव ने मुर्ग का पालन पोषण उसके जानने वालों द्वारा करवाने का आदेश दिया है और साथ ही साथ उसके भक्षण की वस्तुओं एव पोषण के प्रकार पर भी प्रकाश डाला है। घृत तथा दधि से पूर्ण रसोदन को आवले के बराबर के ग्रास बनाकर अगुष्ठ तथा तर्जनी द्वारा उसे खिलावे। उसको शीतल जल पिलावे, मुख पर लवण युक्त मृत्तिका का लेप करे। उसको आलस्यरहित करने के लिए चक्रमण करावे, रात्रि के शयन के लिए वास यष्टि बनाकर रात्रि को उसे वही पर सुलावे। मार्जारादि से उसकी रक्षा करे। इस प्रकार से राजा को कुक्कुट के युद्ध को जानने वाले व्यक्तियों द्वारा उसका पोषण करवाना चाहिए।[3]

सोमेश्वर ने मुर्गों का युद्ध करवाने के लिए आश्विन से फाल्गुन मास तक का समय बतलाया है क्योकि ग्रीष्म ऋतु में उनके पख फट जाते हैं और आषाढ में उत्पन्न होते है। अश्विन मास तक कोमल बने रहते हैं उसके पश्चात् दृढता को प्राप्त करते हैं। अत उसी समय के बाद से फाल्गुन तक जब तक उनके पख न गिरे तब तक युद्ध करवाना चाहिए—

योधयेत्फाल्गुन यावत्तत्र ऊर्ध्वं न योधयेत्।[5]

कुक्कुट युद्ध के विषय में सर्वप्रथम इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कौन सा मुर्गा विजयी होगा। इसे समझने के लिए सोमेश्वर ने मुर्गों की अनेक प्रकार की चेष्टाओं का वर्णन किया है। जो अपने पैरों के मध्य के स्थान को देखे तथा दक्षिण चरण से अपने पृष्ठ भाग को छुए, अपने दक्षिण चरण के अग्र भाग से कलगी का स्पर्श करे अथवा नख के अग्र भाग से नासिका अथवा मस्तक को छुए, दोनो पखों को समान रूप से फके, दक्षिण चरण से चले वह विजयी होता है।[6] इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने एक प्रकार के रति मडल में

---

१ मानसो० ४।७।१०१४–२०।
२ वही ४।७।१०२१।
३ वही ४।७।१०२१ २९।
४ वही ४।७।१०९४,९५।
५ वही ४।७।१०९६।
६ वही ४।७।१०६७-७०।

बने हुए कोष्ठो से सम्बन्धित चेष्टाओ द्वारा भी कुकुट को विजयी जानने का लक्षण बतलाया है।[१]

शनिवार की रात्रि को भूमि को धोकर, लीपकर ग्रन्थियो से नियत सूत्र के प्रमाण द्वारा एकादश मुष्टि का चौकोर मडल बनावे। उसके उत्तर से दक्षिण की ओर तथा पूव पश्चिम की ओर दो दो रेखायें खीचे। इस प्रकार से नव कोष्ठों को बनाकर विभिन्न कोष्ठो में विभिन्न देवताओं की स्थिति करावे। मध्य के कोष्ठ मे ब्रह्मा की, प्राच्य दिशा के कोष्ठ मे इन्द्र की, आग्नेयक कोष्ठ में वह्नि की दक्षिण के कोष्ठ में यम की, वायव्य दिशा के कोष्ठ मे वायु की, उत्तर दिशा मे मैख की, ऐशान कोण में ईश की स्थापना करावे।[२] प्राची दिशा के बाहर सूर्य के सदृश मडलाकार तथा अर्ध चद्र के सदृश मडल बनाकर दक्षिण दिशा की ओर क्षुरिका से शक्र का कोष्ठ बनावे।[३] इसी प्रकार से और अनेक प्रकार के कोष्ठो का निर्माण कर अन्य देवताओं की स्थापना करने का आदेश दिया गया है।[४] वरुण के कोष्ठ के पश्चिम की ओर एक त्रिकोण बनाकर उसमे कुकुट के दो पैर बनावे।[५] यह रति मडल अत्यन्त पवित्रस्थान में बनता था और उन्हीं कोष्ठों के समीप आचार्य लोग बैठकर इन सभी कोष्ठो से सम्बन्धित देवताओ की स्तुति के लिए मत्र पढ़ते थे।[६]

इसके पश्चात् शुभ चेष्टाओं को प्रकट करने वाले कुक्कुट को युद्ध के लिए चुनना चाहिए। सोमेश्वर ने दो प्रकार से कुक्कुट का युद्ध करने का आदेश दिया है

(१) रति मडल मे कुक्कुटों को स्थापित करके।

(२) खलक में स्थापित कर के।

(१) रतिमडल द्वारा—कुक्कुटों को पूर्ण रूप से पुष्ट करने के पश्चात् राजा को चाहिए कि वह अपने प्रतिरोधी के मुर्गे के साथ कुक्कुट का युद्ध करावे। राजा को अपना प्रत्यथा अपनी प्राणवल्लभा को बना कर उसके कुक्कुट के साथ युद्ध कराना चाहिए। शनिवार की रात्रि को पूर्वाक्त विधि से रतिमडल बनाकर उसके विभिन्न कोष्ठों मे विभिन्न देवताओं की स्थापना करवा कर वरुण के कोष्ठ के समीप बने हुए त्रिकोण के अन्त मे राजा बैठता था। तब पूर्व में जो एक विजय प्राप्त कर चुका है ऐसे पीले वर्ण के मुर्गे को श्वेत मुर्गे के पक्ष तथा कृष्ण मुर्गे को कृष्ण मुर्गे के पक्ष में छोडा जाता था। इसके बाद

---

१ मानसो० ४।७।२०७३। २ वही ४।७।१०३५ १०३७।
३ वही ४।७।१०३८। ४ वही ४।७।१०३९ ४१।
५ वही ४।७।१०४२। ६ वही ४।७।१०४५।

मोक्षक गरुड जाति के मुर्गे को छोडता था और आचार्य लोग उस समय 'ॐ गरुडाना सुवचा पक्षपक्षित्वनतर प्रवल अमायाहि स्वाहा' इस मत्र का उच्चारण करते थे।[1] छोडा हुआ मुर्गा वहा पर बिखरे हुए फूलों में जिस वर्ण का फूल चोच से सर्वप्रथम ग्रहण करता था उसी वर्ण का मुर्गा उसका विपक्षी बनाकर छोडा जाता था—

विमुक्तस्ताम्रचूडस्तु यद्वर्णं कुसुम स्पृशेत् ।
चच्वा तद्वर्गमाशसेत्कुक्कुट प्रतियोधिनम् ॥[2]

इस प्रकार से मत्रों के उच्चारण के पश्चात् छोडे गए कुक्कुट परस्पर खूब लडते थे और अन्त में जो विजयी होता था उसके शिखर पर दिया के काजल का नजर न लगने के कारण तिलक कर दिया जाता था—

दीपोत्थकज्जलेनेषा शिखरे तिलक न्यसेत्।[3]

इस युद्ध के लिए पाच, सात अथवा नौ कुक्कुट तैयार किए जाते थे और युद्ध के दिन प्रात काल उन्हे थोडा ही भोजन दिया जाता था और पट्टा द्वारा चन्दन कुकुम आदि लगा कर माला तथा आभूषण पहना कर नर्तक सजाये जाते थे और वादकों को पुष्पमालाओं तथा विलेपन द्वारा सजाया जाता था। कुक्कुट के युद्ध के प्रेमी अन्य जनों तथा कुक्कुट के युद्ध के विज्ञान को जानने वाले व्यक्तियों को भी सुन्दर वेशभूषा द्वारा सजाया जाता था। सेवकों को विशेष रूप से तैयार किया जाता था। एक कुक्कुट के जीत जाने पर और ध्वजा को उसके स्वामी के ग्रहण कर लेने पर तूर्य नाद होता था जिससे सभी को प्रसन्नता होती थी।[4]

एक दूसरे प्रकार से भी कुक्कुट का युद्ध होता था जो तीस हाथ परीणाह की गोल वेदिका से युक्त खलक में होता था। यह खलक बहुत से स्तम्भों से युक्त मुलायम भूमवाला, पासु, पाषाण तथा कीचड से शून्य, समतल, दृढ, पूर्व द्वार से युक्त, पुष्प की मडपिका से युक्त होता था।[5] इसमें राजा के पक्ष वाले व्यक्ति पहले प्रवेश करते थे।[6] उत्तर तथा दक्षिण की ओर वस्त्रों से ढककर पक्ति में कुक्कुट बैठा दिए जाते थे। तब राजा अपनी अत पुर की स्त्रियों तथा प्राणवल्लभाओं के साथ आकर खलक की वेदिका पर बैठता था। युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व मुर्गा के पैरों में पैनी की हुई छुरिया

१ मानसोल्लास ४।७।१०५० । २ वही ४।७।१०५२ ।
३ वही ४ ७।१०९४ । ४ वही ४।७।१०९८-९९ ।
५ वही ४।७।११०१ २ । ६ वही ४।७।११०३ ६ ।
७ वही ४।७।११०६ । ८ वही ४।७।११०७ ९ ।

बाध दी जाती था। जिसके पक्ष मे स्थित हुआ कुक्कुट जब जब अपने अन्य प्रतिरोधी कुक्कुट पर प्रहार करता था तब तब उसके पक्ष वाले व्यक्ति शब्द करते थे। एक कुक्कुट के नेत्रो के बन्द कर लेने पर अथवा खोल देने पर अथवा चोच के टूट जाने पर, श्रात हो जाने पर अथवा उसके शरीर से रक्त निकलने पर उसकी पराजय मानकर युद्ध से उसे हटा लिया जाता था। किंतु एक कुक्कुट के मर जाने पर अथवा युद्ध से भाग जाने पर दूसरे पक्ष की विजय दैवयोग से हो जाती थी।[1] विजयी व्यक्ति पराजित हुए व्यक्ति के कन्धे पर चढता था और उस हारे हुए व्यक्ति को अनेक प्रकार के वचनो द्वारा लज्जित किया जाता था। यह दक्षिणी भारत की प्रथा विदित होती है जहा विजयी दल के लोग पराजित दल की पीठ पर बैठते है। गुजरात में अब भी मिया मिया जी नाम का एक खेल खेला जाता है जो पीठ पर चढ कर खेला जाता है। इसमे पीठ पर बैठना दण्ड के रूप मे नहीं होता। पराजित हुए व्यक्तियो का ध्वजा बलपूर्वक हटा दी जाती थी तथा अनेक रागो एव त्रिपदी द्वारा तथा अनेक गालियो द्वारा उसको गाकर लज्जित किया जाता था।[2] तत्पश्चात् तूर्यनाद द्वारा जय की घोषणा हो जाने पर नर्तक नृत्य करते थे और विजयी कुक्कुट को हस्तिनियो पर बैठा कर नगर की गलियों में घुमाकर राजमन्दिर मे लाया जाता था।[3] इस प्रकार से सलग्न होकर राजा कुक्कुटो का युद्ध करवाता था—

दिवसत्रितयन्त्वेव बिना पानीयसरयया।
योधयेत्कुक्कुटान्श्रेष्ठान् जयावधि महीपति ॥[4]

ये मुर्गे लगातार पाच सोमवारों तक लडाये जाते थे। छठे सोमवार को विजयी मुर्गा वस्त्रों, काचन पट्टों आदि से सजाया जाता था[5]।

कुक्कुट युद्ध प्राचीन काल से ही भारतवासियो का प्रिय मनोरजन रहा है। मनु ने एक स्थल पर ऐसा कहा है—

प्राणिभि क्रियते यस्तु स विज्ञेय समाह्वय ॥[6]

अर्थात् प्राणियों (मेढा मुर्गा) से जो हार जीत होती है उसे समाह्वय कहते हैं। अत मनु ने इस कुक्कुट युद्ध को एक प्रकार का जुआ ही माना है और उन्होंने राजा के लिए ऐसा आदेश दिया है कि जो भी व्यक्ति उसके राज्य

---

१ मानसो० ४।७।११३०।
२ वही ४।७।११३१ ३२।
३ वही ४।७।११३३ ३४।
४ वही ४।७।११३५।
५ वही ४।७।११४७-४८।
६ मनु० ९।२२३।

में समाह्वय करे उसे वह दंड दे। इससे विदित होता है कि मनु के समय में भी व्यक्ति कभी इस कुक्कुट युद्ध द्वारा छिप कर अपना मनोरञ्जन करते थे। याज्ञवल्क्य ने भी 'प्राणिद्यूते समाह्वये'[1] कहकर मुर्गा आदि के युद्ध को ही समाह्वय माना है, किन्तु इनके समय में यह प्रथा कुछ अधिक प्रचलित हो गई थी और समाज में व्यक्ति अधिकांशतः इस समाह्वय द्वारा विनोद करते थे। इसका उचित रूप से प्रबन्ध करने के लिए राजा की ओर से एक कर्मचारी नियुक्त होता था, क्योंकि याज्ञवल्क्य ने चोरों को पहिचानने के लिए जुआरियों का एक प्रधान व्यक्ति बनाने का आदेश दिया है जो समाह्वय में दोनों पक्षों का ध्यान रखता था—

दूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात्।
एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये॥[3]

वात्स्यायन के समय तक कुक्कुट युद्ध अधिक मात्रा में समाज में प्रचलित हो गया था। अपना मध्याह्न का भोजन कर चुकने के पश्चात् नागरिक कुक्कुट द्वारा अपना मनोरञ्जन करता था—

भोजनान्तरं शुकसारिकाप्रलापनव्यापाराः।
कुक्कुट युद्धानि विदूषकायत्ता
व्यापारा, दिवाशय्या च॥[4]

इसके अतिरिक्त कामसूत्र में अन्य स्थलों पर भी कुक्कुट युद्ध के प्रसंग प्राप्त होते हैं।[5] इससे विदित होता है कि उस समय में यह नागरकों का अत्यन्त प्रिय मनोरंजन था। बौद्धकाल में भी यह प्रथा समाज में बहुत प्रचलित थी क्योंकि भगवान् बुद्ध ने बौद्ध भिक्षु के लिए कुक्कुट युद्ध का निषेध बतलाया है—

यथा वा पने के भोन्तो समण ब्राह्मण
हत्थि युद्धं अस्स युद्धं
कुक्कुट युद्धं
इति एवरूपा विसूक दस्सना पटिविरतो समणो गोतुमोति।[6]

यहाँ तक कि कुक्कुट का ग्रहण करना भी श्रमण के लिए वर्जित था—

---

१ वही ९।२२४। २ याज्ञ० द्यूतसमाह्वयप्रकरण ३।२०७।
३ वही। ४ कामसूत्र सू० २।
५ वही सू० ३३ तथा सू० ४० ४१।
६ दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त सु० १३, पृ० ७।

कुक्कुट सूकर पटिग्गहण पटिविरतो सयणो गोतमो।[1]

इसके अतिरिक्त कुक्कुटादि के लक्षणो की विद्या से भी श्रमण विरत रहता था—

सेय्यथीद, मणि लक्खण, वत्थ
लक्खण कुमार लक्खण
गो लक्खण, अज लक्खण
कुक्कुट लक्खण
मिग लक्खण इति वा इति एवरूपाय
तिरच्छानविज्जाय पटिविरतो समणो गोतमो ति ॥[2]

समवायसुत्त मे कुक्कुट लक्षण का प्रसग प्राप्त होता है।[3] इसके अतिरिक्त बृहत्सहिता मे भी इसका प्रसग मिलता है।[4] अशोक भी जब से बौद्ध धर्म का अनुयायी हुआ था तब से उसने प्राणि समाह्वय का अपने राज्य मे बिल्कुल निषेध कर दिया था, किन्तु फिर भी यह किसी न किसी रूप मे समाज मे प्रचलित ही रहा। मुगल काल मे भी व्यक्ति अपना अधिक समय मुर्गाबाजी तथा बटेर बाजी आदि में ही व्यतीत करते थे। आज भी वह प्रथा समाज में अपने जीर्ण शीर्ण शरीर को लिए हुए जीवित है।

लावक युद्ध

कुक्कुट विनोद के पश्चात् सोमेश्वर देव ने लावक पक्षी के युद्ध द्वारा प्राप्त हुए विनोद का वर्णन किया है। सर्वप्रथम उन्होंने छ प्रकार की लावकों की जातियों का वर्णन किया है—

कच्छेल खारडीकश्च गोरजो विगरस्थता।
पासुलारवे (लोवे) रसरचैता षट्स्युर्लावकजातय ॥[5]

इन सभी लावकों के लक्षणों को भी स्पष्ट रूप से उल्लेख हुआ है। कच्छ मण्डल से सम्भूत लावक कच्छेल, उनके वश के गृह में उत्पन्न खारडीक, विन्ध्य तथा सह्य पर्वत पर उत्पन्न शोणमस्तक वाले लावक गोरज होते हैं। यह युद्ध कर्म के लिए म यम जाति के होते है—

विन्ध्ये सह्ये च सम्भूता लावका शोणमस्तका।
गोरजा इति विख्याता युद्धकर्मणि मध्यमा ॥[6]

---

१ दीघनिकाय, ब्र० सु० मु० १० पृ० ६।
२ वही सु० २२, पृ० ११
३ समवाय सुत्त २।२।२६।
४ बृहत्सहिता अ० ६३।
५ मानसो० ४।८।११७१।
६ वही ४।८।११७३।

ये विशेष प्रकार की लावक जातियाँ हैं। अब इन्हीं के मिश्रण से उत्पन्न मिश्र जाति वाले लावकों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है। खारडीक से गेरज के मिलने पर उत्पन्न हुआ लावक विगर होता है। यह मिश्र जाति का होता है। कच्छ देश को छोडकर अन्य देशों में उत्पन्न हुए अशोणमस्तक वाले लावक पामुल, खारडीक तथा पामुल के मिश्रण से उत्पन्न लावक लाव होते हैं।[1] इन सभी प्रकार के लावकों में खारडीक तथा विगर उत्तम प्रकार के वेरस तथा पामुल मध्यम प्रकार के लावक माने गए हैं। पामुल लाव का युद्ध उत्तम होता है, गेरज लावक युद्ध कर्म के लिए असफल माना गया है—

युद्ध कर्मसु गेरज कातर परिकीर्तित ।[2]

सोमेश्वर ने प्रसूता लाविकों को दो प्रकार का बतलाया है १ अग्रजा, जो आश्विन से फाल्गुन मास तक बच्चे उत्पन्न करती थी, २ पाश्चात्य, जब वह मधूक पुष्प आदि के पतन के समय प्रसूता होती थी पाश्चात्य कहलाती था—

आश्विनात्फाल्गुन यावत् प्रसूयन्ते तु लावका ॥
तिलपुष्पोद्गमे जाता अग्रजा परिकीर्तिता ।
मधूकपुष्पपाते तु पाश्चात्या इति विश्रुता ॥[4]

गेरजी तथा खारडी लावी विशाल शरीर एव शुभ लक्षणोंवाली होती है इसी कारण उन्हें पकडवा कर राजा पञ्जर में रखवा कर उनका उचित रीति से पालन पोषण करवाता था। उन्हे खाने के लिए गोधूम चूर्ण, मत्स्य का मांस, प्रियगु, तडुल आदि दिन में तीन बार दिया जाता था।[5] इसके साथ ही साथ राजा नर खारडिक लावक का भी प्रजनन के लिए उचित रूप से पालन करवाता था।[6] तब दोनो के सम्भोग की इच्छा प्रकट करने पर उन्हें मिलाया जाता था।[7] लावी आदि के अण्डे दे चुकने पर उनकी रक्षा की जाती थी तब उसमें से बच्चे होते थे—

त्रिसप्तवासराण्येव रक्षन्त्यण्डान्यहर्निशम् ।
ततश्चाण्डानि निर्भेद्य नि सरन्ति च पिल्लका ॥[8]

वे बच्चे अलग अलग पिंजडों में रखे जाते थे और उनका उचित रीति से पालन

---

१ मानसो० ४।८।११७४ ७६ । २ वही ४।८।११७७ ।
३, वही ४।८।११७९ । ४ वही ४।८।११८० ।
५ वही ४।८।११८१ ८६ । ६ वही ४।८।११८८ ।
७ वही ४।८।११८८ । ८ वही ४।८।११९७ ।

पोषण होता था। एक वर्ष के पश्चात् वे युद्ध करने के योग्य हो जाते थे।[1] कुछ दिन पश्चात् जब वे परस्पर दर्प तथा क्रोध से पूर्ण होकर पारस्परिक वैमनस्य को नही सहन कर सकते थे 'तब उन्हे युद्ध करवाने की शिक्षा के लिए परिश्रम करने का आदेश सोमेश्वर ने दिया है—

अन्योन्य न सहन्ते ते दर्पक्रोधसमन्विता ।
तत श्रम कारयेत लावकान्युद्धशिद्धये ॥[2]

इसके पश्चात् उनको उचित रूप से युद्ध के लिए शिक्षा दी जाती थी। लावी को पिंजडे मे रखकर लावक को उसे दिखा कर लावक को पिंजडे से निकाल कर बाहर उसीके समीप रखा जाता था और उन्हें युद्ध की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षक लावक को वस्त्र से ढँक कर थोडी दूर पर रखता था और रज्जु को धारण किए हुए लावका को दिखाता था और धीरे धीरे लाविका को लावक के पीछे पाछे लावक को पकडने के लिए चलाता था और उसके पङ्खों को दृढ करने के लिए उसे ऊपर फेंकता था।[3] लावक का उचित रीति से पालन कर पोषक उसके शूर वीर तथा युद्ध के योग्य बन जाने पर प्रतिरोधी से लडवाता था।

सोमेश्वर ने आँवले के सदृश मस्तक, स्थूल स्कन्ध अपाडु भ्रू, ह्रस्वलोचन, टेढी चोंच, दीर्घ पैरों की अगुलियों वाले महाकाय लावक को युद्ध कर्म मे कुशल बताया है।[5] इसी प्रकार के श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त लावकों का युद्ध करवाना चाहिए। युद्ध करवाने के लिए नाडी के आधार पर सोमेश्वर ने समय भी निर्धारित किया है। इस नाडी का प्रमाण सोमेश्वर ने इस प्रकार बताया है—

मात्राशतेन विंशेन पूर्यन्ते तोयधारया।
तावत्पात्र प्रकुर्वीत सा नाडी कथिता बुधै ॥[6]

इसी नाडी के समय के अनुसार ही लावकों का युद्ध करवाना चाहिए। इस युद्ध को राजा ही करवाता था। लावकों के युद्ध करवाने के विषय में सोमेश्वर ने सात अथवा नौ नाडी तक का समय निर्धारित किया है। राजा को उत्तम, मध्यम तथा हीन तीनों प्रकार के लावको द्वारा युद्ध करवाने का आदेश दिया है—

---

१ मानसो० ४।८।१२०२। २ वही ४।८।१२०३।
३ वही ४।८।१२०४-१२०८। ४ वही ४।८।१२०९।
५ वही ४।८।१२१०-१२११। ६ वही ४।८।१२१४।

एव च योधयेत्सप्त नव चैव यथाक्रमम्।
हीन मध्य तथा ज्येष्ठ लावक धरणीपति ॥[1]

सर्वप्रथम लावकों को एक नाडी तक युद्ध करवाया जाता था। तत्पश्चात् उन्हे एक नाडी तक विश्राम करवाया जाता था। विश्राम कर लेने के पश्चात् उन्हे पाच नाडी तक बराबर युद्ध करवाया जाता था।[2]

इसके बाद सोमेश्वर ने युद्ध का वर्णन किया है। यह लावकों का युद्ध एक प्रकार के अखाडे मे होता था जो तीन हाथ विस्तृत वृत्ताकार, ऊँचा तथा खलक की आकृति का होता था। यह वस्त्र से आच्छादित रहता था—

वितस्त्युत्सेधसयुक्त हस्तत्रितयविस्तृतम्।
किलिज कारयेन्नीलवस्त्रेण परिगुम्फितम्॥
वृत्ताकार तथादाय भूतले खलकाकृति।
अक्खाड नाम तज्ज्ञेय लावो तत्र नु योधयेत्॥[3]

इनमे युद्ध करवाने के लिए कुछ नियमों का भी ध्यान रखा जाता था। राजा उस अखाडे में समान जाति वाले लावकों में परस्पर युद्ध करवाता था। खारडी का खारडी के साथ, विगर का विगर के साथ, वेरस का वेरस के साथ तथा कच्छल का कच्छल जाति के लावक के साथ युद्ध होता था[4] पहले अग्रेयोधि का अग्रयोधि से तब अन्तर्ज्यष्टि का अन्तर्ज्येष्टि के साथ युद्ध होता था।[5] जो अपने लावक को अभिमानपूर्वक छोडता था और यदि वह नाडी की अवधि तक युद्ध करता रहता था और अन्त में विजय प्राप्त करता था तो उसकी विशेष प्रकार की विजय समझी जाती थी। यदि लावक नौ नाडी की अवधि की सख्या को लडते लडते समाप्त कर देता था तो भी उसकी विजय समझी जाती थी—

नवनाडीकृता सख्या पूरयेद्यदि लावक।
तस्यैव विजयो ज्ञेयो येनावस्तर उच्छ्रित ॥[7]

किन्तु नव नाडी की अवधि को समाप्त कर लेने के पश्चात् भी यदि लावक

---

१ वही ४।८।१२१६। २ मानसो० ४।८।१२१५।
३ वही ४।८।१२१७,१८।
४ खारडी खारडीकेन विगर विगरेण च।
वेरस वेरसेनैव कच्छल कचछलेन च॥ वही ४।८।१२१९।
५ वही ४।८।१२२०। ६ वही ४।८।१२२१ २२।
७ वही ४।८।१२२३।

युद्ध से भाग जाता था तो विजय दूसरे लावक की ही समझी जाती थी।[1] यह युद्ध किसी पण (शर्त) द्वारा करवाया जाता था। समानता होने पर वह पण किसी को नही दिया जाता था।[2] इस प्रकार के नियमों का पालन युद्ध के समय किया जाता था और विजय इन्हीं नियमों के आधार पर मानी जाती थी।

युद्ध के समय लावक क्रुद्ध होकर अत्यन्त भीषण युद्ध करते थे। वे परस्पर चोचों द्वारा एक दूसरे के मस्तक पर प्रहार करते थे। कभी कृकाटिका को पकड कर, उसके पङ्खो को उठाकर बार बार उस पर मुक्ति पाने के लिए प्रहार करते थे। कभी ग्रीवा तथा पुच्छ को उठाकर चोंच द्वारा एक दूसरे के स्कन्धो को भेदते थे और कभी पङ्खों द्वारा प्रहार करते थे।[3] इस प्रकार युद्ध के समय कोई रक्त से पूर्ण सिर वाला, कोई भिन्न ग्रीवावाला, कोई पङ्ख शून्य, कोई रक्त से आलिप्त शरीर वाला, कोई उखडे नख वाला, कोई भग्न चोच वाला, कोई रक्त प्रवाह से युक्त, कोई भग्न स्कन्ध वाला हो जाता था। कोई आगे की ओर भागता था, कोई पीछे को ओर जाता था। इस प्रकार वे स्रस्ताग, स्रस्तपक्ष लावक एक दूसरे को पराजित करने का प्रयत्न करते थे—

स्रस्तागा स्रस्तपक्षाश्च स्रस्तग्रीवा विलोचना।
स्रस्तजघोरुपादाश्च स्रस्तसर्वांगसन्धय ॥[4]

वे परस्पर धैर्य धारण कर शरीर का ध्यान न रखकर मन से युद्ध करते थे। युद्ध की प्रथम अवस्था को पार कर वे परस्पर एक दूसरे को मारने का प्रयत्न करते थे और गर्जन तथा नाद करते थे।[5] युद्ध के अन्त में शूरवीर लावक को विजयी समझा जाता था और भाग जाने वाला लावक पराजित समझा जाता था। इस प्रकार राजा का लावक युद्ध द्वारा मनोरजन होता था। इस प्रकरण मे सोमेश्वर ने राजा से सम्बन्धित किसी प्रकार का वणन नहीं किया है। अत यह सम्भवत समाज के सब व्यक्तियों के सब व्यक्तियों के मनोरञ्जन का साधन था।

लावकों का युद्ध अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत मे प्रचलित है। सदैव से ही मनुष्य का पक्षियों से दो प्रकार का सम्बन्ध रहा है—१ खाने का (बध) तथा २ मनोरञ्जन प्राप्त करने का (बन्ध)।

---

१ मानसो० ४।८।१२२४। २ वही ४।८।१२२५।
३, वही ४।८।१२२७-२८। ४ वही ४।८।१२३१।
५ वही ४।८।१२३२। ६ वही ४।८।१२३३-३४।

भक्षार्थं क्रीडनार्थं वा नरा वाञ्छन्ति पक्षिणम् ।
तृतीयो नास्ति संयोगो बधबन्धादृते क्षम ॥[1]

इसके अनुसार पक्षियों के साथ तीसरा कोई भी सम्बन्ध नहीं, किन्तु भारतीय साहित्य का अवलोकन करने पर एक और प्रकार का पक्षियों के साथ सम्बन्ध समझ में आता है, वह है प्रेम का सम्बन्ध।[2]

उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि पक्षियों के पारस्परिक युद्ध भारत में सदा से ही होते रहे हैं। लावक युद्ध का वात्स्यायन के समय में भी अधिक प्रचार था—

भोजनान्तर लावक युद्धानि।
दिवाशय्या च ॥[3]

अर्थात् नागरिक अपना दिन का भोजन समाप्त कर लावक आदि पक्षियों के युद्ध द्वारा मनोरञ्जन करता था। इसके अतिरिक्त कामसूत्र में अन्य स्थलों पर भी लावक युद्ध के प्रसंग प्राप्त होते हैं।[4] वात्स्यायन ने लावक युद्ध को ६४ कलाओं के अन्तर्गत माना है।[5]

बाण ने भी कादम्बरी में ऐसा प्रसंग दिया है कि अन्तःपुर से बाहर निकलने पर राजकुल के प्रथम प्रकोष्ठ में बहुत से पक्षी पले रहते थे, जिनमें कुक्कुट, कुरक, कपिंजल तथा लावकादि थे। इन लावकादि पक्षियों के युद्ध द्वारा नागरिकों का मनोरंजन होता था।[6] सोमेश्वर के समय में भी लावकों का पालन करने के लिए अनेक व्यक्ति रहते थे जो पिता की भांति उनका पालन करते थे और उनको शिक्षा दे चुकने पर युद्ध कराकर जनता का मनोविनोद करते थे।

मेषयुद्ध विनोद

दो मेषों में पण की स्थापना कर जो युद्ध कराया जाता था उससे भी राजा का मनोरंजन होता था। सोमेश्वर ने चोलिका, जटिला तथा शोणवणा इन तीन प्रकार के मेषों का उल्लेख किया है।[7] जिस मेष के भ्रू, पाद, उदर, पुच्छ, दोनों कर्ण तथा मुख कृष्ण वर्ण के हों वह चोलिका मेष होता है, किन्तु जिस मेष के ये उपर्युक्त अंग श्वेत वर्ण के हों और सम्पूर्ण शरीर कृष्ण वर्ण का हो वह मेष उत्साह चोलिका कहलाता है। इस प्रकार चोलिका मेष दो प्रकार का होता है—

---

१ महा० शांति० १३९।६०।

२ हाल सतसई १४, बृहत्संहिता ५६ ६६, कुमार ५।२६, ऋतु० ३।

३ कामसूत्र सू० २१।   ४ वही ४०।

५ कामसूत्र, साधारणाधिकरण तृतीय।

६ कादम्बरी, पृ० १७३।   ७ मानसोल्लास ५।९।१२३९,४०।

अवौ पादाश्च जठर पुच्छमास्य श्रुतिद्वयम् ।
इति यस्य भवेत्कृष्ण चोलिक स उदाहृत ॥
एतैरेव भवेच्छ्वेतै कृष्णश्चोत्साहचोलिक ।[1]

जिस मेष के स्तन तथा कठ के रोम स्थूल तथा दीर्घ होते है वह मृदुल और गुम्फित तथा श्लक्ष्ण रोम वाला मेष जटिल होता है, उसके सम्पूर्ण शरीर का वर्ण चाहे किसी प्रकार का भी हो—

रोमाणि स्थूलदीर्घाणि तेषा कठे स्तनौ तथा ।
येनकेनापि वर्णेन यस्योर्णा सर्वगात्रजा ॥
मृदुला गुम्फिता श्लक्ष्णा जटिल स परिकीर्तित ।[2]

किन्तु जो मेष लाल वर्ण का हो तथा जिसके सपूर्ण शरीर मे ह्रस्व तथा मोटे रोम हो वह शोण मेष कहलाता है।[3] जो मेष शूर तथा अक्षत तुण्ड वाला, आवर्तों से पूर्ण प्रोथ देश वाला, शत पशो के समान आकृति वाला तथा मुकुलावर्त पुच्छ से युक्त होता है, वह मेष शुभ लक्षणो वाला होता है तथा जो उत्पन्न होते समय विपरीत मुख वाला होता है उस मेष को कोई पराजित नहीं कर सकता ।[4] इसके अतिरिक्त काले मस्तक वाला मेष भी निश्चय रूप से शूरवीर होता है—

कृष्णमस्तकमेषोऽपि शूर स्यादिति निश्चितम् ।[5]

अत इन्हीं शुभ लक्षणों वाले मेषों को युद्ध कराने के लिए पुष्ट करना चाहिए । सोमेश्वर ने जो 'परामुखो य उत्पन्नो युद्धे न स पराजित '[6] लिखा है इस प्रसग से यह पूर्ण रूपेण प्रकट हो जाता है कि मेष युद्ध के प्रेमी व्यक्ति उसे उत्पन्न होने के समय से ही शुभ लक्षणों वाला देखकर ग्रहण कर उसको दाल, चना, तेल से युक्त कृसर तथा दूवा द्वारा पालते थे। उसके शक्तिशाली बनाने के लिए सातवे दिन अर्थात् सप्ताह मे एक बार सैन्धव लवण युक्त घृत दिया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रात तथा सायकाल उनको शनै शनै घुमाने से भी उनके शरीर की पुष्टि होती थी।[7] युद्ध के लिए उन्हें तैयार करने के लिए उनके सींघो को लोहे की पत्तियों द्वारा जडवा दिया जाता था और उनमे मुद्रिका पहनाकर दोनों को बाध दिया जाता था तथा उन्हे अधेरे मे रखकर लशुन खिलाया जाता था।[8] इस प्रकार से मेषो को युद्ध करने के लिए तैयार किया जाता था ।

---

१ वही ४।६।१२४०,४१ ।
२ वही ४।९।१२४२,४३ ।
३ वही ४।९।१२४३,४४ ।
४ वही ४।९।१२४५ ४६ ।
५ वही ४।९।१२४७ ।
६ वही ४।९।१२४८ ।
७ वही ४।९।१२४७–४९ ।
८ वही ४।९।१२५२ ।

मेषों के युद्ध के योग्य बन जाने पर रविवार के दिन उनका युद्ध कराया जाता था। उस दिन उन्हे भोजन थोडा कराया जाता था।[1] उन्हें उन्मत्त करने के लिए मदिरा तथा क्रोध दिलाने के लिए भूना हुआ व्योष उनके मुख में डाल दिया जाता था, जिससे वे वीरता पूर्वक युद्ध करते थे।[2] इस प्रकार युद्ध के लिए तैयार हो जाने पर दोनो परस्पर घोर घट्टन द्वारा युद्ध करते थे। कभी दोनों दूर भाग जाते थे कभी फिर पास आकर परस्पर अपना सिर भिडाने लगते थे। किन्तु जब वे एक दूसरे से कुछ क्षणों के लिए दूर हो जाते थे तो पुन उन्हें युद्ध करवाने के लिए उनके समक्ष कृकाटी के मास के टुकडों को डाला जाता था।[3] उन दोनों में जो बलवान् होता था वह सैकडों बार दूसरे पर प्रहार करके गिरा देता था। दुर्बल मेष दूर हट जाता था। जो मेष युद्ध के समय दूसरे से दूर भाग जाता था उसे युद्ध में पुन न लगाने का आदेश दिया गया है—

पलायितस्तु यो मेषो न स शक्य प्रयोजितुम्।[4]

उन दोनों मेषो को ध्वजा का पण (शर्त) लगाकर युद्ध करवाया जाता था। जिसका मेष जीत जाता था वही व्यक्ति ध्वजा को पारितोषिक रूप मे प्राप्त कर लेता था। इस प्रकार से दो सुशिक्षित मेषों को पुष्ट कर उन्हें युद्ध के लिए तैयार कर उनके युद्ध द्वारा मनोरजन कर अपना समय व्यतीत किया जाता था।

सोमेश्वर ने इस प्रकरण मे राजा से सम्बन्धित किसी बात का भी उल्लेख नहीं किया है इससे विदित होता है कि यह सम्भवत जनता का प्रिय मनोरजन था जो रविवार के दिन किया जाता था और जिसे देखने के लिए खूब भीड जमा होती होगी, क्योकि सम्भवत उस दिन सबकी छुट्टी रहती होगी। सोमेश्वर ने इस प्रकरण में अनेक प्रकार के मेषों का प्रसग दिया है जिससे विदित होता है कि उनके समय में व्यक्तियो को मेष विषयक अधिक ज्ञान था। वे अत्यन्त रुचिपूर्वक अपने मेषों का लालन पालन कर उन्हें अधिकाधिक मात्रा में पुष्ट करने का प्रयत्न करते थे और उनके क्रोधपूर्ण युद्ध को देखकर समाज के सभी व्यक्ति अत्यधिक प्रसन्न होते थे। इसी कारण उन्हें अधिक मात्रा मे क्रोध दिलाने के लिए मेषो को लडानेवाले व्यक्ति उन्हें मदिरा पान तथा व्योष भक्षण करवाते थे।

मेष युद्ध का इतना सुचारु रूप से विस्तृत वर्णन अन्यत्र नही प्राप्त होता,

---

१ मानसो० ४।१९।१२५२। २ वही ४।१९।१२५३।

३ वही ४।१९।१२५४,५५।

४ पणपूर्वं नियोध्यास्ते ध्वजहेतोर्नियोधनम्॥ वही ४।१९।१२५७

किन्तु फिर भी प्राप्त प्रसगों से विदित होता है कि यह प्राचीनकाल से ही भारतीयो के मनोरजन का साधन रहा हे। मनुस्मृति के प्रसगो से विदित होता है कि यह मेष युद्ध उस समय भी समाज मे प्रचलित था, किन्तु मनु ने समाह्वय (दो प्राणियों का पारस्परिक युद्ध) को प्रकट चौर्य माना है और राजा को इसे अपने राज्य मे बिल्कुल दूर करने का आदेश दिया है—

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्द्वेनसमाह्वयौ ।
तयोर्नित्य प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥[1]

मनु ने यहाँ तक कि समाह्वय करने वाले व्यक्तियो को मरवा डालने का आदेश दिया है—

द्यूत समाह्वय चैव य कुर्यात्कारयेत् वा ।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्राश्च द्विजलिगिन ।[2]

याज्ञवल्क्य ने इस प्रथा को समाज मे इतना निषिद्ध नही बतलाया है। उन्होने प्राणि समाह्वय में भी द्यूत की विधि को ही अपनाने का आदेश दिया है।[3] इससे विदित होता है कि इनके युद्धों को देखने के लिए भी राजा की ओर से कर्मचारी नियुक्त रहते थे और इस समाह्वय मे जीतने पर भी राजा पॉच प्रतिशत अथवा दशमाश ग्रहण करता था, क्योकि द्यूत मे तो इसी प्रकार का उल्लेख हुआ है।[4]

वात्स्यायन के कामसूत्र मे मेष युद्ध सम्बन्धी अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते है।[5] उस समय का नागरिक मेष युद्ध मे बडा ही मनोरजन प्राप्त करता था—

पूर्वाह्ण एव स्वलकृतास्तुरगाधिरूढा वेश्याभि
मेषयुद्धद्यूतै प्रेक्षाभिरनुकूलैश्चचेष्टितै
प्रत्याव्रजेयु ॥[6]

अशोक के समय में भी यह मेष युद्ध की प्रथा समाज मे अधिकाशत प्रचलित थी, किन्तु बौद्ध हो जाने के पश्चात् उसने इस प्रथा का अपने राज्य मे बिल्कुल ही निषेध कर दिया था फिर भी यह मनोरजन किसी अश तक भारतीयों मे विद्यमान रहा। यद्यपि सदा से मेष युद्ध को देखने के लिए नागरिकों की भीड एकत्र हो जाती थी किन्तु फिर भी भारत में यह प्रथा कभी भी रोम देश की भाति अपनी उन्मत्त दशा पर न पहुँची।

१ मनु० ९।२२२। २ वही ९।२२४।
३ याज्ञ० ३।२०७। ४ वही ३।२०३ २०४।
५ कामसूत्र सू० २१,३३ तथा सू० ४०,४१।
६ कामसूत्र सू० ४०।

महिष विनोद

मानसोल्लास मे वर्णित महिष विनोद इस बात को प्रकट करता है कि दो महिषों के युद्ध द्वारा भी राजा अपना मनोरञ्जन करता था क्योंकि इस प्रकरण मे जो 'युद्धवेदिन'[1] शब्द आया है वह इसी प्रकार के युद्ध की ही पुष्टि करता है। सोमेश्वर ने विदर्भ, करहाट, जालन्धर, सौराष्ट्र और मध्य देश में उत्पन्न हुए भैसो को युद्ध का जाननेवाला बतलाया है।[2]

तत्पश्चात् सोमेश्वर विनोद करने के लिए युद्ध मे लगानेवाले महिषों का वर्णन करते है। उनका कथन है कि स्थूल कधेवाले, महान् शरीरवाले, विशाल वक्षस्थल से युक्त, सुन्दर पैरवाले, लाख की भांति नेत्र वाले, समान उदर वाले, श्वेत तथा काले, श्वेत पुच्छ से युक्त महिषों को युद्ध कर्म मे लगाना चाहिए।[3] इन महिषों को अपने यहाँ रखकर राजा को चाहिए कि वह उन्हे दुग्धमिश्रित प्रियगु के पिष्ट (पिसान) से उनका पोषण करे। उरद (माष) के चूर्ण के सहित दही को उन्हे बलवान बनाने के लिए दे। इन महिषो को छोटेपन से ही राजा अपने राजप्रासाद मे रखवाता था और एक वर्ष के हो जाने पर रज्जु डालकर उनकी नासिका बेध दे

> ऊर्ध्व सवत्सरात्तेषा नासावेध समाचरेत्।
> नासाया निक्षिपेद्रज्जु दृढा धारणहेतवे ॥[4]

इसके अतिरिक्त उन्हे बिना दले चने, तेल युक्त कृशर तथा लवण मिश्रित तक्र खिलाना चाहिए। इसके साथ ही साथ जल में ठीक से स्नान करवा कर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिए क्योंकि भैसो को जलावगाहन अत्यन्त प्रिय होता है।[5]

जब ये महिष पाच वर्ष के ऊपर हो जाते थे तथा दर्पवान्, बलवान्, महान् शरीर से युक्त होते थे तब ये युद्ध के योग्य हो जाते थे। अत तभी राजा इनका युद्ध करवाता था। युद्ध करने के पूर्व ये महिषियों के झुण्ड के मध्य क्रीडा कर खूब अपने अगो को धूल से लपेट लेते थे। तब इनके गले मे नीम की पत्तियों की माला पहनाई जाती थी—

> निम्बपत्रकृता माला धारयन्तावुर स्थले[6]।

और उनके नासिका के बन्धनों को खोल दिया जाता था। उसी समय दो ऐसे व्यक्ति नियुक्त रहते थे जो तालिया बजाते थे ओर सिंहनाद करते थे। यह सुनकर वे दो महिष एक दूसरे के शरीर की ओर देखते थे और दो बलवान्

---

१ मानसोल्लास ४।१०।१२६१। २ वही ४।१०।११६१ ६२।
३ वही ४।१०।१२६१-६४। ४ वही ४।१०।१२६५,६६।
५ वही ४।१०।१२६८। ६ वही ४।१०।१२७०।

हाथियों की भाति लडने लगते थे। दोनो ही क्रुद्ध होकर अपने मस्तको को मिलाकर एक दूसरे को सागो के अग्र भाग से मारते थे, खूब गर्जन करते थे, भागते थे, भूमि पर घुटनों के बल बैठ जाते थे, क्रोध से रक्त नेत्र करके खूब जोर से श्वास लेते हुए, मुख से फेन निकालते हुए परस्पर युद्ध करते थे। अन्त में जो बलवान महिष होता था वह दूसरे महिष को परास्त कर देता था और अपने शृगो द्वारा प्रहार करता हुआ उसके स्कन्ध प्रदेश को घायल कर देता था। इस प्रकार जो अपनी सीगों द्वारा दूसरे महिष को ढकेलता हुआ दौडाता था वही महिष विजयी समझा जाता था।[1] इस प्रकार राजा दो महिषो को परस्पर लडाकर आनन्द का अनुभव करता था।

महिष युद्ध के बहुत ही थोडे प्रसग भारतीय साहित्य मे प्राप्त होते है। यद्यपि पुराणो मे महिषो को मेध्य पशु मानकर उनका शिकार करने का प्रसग प्राप्त होता है[2] किन्तु उनके युद्धो पर प्रकाश नही डाला गया। बुद्ध काल मे सम्भवत यह प्रथा प्रचलित थी इसी कारण बौद्ध भिक्षु को इस महिष युद्ध द्वारा मनोरञ्जन प्राप्त करने का निषेध हुआ है—

हत्थि युद्धे महिस युद्ध उसम युद्ध इति वा, इति एव रूपा विसूक दस्सना पटिविरतो समणो गोतमा ॥[3]

महिष के लक्षणों को भी बौद्ध भिक्षु को जानने की चेष्टा न करनी चाहिए

अस्स लक्खण महिस लक्खण उसम लक्खण मिग लक्खण इति वा, इति पटिविरतो समणो गोतमो ॥[4]

इन महिष के लक्षणों को बुद्ध ने तिरश्चान विद्या[5] (तिरच्छान विज्जाय) माना है।

सोमेश्वर के समय मे महिष युद्ध समाज मे अधिक मात्रा में प्रचलित था और सम्पूर्ण जनता इस युद्ध द्वारा मनोविनोद करती थी।

पारावत विनोद

सोमेश्वरकालीन समाज मे कबूतर भी सामाजिक मनोरञ्जन का साधन था और राजा का भी पारावत विनोद द्वारा मनोरजन होता था। इस प्रकरण मे सोमेश्वर महाराज ने सर्वप्रथम सिन्धु देश मे उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीन जातियों वाले कबूतरों का उल्लेख किया है। शूद्र जाति के कबूतर तो कहीं भी प्राप्त हो सकते है :—

---

१ वही ४।१०।१२७५,७६। २ श्रीमद० पु० ४।२६।१०।

३ दीघनिकाय ब्रह्मजाल सुत्त सू० १३, पृ० ७।

४ वही सू० २२ पृ० ११। ५ वही।

सिन्धु देशे विशेषेण ब्राह्मणा क्षत्रिया विश ।
पारावता प्रजायन्ते शूद्रास्युर्यत्र कुत्रचित् ।[1]

सिन्धु प्रदेश को ही विशेष रूपसे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातिवाले कबूतरों का जन्म स्थान बताया है। इसके साथ ही साथ उन्होंने उनके लक्षणों का भी वर्णन किया है। ब्राह्मण जातिवाले कबूतर का लक्षण सोमेश्वर ने निम्न प्रकार से बतलाया है—

सशिला पादपिच्छाढ्याश्चिरकणनशालिन ।
ज्ञेयास्ते ब्राह्मणा जात्या पवित्रा शुभदर्शना ॥[2]

ब्राह्मण जातिवाले कबूतर का दर्शन करना सोमेश्वर ने अत्यन्त शुभ माना है। शिखाहीन पादपिच्छों से युक्त कबूतर क्षत्रिय जाति का होता है तथा अल्पकण से युक्त, शिखाहीन तथा पादपिच्छों से हीन कबूतर वैश्य जाति का होता है।[3] इन तीनों जातियो मे श्वेत, कृष्ण, रक्त, पीत चितकबरे आदि अनेक वर्णों के कबूतर होते है। रक्त नेत्र तथा पादों से युक्त, हरितवर्ण के, नीलकठ वाले तथा काले पख वाले कबूतर शूद्र वर्ण के होते है। इन कबूतरों को सोमेश्वर ने अत्यन्त अधम प्रकार का माना है। यदि ये मदिर, प्रासाद, पर्वत के अग्र भाग आदि प्रदेशों मे रहते है तो भी इनका पालन एव पोषण करना वर्जित है—

देवालये तथा सौधे शैलाग्रे च वसन्ति ते।
न पोष्या ध्वनिहीनत्वाच्छूद्रा पारावताधमा ॥[7]

शूद्र जाति के कबूतर भी अनेक प्रकार के होते है किन्तु ये सभी मनुष्य मात्र के लिए कष्टदायी है, इमी कारण किसी भी गृहस्थ को इनका स्पर्श तथा पोषण नहीं करना चाहिए—

न स्पृश्या नैव सम्पोष्या गृहस्तेन कदाचन।[8]

यदि यह अन्त्यज जाति का कबूतर किसी प्रकार से गृह में प्रवेश भी कर जावे तो गृहस्थ को शास्त्रोक्त विधि से प्रायश्चित्त करना चाहिए। इनका ससर्ग बडा ही अनिष्टप्रद होता है।

---

१ मानसोल्लास ४।११।१२७७,७८।
२ वही ४।११।११७८,७९।
३ वही ४।११।१२७९,८०।
४ वही ४।११।१२८०,८१।
५ वही ४।११।१२८१,८२।
६ वही ४।११ १२८२ ८३।
७ वही ४।११।१२८३,८४।
८ वही ४।११।१२८५।

सोमेश्वर ने राजा को केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जाति के कबूतरो को ही अपने प्रासाद मे रखने का आदेश दिया है—

ब्राह्मणा क्षत्रियाश्चेमे प्रशस्ता राजमन्दिरे ।[1]

राजा को चाहिए कि इन तीनो वर्णा के कबूतरों को अपने राजमदिर मे रखकर यव, गेहूँ तथा चावल आदि द्वारा उनका पोषण करे । उन्हे सुवर्ण, चादी अथवा देवदारु की लकडी के बने हुए पिजडे मे रखे । राजा एक पिजडे मे वर्ण तथा रूप के अनुसार कबूतर के जोडे को एक साथ रखे क्योंकि कबूतर की स्त्रिया बडी ही पतिव्रता होती है और वे किसी अन्य कबूतर को अपने पिजडे मे नही घुसने देती ।[3] कबूतर भी अपनी प्रिया को देखकर कठ से मधुर नाद करके प्रफुल्लित होकर अपनी पूछ को प्रसारित कर नाचता है और अपनी प्रेयसी को बार बार चुम्बन कर रमण करता है । अडों को रक्षापूर्वक रात्रि के समय अलग रख कर बच्चो के कठ मे आहार देकर वे उन्हे पालते हैं । इस प्रकार के सुलक्षणों से युक्त कबूतरो को राजा को मार्ग की शिक्षा देनी चाहिए—

पारावत तथाभूत शिक्षित क्रमश पथि ।[4]

शिक्षा देने का सोमेश्वर ने इस प्रकार नियम बतलाया है कि राजा को चाहिए कि कबूतर को उस पिजडे से निकाल कर अलग ले जा कर, इसे निकाल कर उसके कठ मे पत्र लेख बाध दे और राजा उसे छोड दे । वह कबूतर दिन भर में २० योजन का चक्कर लगाकर अपनी प्रिया की याद करता हुआ पुन अपने स्थान पर लौट आवेगा । इतना उपयोगी होने के कारण ही वह राजा के लिए आवश्यक था । सोमेश्वर ने इस पवित्र आत्मा वाले कबूतर को राज्य की वृद्धि के लिए अपनी प्रिया के हाथ रखने का आदेश दिया है—

अतएव महीपालै सग्राह्यास्ते विशेषत ।
रतिकालेऽपि ते धार्या रागवर्धनहेतवे ॥[6]

इस प्रकार से कठ के घुरघुराते हुए शब्द द्वारा यह राजा के हृदय में आनन्द का उत्पादन करते थे इसी कारण उस समय में कबूतर राजा के हार्दिक विनोद का आधार था ।

सोमेश्वर ने पारावत विनोद को धर्म, कर्म, अर्थ की सिद्धि का कारण माना है—

---

१ वही ४।११।१२८६ ।
२ वही ४।११।१२८७ ८८ ।
३ वही ४।११।१२८९ ९० ।
४ वही ४।११।१२९१-९३ ।
५ वही ४।११।१२९३ ।
६ वही ४।११।१२९६ ।

पारावतविनोदोऽय धर्मकर्मार्थसिद्धये ॥[1]

वास्तव में कबूतर धर्म का प्रतीक था। कबूतर तथा उसकी प्रिया अपने पारस्परिक निश्छल एव निर्मल प्रेम द्वारा राजा के हृदय मे अपनी प्रिया के प्रत अत्यधिक प्रेम उत्पन्न करते थे। इसके अतिरिक्त राजा के पत्रो का वाहक भी कबूतर ही था। यह अपनी प्रिया को अत्यधिक प्रेम करता था। इसी कारण जब राजा उसके गले मे कोई पत्र बाध देता था तो वह उसी के विरह मे इधर उधर घूमता हुआ पुन अपने स्थान पर आ जाता था और राजा का पत्र भी उसकी प्रिया तक पहुँच जाता था। इसी कारण उसे कर्म की सिद्धि का आश्रय माना है।

कबूतरो के साथ विनोद करना भारतवर्ष मे अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। सभी प्राचीन भारतीय राजाओं का कबूतर मनोरजन का साधन था। किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मनोरजन के साथ ही साथ कबूतर स्वास्थ्यवर्धक पक्षी है। कबूतर के पखों से निसृत जितनी भी वायु होती है वह अत्यन्त शुद्ध तथा अनेक प्रकार के रोगों को नाश करने वाली होती है। अत राजा का पारावतों के प्रति इतने स्नेह का यह भी एक कारण हो सकता है। पारावतों के साथ विनोद करते समय कबूतर के पखों की वायु राजा तक अवश्य पहुँचती थी जो उसके स्वास्थ्य की वृद्धि मे सहायक सिद्ध होती थी। सोमेश्वर ने कबूतर के प्रति अत्यन्त पवित्र प्रेम स्पष्ट किया है। उसे उन्होने पवित्र, शुभदर्शन वाला, राज्य कार्य के लिए उपयोगी बतलाया है।

सारमेय विनोद

पारावत विनोद के पश्चात् सोमेश्वर देव ने सारमेय विनोद का वर्णन किया है। राजा उस समय में अनेक प्रकार के शुभ लक्षणो वाले कुत्तो तथा कुतियो द्वारा भी अनेक प्रकार से मनोरजन करता था। उसी का वर्णन इस सारमेय विनोद के प्रकरण मे हुआ है। इस प्रकरण में सर्वप्रथम सोमेश्वर देव ने बलवान कुत्तो की उत्पत्ति के लिए आभिर, सेवुण, कह्लोर, त्रैगर्त, दुग्धवाट, कणाट देश, आन्ध्र देश, वनवास, तालनोर, तापीतट आदि राष्ट्रो के नामो का उल्लेख किया है।

इसके पश्चात् कुत्तों के लक्षण बतलाये है। रोम युक्त शरीर वाला कुत्ता आभीर, पतली त्वचा वाला कुत्ता सेवुण, स्वच्छ रोमो से युक्त कुत्ता कह्लोर (इसकी पूछ बडी तथा पतली होती है), महान् शरीर वाला कुत्ता त्रैगर्त, कृश अगों वाला कुत्ता दुग्धवाट होता है। कणाट देश में उत्पन्न हुआ कुत्ता टेढे

---

१ वही ४।११।१२९७। २ वही ४।१२।१२९८ १३००।

मेढे बालों से युक्त होता है। आन्ध्र देश का कुत्ता छोटे शरीर वाला होने पर भी अत्यन्त बलशाली होता है। वनवास का कुत्ता रोम युक्त, विदर्भ देश का कुत्ता सुन्दर तथा रम्य आकृति वाला, तालनीर मे उत्पन्न हुआ कुत्ता छोटे रोमवाला, कान्तिमान् एव सुन्दर होता है। तापीतट का कुता कोमल अगो वाला तथा पाडुर का कुत्ता चितकबरा होता है।[1] इस प्रकार के विभिन्न देशो मे उत्पन्न हुए विभिन्न प्रकार के कुत्तों के शारीरिक लक्षणो का वर्णन सोमेश्वर ने किया है।

धूम्रअङ्ग वाले, कृष्ण वर्णवाले, श्वेत भ्रू तथा नेत्र वाले, कृष्णरोहित, अनेक वर्णों वाले, श्वेत बिन्दु से युक्त त्वचा वाले, ऊँचे, चिकने तथा गिरे हुए कान वाले, शिर मे श्वेत बालों से युक्त आवतहीन कुत्तों को सोमेश्वर ने अधम प्रकार का बताया है और उन्हे ग्रहण न करने का आदेश दिया है।[2] राजा को इस प्रकार के कुत्तो को न कभी ग्रहण करना चाहिए और न उन्हे विनोद के लिए ही प्रयोग मे लाना चाहिए।

सोमेश्वर के समय में सारमेय तथा सारमेयी दोनो के द्वारा ही विनोद किया जाता था। इसी कारण सोमेश्वर ने विनोद के उपयुक्त कुत्ते के लक्षणों का भी वर्णन किया है। रसोन के बीज के सदृश दाँतो से युक्त, आम्र पत्र की भाँति जिह्वा तथा रञ्जित मुखवाला, लाख के सदृश लाल तथा ऊँचे नेत्रों से युक्त, झुकी हुई भौहो वाला, स्थूल शिरवाला सर्जरत्र के सदृश कर्ण प्रदेशवाला, स्थूल दीर्घग्रीवा एव नखो से युक्त, विस्तीर्ण वक्षस्थल, मास से हीन उरु तथा जघा वाला, कर्कश रोमो से युक्त, सुअर, पुडरीकाक्ष, मल्ल आदि को भेदने मे चतुर, शक्तिशाली कुत्ते को विनोद के लिए राजा को प्रयोग मे लाना चाहिए।[3]

कुत्तों के पश्चात् दीर्घ, निर्मांस शरीरवाली, कृशनासिकावाली, अल्पभोजन करनेवाली, सुन्दर कर्णोवाली, कृश स्कन्धवाली, शशक के सदृश पृष्ठ भाग से युक्त, कन्दुक के आकार के मस्तक से युक्त, समान जघाओंवाली, सूक्ष्म रोमो से युक्त शरीरवाली, एक दो अथवा तीन बार की प्रसूता कुक्करागनाओं को शश, कोकट, सारग, कुरग आदि को मारने के लिए लगाना चाहिए।

> शशकोंकट्टसारगकुरगहरिणेनकान्।
> हन्तुमेता प्रयोक्तव्यास्त्वरिता कुक्कुरागना ॥[4]

इन कुत्तियों को मास, चर्बी तथा रात्रि में खीर द्वारा पुष्ट करना चाहिए।

---

१ वही ४।११।१३०१ १३०५। २ वही ४।१२।१३०६ १३०९।
३ वही ४।१२।१३०९ १३१६। ४ वही ४।१२।१३२०।

प्रसूता कुत्तियों को उसी प्रकार माड पिलाकर पुष्ट करना चाहिए जैसे दुग्ध पान द्वारा बालक पुष्ट किया जाता है।[1]

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त दो कुत्तियों को वन मे अपने घोसले मे स्थित शश को मारने के लिए भेजना चाहिए। यह कार्य राजा की पण (शर्त) के आधार पर करवाना चाहिए। जो कुतिया सर्वप्रथम आगे जाकर उसे मार दे वही जीत जाती थी, किन्तु यदि वे दोनों जाकर साथ ही उसे पकडती थी तो वे दोनो ही बराबर रहती थीं। इस प्रकार राजा विनोद करता था।[2]

सुअर को मारने के लिए अनेक उत्तम लक्षण वाले कुत्ते छोडे जाते थे। वे सब उसके पीछे लग जाते थे। कुत्तो के पीडित करने पर यदि सुअर उन्हे रोकने के लिए अपना सिर आगे करता था, गर्जन करता था, घर्घरनाद कर भीषण सघटन करता था तो राजा तुरन्त तोमर, भाला तथा तीक्ष्ण बाण आदि के द्वारा उसे बेध देता था। तब वे सभी कुत्ते दौड कर उसके स्कन्ध, कण्ठ तथा कर्णादि को अपने दातों से पकड कर, काटकर खा जाते थे और किलकिल नाद करता हुआ वह अपने प्राण त्याग देता था। इस प्रकार अपने कुत्तों के शौर्य को देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होता था। सम्भवत उस समय में कुत्तो तथा कुत्तियो द्वारा सुअर तथा मृगों आदि का शिकार कराया जाता था जिसके द्वारा राजा का मनोरजन होता था।

सारमेय विनोद का यह प्रकरण इस बात की पुष्टि करता है कि सम्भवत सोमेश्वर के समय में कुत्तों एव कुत्तिया की शिक्षा पर भी अधिक ध्यान दिया जाता था। राजा को कुत्तों के लक्षणों का पूर्ण ज्ञान था। उसी ज्ञान के आधार पर वह उत्तम लक्षण वाले कुत्तो एव कुत्तियों को अपने समीप रखकर शिक्षा दिल्वा कर उनके द्वारा शिकार करवा कर अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता था। कुत्ते राजा के प्रासाद मे ही पाले जाते थे और जब कोई जगली सुअर अथवा मृग अचानक राजधानी के अन्दर प्रवेश करता होगा तब इन कुत्तों को उस पर छोडकर उसे मरवाया जाता होगा। इस प्रकार कुत्ते उस समय राजा के विनोद तथा रक्षा दोनो के ही साधन थे।

श्येन विनोद

इस विनोद को सोमेश्वर ने बडा ही कौतूहलपूर्ण बतलाया है। सर्वप्रथम सोमेश्वर ने शालिव, जावल, लड्डु, प्राजिक, लगण, सचाण, वेसर, गृध्र, जवल कठिक, चडी, यवावह आदि अनेक प्रकार की श्येनों की जातियों का वर्णन किया है—

---

१ वही ४।१२।१३२२-२४। २ वही ४।१२।१३२४-१३२८।

शालिवा जावला लड्घु(ग्न) प्राजिको लगणस्तथा ॥
सचाणा वेसरा गृधास्तथा जवलकठिका ।
चडी यावावहा श्येना श्येनाना जातयस्त्विमा ॥[1]

इन सब जातियो के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने अजड नामक श्येनयोषित् को ही विनोद के लिए उपयुक्त तथा श्रेष्ठ बतलाया है क्योंकि यह विशाल शरीर धारण करने के कारण विनोद के समय अधिक मनोरञ्जक करती थी—

अजडेति च विख्याता श्येनयोषा वृहद्वपु ।
श्येनजातिषु विख्याता विनोदेष्वजडा वरा ॥[2]

कोणक जाति का श्येन अल्प शरीरवाला होने के कारण अधम माना गया है और उसके द्वारा विनोद मे भी अधिक आनन्द नहीं आता ऐसा सोमेश्वर ने कहा है—

कोणका स्वल्पकायत्वादधमा लघुमानका ।[3]

राजा को विनोद के लिए श्येनों को प्रारम्भ से ही रखना चाहिए। एक वर्ष के श्येन के बच्चे को नव[4], मुक्त तथा प्ररूढ पुच्छ वाले को कुपुचा[5] तथा जो पक्षहीन है उन बच्चों को अजेलम्ब कहते है। यह श्येन कछ बडे हो जाने पर वर्षाकाल में अपने पखों को गिरा देते है तथा शरद् ऋतु मे उनके पुन नवीन पख जम आते हैं—

वर्षासु पुच्छ मुचन्ति नव शरदि बिभ्रति ।[7]

इसी प्रकार प्रतिवर्ष नवीन तथा दृढ पखों को धारण कर और अधिक बली हो जाते है।

इन श्येनों को पकडने के लिए चार प्रकार के नियमों का उल्लेख किया है—

करैर्जालैश्च पाशैश्च चिक्कलेपैश्च युक्तित[8]

अर्थात् जो श्येन शावक छोटे होते थे तथा जिनके पख आदि ठीक प्रकार से नहीं जम पाते थे उन सचाण तथा वेसर प्रकार के श्येनो को हाथ से ही पकड लिया जाता था। जाल से पकडने के लिए एक जाल बिछा दिया जाता था और जाल के अन्त में कबूतर बैठा दिये जाते थे। इस प्रकार श्येनों को कबूतर का लालच दिलाकर आकाश से उतारा जाता था। तब वे आकर जाल

१ वही ४।१३।१३२९ ३०। २ वही ४।१३।१३३२।
३ वही ४।१३।१३३३। ४ वही।
५ वही ४।१३।१३३४। ६ वही ४।१३।१३३७।
७ वही ४।१३।१३३४। ८ वही ४।१३।१३३६।

मे फस जाते थे ।[१] इसी प्रकार दड मे जाल फसाकर हरित पल्लवः से ढककर रख दे। जब श्येन खाने के लिए आते थे तो उनका गला पकड कर खींच लिया जाता था और शीघ्र ही पाश से मुक्त कर दिया जाता था ।

इसके अतिरिक्त एक चिपचिपे पदार्थ द्वारा भी श्येनो को पकडा जाता था। यह विधि अत्यन्त मनोरजक होती थी। अश्वत्थ के दुग्ध को अग्नि मे पकाकर जब वह चिपचिपा हो जाता था तो उसमे थोडा तेल मिलाकर वह चिपचिपा पदार्थ उन्ही बधी हुई लकडियो मे लगा दिया जाता था और वे यष्टिया बधे हुए पक्षी के पास ही रख दी जाती थी। जब श्येन पक्षी खाने के लालच से उतर कर उन यष्टियो पर बैठता था तो चिपक जाता था। उससे चिपक जाने पर उसे पकड कर तेल द्वारा चिपका पदार्थ उसके पखों से छुडा दिया जाता था और उसके पैर मे एक डोरी बाध दी जाती थी।[३] श्येन को पकड लेने के पश्चात् उसके मुख को मास खड देकर छुआ जाता था।[४] और उसका डर छुडाने के लिए उसे बार बार छुआ जाता था। उसे दो रात्रियो तक सोने नही दिया जाता था। तीसरे दिन सोकर उठने पर उसे चना दिया जाता था। श्येन का धारक श्येन को ये वस्तुये इतनी मात्रा मे देता था जिससे उसकी क्षुधा शीघ्र ही बढ जाती थी। थोडी देर पश्चात् उसे कुछ खाद्य पदार्थ एक हाथ की दूरी से दिखाया जाता था जिससे वह आकर्षित होकर उसे पकडने की चेष्टा करता था। उस श्येन को एक बडी तथा चिकनी डोरी द्वारा बाधा जाता था जिसके एक ओर जाल तथा एक ओर मुद्रिका बधी रहती थी।[७] उस डोरी के दोनो छोरों को श्येन के पोषक तथा शिक्षक हाथ से पकडते थे।

इस प्रकार से श्येन को बाधने के पश्चात् श्येन को शिक्षा दी जाती थी। उसे चटक दिखाकर उससे 'एहीति' (आओ) कहा जाता था।[९] थोडे दिन पश्चात् उसे कुछ दूर से चटकादि दिखाया जाता था और वह उसे दौड कर ग्रहण कर लेता था। तब उसे बन्धन से मुक्त कर दिया जाता था और उसे आकाश मे चटकों को मारने के लिए मुट्ठी मे पकडकर छोडा जाता था।[१०] इस प्रकार से सचाण, वेसर तथा रगण जाति के श्येनों को शिक्षा दी जाती थी।

---

१ वही ४।१३।१३३९ । २ वही ४।१३।१३४१ ४३ ।
३ वही ४।१३।१३४४ १३४८ । ४ वही ४।१३।१३४८,४९ ।
५ वही ४।१३।४९ ५१ । ६ वही ४।१३।१३५३ ।
७ वही ४।१३।१३५४ । ८ वही ४।१३।१३५५ ।
९ वही ४।१३।१३५६ । १० वही ४।१३।१३५८,५९ ।

अन्य प्रकार के श्येनों की शिक्षा मे मुट्ठी द्वारा छोडने का आदेश नहीं दिया गया है—

सचाण वेसर चैव तथा रगणजातिकम्।
शिक्षयेन्मुष्टियोगेन तदन्यान्मुष्टिना विना ॥[1]

जल्व तथा कट्टिक जाति वाले श्येनों को सोमेश्वर ने बिना यष्टि तथा मुट्ठी के शिक्षा देने के लिए बताया है और प्राची तथा गृध्र जातिवाले श्येनों को शशक के द्वारा शिक्षा दी जाती थी।[2] जालिव तथा जावल आदि जातियों वाले श्येनो को वचनों द्वारा ही शिक्षा दी जाती थी।[3] इसको शिक्षा देने के लिए बडे ही मनोरजक ढ ग का सोमेश्वर ने वर्णन किया है।

सर्वप्रथम हाथ में कौआ लेकर श्येन को दिख कर उसे बुलाया जाता था। जब वह दौडकर उस पर झपटता था तो हाथ से कौआ छोड दिया जाता था।[4] इसी प्रकार अनेक बार किया जाता था जिससे उसे अपने शिकार को झपट कर पकडने का अभ्यास हो जाता था। वचनो द्वारा भी उसे कार्य करने के लिए अभ्यस्त बनाया जाता था। इसी प्रकार उसे आकाश मे उडते हुए पक्षियों को भी मारने की शिक्षा दी जाती थी।[5]

श्येनों के पूर्णरूपेण शिक्षित हो जाने पर राजा उनको विनोद के लिए प्रयुक्त करता था। विनोद करवाने के एक दिन पूव श्येन को आधा ही पेट भोजन दिया जाता था तथा उसे सोने भी नही दिया जाता था। इससे उसमे क्रोध की वृद्धि होती थी।[6] इस प्रकार के श्येनों को लेकर श्येनों का मोचक राजा के साथ उस भूमि मे जाता था जहा बहुत से तृण होते थे।[7]

वन में पहुँच कर सर्वप्रथम यष्टियो द्वारा घास को तथा झाडियो को खूब पीटा जाता था जिससे सभी पक्षी तथा खरगोश आदि भयभीत हो जाय।[8] तत्पश्चात् राजा विविध प्रकार के लावकों को भिन्न भिन्न पक्षियो तथा पशुओ आदि के बीच में छोडता था। वेसर तथा अल्लग जाति के श्येनों को कपिंजल, लवा, तित्तिर, मयूर आदि पक्षिकों के मध्य छोडा जाता था।[9] शालिव श्येन को क्रौंच, सारस तथा कक पक्षियों के मध्य, गृध्र जाति के श्येन को बकुला, तथा काकों के मध्य छोडता था[10] और प्रसन्न होकर उनका युद्ध देखता था।

---

१ वही ४।१३।१३६०।
२ पाची च गृध्रजाती च शशकेषु नियोजयेत्। वही ४।१३।१३६१।
३ वही ४।१३।१३६१।
४ वही ४।१३।१३६२ ६३।
५ वही ४।१३।१३६४ ६५।
६ वही ४।१३।१३६६ ६७।
७ वही ४।१३।१३६८,६९।
८ वही ४।१३।१३७०,७१।
९ वही ४।१३।१३७२,७३।
१० वही ४।१३।१३७२ ७५।

सभी जाति के श्येन अपने चारो ओर के पशुओं एव पक्षियो से युद्ध करते थे वेसर श्येन रगणो को तथ. सचाण अपनी मुष्टि शक्ति तथा वेग से आकाश में स्थित पक्षियो को, शाल्वि दूर मे स्थित दिखाई पडने वाले कक आदि को अपने पक्ष के बल से मार डालना था।[1] प्राजिक तथा गृध्र जाति के श्येन अपने स्थू ल शरीर द्वारा बडे बडे पक्षियों को मार डालते थे तथा दूर मे स्थित पक्षियों पर झपट कर उन्हे अपने पक्ष बल द्वारा समाप्त कर देते थे।[2] राजा वही पर समीप मे ही बैठ कर उन सभी श्येनों के युद्ध को देखकर अपना मनोरजन करता था।

श्येन विनोद के प्रसग का अन्यत्र उल्लेख नही हुआ है। इससे विदित होता है कि यह श्येन युद्ध विनोद सम्भवत पहिले समाज म प्रचलित न था अथवा यदि प्रचलित भो होगा तो बहुत ही कम। इसी कारण कुक्कुट, मेष आदि के युद्ध के साथ साथ श्येन युद्ध के प्रसग नहीं प्राप्त होते। किन्तु सोमेश्वर के समय मे यह श्येन युद्ध द्वारा विनोद प्राप्त करने की प्रथा अधिकाश रूप मे प्रचलित थी। अन्य जनो के साथ राजा भी इस युद्ध को देखता था।

सोमेश्वर के समय में श्येन विनोद जिस प्रकार से किया जाता था उससे विदित होता है कि अपने शिकार को पूर्ण रूप से मार लेने की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर ही अनेक जातिवाले श्येनों को वन में ले जाकर राजा सभी पक्षियों के मध्य छोडता था।

मत्स्य विनोद

श्येन विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने मत्स्य विनोद का वर्णन किया है। अन्य पशुओं के साथ ही साथ मछलिया भी तत्कालीन समाज में व्यक्तियों के विनोद का आधार थीं। राजा विशेषरूप से इस विनोद द्वारा अपना मनोरञ्जन करता था इसी कारण सोमेश्वर ने इस विनोद के लिये 'राजवल्लभ'[3] शब्द का प्रयोग किया है। इस विनोद के अन्तर्गत सोमेश्वर ने मछलियों की जातियो उनके अनेक प्रकार, उनके उत्पन्न होने का स्थान उन्हे पकडने के लिये प्रयोग की जानेवाली वस्तुओं तथा अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुओ का वणन किया है। सोमेश्वर ने मछलियों की जाति के विषय मे कहा है—

मत्स्या स्युर्बहुजातीया गणनागोचरा न ते।[4]

---

१ वही ४।१२।१३७६,७७। २ वही ४।१३।१३७८,७९।

३ 'अग्रे मत्स्यविनोदोऽय कीत्यते राजवल्लभ।'

वही ४।१४।१३८१

४ मानसो० ४।१४।१३८१।

इससे विदित होता है कि मछलियों की जाति की गणना करना अत्यन्त कठिन है। उन्होने इस प्रकरण मे केवल विनोद के लिये उपयुक्त मछलियो का ही वर्णन किया है। विनोद के उपयुक्त सोमेश्वर ने केवल दो प्रकार का मछलियाँ बताई है[1] १ चर्मजा और २ शल्कज। वृक्ष के चर्म के सदृश चर्म से पूर्ण मछलिया चर्मजा होती है ये शल्क से शून्य होती है।[2] किन्तु शल्क शक्ति से से पूर्ण अगवाली मछलिया शल्कजा कहलाती है। ये दोनो प्रकार की मछलियाँ स्थूल (मोटाई) तथा सूक्ष्म (दुबला) के भेद से दो-दो प्रकार की होती है—

प्रत्येक ते द्विधा प्रोक्ता स्थूलसूक्ष्मविभेदत ।[4]

इन दोनो प्रकार की मछलियो के भी अनेक भेद है और उनमे से कुछ सागर मे उत्पन्न होनेवाली है तथा कुछ नदियो मे उत्पन्न होनेवाली मछलिया हैं। सौर, शृगसोर, चविलोच, बन्, कण्टकार, सेकुचक आदि मछलिया चर्मजा मछलिया है और ये सागर मे उत्पन्न होती है[5] तथा कोवासक, खिरीड, पाठीन, सिहतुण्डक आदि चर्मजा मछलिया समुद्रों मे नीचे की ओर रहनेवाली होती हैं और इनका बडा ही विशाल शरीर होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार का मध्यम कायवाली चर्मजा मछलिया नदी मे उत्पन्न होती है।[6] गागधर, गोज्जल, विदुव आदि स्वल्पशरीरवाली मछलिया भी नदी में ही उत्पन्न होती है।

शल्कजा मछलियो मे पिण्डमान महान् शरीर वाली तथा पल्मकु, तोमर आदि मध्यम शरीरवाली मछकिया समुद्र मे उत्पन्न होती है।[7] महाशोउ, कहव, नाडक, वडिश, वटगि आदि महान् शरीर वाली मछलिया तथा रोहित, स्वर्ण मीन खण्डालिप आदि मध्यम शरीर वाली मछलियाँ सरिताओ मे होती हैं। इस प्रकार सोमेश्वर ने नदी तथा सागर मे प्राप्त होनेवाली प्रत्येक जाति की

---

१ तथापि कियतो वक्ष्ये विनोदेषूपयोगिन ।
ते च जात्या द्विधा ज्ञेयाश्चमजा शल्कजा इति ॥
मानसा० ४।१४।१३८२ ।

२ 'द्रुमचमपिनद्धागा चमजा शल्कवर्जिता ।'
मानसो० ४।१४।१३८३ ।

३ "शल्कशुक्तिपिनद्धागा शल्कजा ते प्रकीर्तिता ।"
मानसो० ४।१४।१३८४ ।

४ मानसो० ४।१४।१३८३ । ५ मानसो० ४।१४।१३८५,८६ ।

६ पाटल पिच्छकस्त्वेकस्तथान्यो द तपाटल ।
मध्यकायाविमौ मत्स्यौ नदीजौ चमसम्भवौ ॥ वही ४।१४।१३८७,८८

७ वही ४।१४।१३८९,९० । ८ वही ४।१४।१३९० ९२ ।

उत्तम विशाल तथा मध्यम शरीर वाली अनेक प्रकार की मछलियों का वर्णन किया है।

इसके पश्चात् वे मछलियो को प्राप्त करने के स्थानों का उल्लेख करते हैं। सागर से लेकर पर्वत तक की कौरत्थ आदि छ अथवा सात योजन के विस्तारवाली नदियों मे, गम्भीर तथा विशाल जलराशि से युक्त तालाबों में, मसिल, तुम्ब्र तथा वाञ्चिआदि मध्यम प्रकार की शल्कजा मछलिया विलास करती है।[1]

इनको इन्हो स्थानो में प्राप्त किया जा सकता है—

तेषा सग्रहणे स्थानमिदमेव न सागर ।[2]

शिलाओं से पूर्ण तथा कर्दमहीन नदियो मे कोवाकी आदि विशालशरीवाली मध्य जाति की शल्कजा मछलिया रहती है।[3] अत्यधिक बालुका से युक्त गम्भीर जल मे रोहितादि जाति की मछलिया प्राप्त हो सकती है। पङ्क से पूर्ण, सुविस्तीण प्रवाहरहित ह्रदों में पाठीन जाति की मछलिया कच्छपो के साथ निवास करती हैं तथा पर्वतीय प्रदेश के विवरों, नाभि पर्यन्त जल मे, ह्रदशीर्षों के मध्य मे अथवा श्रृंगस्थल मे, थोग्यस, तुम्बर, वामी आदि मछलिया इच्छापूर्वक विचरण करती हैं।[4] इस प्रकार सोमेश्वर ने जो विभिन्न प्रकार की मछलियो को प्राप्त करने के लिये विभिन्न स्थानों का उल्लेख किया है, यह विवरण सोमेश्वर के मत्स्य विषयक विशेष ज्ञान को प्रकट करता है।

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने मछलियो की विभिन्न प्रकार की खाद्य वस्तुओ का वर्णन किया है। उनका कथन है कि तिल, मास, पिण्ड, लाइ का चूण, तथा भूने हुये चने का चूर्ण भात में मिला कर बेल के बराबर बने हुए गोलो द्वारा पल्लव आदि एव नदियों में विचरण करने वाली शल्कजा मछलियो को चुनना चाहिये।[5] सिक्थ से युक्त चूर्ण को जल के मध्य डाल कर, उसे हिला कर रोदनमिश्रित तिल तथा मास के कणों के बेर के बराबर गोले बनाकर रोहितादि मध्यकाय वाली शल्कजा मछलियो को चराना चाहिये।[6] इसके अतिरिक्त कौसुम्भ के तूर्ण तथा भात मिश्रित सत्तू के आम की आकृति के बने हुए गोलों

---

१ वही ४।१३।१३९३ ९४। २ वही ४।१४।१३९५।

३ नद्या कदमहीनाया सशिलाया भवन्ति ते।
कोवाकीया महाकाया सशल्का मध्यजातय ॥'
वही ४।१४।१३९५,९६।

४ वही ४।१४।१३९६ १३९९। ५ वही ४।१४।१४००,१४०१।

६ वही ४।१४।१४०२,०३।

द्वारा बडिश जाति की मछलियों को, बिल्व पत्रों को सत्तू के साथ मिलाकर धात्रीफल के आकार के पिण्ड बनाकर तथा तिल के खण्डों द्वारा कोवकादि मछलियो को चुनाना चाहिए ।[१] सुगन्धित मास के द्वारा पाठीन सिहतुण्ड आदि मछलियो को चुनाना चाहिये ।[२] मरली मछली को यत्नपूर्वक कर्कट के मास द्वारा तथा भुने हुए चूहे के मास के टुकडों द्वारा कच्छपों को चुनाना चाहिये।[३] भूलव आदि क्षुद्र मछलियों को तडाग जालिदेश अथवा जल लेने के स्थानों में मास खिलाना चाहिये ।[४] इस प्रकार से राजा उक्त भक्ष्य सामग्री द्वारा विभिन्न प्रकार की मछलियों को अपने सेवकों द्वारा चुनवाये। मछलियों के साथ ही साथ सोमेश्वर ने कच्छपों को चुनाने की सामग्री का भी वर्णन किया है। यह प्रकरण इस बात की पुष्टि करता है कि सोमेश्वर इन सभी प्रकार की मछलियो द्वारा विनोद करता था। उसे प्रत्येक प्रकार की मछलियों की खाने वाली सामग्री का पूर्ण ज्ञान था, क्योंकि मत्स्यविनोद मे मछलियों को पकडते समय उनके प्रिय भोजन द्वारा ही उन्हें समीप लाया जाता था।

जल में भोजन डलवा कर, अपने समीप बुलाकर सोमेश्वर ने मछलियों के बेधने का आदेश दिया है। मछलियो को बेधने के लिये उन्होंने अनेक प्रकार की घडियों एव रज्जुओं का वर्णन किया है जिनके द्वारा उस समय मे मछलियाँ बेधी जाती थीं। रज्जुओं में दृढता के ध्यान से मूर्वा से बनी रज्जु श्रेष्ठ, कन्दुक तथा अर्क से बनी हुई रज्जु निम्नतर प्रकार की होती है—

"तत्र मूर्वाभवा श्रेष्ठा मध्यमा कन्दुकार्कजा ।
कार्पासजा कनिष्ठा स्युर्द्राढर्चमेवथा क्रमम् ॥"[५]

स्थूल, मध्यम तथा सूक्ष्म के ध्यान से तीन प्रकार की रज्जु होती है। यह डोली आम के वृक्ष की टहनी के अन्तप्रदेश के बराबर मोटी हो।[६]

रज्जु के पश्चात् यष्टि का वर्णन हुआ है। यष्टि पृथ्वी से निकले हुए मुलायम बास की बनानी चाहिए। इसके अतिरिक्त माड की शाखा से अथवा खरट के पुच्छ भाग से भी बन सकती है। यष्टि चिकनी, बिना छिद्र की, न बहुत बडी, न बहुत छोटी, न शिथिल, न अधिक दृढ होनी चाहिए।[७] तन्वी यष्टि सबसे

---

१ वही ४।१४।१४०३ ०४। २ वही ४।१४।१४०६।

३ वही ४।१४।१४०७।

४ 'भूलवाक्षुद्रमत्स्याश्च चारयेद्रामिष वनो ।
तडागपालिपादेशे जलाहरणतीथके ॥' वही ४।१४।१४०८।

५ वही ४।१४।१४११ १२। ६ वही ४।१४।१४१४।

७ वही ४।१४।१४१८।

श्रेष्ठ मानी जाती है। यह अकुश की भाति वक्र होती है। इसका मूल भाग स्थूल तथा आगे का भाग सूक्ष्म होता है और काटा बधा होता है। रज्जु बाधने का स्थान या तो वृत्ताकार होना है अथवा फलक के आकार का होता है।[1]

बडिश पानी के अन्दर डाल दी जाती है।[2] स्थूल रस्सी में स्थूल यष्टि तथा कृश रज्जु मे कृश यष्टि नहीं बाधनी चाहिए और यह रज्जु जल तथा मीन के प्रमाण से दीर्घ अथवा ह्रस्व बनानी चाहिये। इसी रज्जु के मध्य में मयूर पिच्छ बाध कर और यष्टि के मूल मे अन्य रज्जु बाध दे और इस प्रकार मछली को मोहित करने के लिये उसे पुच्छ के आकार का बनादे। इसी पुच्छ के समीप मछली की रुचि का आहार पिष्ट अथवा मास बाध दे। बडिश के खाने योग्य पदार्थ चुनने के स्थान मे अथात् जल मे फेंक दे। जब वह अपने भक्ष्य पदार्थ से आकर्षित होकर उसके समीप आकर उसे खा चुके और चलने लगे तब उस पर आघात करे और रज्जु द्वारा खींच ले। इस प्रकार बडिश को बेधने का नियम सोमेश्वर ने बतलाया है।[3] इससे विदित होता है कि अधिकाशत बडिश मछली द्वारा ही विनोद उस समय में होता था।

इसके अतिरिक्त अन्य मछलियों को बेधने के भिन्न भिन्न प्रकार बतलाये है। यदि मछली बलहीन हो तो इसे खीच कर निकाल ले, यदि स्थूलकाय हो तो यष्टि को छोड कर धीरे धीरे खींचे।[4] इस प्रकार राजा अपने सेवकों के साथ मत्स्य विनोद करता था।[5]

सोमेश्वर ने मत्स्य विनोद का इतना स्वाभाविक एव विस्तृत वर्णन किया है कि उस समय मे होने वाले मत्स्य विनोद का पूर्ण चित्र उपस्थित हो जाता है। राजा अपने खाली समय मे मत्स्य विनोद कर बडा आनन्द प्राप्त करता था।

मछली प्रारम्भ से ही व्यक्तियों के मनोरजन का साधन रही है चाहे वह खाने के विषय में रही हो अथवा अन्य किसी क्षेत्र में। भारतीय राजा मछली खाने के सदा से बडे प्रेमी रहे हैं किन्तु मछली मारने से उत्पन्न विनोद का इतना विस्तृत प्रसग अन्यत्र नहीं प्राप्त होता। हिन्दी में 'झष मारने' की किंवदन्ती बहुत प्रसिद्ध है। सस्कृत में एक स्थल पर मछली से सम्बन्धित ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

---

१ 'स्थूलमल च सूक्ष्माण्ड कण्टकेन समन्वितम्।
रज्जुबधनदेशस्तु वृत्तो वा फलकाकृति ॥'
वही ४।१४।१४२२।

२ वही ४।१३।१४२३। ३ वही ४।१४।१४२२ १४२८।

४ वही ४।१४।१४३०। ५ वही ४।१४।१४३१।

चार वारि न चिन्तित न गणिता क्रूराश्च नक्रादय
श्चञ्चद्वीचिकदम्बडम्बरमिलत्त्रासोऽपि दूरीकृत ।
मध्येऽम्भोनिधिमत्स्याक भवता झम्प कृतो लीलया
सपत्तिर्मकरार्जनै विपदिह प्राणप्रयाणावधि ॥[1]

इस श्लोक में प्रयुक्त "कृतो लीलया" शब्द सम्भवत मत्स्य विनोद की ओर ही सकेत करता है। सोमेश्वर ने अनेक प्रकार की मछलियों का तथा उनके पकडने के नियम का सूक्ष्मातिसूक्ष्म एव विस्तृत वर्णन किया है। सम्भवत उस समय मे राजा मछली मारने मे विशेष आनन्द प्राप्त करता था।

मृगया विनोद

मृगया विनोद प्रारम्भ ही से सभी राजाओ का विशेष रूप से मनोरञ्जन का साधन रहा है। महाराज सोमेश्वर भी मृगया के प्रेमी थे इसी कारण उन्होंने इस 'मृगया विनोद' के प्रकरण के अन्तर्गत ३१ प्रकार की मृगया का वर्णन किया है—

पानीयजा चारज च क्षेत्रजा मार्गजा तथा।
उषरा दीपमृगया तथा च विटपाश्रया॥
वध्रजा काण्डपटजा मञ्चजा भूमिगेहजा।
बलिवर्दतिरोधाना महिषारोहणोद्भवा ॥
अश्वजा चित्रजा चैव शारीरी स्तम्भनी तथा।
वायुजा दमनोत्पन्ना गौरिजा कोपसम्भवा॥
कामजा ध्वनिजाता च तथा मदविकारजा।
नीहारजा पाशजाता जालजा यन्त्रसम्भवा॥
व्याघ्रमोक्षणसम्भूता तथा कवलदानजा।
एकत्रिंशत्प्रकारेय मृगया राजसम्मता॥[2]

इन मृगयाओं के वर्णन के पूर्व सोमेश्वर ने सर्वप्रथम राजा के मृगया करने के लिये उपयुक्त स्थान एव वन का वर्णन किया है। उन्नत पर्वतों से, गह्वर तथा कन्दराओं से युक्त, कण्टको से पूर्ण, अधिक पाषाणो से भरे हुए दुर्गम मार्गों से युक्त, चलने में क्लेशदायी, अन्धकारपूर्ण, ऋक्ष व्याघ्रादि से सेवित, गज तथा सर्पादि से पूर्ण वन में राजा को मृगया के लिये नहीं जाना चाहिये।[3]

---

१ सुभाषितरत्नभाण्डागार पृ० २३४ जलचरा योनय १ ।

२ मानसो० ४।१५।१४४६ १४५० ।

३ पवतैरुन्नतैयु क्ता गह्वरै कन्दरैयुता।
मातगसर्पबहुला वजनीयाटवा तपै ॥ मानसो० ४।१५।१४३३ ३५

राजा को चाहिये कि वह वन सदैव कण्टकों से हीन, वृक्षों से पूर्ण, समतल भूभाग से सुशोभित, वापी तडागों से पूर्ण, खाने योग्य फला से युक्त वृक्षोंवाले, रक्षा से पूर्ण, छोटे, दुष्ट प्राणियों से शून्य, सारग, हरिण, कुरग, रुरु, शम्बर आदि मृगों, मयूर, लावक, कपिञ्जल, कपोत आदि पक्षियो से पूर्ण हो।[१] इस प्रकार के सुन्दर वन मे राजा को मृगया के लिये जाना चाहिये। जो वन पूर्णरूप से सुरक्षित हो, एक योजन विस्तृत हो, जनरव से शून्य, विस्तृत मृगों से पूर्ण तथा समान भूभाग वाला हो ऐसे वनों की रक्षा करना सोमेश्वर ने राजा का परम कर्त्तव्य बतलाया है।[२]

राजा को चाहिये कि वह अपने नगर के समीप मे स्थित वन में ही भैसों पर चढे हुए लुब्धको के साथ मृगया करने जाय। इसके आगे वे पूर्व कथित अनेक प्रकार की मृगया क्रीडा का वर्णन करते है। इन मृगयाओं को सोमेश्वर ने राजा के योग्य बताया है क्योंकि इसी प्रसग मे वे कुछ ऐसी मृगयाओं का वर्णन करते है जो प्रमादपूर्ण तथा कुत्सित है और उन्हें राजा के लिये वर्जित बतलाया है।[३] इसके अतिरिक्त शिवा, जम्बुक, मार्जार, कोक, मूषिक आदि से उत्पन्न मृगया को सोमेश्वर ने कुत्सित बतलाया है और इसी कारण राजा को उसे त्याग देने का तथा विनोद के लिये उसका प्रयोग न करने का आदेश दिया है।[४] इसके आगे सोमेश्वर विभिन्न प्रकार की राजा के उपर्युक्त मृगयाओं का वर्णन करते हैं—

पानीयजा

इस मृगया के लिये पूर्व से ही राजा के सेवक तथा लुब्धकगण तैयारी करते है। जिस प्रकार के नदी तडाग आदि के समीप विस्तृतस्थान को देखकर मृग पानी की इच्छा से आते हो उसी प्रकार का कृत्रिम जलाशय बनावे। जल का गड्ढा बनाकर लुब्धकगण रोक दे।[५] एक गड्ढा और खोद कर उसे वृत्त, बॉस, जाल, कटक आदि से चारो ओर से घेर दे[६] और उसके समीप

१ मानसो० ४।१५।१४३६ ४१। २ वही ४।१५।१४४२,४३।

३ निमज्जनाज्जलस्यान्त प्रवेशाच्च बिलान्तरे।
गवयस्याच्छभल्लस्य व्याघ्रस्य महिषस्य च॥
खडगस्य मगयास्त्यथ प्रमादबहुलायत।
तस्मादेषा विवर्ज्या स्यात् धीमता पृथिवीभुजाम्॥
वही ४।१५।१४५१,५२।

४ शिवाजम्बुकमार्जारकोकमूषिकसम्भवा।
कुत्सिता मगया भूपैवर्जनीया विनोदने॥ वही ४।१४।१४५३

५ वही ४।१५।१४५५। ६ वही ४।१५।१४५६।

वायु की दिशा को देखकर इस प्रकार का आगन बनावे जिससे मनुष्य की गन्ध मृगादि न समझ सकें क्योंकि मनुष्य की गन्ध जानकर वे भाग जायेंगे।[१] इस प्रकार वायु की गति को जानकर दो गड्ढे बनावे। इसके अतिरिक्त जल पीने के स्थान के दोनो ओर दो गड्ढे बनावे जो दो धनु के बराबर विस्तीर्ण, एक हस्त के बराबर वर्तुल हो। उन दोनों गर्तों के पास आधा हाथ चौडा तथा दो हाथ लम्बा गड्ढा और बनावे। प्रधान गर्त के पश्चात् एक अन्य गर्त और बनावे जो दो हाथ लम्बा तथा तीन हाथ चौडा हो। ये गर्त इस प्रकार से बनने चाहिये जिससे मनुष्यो की गन्ध को मृगादि न जान सके।[२] इस प्रकार का प्रबन्ध करने के पश्चात् लुब्धक राजा के समीप जाकर गर्तो के निर्माण की तथा सब प्रकार के प्रबन्ध की इस प्रकार सूचना देता था—

विजय क्रियता देव कौतुक ते भविष्यति।
मृगबेधेन पर्यन्ते सायका शतसख्यया॥"[३]

लुब्धक के द्वारा ऐसा निवेदन किये जाने पर राजा उल्लासपूर्ण मन से वाहनो को बुलाकर कुछ अन्य लुब्धकों तथा प्रेयसियो के साथ मृगया के लिये तैयार किये हुए स्थान को जाता था। वह अपने घोडो आदि वाहनों तथा अन्य व्यक्तियों को स्थान से बहुत दूर रखता था जिससे उनके शब्द को मृग न जान सके।[४] राजा तथा उसके साथ के सभी जन हरितवर्ण के अशुक तथा द्विपदी (पायजामे की भाति का एक वस्त्र) धारण किए रहते थे। सिर पर भी राजा हरा वस्त्र ही धारण करता था[५] और कुछ दीप मृगो के साथ तीक्ष्ण बाण हाथों में लिये हुए उस स्थान पर आता था।

मृगया के स्थल पर बना हुआ गर्त तूलगर्भित गद्दी से ढका रहता था और किसी गर्त के मध्य भाग में नीले स्वर्ण को तकियों से युक्त शय्या पडी होती थी। गर्त की पश्चिमी भित्ति नील वर्ण के वस्त्र से ढकी होती थी और कीलों द्वारा वह वस्त्र जडा होता था जिससे मिट्टी ऊपर न गिर सके। शय्या के आगे के भाग में धनुष रखा होता था। दोनो ओर के गर्तों में राजा अनेक तीक्ष्ण बाणों तथा फलक से युक्त लुब्धकों को बैठा देता था और पीछे के गर्त मे दस, आठ, पाच अथवा सात भटों को छिपा देता था।[६] तत्पश्चात् राजा सन्ध्या समय अपनी प्रेयसियों के साथ प्रधान गर्त मे प्रवेश करता था। शय्या पर वह स्वय बैठता था और पीछे प्रेयसियों को बैठाता था। वहा पर

---

१ वही ४।१५।१४५८। २ वही ४।१५।१४५८ १४६२।
३ वही ४।१५।१४६४। ४ वही ४।१५।१४६५ ६७।
५ वही ४।१५।१४६८। ६ वही ४।१५।१४६९ १४७४।

प्रवेश करने के पश्चात् सभी हरित द्विपदी (पायजामे) को धारण कर लेते थे। वहा पर सब बिलकुल स्तब्ध दशा मे चापल्यहीन होकर बैठते थे। सूर्य के अस्त हो जाने पर ताम्बूल को धारण करने वाले जो व्यक्ति गर्त के बाहर होते थे व मृगों को दूर से देखकर उस स्थान से चले जाते थे।[1] मनुष्य से हीन स्थान हो जाने पर रज्जु के द्वारा उन दीप मृगों को लुब्धक चलाता था। उन्ह देखकर प्यासे वन मृग पानी पीने वहा आते थे। वहा पर मृगो के खाने के लिये चने आदि पडे रहते थे। मृग वहा आकर जब नीचे की ओर दृष्टि करके उन दीप मृगों के पीछे पानी पीने के लिये आते थे और नवीन गर्त को देखकर कुछ देर निश्चल हो जाते थे। पुन जब वे झुकी हुई गर्दन से अपना सर गर्त मे डालकर पानी पीने चलते थे उस समय राजा धनुष पर तिरछा बाण चलाकर मृग की कक्ष भाग मे जोर से मार देता था और मृग पीडित हो जाता था तब उसे बाध लिया जाता था।[3] इस मृगया द्वारा राजा का बहुत मनोरजन होता था क्योकि अपने स्थान पर बैठे बैठे ही राजा उसमे मृग का वध कर देता था। उसे इधर उधर मृग की खोज मे भटकना नहीं पडता था। यह मृगया सभी में सर्वोत्तम मानी गई है।[4]

चारजा

जब वन में दावाग्नि लग जाती है और वहा की सब घास तथा तृण नष्ट हो जाते है तब वहा के मृग, कोयल आदि, पल्लव, अश्वत्थ, मधुक, फल, पुष्प, पके हुए बिल्वा फलों, मदन, बकुल तथा ऑवला आदि से पूर्ण वन में जाते है। वहा वे मूर्ख मृग विश्वासपूर्वक आयेगे। तब राजा पूर्व की ही भाति गर्त मे अथवा वृक्ष की ओट में बैठे। अपने आगे दीपमृगों को करके मध्याह्न अथवा रात्रि मे मृगों के आने का समय जानकर राजा वहा ठहरे। दिन मे गर्त मे बैठकर, रात्रि में वृक्ष की ओट में अपने को छिपाकर अथवा गर्त में बैठकर राजा सारग, हरिण, एण, रुरु तथा सम्बर आदि मृगों को मारता था।[5]

इन मृगो के बेधने के पश्चात् सोमेश्वर ने वराहों को बेधने का उपाय बतलाया है। सोमेश्वर ने पुष्ट वराहो को ही मारने का आदेश दिया है।[6]

क्षेत्रजा

चारजा मृगया के पश्चात् क्षेत्रजा मृगया का वर्णन हुआ है। यह मृगया का वर्णन हुआ है। यह मृगया क्षेत्र से ही सम्बन्धित है। अरहर, तिल,

१ वही ४।१५।१४७५ १४७९।
२ वही ४।१५।१४८०, ८१।
३ वही ४।१५।१४८५ ९१।
४ वही ४।१५।१४९२।
५ वही ४।१५।१४९९-१५०७।
६ वही ४।१५।१५०८।

निष्पाव, गेहूँ, चने आदि के पुष्पो एव फलों से पूर्ण क्षेत्रों मे खाने के लिये जहा बहुत से मृग आते थे वहा पर गर्त खुदवा कर उसमे बैठ कर अथवा भूगृह (पृथ्वी के नीचे गृह ऐसा बनवाकर) मे छिपकर राजा मृगों को मारकर मृगया का आनन्द उठाता था। इस मृगया को सोमेश्वर देव ने आनन्ददायी माना है।[1]

मार्गजा

जिस मार्ग से हरिण अपना भोजन प्राप्त करने के लिये अथवा जल पीने के लिये आते हों उस स्थान मे ठहर कर गर्त अथवा वृक्ष की ओट मे अपने को छिपा कर हरित अशुक धारण कर राजा मृगो के आने के समय पर अचानक उन्हें रात्रि अथवा दिन मे मारता था। अचानक मार्ग के बीच मे ही मृगया करने के कारण इसे मार्गजा कहते थे। यदि राजा दिन में मृगया करता था तो उसकी प्रेयसी का स्थान कुछ दूर पर बनाया जाता था और रात्रि में यदि मृगया करता था तो पाच लुब्धक उसके साथ रहते थे

"पञ्चके लुब्धके युक्तौ विध्येद्रात्रौ दिवाऽपि वा।
दिवा चेत्प्रेयसीस्थान किञ्चिद्दूरे प्रकल्पयेत्॥"[3]

ऊषजा

यह मृगया अधिकाशत ऊसर स्थान मे ही की जाती थी। ऊसर स्थान में आकर जहा गर्त में पर्वत के तट पर, नदी के तट पर आकर मृग लवणान्वित मिट्टी खाते थे वहा वायु की गति को जान कर वृक्ष की ओट मे राजा बैठ जाता था और मृग के पृष्ठ भाग मे बाण मारता था।[4] वायु की गति का ध्यान इस कारण रखा जाता था जिससे वायु के साथ छिपे हुए राजा की गन्ध मृग तक न पहुँचे। इसी को ऊषजा मृगया कहते थे।

दीप मृगजा

यह मृगया दीप मृगों की सहायता से की जाती थी। इस प्रकरण में सर्वप्रथम सोमेश्वर ने दीपमृगों का लक्षण बतलाया है। जो सुन्दर नेत्र वाले, अभीरु, स्थिर, धीर, सहिष्णु तथा लोह निमित रज्जु से पूर्ण मुख वाले होते है

---

१ आढकीतिलनिष्पावगोधूमचणकादिभि ।
पुष्पितै फलितै पूण क्षेत्रमायाति खादितुम ।
गर्ते वा भूगृहे स्थित्वा मृगान्विध्येन्नराधिप ॥
वही ४।१५।१५४७, ४९।

२ वही ४।१५।१५५०, १५५३।

३ वही ४।१५।१५५२। ४ वही ४।१५।१५५४ १५५६।

वही दीपमृग कहलाते हैं ।[१] इनके मुख मे रज्जु बिल्कुल घोडे की रास की ही भाति होती है । इन दीप मृगो मे वे ही मृग श्रेष्ठ होते है जो चारे के लोभ से अपने पोषक का साथ नहीं छोडते और न अन्य वन्य मृगो के साथ मिल जाने पर ही अपने स्वामी को त्यागते है ।[२] इन्हीं को मृगया के लिये शिक्षा देनी चाहिये । इसके अतिरिक्त दीप हरिणियाँ भी इस मृगया में सहायता देती है ।

वर्षा ऋतु मे वन के हरित तृणो से पूण हो जाने पर पश्चिमी वायु चलने पर राजा प्रात काल उठकर मृगया के लिये दीपमृगों से युक्त लुब्धकों के साथ जाता था ।[३]

वहा पर लुब्धक गण स्वेच्छापूर्वक चरते हुए मृगों को देखकर उनके आगे दीप मृगों को छोड देते थे और जब वन्य हिरन समीप आजाते थे तब राजा दीप मृग के पीछे से अथवा वृक्ष पर से चुपचाप छिपकर, बाण चलाकर उनको मार डालता था ।[४] दीप मृगों को वृक्ष से बाधकर भी उनका वध किया जाता था ।[५] इसके अतिरिक्त मुक्त दीप मृगों की सहायता से भी मृगया की जाती थी। तब लुब्धक वन मे चने फैलाकर कुछ निश्चित सकेत करता था जिससे दीप मृग वापस आते थे और उनके साथ कुछ अन्य मृग भी आ जाते थे जिनका तुरन्त वध कर दिया जाता था ।[६]

इसके अतिरिक्त बलीवर्दतिरोधान[७] की विधि का उल्लेख सोमेश्वर ने किया है, जिसमे लुब्धक अपने को बैलों के पीछे छिपाकर उसके साथ चलते थे तत्पश्चात् कुछ मुक्त दीपमृग छोड दिये जाते थे जो जाकर वन्य मृगों के साथ मिल जाते थे। इस प्रकार चारों ओर से वन्य मृगों को घेर लेते थे और जब दीप मृग तथा वन्य मृग निश्चित स्थान पर आ जाते थे तब राजा वन्य मृगों को मार देता था ।[८]

इन विधियों के अतिरिक्त राजा दीपमृगों को लेकर वन में जाता था । जब वन्य मृग कामातुर होकर मृगों के समीप आते थे तब लुब्धक उनको भयभीत कर देते थे, जिससे वे भागते थे । इससे दीप मृग तथा वन्य मृग अलग अलग हो जाते थे उसी समय राजा उन भयभीत वन्य मृगों को मारता था ।[९] इस

---

१ वही ३।१५।१५५८ ६१ ।
२ वही ४।१५।१५६२, ६३ ।
३ वही ४।१५।१४८७ ।
४ वही ४।१५।१५९६,१६०१ ।
५ वही ४।१५।१६०२ ।
६ वही ४।१५।१६०३ ७।
७ वही ४।१५।१६०८ ।
८ वही ४।१५।१६०९ १६ ।
९ वही ४।१५।१६२०-२३ ।

प्रकार की मृगया का रामायण[1] तथा महाभारत[2] मे निषेध प्राप्त होता है।

विटपजा

इसमे राजा हाथ मे कोई छोटा वृक्ष धारण कर और अपने शरीर को उससे छिपा कर वायु की गति का ध्यान रखकर मृग के समीप जाता था। पश्चिम की वायु चलने पर अनेक वृक्षो तथा हरी घास से पूर्ण वन मे राजा धीरे धीरे जाता था और स्वय वृक्षवत् होकर अर्थात् अपने को वृक्ष के पत्रों मे छिपाकर राजा तीक्ष्ण बाण द्वारा मृग को बेधता था।[3] इस मृगया में वृक्ष के द्वारा ही मृग को मारा जाता था। इसी कारण इसका नाम विटपजा पडा।

वध्रजा

इस मृगया मे जाल द्वारा मृग बेधा जाता था। वायु का तिरछा प्रवाह होने पर चमडे का बना हुआ रोमयुक्त जाल मृगयूथ को आता हुआ देखकर फैला दिया जाता था। उसके अन्त प्रदेश मे राजा वृक्ष पर चढ कर बैठता था और सब लुब्धक बैल की भाति अपने चारो हाथ पैरों से इधर उधर घूमते थे। मृग के झुड को देख कर एक उनमे से जोर जोर से शब्द करने लगता था। इस पर सभी मृग भय से त्रस्त होकर भागते थे और बधिका को पार करने का शीघ्रता से प्रयत्न करते थे। इस प्रकार भयभीत हुए मृग जाल को पार करते समय राजा के समीप आते थे और राजा उसी क्षण तीक्ष्ण बाण चलाकर मृग को मार कर अपना हस्तलाघव दिखाता था।[4] यह बडी ही कौतूहलपूर्ण मृगया थी। वध्री का आश्रय लेने के कारण ही यह बध्रजा नाम से प्रसिद्ध है।

काण्डपटजा

यह मृगया भी बडी ही मनोरञ्जक थी। इसके लिये भी पूर्व से ही तैयारी करनी पडती थी। मृग से पूर्ण वन के किसी बडे वृक्ष की दक्षिणी पश्चिमी शाखा को काटकर उसके सामने तथा उसके दोनों ओर दो हाथ की दूरी पर दीवारे बनाई जाती थीं। पेड के पीछे की दीवार पाच हाथ की होती थी। उन दोनों ओर की दीवारों को नाभि प्रदेश की ऊँचाई तक पत्तियो एव घास द्वारा ढक दिया जाता था। इस स्थान से लेकर कोस अथवा दो कोस की दूरी तक एक परदा लगाया जाता था। इसके दोनों ओर अव तक सौ लुब्धक छिपे रहते थे। राजा उसे वृक्ष के सामने अपना धनुष बाण लेकर खडा होता था।

---

१ मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम ॥ वा० रा०

२ किन्दम ऋषि ने पाण्डु को शाप दिया था।

३ मानसो० ४।१५।१६४१ ४४ । ४ वही ४।१५।१६४४ ४९ ।

उस मृगया के समय उसकी महाराज्ञी तथा अन्य रानियाँ भी साथ रहती थीं जो राजा के पीछे रहती थीं। उन स्त्रियो के पीछे शस्त्रधारी लुब्धक रहते थे जो उनकी रक्षा करने के लिये भित्ति के मध्य में चुपचाप बैठते थे। जब कोई मृग आता दिखाई पडता था तो वे पंक्ति में बैठे हुए सभी लुब्धक उसे डराने के लिये जोर से ध्वनि करते थे और उसी के पीछे सब दौडते थे। इस प्रकार वे भयातुर मृग राजा के समीप आते थे। उनके साथ ही साथ रुरु, सारग, सबर, हरिण, सूकर, बृक, व्याघ्र, ऋक्ष तथा सियार भी उन्हीं के साथ भागते थे। इन सभी के समीप आने पर राजा अनेक बाणों द्वारा दोनो पंक्तियों में दौडते हुए पशुओं को मारता था।[१]

इसके अतिरिक्त यह काण्डपटजा मृगया अन्य प्रकार से भी खेली जाती थी। जहा पर मृगों का झुण्ड विश्वासपूर्वक निर्भय होकर चरता था वहा लुब्धकगण चार हाथ पैरों द्वारा चार पैर वाले पशु की भाति चलकर वहा तक जाते थे और उन्हे इस प्रकार से चारो ओर से घेर लेते थे कि कोई भी मृग उनके बन्धन से बाहर न जा सकता था।[२] उन्हे भली प्रकार घेर लेने मे वे वायु की गति का बडा ध्यान रखते थे क्योंकि जिससे वायु के साथ उनकी गन्ध मृग तक न पहुँच सके। वे सब उन्हे बडी दृढता से घेरते थे और भगाते हुए राजा तक लाते थे। राजा के समीप तक आते आते वे बहुत थकित हो जाते थे तब राजा उन्हे सावधानी के साथ तीव्र बाण द्वारा बेधता था।[३] इस मृगया में परदे का आश्रय लेना पडता था इसी कारण इसका काण्डपटजा नाम पडा।

अश्ववजा

जब अत्यन्त शिक्षित तथा वेगवान घोडे पर चढ़कर राजा मृगया खेलने जाता था और उसी पर से तीक्ष्ण बाण, भाला आदि के द्वारा हिरणो को मारता था तब वह अश्वजा मृगया कहलाती थी।[४]

ताडिका

इस मृगया में वायु का प्रवाह पश्चिम की ओर होने पर कोमल घास से पूर्णवन में राजा जाता था। वहा पर वह अन्य सब सेवकों को हटाकर ताडकों के साथ पाच घोडों सहित धनुष लेकर मृगया खेलने जाता था। राजा दूर बैठता था और ताडकों को भेजता था। दूर जाकर ताडक लोग दोनो हाथ पीछे कर तथा सिर को आगे कर वहीं बन में घूमते थे और किसी मृग को देखकर जोर से शब्द करने लगते थे। मृग चकित होकर उन्हीं ताडकों की ओर

---

१ वही ४।१५।१६४९ ६३। २, वही ४।१५।१६६४ ६७।
३ वही ४।१५।१६६७ ७१। ४ वही ४।१५।१६७३ ७४।

देखने लगते थे उसी समय राजा धीरे धीरे आकर मृग के पृष्ठभाग पर प्रहार करता था।[1] इस प्रकार से ताडिका मृगया खेली जाती थी।

वायुजा

वायु के अत्यधिक तीव्र गति से चलने पर राजा अठारह लुब्धकों को लेकर मृगों के यूथ के समीप सुन्दर गन्ध पूर्ण स्थान मे जाता था और वहा पर किसी वृक्ष की शाखा अथवा किसी अन्य वस्तु की ओट में अपने को छिपा कर हाथ में धनुष बाण धारण कर खडा हो जाता था। अन्य लुब्धकगण चले जाते थे। शनै शनै मृगो के उस स्थल मे आने पर राजा उनको लक्ष्य बनाकर कान तक धनुष खींचकर मृगो को मारता था। लुब्धकगण पूर्व से ही बताये हुए मार्ग पर जाते थे और मृगो के इधर उधर स्वच्छन्दतापूर्वक घूमने पर वे सब जोर से तूर्यनाद करते थे, जिससे मृग घबडा कर अपनी रक्षा के लिये इधर-उधर भाग कर राजा के समीप पहुँचते थे और तब राजा अपने सामने आये हुए पथभ्रष्ट मृगों को मारता था—

गच्छन्ति लुब्धका पश्चाज्जल्पन्तोमार्गणा इव।
मृगयूथपरिभ्रान्त्यै कुर्युस्ते नादमुच्चकै ॥
ततो मृगा परिभ्रष्टा वायो सम्मुखगामिन ।
त्वरया परिधावन्ति यत्र राजा व्यवस्थित ॥
पुरोगामिनमुत्सृज्य शेषान्विध्येन्मृगान्नृप ॥[2]

इसी प्रकार दामिनी, कोपजा, यामजा, ध्वनिजा, मदविकारजा, तुषारजा, पाशजा, जालजा तथा व्याघ्रजा प्रकार की मृगया का विस्तृत वर्णन मानसोल्लास में हुआ है।

मृगया अत्यन्त प्राचीन काल से अधिकाशत सभी राजाओ के विनोद का साधन रहा है। इस विनोद के समय वन की श्री, पशुओं के भयभीत मुख के हाव भाव आदि देखने का अवसर प्राप्त होता है। शरीर का प्रत्येक अवयव सगठित हो जाता है। इसी कारण मृगया के समान आनन्द देनेवाला अन्य विनोद नहीं है ऐसा कालिदास का कथन है—

मेदच्छेदकृशोदर लघु भवत्युत्साहयोग्य वपु
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्त भयक्रोधयो ।
उत्कर्ष स च धन्विना यदिषव सिद्ध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसन वदन्ति मृगयामीदृग् विनोद कुत ॥[3]

---

१ वही ४।१५।१६७४ ८१। २ वही ४।१५।१६८६ ८८।
३ अभि० शाकु तल २।५।

मृगया विशेष रूप से राजा का ही सर्वप्रिय विनोद होता था। भारतीय कथा साहित्य में मृगया के अनेक प्रसग प्राप्त होते है। राजा लोग सदा से ही धनुर्विद्या के प्रेमी रहे है और यह मृगया अपने निश्चित लक्ष्य को वेधने का उत्तम साधन है। इसी कारण राजा लोग इस विनोद के बडे ही प्रेमी रहे है। दौडते हुए मृगो का अनुसरण करते हुए उन्हे मारना यही मृगया का प्रमुख उद्देश्य है। सम्भवत मृग से ही सम्बन्धित होने के कारण इसका मृगया नाम पडा, किन्तु मृगों के अतिरिक्त अन्य प्राणियों का भी शिकार होता था।

श्रीमद्भागवत पुराण मे मृगया द्वारा मनोरञ्जन करने का सुन्दर वर्णन हुआ है—

> चचार मृगया तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुक।
> विहाय जायामतदर्हा मृगव्यसनलालस ॥[1]

इस प्रसग से यह विदित होता है कि पुराण काल मे राजा अकेले ही मृगया करने जाते थे, उनकी महाराशिया साथ न जाती थी। मृग के अतिरिक्त पुराण कालीन राजा शश, वराह, महिष, गो, रुरु तथा शल्यादि पशुओं का शिकार भी करते थे—

> शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान्।
> मेध्यानन्याश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममभ्यगात्॥[2]

ये सभी पशु उस समय मारने योग्य समझे जाते थे[3] और बाणों को चलाकर ही मृगया विनोद किया जाता था।[4] राजा घोडे पर चढकर वन मे जाता था और मेध्य पशुओं को मारता था—

> चरन्त मृगया क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम्।
> घ्नत तत पशून् मेध्यान् परीत यदुपुगवै ॥[5]

वात्स्यायन के समय मे भी नागरक मृगया का बडा प्रेमी था और मृगया कर्म में चतुर व्यक्ति बडा ही योग्य समझा जाता था—

> प्रीति साभ्यासिकी ज्ञेया मृगयादिषु कर्मसु।[6]

बुद्धकाल में भी मृगया समाज में प्रिय विनोद माना जाता था। अजन्ता की १७ वीं गुहा में मृगया विहार का सुन्दर चित्र बना है जिसमें राजा घोडे पर चढा दौड रहा है और अन्य व्यक्ति छत्र लिये उसके पीछे हैं। स्त्रिया भी

---

१ श्रीमद् ४।२६।४।
२ श्रीमद पु० ३।२६।१०।
३ वही ४।२६।६।
४ वही ४।२६।८९।
५ वही ४।२६।
६ कामसूत्र सू० २।

राजा के साथ है जो घोडे पर चढी है। आगे दौडते हुए कुत्ते चित्रित हैं। इससे विदित होता है कि स्त्रियाँ भी उस समय मे मृगया विहार के समय साथ रहती थीं।

सस्कृत साहित्य के कालिदासादि महाकवियो ने मृगया का सुन्दर वर्णन किया है। रघुवश मे राजा दशरथ की मृगया का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है।[1] मृगया के लिये जाते हुए राजा के घोडे के पैरो से उठी हुई धूलि ने आकाश म भी वितान तान दिया—

मृगवनोपगमक्षमवेषभृद्विपुलकण्ठनिषक्तशरासन ।
गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृसविता स वितानमिवाकरोत् ॥[2]

मृगो को देखकर मृग के पीछे दौडते हुए राजा दशरथ अपने चल लक्ष्य पर बाण छोडते थे—

परिचय चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिंगितबोधनम् ।
श्रमजयात्प्रगुणा च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमत सचिवैर्ययौ ॥[3]

मृगया वास्तव में चल लक्ष्य को बेधने का सुन्दर मनोरञ्जन है। यद्यपि यह प्राणियों की हत्या करनेवाला है किन्तु फिर भी मृगया मे राजा प्रारम्भ ही से आनन्द प्राप्त करते रहे हैं। सोमेश्वर ने मानसोल्लास मे इकतीस प्रकार की मृगया का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि उस समय मे राजा अनेक प्रकार से मृगया खेलकर अपना समय व्यतीत करता था।

गीतिविनोद

मृगया विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने गीत विनोद का वर्णन किया है। सोमेश्वर स्वय सगीताचार्य थे। इस कारण उन्होंने 'गीतविनोद' के अन्तर्गत गायकों के भेद, गाने का नियम तथा अनेक प्रकार के रागों का वर्णन किया है। इस प्रकरण के प्रारम्भ में सोमेश्वर ने उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकार के गायकों का उल्लेख किया है। सोमेश्वर ने तृप्त तथा हृष्ट पुष्ट मन से गीत विनोद करने का आदेश दिया है—

तृप्तो हृष्टमनागीते विनोदे कर्तुमर्हति।[4]

योग्य गायक को गुणज्ञ, पक्षपातरहित, परिवाद से पराङ्मुख, प्रौढ, प्रियवद, वाग्मी, मेधावी, इगितज्ञ, मर्मवेदी, विवेकी, कीर्तिलंपट, गीत वाद्य का ज्ञाता नाट्यताल विचक्षण, रसिक, देशीमार्ग विचारज्ञ, वक्ता, रागद्वेष विवर्जित, भावज्ञ,

---

१ रघुवश ९।४९। २ वही ९।५०।
३ वही ९।४९। ४ मानसो० ४।१६।१७६३।

हृदयज्ञ, धर्मात्मा, प्रतिभावान्, सत्यवादी तथा काव्यनाटक का ज्ञाता होना आवश्यक है' और इसी प्रकार के शुभ लक्षणों मे युक्त व्यक्तियों को गीतविनोद के लिये प्रयुक्त करना चाहिये—

सत्या एव विधाशस्ता वादेवाऽपि विनोदने ।[२]

महाराज मोमेश्वर ने स्वर, ताल, पदबन्ध आदि में प्रवीण गायक को उत्तमोत्तम गायक बतलाया है ।[३] किन्तु कुछ गुणों से हीन होने पर भी यदि धानुमानु में विचक्षण गायक होता है तो वह उत्तम प्रकार का गायक होता है तो वह उत्तम प्रकार का गायक होता है ।[४] इसके पश्चात् सोमेश्वर ने निन्दित गायकों का वर्णन किया है । जो गायक भूतिहीन, स्थान भ्रष्ट स्वर करके गाता है वह निन्दित गायक होता है । इसके अतिरिक्त निन्दित गायक राग का नाशक होता है ।[५]

अधम गायक अनेक प्रकार के हैं । नाक के द्वार से गानेवाला गायक कपिल, तुवाकार मुख बनाकर गानेवाला तम्बुका[७], काकस्वर के सदृश गानेवाला काकी,[८] उल्टी पदावली गानेवाला सुदुष्ट,[९] व्यवस्थित गीत को अव्यवस्थित कर देने वाला अवस्थित,[१०] फूत्कार करके गानेवाला फूत्कारी[११], ग्रीवाचालन द्वारा शिरोजाल को प्रदर्शित कर गानेवाला जम्बुक[१२] गायक होता है । ये सभी अधम प्रकार के गायक हैं ।

सोमेश्वरदेव ने धानुमानु के अनुसार अनेक प्रकार के उत्तम, मध्यम तथा अधम गायकों का वर्णन किया है—

अधमा मानुकारस्यान्मध्यमो धानुकारक ।
धानुमानुक्रियाकारी प्रवर परिकीर्तित ॥[१३]

गीत के लिये धानु तथा मानु अत्यन्त आवश्यक अग है । जो धानुमानु के प्रकार को नहीं जानता वह गायक अधम तथा मूढ होता है ।[१४] जो गायक

---

१ वही ४।१६।१७६४ १७८८ । २ वही ४।१६।१७८९ ।
५ वही ४।१६।१७९०-९६ । ४ वही ४।१६।१७९७ ।
५ वही ४।१६।१७९६ ।
६ 'नासाद्वारगतीनोदौयस्तगायति गायक ।
कपिल सोऽपि विज्ञेयो सोऽपि कष्टतमो मत ॥ वही ४।१६।१२१२ ।
७ वही ४।१६।१७७० । ८ वही ४।१६।१७७१ ।
९ वही ४।१६।१७७२ । १० वही ४।१६।१७७३ ।
११ वही ४।१६।१७८७ । १२ वही ४।१६।१७८८ ।
१३ वही ४।१६।१७९७ । १४ वही ४।१६।१७९९ ।

समगति से नही गाता वह वक्री[1], कराल ध्वनि से गानेवाला गायक कराली[2], नेत्र बन्द करके गानेवाला गायक निमीलित[3], ऊँट की तरह ग्रीवा उठाकर गानेवाला गायक उष्ट्रग्रीव[4], हाथ पैर फैलाकर गानेवाला गायक प्रसारी[5] होता है।

गायक के लिये गमक आदि का जानना भी आवश्यक है। इसके ज्ञान के अनुसार भी कम्पित,[6] हीन,[7] तथा उत्कृष्ट नामक अधम गायक होते हैं।

गान विद्या में कीर्ति प्राप्त करना बहुत कुछ शरीर पर निर्भर है। शारीर की परिभाषा सोमेश्वर ने निम्न प्रकार से दी है—

अभ्यासेन विना यस्तु रागाणां व्यक्तिकारकम्।
शरीरेण सहोत्पन्नं शारीरं तत्प्रचक्षते ॥[8]

शारीर के अनुसार भी उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकार के गायक होते है। शारीर मध्यम गायक का सोमेश्वर ने विशेष रूप से वर्णन किया है—

शारीरं सहजाधीतो गायकः स हि मध्यमः ॥
शारीरं शोभनं यस्य प्राञ्जलं गीयते भृशम्।
विषमे नैव गातव्यं मध्यमः सोपि कीर्तितः ॥
काम्यं च गमकं यस्तु ह्रस्वं दोषविवर्जितम्।
युनक्ति प्राञ्जले गीते गायको मध्यमः स्मृतः ॥
बृहत्प्रबन्धनिर्माणसहानगक्रियायुतान् ।
प्रकर्तुं न विजानाति स शारीरोपि मध्यमः ॥[9]

शारीर गायक में गान विद्या का लक्षण उसके शरीर मे उसी प्रकार विद्यमान रहता है जिस प्रकार चम्पापुष्प में गन्ध इक्षु दण्ड मे माधुर्यं स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है।[11] इसको गायक पूर्व जन्म के पुण्यों द्वारा ही प्राप्त करता है—

अन्यजन्मकृताभ्यासा ज्ञानाद्योगाच्छिवार्चनात्।
शारीरं प्राप्यते पुण्यैरपापेनैव लभ्यते ॥[12]

---

१ वही ४।१६।१८१९। २ वही ४।१६।१८२०।
३ वही ४।१६।१८२१। ४ वही ४।१६।१८२२।
५ वही ४।१६।१८२३। ६ वही ४।१६।१८२५।
७ वही ४।१६।१८२६। ८ वही ४।१६।१९२७।
९ वही ४।१६। १८३२। १० वही ४।१६।१६२८ ३२।
११ वही ४।१६।१८३३। १२ वही ४।१६।१८३४।

शरीर के लक्षण के अनुसार सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के गायको का वर्णन किया है—

एकलो गायक स स्याद्यो वद्यमलक स्मृत ॥
मिलित्वा बहुभिर्यस्तु गीत गायति गायक ।
स वृन्दो गायकस्तेषा पूर्वपूर्व भवद्वर ॥
शिक्षको भावकश्चैव रञ्जको रसिकस्तथा ।
अपर कूटकाराख्य पञ्चमो गदितो बुधै ॥[1]

इसी प्रकार शिक्षाकार,[2] भावक,[3] रसिक, भावो के अनुसार गाने वाला, रजक[4] श्रोताओं के हृदय को जानकर गाने वाला, रसिक[5] पुलकित अग होकर गानेवाला,[6] कुटिकार अन्य के गान को सुनकर उसी प्रकार गाने मे दक्ष, समर्थ[7] (स्थानत्रय के प्रयोग मे कुशल), प्रगल्भ (स्वर विन्यास मे कुशल), आदि गायक होते है।

सोमेश्वर ने गमक का उचितरूप से प्रयोग करने वाले गायक को निपुण तथा श्रेष्ठ बतलाया है और गमक को परिभाषा निम्न प्रकार से दी है—

'गमक सप्तधा भिन्न प्रयोक्तु निपुणो वर ।
नाम्यादिस्थानिष्पन्नैर्ध्वनिभि सयुत तु य ॥
द्वितीया श्रुतिमाक्रम्य पुनरावर्त्तते मुहु ।
दत्तत्रिगुणिताद्वेगात्पूरित गमक विदु ॥"[9]

यह गमक अनेक प्रकार के होते है। ये भिन्न भिन्न प्रकार से गीतो में प्रयुक्त होते है। सोमेश्वर ने कम्पित, लीन, आन्दोलित, तिरिप, आदन, त्रिभिन्न, नाभिस्थ, देहस्थ, कण्ठस्थ, मुद्रक, आदि गमकों का वर्णन किया है।[10] इस प्रकार के गमकों से युक्त धारा प्रवाह रूप से गाने वाला गायक उत्तम होता है।[11] श्वास को देर तक रोक कर अपने बल के द्वारा गाने वाला गायक भी उत्तम प्रकार का होता है।[12] लय, ताल की कला में दक्ष तथा वाद्य सन्धि को प्रदशित

१ मानसो० ४।१६।१८३५,३७। २ वही ४।१६।१८३८।
३ वही ४।१६।१८३९। ४ वही ४।१६।१८४०।
५ वही ४।१६।१८४१। ६ वही ४।१६।१८४२।
७ वही ४।१६।१८४३। ८ वही ४।१६।१८४४।
९ वही ४।१६।१८४६ १८४७। १० वही ४।१६।१८४८ १८५५।
११ वही ४।१६।१८५६ १८५७।
१२ 'श्वास निरुध्य सुचिर यो हि गायति विश्रतम ।
उत्तमो गायक ख्यातो गेये निजबलान्वित ॥' वही ४।१६।१८५८।

कर यति पर अपना शिर रोकने वाला गायक कुगोवर,[१] स्वर, वर्ण ताल को व्यक्त करके शोभन ध्वनि से युक्त गाने वाला गायक स्नुघट[२] तथा शास्त्र प्रयोग के अनुसार जो दोष शून्य गान गाता है वह क्रियापरक[३] गायक होता है।

ध्वनि के ज्ञान के बिना कोई भी गायक सफल गायक नही हो सकता। सोमेश्वर ने ध्वनि की परिभाषा के साथ ही साथ मधुर, स्निग्ध, घन, श्रायक, स्वानक पाच ध्वनियो का वर्णन किया है—

वेणुवीणासमो नादो युक्तोसौ ध्वनिरिष्यते।
कोकिलास्वनसकाशो मधुरध्वनिरुच्यते ॥
उच्चस्वानेपि य श्राव्य स्निग्धध्वनिरसौ मत ।
अत्तसो निविडो यस्तु घनोसौ ध्वनिरीरित ॥
दूरस्थ श्रयते यस्तु चन्द्रमध्यस्थितोपि वा।
माधुर्यादिगुणोपेतो श्रायको ध्वनिरीरित ॥
उच्चस्वनेपि य श्राव्य शोभनो लक्षणान्वित ।
ध्वनीनामुत्तम प्रोक्तो ध्वनिस्वानकशोभन ॥[४]

सोमेश्वर ने गायक के लिये सात महागुणो का होना आवश्यक बतलाया है—

'शरीर च ध्वनि मेध्यो प्रौढिर्गमककौशलम्।
तालज्ञता निर्भयता गातु सप्त महागुणा ॥[५]

इस प्रकार सातों गुणो से युक्त गायक को सोमेश्वर ने सर्वश्रेष्ठ गायक माना है। स्वर, पद तथा ताल से युक्त स्वर लहरी को ही गीत माना है—

'स्वराणा च पदाना च तालानाञ्च समन्वय ।
गीत इत्युच्यते ताल पदहीना यतिर्भवेत् ॥'[६]

सोमेश्वर ने विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की रुचि के अनुसार विभिन्न प्रकार के गीतो का वर्णन किया है। आचार्य गण सम गीत, पण्डित गण व्यक्त, स्त्रीजन मधुर, शूरवीर उत्साहपूर्ण गीत, विरहातुर जन करुण गीत, विटगण परिहासपूर्ण, योगिनिया आध्यात्मिक गीत, भक्त गण भक्ति पूर्ण गीत पसन्द करते हैं।[७] पक्ष तथा ताल में समान समगीत आचार्यगण पसन्द करते है। सन्धि दोष से

---

१ वही ४।१६।१८५९। २ वही ४।१६।१८६०।
३ वही ४।१६।१८६१। ४ वही ४।१६।१८६२ १८६५।
५ वही ४।१६।१८६८। ६ वही ४।१६।१८७५ ७७।
७ वही ४।१६।१८७७ ७९।

विवर्जित व्यक्त स्वरो मे युक्त गान पण्डित गण, ललित अक्षरों से युक्त, शृंगारादि से पूर्ण मधुर गान प्रम॰ा जनों को प्रिय है। अत्यन्त उच्च स्वरों के बाहुल्य वाला गान अन्य जनो को प्रिय है—

'पञ्चताले सम गीत सममाचार्यवल्लभम्।
क्रियाकारकसयुक्त व्यक्त पण्डितसम्मतम्॥
ललितैरक्षरैर्युक्त शृंगाररसरञ्जितम्।
श्राव्य नादसमोपेत मधुर प्रमदाप्रियम्॥
स्वरैरुच्चतरैर्युक्त प्रयोगैर्बहुलीकृतम्।
विमृष्ट नाम तद्गीतमितरेषा मनोहरम्॥'[1]

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने अवसर के अनुसार गाये जाने वाले गीतों का वर्णन किया है। विवाह के समय मगलपूर्णगीत, भक्तो के समक्ष श्रद्धोत्पादक गीत गाने का आदेश दिया है। इसी प्रकार प्रौढ जना के प्रिय गीत का उल्लेख हुआ है।[3] तत्पश्चात् स्थायी, अन्तरा, आरोह तथा अवरोह का वर्णन किया है[4]। इसी प्रकार के अनेक स्वरों, गमक, नाद तथा अनेक प्रकार के अक्षर, राग तथा ताल से पूर्ण गीत सुनने का राजा के लिए आदेश दिया है—

नाना प्रवरचित्त नानारागविनिर्मितम्।
नाना तालसमायुक्त गीतमाकर्णयेन्नृप॥'[5]

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने अनेक प्रकार की भाषाओं तथा अनेक देशों

---

१ वही ४।१६।१८८१ ८७।

२ 'पदैर्नियोजित गीत शुद्धपञ्चविनिर्मितम।
विवाहाद्युत्सवे गय मगल महिमाग्रतम॥
देवतास्तुतिसयुक्त तत्प्रभावप्रबोधकम।
आस्तिक्योत्पादन गीत स्तोत्र भक्तजनप्रियम्॥'
वही ४।१६।१८८ ८९।

३ अत्युच्चस्थानक गीत तालपातैररक्षितम्।
प्रयोगबहुल रूक्ष विषसवादिवल्लभम्॥
सुस्थाने सरल श्राव्य शुद्ध काकुविराजितम।
सुप्रमाण क्रमेणोक्त गीत प्रौढजनप्रियम्॥
वही ४।१६।१८९० ९२।

४ वही २।१६।१८९३। ५ वही ४।१६।१८९४,९५।

से उत्पन्न हुए रागो का वर्णन किया है और विनोद के लिए प्रयुक्त होने वाले रागो का वर्णन किया है[1]। सोमेश्वर ने पाच प्रकार के कैशिक, पाच प्रकार के कौशिक, तीन प्रकार के गौड कौशिक, सोमराग, माल्व कौशिक, हिदोल्क, देशिहिन्दोलक, भैरवी, मल्लार आदि रागो का वर्णन किया है[2]। इसके अतिरिक्त पौराख्या, श्रवणी, छिति, दुल्लीत, तूरी, तुल्ली, वधी, खभार, कामोद, कामोदासी, देशाक, दन्नीमी, डाब, तुण्ड आदि अनेक देशी (दक्षिण मे प्रचलित) रागों का वर्णन किया है।[3]

इसी गीत विनोद के प्रकरण मे सोमेश्वर ने सभी प्रकार के छन्दो की परिभाषाओं एव उनके लक्षणो का वर्णन किया है। इन छन्दों का लक्षण सोमेश्वर ने गीत विद्या की शिक्षा के कारण ही दिया है—

वृत्त वृत्तस्य लक्ष्मेद दर्शित लक्ष्यसयुतम् ।
सोमभूपेन शिक्षार्थ गीतविद्यावता नृणाम् ॥[5]

छन्दों के लक्षण के पश्चात् सोमेश्वर देव ने गद्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—

पदाना नियमो नास्ति छन्दो यत्र न विद्यते ।
समासपदभूयिष्ठ तत्तु गद्य निगद्यते ॥[6]

गद्य के अनेक उदाहरण भी दिये हैं। सोमेश्वर ने इस प्रकरण मे महाराष्ट्र देश में अनेक अवसरों पर गाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के रागो का वर्णन किया है—

उत्सवे मगले गेया शूर्या योषिज्जनैस्तथा ।
महाराष्ट्रेषु योषिद्भिरोवी गेया तु कडने ॥
हीला केचवरी गेया राहडी वीरवर्णने ।
दत्ती गोपालकैर्वादे गातव्या निजभाषया ॥[7]

इस प्रकार के अनेक शुभ लक्षणों से, स्वरों, अक्षरों, आदि से युक्त रम्य गीत विनोद के समय गाये जाते थे। गीत विनोद के समय राजा के साथ कुमार, महाराज्ञी, युवराज आदि सभी जन रहते थे। इस सभा में गायक लोग विशेष प्रकार से बैठते थे। सबसे आगे गायकार बैठता था उसके दोनों और

१ वही ४।१६।१९०३। २ वही ४।१६।१९२० ५०।
३ वही ४।१६।१९५५ ८१। ४ वही ४।१६।१९९० २०३३।
५ वही ४।१६।२०३४। ६ वही ४।१६।२०३५।
७ वही ४।१६।२०५२ ५४।

अन्य गवैये बैठते थे और उनके पीछे अन्य लोग रहते थे। इन सब के बैठने के पश्चात् गीत आरम्भ होता था—

पुरो वा गायकार स्यात्पत्तयोर्गायकावरा ।
तेषा पश्चात्समीपस्था वाशिका लक्षणान्विता ॥
तेषा पश्चान्निवश्यास्युर्गायिन्यो मधुरस्वरा ।
सर्वदोषविनिर्मुक्ता रूपयौवनसयुता ।
सर्वेषा पृष्ठत कुर्याच्छिन्नापाटविकादिका ॥
एव सर्वान्निवेश्याथ ततो गीत प्रवर्त्तते।[1]

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने देशी रागा का विस्तृत वर्णन किया है[2]।

केवल धन के लोभ से गाने वाले गायक को सोमेश्वर ने निन्दित बतलाया है—

यस्तु गायति लोभेन प्राकृतान्गुणवर्जितान् ।
स निद्य स्यात्सता मध्येऽसत् सहास्थापन महत् ॥[3]

सोमेश्वर गीत को मुक्ति का साधन मानते हैं। क्योंकि जो भक्ति से देवताओं की स्तुति करता है उसकी मुक्ति हो जाती है इसी प्रकार जो गायक राजा को आनन्दित करने के लिये हृदय से गाता है उसकी भी मुक्ति हो जाती है[4]।

सोमेश्वर ने गीत विनोद का अत्यन्त विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि सोमेश्वर एक सफल राजा होने के साथ ही साथ एक योग्य तथा सुशिक्षित सगीताचार्य था। उसे प्रत्येक प्रकार के राग एव उसके लक्षणों का पूर्ण ज्ञान था। सोमेश्वर की सगीत विषयक विद्वत्ता का प्रसग सगीत रत्नाकर में भी प्राप्त होता है—

रुद्रटो नान्यभूपाल भोजभूवल्लभस्तथा ।
परमर्दी च सोमेशो जगदेकमहीपति ॥[5]

एक अन्य स्थान पर भी महाराज सोमेश्वर को सगीताचार्य कहा गया है—

भाण्डीकभाषयोद्दिष्टा भोजसोमेश्वरादिभि ।
गेयलक्षणत केचिद् वक्ष्यन्ते लक्ष्यसम्भवा ॥[6]

वास्तव मे सोमेश्वर के राज्य में सगीत का प्रत्येक स्थान पर अधिक प्रयोग होता था इससे विदित होता है कि उनका जीवन ही सगीतमय था।

---

१ वही ४।१६।२०७२ ७५ । २ वही ४।१६।२२७५ २३८१ ।
३ वही ४।१६।२४६५ । ४ वही ४।१६।२४६६ ।
५ सगीतरत्नाकर १।१८ । ६ सगीतसमयसार २।१ ।

भारतीय सगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी गई है—

जग्राह पाठ्य ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च॥[१]

सगीतमकरन्द में भी सामवेद द्वारा भारतीय सगीत की उत्पत्ति बतलाई गई है—

'सामवेदादिद गीत सजग्राह पितामह ।
तद्गीत नारदायैव तेन लोकेषु वर्णितम् ॥'[२]

सामवेद के सूक्त अत्यन्त मधुर, गाये जाने योग्य, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों से पूर्ण होते थे ।[३] यही इन तीनों स्वरो की परिभाषा मे शनै शनै परिवर्तन होता गया और उदात्त, निषाद तथा गान्धार के लिये, अनुदात्त ऋषभ तथा धैवत के लिये तथा स्वरित, षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम स्वर के लिये प्रयोग मे लाये जाने लगे । इस प्रकार उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित इन तीन स्वरों से षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पचम, धैवत तथा निषाद इन सात स्वरों का सृजन हुआ जिन पर सम्पूर्ण भारतीय सगीत की उच्च अट्टालिका आधारित है ।

रागों मे भी सगीत के अनेक प्रसग प्राप्त होते है । श्रीमद्भागवत पुराण मे कृष्ण का ग्वाल बालो के साथ गाने,[४] गोपियों के गाना गाने[५] तथा कृष्ण की लीला गाने का प्रसग प्राप्त होता है ।[६] हरिवश पुराण[७] मे भीम के उत्तराधिकारियों की स्त्रियो द्वारा अनेक प्रकार के गीत गाये जाने का उल्लेख हुआ है ।

वात्स्यायन ने भी गीत आदि का अभ्यास करने के लिये सगीत गोष्ठी का उल्लेख किया है । इसमे सभी नागरक आकर अन्य कलाओ के साथ ही साथ सगीत का अभ्यास करते थे ।[८]

बौद्ध साहित्य मे गीत से सम्बन्धित अनेक प्रसग प्राप्त होते है ।[९] ललित

---

१ नाटयशास्त्र १।१७ । २ सगीत मकर द १।१८ ।
३ पाणिनि ४।२।२९,३०, तथा ३२ ।
'उच्चैरुदात्त नीचैरनुदात्त समाहार स्वरित ।
४ श्रीमद्० पु० १०।१८।१३ ।
५ 'उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथप ।
श्रीमद्० पु० १० २९।४४ १०।३४।२१ ।
६ एव व्रजस्त्रियो राजन कृष्णलीलानुगायती ' ।
श्रीमद० पु० १०।३५।२६ ।
७ हरिवश पुराण ८९।८२ । ८ कामसूत्र पृ० ३२ ।
९ ए० वेक्ट सूब्रिया दिकलाज सूची १ ।
समवाय सुत्त तथा सूची २, ललितविस्तर पृ० १७८ ।

विस्तर मे गीतों के सुचारु रूप से पढने का उल्लेख हुआ है। कादम्बरी में नारद द्वारा सगीत की शिक्षा दिये जाने का प्रसग प्राप्त होता है। इसको गन्धर्वशास्त्र माना गया है।[1]

वाद्य विनोद

सगीत के साथ ही साथ सोमेश्वर ने वाद्य विनोद का भी विरतार पूर्वक वर्णन किया है। विनोद के लिये चार प्रकार के वाद्यो का प्रयोग करने का आदेश दिया है—

> पृथग्वाद्य भवेदेक द्वितीय गतिसगतम्।
> वृत्तानुग तृतीय च तुरीय गीतनृत्तगम् ॥
> एव चतुर्विध वाद्य विनोदार्थं महीपति।
> सभ्यै सह समासीन श्रृणुयात्तु समाहित ॥"[2]

इन सभी वाद्यो को सब सभ्यों के साथ एकत्र होकर राजा को सुनना चाहिये। गीत तथा नृत्य का वाद्य के बिना कुछ भी अस्तित्व नहीं रह जाता। वाद्य से पूर्ण नृत्य तथा सगीत की शोभा बढ जाती है और इसी कारण नृत्य तथा सगीत में वाद्य की ही प्रधानता है—

> वाद्येन राजते गीत न नृत्य वाद्यवजितम्।
> तस्माद्वाद्य प्रधान स्याद् गीतनृत्तक्रियाविधौ ॥[3]

तन्त्री तथा क्रिया के भेद से वीणा आदि वाद्य अनेक प्रकार के होते है।[4] क्रिया के भेद से सोमेश्वर ने पटह, हुटका, ढक्का तथा घडस चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन किया है।[5] यह वाद्य एक हस्त वाले, द्विहस्त वाले, गोमलानन, धाराघर्षण, फूत्कारजनित आदि अनेक प्रकार के वाद्य वादन के तथा आकार के भेद से होते है।[6] इन वाद्यों का प्रयोग युद्ध, उत्सव, गीत, नृत्य तथा अन्य शुभ अवसरों के समय करना चाहिये—

---

१ नारदीयप्रभृतयो गन्धर्ववद्यविशेषा।
ग धवशास्त्राणि, कादम्बरी पेज ७५।

२ वही ४।१७।२४६८ ६९। ३ वही ४।१७।२४७०।

४ 'तन्त्रीभेदै क्रियाभेदैर्वीणावाद्यमनेकधा।
वही ४।१७।२४७२।

५ 'पटहो च हुटका च ढक्के द्वे घडस तथा।
चतुर्विधस्य वाद्यस्य क्रियाभेदोथ कथ्यते ।।"
वही ४।१७।२४७३,७७।

६ मानसो० ४।१७।२४७७ ७९।

आहवे चोत्सवे चेति तद्वदन्येषु कर्मसु ।
गीतनृत्यैर्विना यस्तु भोगार्थं वाद्यते तदा ॥[१]

ये वाद्य प्रयोग के अनुसार चार प्रकार के होते है । गीत का अनुसरण कर उसके साथ बजने वाले वाद्य गीतानुग, नृत्य के समय उसके अनुसार बजने वाले वाद्य नृत्यानुग, गीत के साथ ही साथ पात्र का अनुसरण करने वाले वाद्य पात्रानुग तथा गीत और नृत्य दोनो के साथ बजने वाले वाद्य गीतनृत्यानुग होते हैं । ये चारो प्रकार के वाद्य हर्ष देने वाले होते हैं—

एव चतुर्विध वाद्य कथित हर्षदायकम्"[३]

सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के वाद्यों का वर्णन किया है । खादिर की लकडी का बना हुआ, सुवृत्त, द्वादश अगुल का, छ वितस्त के गर्भरन्ध्र के अतिरिक्त अन्य तीन रन्ध्र से युक्त पत्रिका नामक वाद्य तथा दो दण्डो से युक्त, सुवृत्त, चार अगुल का रन्ध्रों से पूर्ण खादिर का कुकुभ नामक वाद्य अत्यन्त मनोहर होता है ।[४] इसी प्रकार तुम्बुक, वीणा, सुमुख नाम के वाद्यो का भी प्रयोग गीतो के समय होता था ।[५]

इसी प्रकार उस समय कला, एकतन्त्री आदि कुछ ऐसे वाद्यो का प्रयोग होता था जो बहुत ही रम्य होते थे । एकतन्त्री वीणा के दण्ड को शम्भु, तन्त्री को उमा, कुकुभ को जनार्दन, पत्रिका को कमला, दोरक को वासुकि माना है और इन्हे ब्रह्महत्या का नाश करने वाला माना है—

एतल्लक्षणयुक्तेयमेकतन्त्री विराजते ।
दण्ड शम्भुरुमा तन्त्री कुकुभश्च जनार्दन ॥
पत्रिका कमला तुम्ब ब्रह्मा नाभि सरस्वती ।
दोरको वासुकि प्रोक्तो जीवाया तु सुधाकर ॥
दोरिकाया स्थित सूर्यस्तस्मादेषा हि पावनी ।
दोरिकायास्तलोद्देश वामे स्कन्धे विधाय च ॥[६]

वीणा को बजाने की विधि का भी विस्तार पूर्वक उल्लेख सोमेश्वर ने किया है । इसमे अधिकाशत तर्जनी का ही प्रयोग होता है । तर्जनी के अनेक स्थानो के द्वारा होने वाले अनेक प्रकार के आघात होते है—

---

१ वही ४।१७।२४८१ । २ वही ४।१७।२४८२ ८३ ।
३ वही ४।१७।२४८४ । ४ वही ४।१७ २४८५ ९१ ।
५ वही ४।१७।२४९२ २५०० । ६ वही ४।१७।२५०७,११ ।

तर्जन्या सानुविख्याता पूती नाम विचक्षणै ।
सपात इति विज्ञेयस्तर्जन्यैत्र्यवाहति ॥
तर्जन्ययात प्रहरण तल्लेख परिकीर्तित ।
अन्तर्मध्यगया घात उल्लेख इति कीत्तित ॥
मध्ये यो वाद्यते घात स तु स्यादवलेखक ।
तर्जन्या पार्श्वतो हन्याद्भ्येते वाशयावति ॥[1]

इसी प्रकार तन्त्री, सप्रसार,[2] हस्त,[3] कुहर,[4] धाराख्य,[5] कुट्टी,[6] ककाल, वस्तु, गजलील,[7] पक्षरुत दस प्रकार के सुन्दर वाद्यों का उल्लेख किया है। इन सभी के वाहन मे दक्ष व्यक्ति शारीर कहलाता था—

उपयोगोस्य शिक्षाया विवादो नोपयुज्यते ।
वीणावादनसिद्ध्यर्थं निर्मित शकरेण हि ॥
दृढासनस्थिरमना प्रगल्भश्च जितेन्द्रिय ।
गात्रसौष्ठवसयुक्तो हस्तयोर्द्विजितश्रम ॥
आभीरस्तु सशारीरो रागरागागकोविद ।
वीणावादनविद्याया वीणाकारो वरो भवेत् ॥[8]

ये पूर्वोक्त सभी प्रकार के वाद्य एकतन्त्री वाले है[9] । सोमेश्वर ने सकल्प तथा निष्कल दो प्रकार के और वाद्यो का उल्लेख किया है—

जीवालग्ना प्रकर्तव्या यथा नादोभिजायते ।
स्थूलध्वनिर्भवेद्यत्र वाद्य तत्सकल भवेत् ॥
कलाहीना प्रकर्त्तव्या छन्दोरूत्पादहेतवे ।
तर्जनी मूलसलग्ना तन्त्री तु निष्कल भवेत् ॥[12]

इसके अतिरिक्त तीन प्रकार के तुम्बक होते है—लघु तुम्ब, पृथुतुम्ब तथा

---

१ मानसो० ४।१७।२५२२ २५२४ । २ वही ४।१७।२५३९ ।
३ वही ४।१७।२५४१ । ४ वही ४।१७।२५४२ ।
५ वही ४।१७।२५४३ । ६ वही ४।१७।२५४४ ।
७ वही ४।१७।२५४५ । ८ वही ४।१७।२५४९ ।
९ वही ४।१७।२५४८ । १० वही ४।१७। २५५१ २५५३ ।
११ सकल निष्कल चेति द्विविध वाद्यमीरितम ।
एकतन्त्र्यास्त्वय भेद कथित शम्भुना पुरा ॥ ४।१७।२५५४ ।
१२ वही ४।१७।२५५५ २५५६ ।

किन्नरी[१] तुम्ब। सोमेश्वर ने किन्नरी तुम्बक के विषय में लिखा है—

वितस्त्यवधिकायामा परिणाहे गुणाधिका।
स्नायुतन्त्रीसमायुक्ता तुबकत्रयसयुता ॥[२]

इसी प्रकार मृदग, मसृण, वलय, लोहपत्रिका आदि वाद्यों की ध्वनि भी अत्यन्त कोमल होती थी और उनका प्रयोग स्त्रियों के नृत्य के समय होता था। सोमेश्वर ने टवर्ग तथा तवर्ग को पाटवर्ण माना है—

टवर्गश्च तवर्गश्च पाटवर्णा प्रकीर्त्तिता ॥[४]

ढक्का नामक वाद्य मे भी बजने वाले पाटवर्णों का वर्णन किया है—

घटश्चैव तटश्चैव डगिश्चव ड्डुपोद्भवा।
पाटवर्णा इमे सवे ढक्काया परिकीर्तिता ॥[५]

इसी प्रकार ढक्का के अन्य वर्णों का भी उल्लेख किया है। इसका प्रयोग विशेष रूप से शक्ति तथा देवपूजा मे होता था—

शक्तिदेवतपूजाया चयायानविधौ तथा।
वादनीया प्रयत्नेन मडी ढक्का विचक्षणै ॥[७]

त्रिवली नामक वाद्य से 'द द दां' आदि पद निस्सृत होते थे और मधुपान से प्रमत्त हुई स्त्रियों के लास्य नृत्य के समय इसका प्रयोग होता था—

द द दोमक्षरै पादैर्वादनीया विचक्षणै।
मधुपानप्रमत्ताना योषिता लास्यनर्तने ॥[८]

करटा नामक वाद्य का वादन उत्सव, विवाह आदि अवसरों पर होता था अन्य कार्यों के अवसर पर भी करटा का वादन होता था—

---

१ प्रथम लघुतु ब स्याद द्वितीय पजुतुम्बकम्।
कथिता कि नरी लघ्वी तुम्बकत्रयभूषिता ॥
४।१७।२५५७७७८।

२ ४।१७।२५७९ २५८०। ३ वही ४।१७।२५९५,२६०९।

एव लक्षणसयुक्त पटहस्थानकाभिध।
स्त्रीनत्यस्योपयुक्तोय कथित सोमभूभुजा ॥

४ वही ४।१७।२६१०। ५ वही ४।१७।२६३५।

६ पाटाक्षर अडुक्काव मडी ढक्त्राम्तु कल्पितम।
मडली मध्यरङ्गाञ्च वामहस्तेन पीडयेत् ॥ ४।१७।२६३८।

७ वही ४।१७।२६३९ ४०। ८ वही४।१७।२६४३।

उत्सवे च विवाहे च यात्राया नृपमन्दिरे।
इत्यादिसर्वकार्येषु करटा विनियुज्यते ॥[1]

इसके अतिरिक्त ढकुली,[2] डमरु,[3] ढक्का,[4] भेरी,[5] दुन्दुभि,[6] आदि वाद्यों का भी वादन होता था। इन वाद्यों से होने वाले निसार[7] टक्की, रुलित,[8] आदि महानादों का वर्णन किया है। मान तथा वाद के भेद से सोमेश्वर ने करपाट, गाढबध, घोटवाद, परिश्रवणक, दण्डहस्त, दुदर आदि वाद्यो का उल्लेख किया है।[9]

सोमेश्वर ने वाद्यो में प्रयुक्त होनेवाले प्रबन्ध का भी वणन किया है—

कथिता साम्प्रत वच्ये प्रबन्धान्वाद्यसगतान्।
कालच्छद प्रबन्धो यो विरामो यो निरन्तर ॥
यतिनिगद्यते सा तु प्रबन्धैर्वाद्यकर्तृभि ।
ताललातसमानया पाटवर्ण प्रकल्पित ॥[11]

उत्तान, अवच्छेद, मलय, निवड, खडक, खडच्छेद, पुनरुद्ग्राह, ध्रुवक तथा सर आदि अनेक प्रकार के प्रबन्ध होते है।[12] इनका प्रयोग गीत तथा नृत्य के समय किया जाता था—

एव प्रबन्धा विविधा गीतनृत्तोपयोगिन ।[13]

इन सभी प्रबन्धों के लक्षणो का वर्णन मानसोल्लास मे हुआ है।

वाद्यों के वादन मे भी ताल की आवश्यकता पडती है। सोमेश्वर ने ताल की परिभाषा निम्नप्रकार से दी है—

गीत वाद्य तथा नृत्य त्रितय येन लभ्यते।
तेन ताल इति ख्यात सोमेश्वरमहीभुजा ॥[14]

ताल के बिना न तो गति तथा नृत्य सुन्दर लगता है और न वाद्य ही सुनने में

---

१ वही ४।१७।२६६४,६५। २ वही ४।१७।२६६९।
३ वही ४।१७।२६७३। ४ वही ४।१०।२६७३।
५ वही ४।१७।२६७४। ६ वही ४।१७।२६७६।
७ वही ४।१७।२६७८। ८ वही ४।१७।२६७९।
९ वही ४।१७।२६८०। १० वही ४।१७।२६८६ २७०१।
११ वही ४।१७।२७०२,२७०३। १२ वही ४।१७।२७०३ २७१९।
१३ वही ४।१७।२७१०। १४ वही ४।१७।२७३० ३१।

मनोहर लगता है।[1] चतुताल, त्रिताल, मिश्रताल तथा खण्ड ताल ये चार प्रकार के ताल होते हैं। इन्हें तन्त्री भी कहते हैं—

एव चतुर्विधास्तालास्ते तन्त्री परिकीर्तिता ।[2]

इन चारो ही तालो के लक्षणों का भी वर्णन किया है—

चत्वारो गुरवो यत्र गुरुद्वितयवर्द्धिता ।
हीना वा गुरुयुग्मेन तालास्ते चतुरस्रका ॥
गुरुत्रय भवेद्यस्मिन् षड्भि षड्भि विवधित ।
त्र्यस्र स तालो विज्ञेय प्रस्तारेषु बहुष्वपि ।
चतुरस्रो गुरुर्यत्र स्यादसौ गुरुयुग्मकम् ।
प्रवेश्यते स बोद्धव्यस्तालो मिश्रसमाख्यया ॥
त्र्यस्रैर्वा चतुरस्रैर्वा भज्यते वासवैर्गुरू ।
यत्र ताल स विज्ञेय खण्डनामाङ्कितो बुधै ॥[3]

इन सभी तालो की गति एव काल का भी उल्लेख किया गया है।[4] ताल के पतन से वार्तिक, दक्षिण, चित्र तथा चित्रतर इन चार प्रकार के मानों का वर्णन किया है—

कदाचिच्छीघ्रता याति विलय याति कर्हिचित् ।
वार्त्तिक दक्षिण चित्र तुर्य चित्रतर तथा ॥
एव चतुर्विध मान तालपाते प्रकीर्तितम् ॥[5]

निज मान प्रवर्तन को वार्त्तिक, विलम्बित मान को दक्षिण, शीघ्र मान को चित्र तथा अतिशीघ्र मान को चित्रतर मान बतलाया गया है।[6] लघु तथा गुरु के

---

१ न तालेन विना गीत न वाद्य तालवर्जितम ।
न नृत्य तालहीन स्यादतस्तत्तालोऽत्र कारणम् ॥
मानसो० ४।१७।२७२९ ३० ।

२ मानसो० ४।१७।२७३१ ३२ । ३ वही ४।१७।३७३२ ३६ ।

४ वही ४।१७।२७३७ ४१ । ५ वही ४।१७।२७४२ ४३ ।

६ यद्वर्त्तते निज मान वार्त्तिक तत्प्रकीर्त्तित ॥
विलम्बितेन मानेन दक्षिण परिकीर्तित ।
शीघ्रमानेन चित्र स्यादतिशीघ्र तदेव चेत् ॥
प्राहुश्चित्रतर मानमिति मानविनिर्णय ।
अतिमान लघुर्योसावेकपात नियोजित ॥ ४।१७।२७४३ ४५ ।

अनुसार सम, विषम, ककाल तथा तुर्य चार प्रकार के तालों के पाव होते है।[1] चतुष्क, षष्टक, पूर्णक, गुरुगि चार प्रकार के पातो का और उल्लेख हुआ है।[2] इसके अतिरिक्त कल्पित, यति, कुद्रक, तृतीयक, जय, राज, लोचन, तुरगलील तथा कीति आदि तालों का उल्लेख किया है।[3] पाट वण के विचार से पट वाद्यक, क्रमा, शुक्ति आदि वाद्य होते है।

इन सभी वाद्यों के अनिरिक्त वशी का भी वर्णन किया है। सर्वप्रथम सोमेश्वर ने वशी के उपयुक्त अनेक प्रकार के बासों का उल्लेख किया है। पाच अगुल का सोलह अगुल का आयत मे वश होना चाहिये।[७] वशी के गुणो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[८]

पाव नामक वाद्य को अत्यन्त मनोहर तथा कर्णों को सुख देनेवाला बताया है—

स्वल्पध्वनिविशिष्टोऽय पाव कर्णसुखावह ।[९]

इसी प्रकार दीर्घ दण्ड से युक्त काहल नामक वाद्य भी अत्यन्त मनोहर स्वर वाला होता है।[1] अन्त मे शृङ्ग तथा माहिष नामक वाद्यो को सोमेश्वर ने सभी दोषों से शून्य बताया है—

शृग च माहिष श्लक्ष्ण सर्वदोषविवर्जितम् ।[11]

इन सभी प्रकार के वाद्यो द्वारा राजा को उत्सव तथा उद्यान विहार के अवसर पर विनोद कराना चाहिये।[12]

सगीत की ही भाति वाद्यों का भी इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भेरी

---

१ मानसो० ४।१७।२७४९ ५२ ।

२ आदौ तु यच्चतुष्क स्याद्गुरुस्ते ततो लघु ।
षटक भवेद्यत्रताले पूर्णक कालसज्ञकम ॥
द्रुतत्रय लघुश्चैकस्ताले गुरुगिसज्ञिते ।
पाताश्चत्वार एते स्युनिर्णीता सोमभूभुजा ॥"
मानसो० ४।१७।२७५४ ।

३ वही ४।१७।२७५५ २७७६ ।
४ वही ४।१७।२७९३ ।
५ वही ४।१७।२७९४ ।
६ वही ४।१७।२७९९ ।
७ वही ४।१७।२८०१,२८०२ ।
८ वही ४।१७।२८११ २८१५ ।
९ वही ४।१७।२८२५ २८२७ ।
१० वही ४।१७।२८२९-३३ ।
११ वही ४।१७।२८३४ ३६ ।

१२ "तानुद्धय महीपाल ससतुष्टप्रियावृत ।
उत्सवे च तथोद्याने कुर्याद्वाद्यविनोदनम् ॥" वही ४।१७।२८३७ ।

गोतवादित, विसूक दस्सना पटिविरतो समणो गोतमो

मृदग भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ससार का सर्वोत्तम वैज्ञानिक वाद्य माना गया है।[1] मल्यागिरि ने ५८ प्रकार के वाद्यों के नाम दिये हैं जो शख, शृग, शृगिक आदि है।[2] दीघनिकाय मे भी अनेक वाद्यों के नामो का उल्लेख हुआ है—

मम वा भिक्खवे परे वण्ण भासेय्यु, धम्मस्स वा वण्ण भासेय्यु, सखस्स वा वण्ण अम्हेमूति ॥[3]

कादम्बरी मे वीणा के साथ ही साथ और अनेक वाद्यों के नाम आये हैं—

वीणामुरजकास्यतालदर्दुरपुटप्रभृतीनि वाद्यानि।[4]

इस प्रकार भारतीय आदि काल से ही वाद्य के प्रेमी रहे है। इन सभी वाद्यों का प्रयोग वर्तमान युग में शास्त्रीय तथा सरल दोनों ही सगीतो के साथ होता है।

नृत्यविनोद

प्राचीन काल मे नृत्य अधिकाशत व्यक्तियो के मनोरजन का साधन था। नृत्य का महाराज सोमेश्वर को पूर्ण ज्ञान था इसी कारण इन्होने नृत्य के अवसरो, हावभाव, अग, अपाग तथा प्रत्यगो, दृष्टि एव अनेक प्रकार से सकेतो का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने उत्सव, जय, हर्ष, काम, त्याग, विलास, विवाद तथा परीक्षा आठ अवसरों पर नृत्य कराने का आदेश किया है—

उत्सवेऽपि जये हर्षे कामे त्यागे विलासके।
विवादेऽथ परीक्षाया कार्यं नृत्य विनोदने ॥[5]

इन सभी की परिभाषाये सोमेश्वर ने बडी ही सुन्दरता से दी है। विवाह, पुत्रजन्म, वसत तथा मनुष्यो के एकत्रीकरण को सोमेश्वर ने उत्सव, दूर पर हाथियो द्वारा जय प्राप्ति आदि के समय को हर्ष, चित्त को उद्दीप्त करनेवाला कार्य काम, नर्तकी सम्बन्धी उपभोग विलास, आमर्ष से युक्त कार्य विवाद तथा

२ श्रीमद्भा० पु० १०।७०।२०।

३ राज० (मल्यागिरि की टीका) प० ८२ ८४।

४ दीघनिकाय ब्रह्मजाल सूत्त सू० ६ पृ० ३।

५ ए० वे० दि कलाज सूची ४, कादम्बरी पैरा ७५।

१ मानसो० ४।१८।२८४० ४१।

विद्यागत प्रवीणता को परीक्षा माना है।[१] इसी प्रकार त्याग का परिभाषा भं दी गई है—

नानादेशसमायाता यावकाश्चारणादय ।
तेषा दानार्थमालोक्य त्याग इत्यभिधीयते ॥[२]

सोमेश्वर ने नाट्य, लास्य, ताण्डव, लाघव, विषम तथा विकट इन छ प्रकार के नृत्यो का वर्णन किया है—

नाट्य लास्य ताडव च लाघव विषम तथा ।
विकट चेति निर्दिष्ट नर्तक षट्प्रकारकम् ॥[३]

अभिनयों से युक्त नृत्य नाट्य, नम्र एव ललित नृत्य लास्य, चलचित्र से शून्य दृढ नृत्य ताण्डव, कौतूहल तथा उल्लासपूर्ण नृत्य लघु, भ्रमण, आक्षेप तथा विक्षेप पूर्ण नृत्य विषम, विकृत मुख, हस्त तथा विकृत रूपो से पूर्ण नृत्य विकट होता है। इन नृत्यो में लास्य नृत्य स्त्रियो के उपयुक्त है और ताण्डव नृत्य विशेषत पुरुषो द्वारा ही किया जानेवाला नृत्य है।

छ प्रकार के नृत्यो की ही भातिक नतक भी छ प्रकार के होते है—नर्तकी नट, नर्तक, वैतालिक, चारण तथा लटिका। इस सभी लक्षणों का अलग अलग वर्णन 'मानसोल्लास' मे हुआ है। सुरूपा, तरुणी, श्यामा, तन्वी तथा सुन्दर पयोधरवाली नर्तकी, श्रेष्ठ होती है। इसी प्रकार अनेक भाषाओ के ज्ञाता तथा पाठ करने वाले नट, पदपाठ तथा हस्तपाठ में निपुण नर्तक, अनेक भाषाओं के प्रयोग मे प्रगल्भ वैतालिक, हास्यवाक्य के प्रयोग मे

---

१ विवाहपुत्रज मादिभूतमातृवसतकम ।
एवमादिनिमित्तोत्थो जनैरुत्सवसज्ञिभि ॥
जयश्च प्राप्यते यत्र द्यूतद्वयरणादिषु ।
सतोषजनक सम्यग्विजय परिकीर्त्तित ।
वृत्त विद्यागत सम्यक्प्रावीण्य विद्यते न वा ।
प्रियो लोको हितस्यैतत्परीक्षा सा प्रकीर्त्तिता ॥

वही ४।१८।२८४१ २८४८

२ वही ४।१८।२८४८ ४९। ३ वही ४।१८।२८४९,५०।

४ वही ४।१८।२८५१,२८५६। ५ वही ४।१८।२८५२ ५३।

६ नतका षट्प्रकाराः स्युनतकी नटनर्तकौ।
वैतालिकाश्चारणाश्च तथा च लटिकाऽपि च।

मानसो० ४।१८।२८५८ ५९।

चतुर चारण, अग प्रत्यग का मृदुता से परिवर्तन करने वाले ल्टिक श्रेष्ठ होते है।[1]

सभी प्रकार के नृत्यो मे अपाग, अग तथा प्रत्यगा का प्रयोग होवा है। इसी कारण सोमेश्वर ने शिर, स्कन्ध, वक्ष, जठर, पार्श्वयुग्म, दत तथा जिह्वा इन आठ अपागो, दो बाहु, मणिबन्ध, दो करशाख तथा कटि इन छ अगों तथा भ्रू, नेत्र, नासिका, कपोल, ओष्ठ, हनु, जानु आदि प्रत्यगो का वर्णन किया है और इन सभी के द्वारा किये जाने वाले हाव भावों का वणन किया है।

नृत्य के समय उत्थित[3] प्रवालित,[4] लोल,[5] सम तथा स्नस्त[6] पाच प्रकार के स्कन्धों का प्रयोग होता है। वक्ष भी पाच प्रकार के होते हैं—

> आभुग्न वा निर्भुग्न वा व्याकम्पितमथापि वा।
> उत्प्रसारि सम वेति वक्ष पञ्चविध स्मृतम् ॥[8]

इनके लक्षणों का भी वर्णन सोमेश्वर ने किया है। विषाद, मूर्च्छा तथा शोक मे

---

१ सुरूपा तरुणी त वी श्यामा चारुपयोधरा।
प्रगल्भा सरसा विज्ञैनतकी सा प्रशस्यते ॥
पाठको बहुभाषासु बहुभावविशारद।
रसाभिनयविज्ञानान्नटो वापि नटी वरा ॥
साभ्यस्त पदपाठेषु हस्तपाठविलक्षण।
शिक्षको नत्यविद्याया सुरेको नत्तको वच।
बहुभाषाप्रगल्भो य परिहासविचक्षण ॥
परवादपरो नत्ये सम्यग्वैतालिको वर।
किंकिणीचालने दक्षो गीतवारणकोविद ॥
हास्यवाक्यप्रगल्भश्च सुस्वरश्चारणो वर।
क्षुरिका वचयत्यगे मृद्वगी परिवतते ॥
लघुटलवो भारसहो नत्यको लतिको वर।
नतका कथितास्त्वेव नत्यभेदोभिधीयते ॥'

मनसो० ४।१८।२८५९ ६३।

२ 'अगान्यपागयुक्तानि प्रत्यगसहितानि च।
क्रियास्तेषा प्रवक्ष्यामि विनियोगेन सयुता ॥'

वही ४।१८।२८६७,६७।

३ वही ४।१८।२८८७ ९०। ४. वही ४।१८।२८८८।
५ वही ४।१८।२८८९। ६ वही ४।१८।२८८९।
७ वही ४।१८।२८९०। ८ वही ४।१८।२८९१।

उन्नत पृष्ठ करने पर आग्न, निम्न पृष्ठ करने पर निर्भुग्न, कपित होने पर व्याकपित, दीर्घ निश्वास छोडने पर उत्प्रसारित तथा सौष्ठव कर्म मे सम वक्ष का अभिनय होता है।[1]

वक्ष के पश्चात् क्षाम, लक्ष, पूर्ण, रिक्तपूर चार प्रकार के जठरों का उल्लेख हुआ है—

क्षाम लक्ष तथा पूर्ग रिक्तपूर तथैव च।
एव चतुर्विध प्रोक्त जठर नादवेदिभि ॥[2]

इनमें जृ भण तथा क्षुधा के प्रदर्शन मे क्षाम, तुन्दिल तथा गर्म श्वास निरोध जलोदर एव अन्नाशन के प्रदशन मे पूर्णजठर, चडी, वेताल प्रेतादि के अभिनय मे लक्ष तथा उदान, निकृत कोप, श्वास मे रिक्तपूर जठर का प्रदर्शन होता है।[3] जठर की ही भाति पाच प्रकार के पार्श्व भी होते हैं—नत, समुन्नत, प्रसारित, विवर्तन, तथा अपस्कृत।[4] त्रास के अवसर पर नत, पार्श्व कडूयन तथा गात्र सस्पर्श मे समुन्नत, ऊचे स्थान मे जाने, बाहुकर्षण तथा जलावतरण में प्रसारित, पार्श्व, परिवृत्त तथा मोटन मे विवर्त्तित तथा अपसार म अपस्कृत पार्श्व मुद्रा का प्रदर्शन होता है।[5]

---

१ आभुग्नमुन्नते पृष्ठ निभुग्न निम्नपृष्ठके।
करेन हि ममायुक्त व्याकम्पितमुदीरितम ॥

दीर्घोच्छ्वासे चक्रमे च तुगवस्तुविलोकने।
उत्प्रसारितक काय सम सौष्ठवकर्मणि ॥"

वही ४।१८।२८६२ ९५।

२ वही ४।१८।२८९६।

३ वही ४।१८।२८९७ २९००।

४ नत समुन्नत चैव प्रसारित विवतने ॥
तथापस्कृतमित्येव पञ्चधा पार्श्वमुच्यते।"

५ त्रासे च विनियोक्तव्य नत पार्श्वप्रयोक्तृभि ॥
ऊर्ध्वं व्यधोग्रिताये च पार्श्वकडूयने तथा।
प्रियगात्रोपसस्पर्शे पार्श्वं योज्य समुन्नतम ॥
ऊर्ध्वस्थाना पदार्थाना कर्षणे बाहुयुग्मत।
जलावतरणे पार्श्वं कर्तव्य स्यात् प्रसारितम् ॥
परिवृत्ताश्चागमोटे च विवर्त्तितमुदाहृतम्।
परिवृत्यापेपसारे च कुर्यादपस्कृत बुधै ॥"

वही ४।१८।२९०३ २९०६।

सुन्दर नृत्य का एकाकी आधार कटि है। यह भी छिन्न, विवृत्त, रेचित, आदोलित, उद्वाहित पाच प्रकार की कटि होती है—

छिन्ना विवृत्ता च तथा रचितादोलितापि च।
उद्वाहिता चेति कटि पचधा परिकीर्त्तिता॥[1]

तिर्यक् चालन म छिन्न, चलने मे विवृत प्रकम्पन क्रिया मे रेचित, धीरे तथा तिरछे चलन मे आन्दोलित तथा क्रम से उत्क्षिप्त करने मे उद्वाहिता कटि का प्रदर्शन होता है—

तिर्यग्विनिर्गता च्छिन्ना विवृत्ता चालिता भवेत्।
प्रकम्पन क्रियायुक्ता रेचिता परिकीर्तिता॥
शनैस्तिर्यक् च चलिता भवेदादोलिता कटि।
क्रमात्पत्तद्वयोत्क्षिप्ता कटिरुद्वाहिता मता॥[2]

इन कटियों के विभिन्न अवस्थाओ मे विभिन्न प्रकार के चालनो का वर्णन किया है। वक्र अभिनय म छिन्न, पीछे झुक कर देखने पर विवृत्त, नृत्य में रेचित, कुब्ज, वाम तथा खजादि के अभिनय में आन्दोलित तथा स्थूलागमन मे उद्वाहिता कटि का प्रदर्शन होता है। इस प्रकार के हावों भावों का प्रदर्शन अगो एव उपागों द्वारा होता है।

अनेक प्रकार के हाव भाव नृत्य के समय भृकुटी के चालन द्वारा दिखलाये जाते है। यह भृकुटी चतुरा, वक्रना, कुञ्चिता, कपा, स्फुटिता तथा सहजा आदि नामो से अनेक प्रकार की होती है। नृत्य के उपयुक्त ३६ प्रकार की दृष्टियो का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है। नृत्य के समय छ प्रकार के नासिकासम्बन्धी हाव भाव होते है। इन सभी प्रकार की नासिकाओ के लक्षणों का विस्तार-

---

१ वही ४।१७।२९०७।

२ मानसो० ४।१८।२९०८,२९०९।

३ "वक्रस्याभिनये छिन्ना विकारे च नियुज्यते।
उद्वाहिता प्रयोक्तव्या कटिर्नाट्यविशारदे॥"
मानसो० ४।१८।२९११ २९१२।

४ मानसो० ४।१८।२९१६,१८।

५ षट्त्रिंशा दृष्टय प्रोक्ता सोपयोगा सुलक्षणा।
भूलोकमल्लदेवेन सार्वभौमेन धीमता॥"
मानसो० ४।१८।२९६७।

पूर्वक वर्णन हुआ है। इन हावभावों के प्रदर्शनों के अवसर का भी वर्णन हुआ है।[२] इसी प्रकार चूणित, सदष्ट, निष्क्रान्त आदि आठ पकार के मुकुलों का वर्णन किया है।[३]

नृत्य के समय हनु द्वारा भी हाव भाव प्रदर्शित किये जाते हैं। यह हनु भी आठ प्रकार की है—शिथिल, तिर्यक्, स्तम्भ, चल, प्रबल, विकोच, हत तथा आहत।[४] इसके साथ ही साथ दलना, खण्डना, कत्तना, धारणा तथा निकर्षणा इन पाँच प्रकार के दाँतों का वर्णन किया है—

दलना खण्डनाश्चैव कर्त्तना धारणास्तथा।
निकर्षणाश्च विज्ञेया दन्ता पचविधा बुधै ॥[५]

पाँच प्रकार की जिह्वाओं का वर्णन सोमेश्वर ने किया है जो क्रमश ऋज्वी, वक्रा, नता, लोला तथा प्रोन्नता है।[६]

इस प्रकार अङ्ग उपाङ्गों के हावभावों के वर्णन के पश्चात् प्रत्यगों के हाव-भावों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसके अन्तर्गत सरल, प्रोन्नत, कुचित ललित, लोलित, चलित, परावृत्त इन आठ प्रकार के बाहुओं के लक्षणो का विस्तारपूर्वन वर्णन किया है[७]—

सरल प्रोन्नतोन्यश्च कुचितो ललितस्तथा।
लोलितश्चलितो बाहु परावृत्तस्तथाष्टम ॥[८]

चार प्रकार के मणिबन्धों का भी प्रदर्शन नृत्य में होता है—

आकुञ्चितो निकुञ्चश्च भ्रमितश्च भ्रमस्तथा।
चतुर्धा मणिबन्धोथ नामत कथितो मया ॥[९]

---

१ वही ४।१८।२९६८ ७३। २ वही ४।१८।२९७६ ७७।
३ वही ४।१८।२९७९ ८५। ४ वही ४।१८।२९८८ ९३।
५ वही ४।१८।२९९४ ९६।
६ ऋज्वी वक्रा नता लोला प्रोन्नता वेति पचधा।
जिह्वा प्रोक्ता प्रवक्ष्यामि तस्यालक्ष्यमयागतम ॥
निष्क्रातदीर्घादृज्वी स्याज्जिह्वा साधुषु युज्यते।
नता जिह्वा समाख्याता बुधैश्चिबुकचुबिनी।

प्रोन्नता कथिता जिह्वा नासिकाभिमुखैर्बुधै।
वही ४।१८।२९९७-३००२।
७ वही ४।१८।३००८ १६। ८ वही ४।१८।३००८।
९ वही ४।१८।३०१७।

इन चारो प्रकार के मणिबन्धों के प्रयोग का भी वर्णन हुआ है।[1] इनके सबके साथ ही साथ अनेक प्रकार के हस्त, पताका तथा चार प्रकार के कर्णों का भी वर्णन किया है।[2] असहत, सहत, नृत्त के अन्तर्गत भ्रमर, सदश, ताम्रचूड मुष्टि, कपित्थ, खटिका, सूचीमुख आदि चौबीस प्रकार[3] के, अञ्जलि, कपोति, कर्कट, स्वस्ति, उत्सग, गजदन्त, दोलपुष्प तथा मकर आदि तेरह प्रकार के सहत हस्तो का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त कुर, नृत्त हस्त आदि अन्य प्रकार के हस्तों का भी वर्णन हुआ है। इस प्रकार नृत्य के लिये छ प्रकार के हस्तो का प्रयोग किया जाता है—

'चतु षष्टि करा प्रोक्ता नृत्यस्याभिनय प्रति'[४]

सहतागुल[५], विरलागुलि, चलितागुलि[९], हसरक्ष[१०], हसक्षोभ[११], चतुरकर[१२], आदि पताकाओं का वर्णन हुआ है। फण अधोमुख तथा ऊर्ध्वमुख दो प्रकार के होते हैं।[१४]

इन सभी लक्षणों के पश्चात् सोमेश्वर ने मृगशिर[१] अधोमृगशिर[१५], पाद लक्क[६], पद्मकोश[७], मराल, अराल[१९], कपर्दक[२०], शुकतुण्ड[२१], वक्र[२], मुकुल[२३], धस, भ्रमर, सन्देश तथा मुखसन्दश[२७] आदि अनेक प्रकार के करो का वर्णन करने के साथ ही साथ उनके लक्षणों का भी वर्णन किया है।

नृत्य का प्रचार भारतवर्ष मे अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो गया था। नृत्य में किये जाने वाले अभिनय की उत्पत्ति यजुर्वेद से हुई। क्योंकि नाटक का सृजन करते समय ब्रह्मा ने यजुर्वेद से ही अभिनय को ग्रहण

१ वही ४।१८।३०१८,१९।
२ वही ४।१८।३०२०।
३ वही ४।१८।३०२१-३०२४।
४ वही ४।१८।३०२५,३०२७।
५ वही ४।१८।३०२९ ३०३३।
६ वही ४।१८। ०३४।
७ वही ४।१८।३०३६।
८ वही ४।१८।३०३७।
९ वही ४।१८।३०३८।
१० वही ४।१८।३०३९।
११ वही ४।१८।३०४०।
१२ वही ४।१८।३०४१।
१३ वही ४।१८।३०४३,३०४७।
१४ वही ४।१८।३०४८,४९।
१५ वही ४।१८।३०५०।
१६ वही ४।१८।३०५०।
१७ वही ४।१८।३०५१।
१८ वही ४।१८।३०५४।
१९ वही ४।१८।३०५५।
२० वही ४।१८।३०५६।
२१ वही ४।१८।३०५६।
२२ वही ४।१८।३०५७।
२३ वही ४।१८।३०६३ ६४।
२४ वही ४।१८।६०६५।
२५ वही ४।१८।३०६६।
२६ वही ४।१८।३०६७।
२७ वही ४।१८।३०६८।

किया था।[1] नाट्य शास्त्र मे नर्तकी के अभिनय तथा नृत्य भगी का वर्णन हुआ है। नर्तकी रगस्थल पर नृत्य भगी मे आकर पुष्पोपहार रखती थी और फिर देवताओ को नमस्कार कर अभिनय करती थी। गीत तथा वाद्य दोनो के साथ नृत्य करती थी। जब गीत के साथ नृत्य करती थी तो वाद्य बन्द रहते थे और वाद्यो के साथ नृत्य करने पर गाना बन्द कर दिया जाता था।

पुराणों मे भी नृत्य सम्बन्वी अनेक प्रसग प्राप्त होते है। श्री कृष्ण भगवान ग्वालबालो के साथ क्रीडा करते तथा परस्पर मिलकर नृत्यादि करते थे

"क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम्"[3] इसके अतिरिक्त गोपियो के साथ भी कृष्ण भगवान् रासलीला करते समय नृत्य करते थे

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम्।
गण्ड गण्डे सन्दधत्या आदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥
नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेखला।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्ज श्रान्ताधात् स्तनयो शिवम् ॥[4]

वात्स्यायन ने भी नागरक के लिए गीत, वाद्य, नृत्य तथा आलेख्य इन चार कलाओं को विशेष रूप से आवश्यक बतलाया है।[5]

बौद्ध साहित्य मे नृत्य के अनेक प्रसग प्राप्त होते है और नृत्यादि को देखना बौद्ध भिक्षु के लिये वर्जित बतलाया गया है "नच्च गीत वादित विसूक दस्सना पटिविरतो समणो गोतमो।[6] इस प्रकार अन्य स्थल पर भी नृत्य आदि के निषेध के प्रसग प्राप्त होते है।[7]

धर्म ग्रन्थो के अनुसार भी नृत्य करने वाली स्त्रियों को समाज मे उच्चस्थान नहीं प्रदान किया गया है। मनु ने चारणादि से दण्ड लेने का आदेश दिया है यदि वे अपनी स्त्रियो के सौन्दर्य को छिपकर अन्य व्यक्तियों को अर्पित करे।

---

१ नाटयशास्त्र १।१७। २ वही ४।२६९ २७७।
३ श्रीमद्० पु० १०।१८।१३। ४ वही १०।३३।१३ १४।
५ 'गीतम , वाद्यम् , नृत्यम आलेख्य
पीडयोजनम'। कामसूत्र पृ० ७२।
६ दीघनिकाय ब्रह्मजालसुत्त सू० १० पृ० ५।
७ सेय्यथीद, नच्च गीत वादित पेक्ख
एवरूपाविसूक दस्सनापटिविरतो
समणो गोतमोति ॥'
दीघनिकायब्रह्मजालसुत्त सू० १३ पृ० ७।
५ मनु० ८।३६२।

अभिनय करनेवाले व्यक्तियों को साक्षी बनाने का भी निषेध किया है।[1]

याज्ञवल्क्य ने भी इनके द्वारा दी हुई गवाही को झूठा माना है।[2] किन्तु फिर भी नृत्य को तथा नृत्य करने वाले व्यक्तियो का सदा से भारत मे बडा सम्मान प्रदान किया गया है ।

नाट्यशास्त्र मे ताण्डव तथा लास्य इन दो प्रकार के नृत्यो का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ। ताण्डव नृत्त को अत्यन्त शोभावर्धक एव मगलकारी बताया गया है। इसके प्रवर्तक शिवजी है और यह विशेष रूप से विवाह, जन्म, प्रमोद, अभ्युदय आदि उत्सवों के समय विशेष रूप से विनोद उत्पन्न करने वाला होता है।[3] इससे विदित होता है कि उस समय म विवाहादि उत्सवो के अवसर पर ताण्डव नृत्त का ही अभिनय होता होगा। इस नृत्त के विषय मे नाट्य शास्त्र मे इस प्रकार की कथा प्राप्त होती है।

एक बार ब्रह्मा जी के कहने पर शिवजी ने हिमालय पर्वत पर नाचना प्रारम्भ किया। इस नृत्त की विधि, १०८ प्रकार के करण, नृत्तमातृका सघात, ३२ प्रकार के अगहार तथा पाद, कटि, कर तथा कठ इन चार रेचको के विषय मे तण्डु मुनि ने शिव को उपदेश दिया था इसी कारण यह ताण्डव कहलाया। जब शिव जी अपने पूर्ण लय तथा हाव भाव के साथ नाच रहे थे उसी समय आनन्द से विह्वल होकर पार्वती जी भी नाच उठी। उनका वह नाचना नृत्त तो न था। इसी का लास्य नाम पडा। दक्ष के यज्ञ विध्वस के समय मृदग, भेरी, पटह, माण्ड, डिडिम, गोमुख, दर्दुर आदि आतोद्य वाद्यों के बजने पर अचानक सन्ध्या समय शिवजी नाचे थे। उसी समय से यह नृत्त मगलकारी माना जाता है और विशेष शुभ एव मगलकारी अवसरो पर किया जाता है।

ताण्डव नृत्त के अनेक प्रसग पुराणों में प्राप्त होते है।[4] वात्स्यायन ने ताण्डव तथा लास्य दोनों नृत्यों का वर्णन किया है किन्तु उनका सुनृत्त, ताण्डव, अनृत्त, लास्य, नाम दिया है।[5] समवाय सुत्त तथा दीघनिकाय[6] म भी नृत्य का उल्लेख हुआ है। कादम्बरी में भरत द्वारा प्रणीत नृत्त, ताण्डव, का प्रसग प्राप्त होता ह।[8]

---

१ मनु० ८।६५ । २ याज्ञ० २।७० ।

३ नाट्यशास्त्र (चौखम्बा) ४।२६० ३ ।

४ श्रीमद० पु० १०।७०।१९ ।

५ कामसूत्र सू० १७ । ६ ए० के० दिकलाज सूची १ ।

७ दीघनिकाय ब्रह्मजालसुत्त सू० ६ ।

८ भरतादिप्रणीतानि नृत्तशास्त्राणि ए० के० दिकलाज सूची ४ कादम्बरी परा ७५ ।

कथा विनोद

सोमेश्वर के समय मे कथा द्वारा भी राजा का विनोद होता था। सोमेश्वर ने तीन प्रकार की कथाओ का उल्लेख किया है। १, द्विवक्त्रा, २, चतुर्मुखी, ३ बहुपुरुषा। दो व्यक्तियो के मध्य कही जानेवाली कथा द्विवक्त्रा कही होती है।[1] चार व्यक्तियों के मध्य गाई जानेवाली कथा चतुर्मुखी तथा बहुत व्यक्तियों के द्वारा गाई जानेवाली कथा बहुपुरुषा होता है।[2]

इन कथाओं को कहनेवाले पौराणिक[3], वाचक तथा सूतादि होते थे। शब्दशास्त्र का ज्ञाता, लोक व्यापार को जाननेवाला, वाग्मा, मधुरभाषी तथा सुननेवाले के अभिप्राय को समझनेवाला, चतुर, वेद के तत्त्व को जाननेवाला, साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने मे परिश्रम करनेवाला व्यक्ति पौराणिक होता है।[5] गीत के तत्त्व को समझनेवाल , ज्ञाना, पदों से पूण श्लोक को सुन्दर ढग से कहनेवाला व्यक्ति वाचक होता है।[6] इन्हीं दोनो व्यक्तियो के द्वारा जब पुराणादि से सम्बन्धित कथा कही जाती है तब वह द्विवक्त्रा कथा होती है।

ताल तथा राग से पूर्ण प्राकृत भाषा मे सूत के द्वारा कही जाने वाली तथा मध्य मध्य मे विशेष प्रकार की गायिकाओं तथा नतकियों द्वारा गाए जाने वाले सुन्दर मनोहर गीतो से पूर्ण कथा चतुर्मुखी होती है।

कर्णाट भाषा में छ पदो से युक्त, उदार ध्वनि से पूर्ण, गायिका के द्वारा बिना ताल आदि से सुन्दर स्वर मे गाई जानेवाली तथा अनेक कवियों द्वारा मधुरता से गाई जानेवाली कथा बहुपुरुषा होती है।[1] इस प्रकार से गाथा को गाने के लिए अनेक व्यक्ति होते थे।

ये तीनों प्रकार की कथायें रौद्र, भय, उत्साह, करुण, शृङ्गार, प्रेम सभोग, विप्रलम्भ से युक्त अनेक प्रकार की सुन्दर एव दुर्घटनाओ, ईर्ष्या, मद, मत्सर, मोह आदि भावों तथा राजाओं के अनेक प्रकार के ओजस्वी चरित्रों से युक्त होती थीं।[11] कथा के ये विषय तत्कालीन समाज पर बहुत कुछ प्रकाश डालते है। उस समय समाज में व्यक्ति इसी प्रकार के विषयों के प्रेमी थे। अनेक ऐश्वर्यशाली राजाओ के चरित्र को राजा को गा गा कर सुनाया जाता था

---

१ मानसो० ४।१९।२३७५। २ वही ४।१९।३२७५,७६।
३ वही ४।१९।३२८०। ४ वही ४।१९।३२८१।
५ वही ४।१९।३२८३। ६ वही ४।१९।३२७८ ८०।
७ वही ४।१९।३२८१। ८ वही ४।१९।३२८२।
९ वही ४।१८।३२८३-८४। १० वही ४।१९।३२८५ ८९।
११ वही ४।१९।३२९०-३२९१।

क्योकि इस प्रकार की सुन्दर दिव्य, भव्य, मनोहर एव सुनने योग्य कथाओ को राजा ध्यानपूर्वक सुनता था। इसके अतिरिक्त अपनी प्रेयसी के प्रेम की वृद्धि करने के लिए राजा स्वय प्रेमपूर्ण वृत्तो को अपनी प्रेयसी को सुनाता था।[1] इस प्रकार के कथा सभी व्यक्तियों के विनोद का साधन थी।[2]

सोमेश्वर के कथाविनोद को पढकर ऐसा विदित होता है कि सोमेश्वर के समय मे कथा पद्यबद्ध थीं और अनेक वाद्यो के साथ गाइ जाती थीं, जिसे अनेक प्रकार की योग्य नर्तकियाँ, कवि, सूत आदि गाते थे। सम्भवत यह सभी लोग राजा को कथा सुनाने के लिए उसके दरबार मे आते थे। यह कथा राजा के लौकिक जीवन से सम्बन्धित थी, किन्तु जो कथा राजा अपनी प्रेयसियो से स्वय कहता था वह कथा उसके व्यक्तिगत जीवन तक ही सम्बन्धित थी। इस प्रकार सोमेश्वर के समय में दो प्रकार की कथाये थीं—

१ राजा के लौकिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली द्विवक्त्रा, चतुमुखी, बहुपुरुषा आदि कथाये।

२, राजा के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली कथा जिसे राजा की प्रेयसिया ही सुनती थीं और वे ही परस्पर आनन्द उठाते थे। ये सभी प्रकार की कथाये पद्यबद्ध थी।

भारतीय साहित्य के अन्तर्गत पद्य बद्ध कथाओ का अत्यन्त प्राचीन इतिहास है। पुराणों मे कथा सम्बन्धी प्रसग प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण मे परिहास कथा का प्रसग प्राप्त होता है। जो भगवान् श्रीकृष्ण ने दूत से कही थी—

> उवाच दूत भगवान् परिहासकथामनु।
> उत्सक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेव विकत्थसे॥[3]

राजा का स्वय अपनी प्रिया से हास्य कथा कहे जाने का प्रसग भी पुराणों से प्राप्त होता है—

> हसन्त हास्यकथया कदाचित् प्रियया गृहे।[4]

सम्भवत यह सोमेश्वर के द्वारा कही हुई द्विवक्त्रा कथा का ही प्राचीन रूप होगा। इसी प्रकार मृदग, वीणा, वेणु आदि के ताल पर गाई जाने वाली कथाओ का भी पुराणों मे उल्लेख हुआ है जिसे सूत तथा मागध आदि गाते थे—

> मृदगवीणामुरजवेणुतालदरस्वनै।
> ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवन्दिन॥

---

१ वही ४।१९।३२९२।　　२ वही ४।१९।३२९३।
३ श्रीमद्० पु० १०।६।७८　　४ वही १०।६९।२९।

तत्राहुर्ब्राह्मणा केचिदासीना ब्रह्मवादिन ।
पूर्वेषा पुण्ययशसा राज्ञा चाकथयन् कथा ॥[१]

यह भी सभवत एक प्रकार की बहुपुरुषा कथा ही थी, किन्तु इसमे गायिकाओं द्वारा बीच में गाये जाने का प्रसग नही प्राप्त होता। पुराण काल में कथाये अधिकाशत राजाओं के निर्णय चरित्र मे पूर्ण रहती थीं जो किसी उत्सव के समय राजा को गाकर सुनाई जाती थी।

वात्स्यायन के समय मे भी कथा कहने का अधिक मात्रा मे प्रचार था। कथा कहने वाले चतुर, शिक्षित तथा सज्जन व्यक्ति का विद्वानों की सभा मे आदर होता था—

ब्रुवन्नप्यन्यशास्त्राणि चतु षष्टिविवर्जित ।
विद्वत्ससदि नात्यर्थं कथासु परिपूज्यते ॥
वर्जितोऽप्यन्यविज्ञानैरेतया यस्त्वलङ्कृत ।
स गोष्ठ्या नरनारीणा कथास्वग्र विगाहते ॥[२]

नागरिक यदि अधिक सस्कृत तथा अधिक शिक्षित न होता था तो भी यदि वह गोष्ठी में कथा को सुन्दर ढग से कह लेता था तो वह प्रसिद्ध हो जाता था।[3]

दीर्घ निकाय में कथा का तो उल्लेख हुआ ही है किन्तु साथ ही अन्तर्कथा का भी प्रसग प्राप्त होता है—

एतरहि कथाय सन्निसिन्ना सन्निपतिता, का च पन वो अन्तरा कथा विप्पकता-ति ।[४]

इस प्रकार से बौद्ध काल की कथाओं में प्राचीनकाल के राजाओ का चरित्र ही अन्तर्कथा के रूप में विद्यमान रहता था। कादम्बरी मे भी कथा का प्रसग प्राप्त होता है।[५]

प्रसिद्ध आलकारिक रुद्रट का ऐसा कथन है कि सस्कृत मे कथाये गद्य मे ही लिखी जानी चाहिए, किन्तु प्राकृत आदि, भाषाओं में कथाये गाथा बद्ध

---

१ वही १०।७०।२० २१। २ कामसूत्र सू० ५० ५१, पृ० १८२।

३ नात्यन्त सस्कृतेनैव नात्यन्त देशभाषया।
कथा गोष्ठीषु कथयल्लोके बहुमतो भवेत् ॥
कामसूत्र सू० ५०, पृ० ५८।

४ दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त सू० ४ पृ० २।

५ ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची कादम्बरी पैरा ७५।

होती है ।[1] किन्तु यह उनका मत निमूल विदित होता है । पद्य कथाओं का भारत मे प्राचीन काल से ही गायन होता रहा है । हा प्राकृत भाषा म गाथा बद्ध कथा उनके समय म अवश्य प्रारम्भ हो गई थी ऐसा विदित होता है और वे सोमेश्वर के समय तक भी प्रचलित थी, क्योंकि सोमेश्वर ने प्राकृत भाषा की कथाओं को सूत द्वारा गाए जाने का आदेश दिया है ।[2] इन प्राकृत की गाथाओं की भाषा अत्यन्त चटुल चपल तथा वर्णन अत्यन्त सुन्दर होते थे । बीच बीच मे गद्य का अश भी रहता था । उदाहरणार्थ यदि कवि को कहना है कि प्रतिष्ठानपुर एक नगर था जहा बहुत शोभा थी । तो वह इस प्रकार प्रारम्भ करेगा जहा सुन्दरियों के चरणनुपूर के शब्दों का अनुसरण करने वाले राज हस अपनी चोंचो से, किसलय त्याग करके प्रतिराव मुखर हो उठते है, जहा का यज्ञाग्नि से निकले धुए से आकाश ऐसा काला हो उठता है कि उन्हे देख कर क्रीडा मयूर चद्रकात मणियों के शिला तल पर नाच उठते है, जहा इत्यादि इत्यादि और तब वह अत मे कहेगा कि यह प्रतिष्ठानपुर है ।[3] इस प्रकार की पद्यबद्ध गाथाओं का प्रचार भी देश मे अधिक समय तक रहा ।

चमत्कृत विनोद

चमत्कृत विनोद में राजा ने अनेक प्रकार के चमत्कार एव कुतूहल को प्रकट करने वाले अनेक प्रकार के उपायो का वर्णन किया है । इन उपाया को करके व्यक्ति की दृष्टि भ्रमित हो जाती थी । सोमेश्वर ने इस चमत्कृत विनोद को बडा ही अद्भुत एव आश्चर्य प्रधान तथा व्यक्तियों को मोहित कर देने वाला बतलाया है ।[4]

मरे हुए मनुष्य का खोपडी मे मिट्टी भरकर उसमें कटुका के बीज बोए । जब वे उग आवे तो उसकी जड को निकाल कर उसके अलग अलग गुटके बना ले तब पन्नोब की गुटिका मे मिलाकर उसका मस्तक पर तिलक लगाए । इस तिलक के लगा देने पर कडुई वस्तु खाने पर भी वह कटु नहीं लगती ।[5] यह उपाय सभवत इन्द्रियो की चेतना पर आवरण डाल देती थी जिससे जिह्वा को स्वाद का ज्ञान न हो पाता था ।

कुत्ते के कपाल में मिट्टी भर कर उसमे बीजो को बोदे । अकुर निकल आने पर उसमे सर्प की केचुल छोड दे तब उसके मूल को उखाडकर उससे रुई के

---

१ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १३४ ।

२ मानसो० ४।१९।३२८३ ।

३ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १३४ ।

४ मानसो० ४।२०।३२९४ । ५ वही ४।२०।३२९५ ९६ ।

साथ लास आदि मिला कर वर्तिका बनावे और उससे दीपक जलावे। उस दीपक के जलने से जो प्रकाश होगा उसमे अन्य व्यक्तियों को सर्प ही सर्प सब ओर दिखाई देगे[१], किन्तु आँखों मे मधु लगा देने से उनके नेत्र स्वच्छ हो जाते थे और उन्हे ठीक दिखने लगता था।[२] सभवत इस उपाय द्वारा व्यक्तियो की दृष्टि बाधकर उस पर आवरण पड जाता होगा और सबको वही दिखाई पडता होगा जो ऐन्द्रजालिक दिखलाता होगा।

नित्य वेत्र के दड मे अकोल के तेल का लेप कर एक मास तक भात के मध्य मे रखे। एक मास पश्चात् उस दड के ज्योति में छुआने पर वह दड सर्प की भाति दिखलाई पडेगा।[३] यह भी व्यक्तियों को भ्रम म डालने तथा डराने का अद्भुत उपाय था।

चतुर्दशी के दिन श्मशान भूमि मे कृष्ण तथा कपिल वर्ण की रस्सी को भूमि मे गाड दे। वर्षा हो जाने पर उसी दिन उसे रात्रि मे खोद ले। तब वह रस्सी जिस वस्तु के बाधी जायगी वही मनुष्य रूप हो जायगा जिसे देखकर सभी व्यक्ति असमजस मे पड जायगे।[४] इसी प्रकार के एक अन्य प्रकार से एक दड को तैयार कर गहरे जल के मध्य जा सकता था।

बेर की सूक्ष्म गुठली का चूर्ण बनाकर उसमे अन्य वस्तुये मिलाकर गुटिका बना ले तब वृश्चिक मे मिलाकर सिद्ध के तेल के साथ हाथ मे लेप करे। तब हाथ में हरीतकी रखने पर वह सुपारी दिखाई देगी, पत्ता रखने पर ताम्बूल, अरहर रखने पर हरिमथ, हरिमथ रखने पर माष (उरद) आदि दिखाई पडेगा। इस प्रकार यह उपाय व्यक्तियों के कौतूहल का वर्द्धक था।

इसी प्रकार से सोमेश्वर ने हाथ पर आग जलाने पर हाथ न जलने के[७] गहरे जल में रहने के[८], शृगाल, कुक्कुट, तित्तिर[९] आदि बनाने के तथा अपने को लुप्त कर देने के उपायो[१०] का वर्णन किया है।

---

१ वही ४।२०।३२९७,९८।

२ अभ्यज्य मधना नेत्रे जना निमलचक्षुषा।
पश्यन्ति तत्त्वात्सर्वं तु वस्तुजात पुरे स्थितम ।।
वही ४।२०।३२९९।

३ वही ४।२०।३३०० ३३०१। ४ वही ४।२०।३३०२ ३३०३।

५ वही ४।२०।३३०४ ३३०५। ६ वही ४।२० ३३०६ ३३१०।

७ वही ४।२०।३३१३-३३१६। ८ वही ४।२०।३३१८ २०

९ वही ४।२०।३३३३-४०। १० वही ४।२०।३३४० ४३।

यह उत्सव राजा के प्रागण प्रसाद के खुले स्थान मे होता था । इसे देखने के लिए सभी अपने तथा अन्य देश के व्यक्ति, प्रेयसियाँ, कुमार तथा कुमारियाँ मत्री, महन्त, मण्डलाधीश, अमात्य, सचिवादि आते थे और इस माया से पूर्ण चमत्कार को देखकर अपना मनोरजन करते थे । इन सभी के बैठने का उचित रूप से प्रबन्ध किया जाता था ।[1] यह सम्पूर्ण लोक का मनोहर लगने वाला मनोरजन था—

चमत्कारविनोदोऽय सर्वलोकमनोहर [2]

सोमेश्वर ने इन्द्रजाल के लिए ही सभवत चमत्कृत शब्द का प्रयोग किया है । इन्द्रजाल शब्द का अर्थ ही इन्द्रियों पर जाल अथवा आवरण पड जाना है । इस विद्या द्वारा मनुष्य भ्रमित हो जाता है । भारतवर्ष मे इन्द्रजाल की विद्या अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है । सम्बर या शवर नामक असुर तथा इद्र इस विद्या के आचार्य थे । कालिका पुराण मे एक प्रकार के 'शाबरोत्सव' के मनाए जाने का प्रसग प्राप्त होता है । इसे सभी नर्तकियाँ, वेश्याये तथा रागवती स्त्रियाँ मिलकर करती थीं । यह उत्सव श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की दशमी को मनाया जाता था और एक दूसरे को सभी अश्लील शब्द कहती थीं । रत्नावली मे भी इन्द्र तथा सम्बर इस विद्या के आचार्य माने गए है । ये पृथ्वी पर ही चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता दिखा देते थे । इसके अतिरिक्त जो कोई जिस वस्तु को देखने की इच्छा करता था उसे वे वहीं वस्तु दिखाते थे । रत्नावली मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि राजा की आज्ञा से उन्होंने कमलासन ब्रह्मा, शशिशेखर भगवान् शकर तथा विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति तथा ऐरावत पर चढे हुए इन्द्र को साक्षात् दिखलाना था ।[4] इसी प्रकार उन्होंने, आग की लपटो को तथा झुलसे हुए पत्तों को प्रदर्शित कर अन्त पुर मे आग लग जाने की शका को उत्पन्न कर दिया था ।

तन्त्र के ग्रथों मे इन्द्रजाल की ऐसी विधियाँ बतलाई गई है जिनसे मनुष्य

---

१ वही ४।२०।३३४९ ३३५२ । २ वही ४।२०।३३५३ ।

३, कालिका पुराण, उत्तर तन्त्र, अध्याय ६० ।

४ एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखर शकरोऽय
दोर्भिर्दैत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैश्चतुर्भि
एषोऽप्यैरावतस्थस्त्रिदशपतिरमी ।देवि देवास्तथान्ये
नृत्यन्ति व्योम्नि चैताश्चलचरणरण नूपुरा दिव्यनाय ॥
रत्नावली ४।७४ ।

५ रत्नावली ४।७५ ।

कबूतर, मोर तथा अन्य प्रकार का पक्षी बन कर उड भी सकता है। अनेक प्रकार के मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन सम्बन्धी सिद्धि तथा अपने को अदृष्ट कर अन्य सबको देखने के उपाय का भी वर्णन हुआ है।[१] हिंसक जन्तुओं को मारना, आग को बाँध देना आदि कार्यों की सिद्धि का वर्णन भी इन्द्रजाल विद्या के अन्तर्गत ही हुआ है।[२] इसके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को प्रसन्न करने के लिए तथा दुखी करने के लिए अनेक प्रकार के मायापूर्ण उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। यह भी क्रिया इन्द्रजाल से ही सबधित थी। इसके लिए 'सौभागकरम्'[३] अथवा 'सौभाग्यकरणम्' तथा 'दोभाग करम'[४] अर्थात् दुर्यानप्रकरणम्' अथवा 'दुर्भाग्यकरणम्' का प्रयोग हुआ है। सोमेश्वर ने अपने चमत्कृत विनोद में इन सभी प्रकार के उपायों का वर्णन किया है।

ललित विस्तर में इन्द्रजाल विद्या को माया अथवा धोखा कहा गया है। वास्तव में यह कुछ भी नहीं है। इसी कारण इसके लिए मायाकृतम्[५] का प्रयोग किया है। इसी प्रकार ललितविस्तर में 'आश्चर्य' नाम की विद्या का भी उल्लेख हुआ है जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार के आश्चर्योत्पादक दृश्य दिखाए जाते थे। सम्भवत यह भी इन्द्रजाल से ही सबधित विद्या थी। ललितविस्तर ने इसे आसुर विद्या[७] माना है।

वात्स्यायन के कामसूत्र में भी ऐन्द्रजालयोगा का प्रसग प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि इन्द्रजाल विद्या का उस समय भी बडा महत्त्व था। इसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की धोखा देने वाली वस्तुये दिखाई जाती थी उदाहरणार्थ देवता, सर्प तथा सेना आदि[८] इसी प्रकार का प्रसग दशकुमारचरित में भी प्राप्त होता है।[९] बाण के समय में भी इन्द्रजाल विद्या का समाज में काफी प्रचलन था। कादम्बरी में ऐन्द्रजालिक के प्रसग प्राप्त होता है।[१०]

इस प्रकार ऐन्द्रजालिकों को सदा से ही समाज में तथा राजा के दरबार मे विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है। प्राचीन काल में भारत मे होने वाली इन्द्र

---

१ दत्तात्रेय तंत्र पटल ११। २ इन्द्रजाल तंत्र सग्रह, पृ० ३२।

३ समवाय सुत्त २ २ २७ दीघनिकाय ब्र० जाल सु० २६, वृ० अध्याय ७५, इन्द्रजाल तंत्र सग्रह पृ० ३७। ४ वही।

५ ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची न० २।

६, वही। ७ वही।

८ ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची ३।

९ दशकुमारचरित १।३१।

१० ए० वेंकट सूबिया दि कलाज सूची ४ कादम्बरी परा ७५।

जाल की अद्भुत विद्या का चमत्कार सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध था। आजकल भी नट लोग यत्र तत्र इसी प्रकार के जादू से भरे हुए कृत्य दिखाकर अपना जीविका चलाते है। इसे देखने के लिए आज भी अधिक मात्रा मे भीड एकत्र हो जाता है।

भूजर क्रीडा

भूजर क्रीडा राजा के प्रासाद के अन्दर ही खेली जाती थी। इस क्रीडा के लिए महल के एक ओर चित्र विचित्र वृक्षों से पूर्ण वन बनाया जाता था और उसके मध्य एक ऊचा शृंगों से पूर्ण क्रीडा पर्वत बनता था—

तत्र चित्रद्रुमोपेत वन कुर्यात् समन्तत।
तन्मध्ये रुचिर रम्य क्रीडाहेतोर्मनोहरम्॥
कारयेत्पर्वत राजा तुगशृगविराजितम्।
नानावृक्षसमाकीर्ण सुविशालशिलातलम्॥[1]

वन के सभी मासों मे लगने वाले फलो के वृक्ष, तात्कालिक फलों को उत्पन्न करने वाले तथा अनेक प्रकार के क्षार वृक्ष बोए जाते थे। सोमेश्वर ने उन वृक्षों के बीजों को बोने का उचित रूप से उपाय बतलाया है। वृक्षो के बीजों को दो प्रकार से बोया जाता था—

१—स्वभाव से ही पक जाने वाले फलो के बीजों को पाच दिन गोबर मे रखने के पश्चात् उन्हें निकालकर विडग तथा घृत को जला कर उसके धूम्र द्वारा उन्हे धुपाया जाता था। इस प्रकार से सभी वृक्षों के बीज बोए जाते थे।[2]

२—इस विधि के अनुसार बीजों को दस दिन तक दुग्ध में रखा जाता था। दस दिन के पश्चात् उन्हें निकाल कर छाया में सुखाकर उनमे व्याघ्री, यव तथा गेहूँ की भस्म मिलाकर गोबर द्वारा साना जाता था।

१, मानसोल्लास ५।१।२३ (भाडारकर ओ० रि० इस्टी० की हस्तलिपि)।

२ मानसोल्लास ५।१।५६ (भा० ओ० रि० इस्टी०)।

३ स्वभावपक्वफलित निर्दोष शुकमानयेत्।
फलबीज समालिप्त गोमये दिनपचकम॥
विडगघृतधूपेन धूपित कारयेनुभवा।
सर्वेषामेव वृक्षाणामेव बीजविधि स्मृत॥
वही ५।१।७९।

यह विधि विशेष रूप से सभी क्षीर के वृक्षों को बोने मे काम आती थी।[१]

इन बीजो को स्वादिष्ट जल से पूर्ण, पत्थरों से शू य, स्निग्ध तथा समतल भूमि मे बोया जाता था।[२] इस कारण जहाँ की भूमि तिल, मूँग, मास तथा पुष्पादि के उगने के लिए उपयुक्त हो वहीं पर चारो ओर क्रीडा पर्वत का उपवन बनना चाहिए—

तिलान्मुद्गो स्तथा माषान् दृष्ट्वा पुष्पकलोलिनान्।
तस्मिन्नुपवन कुयात्क्रीडाशेले समन्तत ॥[३]

उस उपवन में बोये हुए प्रत्येक वृक्ष के मध्य सोलह, ग्यारह, आठ अथवा चौदह हाथ का अन्तर वृक्षों की वृद्धि के अनुसार रखा जाता था। इसके अतिरिक्त वृक्ष को शोभायुक्त बनाने के लिए चार हाथ गहरा थाला खोदकर उसमें बालू, मिट्टी, अस्थि, करीष, अजा का मास तथा चर्बा भरकर पानी डाल दिया जाता था। इस प्रकार से वृक्ष शोभा को प्राप्त करता था।[५] बीजों को बोने के अतिरिक्त समूल छोटे-छोटे वृक्ष भी भूमि खोदकर गाड दिए जाते थे। इस प्रकार से भी वृक्षों का आरोपण होता था।

उस क्रीडा शैल के उपवन में सर्वप्रथम अशोक, निम्ब पुन्नाग, बकुल, नागकेसर, शिरीष, तिलक आदि वृक्ष लगाये जाते थे, क्योंकि ये सभी वृक्ष आरोग्य, यश तथा विजय की वृद्धि करने वाले है—

अशोक निम्ब पुन्नाग बकुलो नागकेशर ।
शिरीषस्तिलकश्चैव मुख्य ते प्रथम वने ॥
सुखारोग्य यशोवृद्धि-लच्च विजयवृद्धये ।
सौभाग्यार्थमिव वृक्षा कर्तव्या भूभृता वने ॥[७]

---

१ गोक्षीरभाविन बीज दशरात्र निरतरम् ।
छायाशुष्क च मिलित च व्याघ्रीसकुलभस्मना ॥
यवगोधूममिलित गोमयेन प्रलेपितम् ।
स्थापयेत्क्षीरवृक्षाणा द्विविध बीजसस्मती ॥
मानसोल्लास ५।१।९ १० ।

२ मानसोल्लास ५।१।११ (मा० ओ० रि० इस्टी०)।

३ वही ५।१।१२ ।

४ षोडशैकादशाष्टौ वास्तथा हस्ता श्चतुर्दश ।
कतव्य रोप्यमाणानामन्तराल महीरुहम् ॥ वही ५।१।१३ ।

५ वही ५।१।१४ १६ ६ वही ५।१।१७ ।

७ वही ५।१।१८,१९ ।

इस उपवन म पलाश, कचनार, अर्जुन, करञ्ज आदि वृक्षों को नहीं लगाना चाहिए।[1]

हेमन्त तथ शिशिर ऋतु म एक दिन के अन्तर से इन वृक्षों को सींचना चाहिए।[2] वसन्त और ग्रीष्म ऋतु म इन पेडों मे प्रतिदिन प्रात काल जल दिया जाता था किन्तु वर्षा तथा शरद् ऋतु मे भूमि के सूख जाने पर वृक्षों मे जल दिया जाता था।[3] इन वृक्षों मे एक वर्ष तक के वृक्ष को एक घडे द्वारा सींचा जाता था और जैसे जैसे इनकी आयु की वृद्धि होती जाती थी वैसे वैसे बीस वर्ष तक प्रतिवर्ष जल के घडों की भी वृद्धिकर दी जाती थी

विजानायात्ममारभ्य कुम्भेनेकेन सेचयेत्।
यावद्वर्षं तत् कुम्भ प्रतिवर्षं विवर्द्धयेत्॥[4]

यदि सींचने वाला जल भूमि में चला नहीं जाता था तो उस भूमि को इस प्रकार से खोद दिया जाता था जिससे जल वृक्ष की मूल मे चला जाय।[5] इस प्रकार से वृक्षों की अजीर्णता समाप्त हो जाती थी।[6] इन वृक्षो की वृद्धि के लिए उसके समीप की लताये तथा अन्य झाडियों को हटा देना चाहिए[7] और भालातक तथा भैंसे की सींघ को बराबर हिस्से मे लेकर उनका चूर्ण बनाकर वृक्ष के मूल में डाल कर काडों से वृक्ष की रक्षा करनी चाहिए

विडगीसिंगुसधूरमारिचारति विषावचा।
भालातक तथा शृग माहिष समभागत॥
एतैविरचितौ भूमौ निहन्य कृमिकीटकम्।
उद्याने पादपाना तु सर्वव्याधिविनाशनम्॥[8]

इन सब उपायों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने उपवन में लगाये जाने वाले सभी फल एव पुष्पों के वृक्ष के लिए विशेष प्रकार की खाद डालने एव उसको बोने का उपाय बतलाया है, जिससे वे वृक्ष अधिक से अधिक सुन्दर तथा बडे फल प्रदान कर सके। उदाहरणार्थ सभी वृक्षों को शफरी मछली, घृत, सिद्धार्थ तथा कदली दल को मिलाकर उसका धुआ देने से वे अधिक मधुर एव अधिक

---

१ मानसोल्लास ५।१।२०।
२ हैमन्ते शिशिरे देय तोयमेकान्तरे दिने। वही ५।१।२१।
३ वही ५।१।२१ २२।
४ वही ५।१।३३।
५ वही ५।१।२३,२४।
६ वही ५।१।२५।
७ वही ५।१।२५,२६।
८ वही ५।१।३१ ३२।

मात्रा में फल उत्पन्न कर सकते है।[1] इसके अतिरिक्त घृत, तोता तथा कुरग की चर्बा को अकोल तेल मे मिलाकर सींचने से वृक्ष सदैव फल से लदे रह सकते हैं। सभी क्षीर वृक्षों को विडग, मधु तथा घृत मिश्रित दूध से सींच कर नत तथा कुष्ट को जलाकर धुआ देने से वे वृक्ष शोभायुक्त फलों को उत्पन्न कर सकते हैं

विडगे मधुसर्पिभ्या क्षीरेण कृतसेचना॥
धूपिता नतकुष्ठाभ्या क्षीरवृक्षा सदाफला।[3]

इसी प्रकार गौ के दुग्ध की चर्बा तथा अगर को जल मे मिलाकर, सींचकर उन्हें वृश्चिक, कटक, घृत, तोता तथा चूहे की चर्बा को जलाकर धूप देने से सभी लतायें सदा फल से पूर्ण रहती है।[4] मुर्गे की करीष तथा अश्व के मास की मज्जा की खाद देने से अगूर की वेल, सारग, गज, मार्जार तथा जगली सुअर के मास की मज्जा को दूध में मिलाकर उसकी खाद डालने से दाडिम के फल स्वादपूर्ण एव मधुर होते हैं तथा मधु, जगली सुअर की वसा को अकोल के तेल मे मिलाकर उसकी खाद देने से आम का वृक्ष सदा फल से पूर्ण रहता है। पानी में मधु, घृत, गुड तथा दुग्ध मिलाकर खाद देने से कपित्थ तथा श्रीद्रुम वृक्ष के फल स्वादुपूर्ण पुष्प आने के कुमार के काटे से खरोच कर उस स्थान पर मधु तथा घृत मिला हुआ तिल चूर्ण का लेप करने से आमलक वृक्ष के फल मधुर तथा बडे होते है। जहा पर फल निकलने वाले हों वहाँ पर काटे से खरोंच कर सुअर और घोडे की लीद का लप करने से केले के वृक्षों में अधिक फल, तथा सुवर्ण की शलाका द्वारा उस स्थान को खरोंच कर हाथी दाँत के चूर्ण का लेप करने से केले के फल हाथी दात की ही भाँति मोटे तथा बडे होते हैं।[7] विडग माष, मधूक के चूर्ण को मदिरा से सानकर उसमें नमक मिलाकर लेप करने से नारियल के वृक्ष फल अधिक देते हैं।[8] इसी प्रकार नारगी, चपक, अशोक, जयकुसुम, वीजपूर, मकरद, तिलक, कर्दम तथा केशर आदि वृक्षों के फलो एव पुष्पों की मात्रा अधिक करने के लिए तथा फलो को बडा करने के लिए विशेष प्रकार की खादों का उल्लेख किया है।

---

१ वही ५।१।३४ ३५। २ वही ५।१।३६,३७।
३ वही ५।१।३८,३९। ४ वही ५।१।३९ ४१।
५ वही ५ १।४१ ४५। ६ वही ५।१।४६ ४९।
७ वही ५।१।४९ ५०, ५४ ५५। ८ वही ५।१।५१,५२।

इस प्रकार के उपायों द्वारा उत्तमोत्तम प्रकार की खाद को डालकर अत्यन्त सुन्दर एव मधुर फलों से पूर्ण वृक्षों को क्रीडा पर्वत के समीप स्थित उपवन में लगवाना चाहिए—

इत्थंविध वनस्पति कृतशैले मनोहरे ॥[1]

उसी क्रीडा पर्वत के समीप सुगन्धित जल तथा कमलादि पुष्पों से पूर्ण, हंसादि पक्षियों से गुंजायमान कृत्रिम जलाशय बनवाया जाता था—

कृत्रिमा रचयेत् वृत्तात् सरासि सरितस्तथा ।

सुगन्धिपुष्पस्तवकीन्सुधास्वादुत्पलान्वित ।
साक्षात् निर्मितहंसाद्य निर्मलोदकधूपितम् ॥

दिग्धयुदर्पणाकार गिरौ कुर्यात् सरोवरम् ॥[2]

सरोवर के साथ ही साथ मुक्ता के सदृश कणों से युक्त बालुका का उसी के समीप तट बना होता था । कुंकुम मिश्रित जल से पूर्ण कुल्या का निर्माण उसी क्रीडा पर्वत के समीप कराया जाता था ।[3]

इतने सुंदर क्रीडा पर्वत के निर्मित हो जाने पर राजा श्रृंगार करके प्रसन्न करने वाले विटों, अपनी प्रेयसियों तथा पंडितों के साथ श्रेष्ठ वाहनों पर सबको चढवा कर तथा स्वय हेम किंकिणियों से युक्त श्रेष्ठ गज के ऊपर चढकर चामर रूपी व्यजन से सुशोभित होता हुआ क्रीडा पर्वत पर लीला पूर्वक आता था ।[4] उन प्रेयसियों से घिरा हुआ राजा उसी प्रकार सुशोभित होता था जैसे अप्सराओं के मध्य इन्द्र सुशोभित होते हैं । क्रीडा पर्वत के समीप पहुँच कर राजा उस पर्वत पर चढता हुआ पुष्पक विमान पर चढते हुए श्रीरामचन्द्र जी की भाति सुशोभित होता था । उस पर्वत पर अपनी कामिनियों तथा परिजनो

१ वही ५।१।९९ । २ वही ५।१।१००,१०३ ।

३ सूक्ष्ममुक्ताफलक्लृप्त बालुकापुलिनस्थलम् ।
कुंकुमोदक तुपणचि कुल्या कृत्रापि कारयेत् ॥

विधायेवंविध शैल तनामादमुदान्वित ॥
वही ५।१।१०४,१०५ ।

४ वही ५।१।१०६ ११० । ५ वही ५।१।१०९ ।

६ दशयन्करिण क्षीण परमंडलिकामपि ।
समारोहे तत. शैले पुष्पके राघवो यथा ॥ वही ५।१।१११ ।

के साथ घिरा हुआ राजा अनेक प्रकार के कद, मूल, फलो का भक्षण करता था।[1] तत्पश्चात् अपने परिजनों को वस्त्र काचनादि दान कर विसजित कर देता था[2] और स्वय अपनी कामिनियो के साथ राजा कभी वृक्ष के नीचे, कभी सरिता के समीप, कभी जलाशय के तट पर क्रीडा करता था। क्रीडा करते समय कभी वे तरुणिया मधुर गाना गाती थी, कभी नृत्य करती थीं। इस प्रकार की क्रीडाओं द्वारा राजा अत्यन्त आनन्द प्राप्त करता था—

राजते पृथ्वीनाथ शक्रो वाप्सरसागणै ।
कदाचित्पादपच्छाये कदाचित्सरितातटे ॥
कदाचित्सरसीतीरे क्रीडति क्षितिवल्लभ ।
गाययेत्कलक गीत वर्तयेल्ललनागना ॥
हासयस्तरुणीवृंदमानद परमाप्नुयात् ॥[3]

सध्या के समय राजा क्रीडा को समाप्त कर पर्वत के अग्र भाग से श्रेष्ठ गज पर चढ़कर अपनी प्रेयसियों समेत राजमदिर को लौट आता था।

यह भूधर क्रीडा महल के अन्दर ही राजा के मनोरजन का साधन था। इस क्रीडा के प्रसग स्मृतियों मे भी प्राप्त होते हैं। विष्णु स्मृति[4] मे क्रीडापर्वत के समीप बने हुए समुद्रगृहो के प्रसग प्राप्त होते है। रघुवश मे क्रीडापर्वत का वर्णन हुआ है। उस पर अनेक वापी एव दीघिकाये बनी होती थी। बकुल, शिरीष आदि अनेक मागल्य वृक्ष लगाए जाते थे। उस क्रीडा पर्वत की बावलियों को हस गण अपनी मधुर ध्वनि से गुजायमान करते रहते थे। उस पर अनेक पक्षी एव मयूर फिरा करते थे और वे मेघ के गर्जन को देखकर नाच उठते थे--

असलविकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजर्सांगरागिण ।
प्रावृषि प्रमदबार्हिणेष्वभूत कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रम ॥[5]

रघुवश का यह प्रसग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देता है कि ये क्रीडा पर्वत कृत्रिम होते थे और वर्षा ऋतु में राजा के विहार के हेतु निर्मित किए जाते थे। सोमेश्वर ने भी कृत्रिम भूधर का ही वर्णन किया है।[6] मेघदूत मे भरकत मणियों से जटित सीढियों से युक्त वापी का प्रसग प्राप्त होता है। उसमे वैदूर्यमणि के नालों पर स्वर्ण के कृत्रिम कमल बने थे और उसी के समीप ही

---

१ वही ५।१।११४ १२०। २ वही ५।१२१,१२२।
३ वही ५।१।१२२,१२४। ४ वि० स्मति ५।११७।
५ रघुवश १९।३७। ६ वही ५।१।१००।

क्रीडा पर्वत था।[१] उस क्राडा पर्वत पर बनी हुई दीघिकाओं के हस चूडियों की झकार सुनकर नाच उठते थे। इससे विदित होता है कि ये पक्षी बडे ही सीधे तथा भोले होते थे। साची के तोरण में प्राप्त हुई प्रतिकृतियों म भी वन्य वृक्ष की छाया के नीचे कृत्रिम क्रीडापर्वतों के प्रसग प्राप्त होते है, जिनके समीप भवन दीघिकाये होती थी तथा प्रेमी प्रेमिकाय परस्पर क्रीडा करते थे। यह तोरण ईसवी पूर्व दूसरी शताब्दी का है। इन प्रसगों से इस क्रीडा की प्राचीनता का अनुमान होता है।

वनक्रीडा

भूधर क्रीडा के पश्चात् सोमेश्वर ने वन क्रीडा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। शिशिर ऋतु के व्यतीत हो जाने पर राजा वन क्रीडा करने के हेतु वन में जाता था। सुस्पर्श सुगन्धित पुष्पों की गन्ध से युक्त तथा मनोहर नागकेसर, पुन्नाग की रेणु से पूर्ण वायु के बहने पर, स्त्रियों से हृदय मे उल्लास होने पर, कोकिल के कूजने पर, पुष्प युक्त चपक वृक्षों से पूण जबीर पुष्प की गन्ध से युक्त माधवी लता से सुशोभित, सुन्दर क्रमुक पक्ति, नीरग फल, कटकयुक्तपनस वृक्ष, कदली खड, जम्बु वृक्ष, दाडिम, लवग, खजूर, मालिका, हरिद्र, शृग, केतकी वृक्ष, सीरिका ताल आदि वृक्षों तथा कुल्या, तडाग तथा कूप से पूर्ण द्राक्षा लता द्वारा निर्मित मण्डप से सुशोभित नन्दन वन के सदृश सुन्दर वन में राजा वन क्रीडा करने के लिए जाता था।[५]

वन क्रीडा करने के लिए जाते समय राजा के साथ उसकी प्रेयसिया भी रहती थीं।[६] वे प्रेयसिया नीलकमल के सदृश नेत्रों वाली, दाडिम के सदृश दन्त पक्तिवाली, शिरीष पुष्प के सदृश मृदु बाहु वाली, पल्लव के सदृश हाथ वाली तथा मराल के सदृश गतिवाली होती थीं।[७] इनके अतिरिक्त राजा के साथ प्रसाद के अन्य पात्र, परिहास करने में कुशल, गीत वाद्य में निपुण विदूषक, विट आदि रहते थे—

अन्यै प्रसादपात्रैश्च परिहासमुखोचितै।
गीतवाद्यविनोदज्ञै-विटविदूषकै॥[८]

---

१ मेघदूत २।८०। २ वही २।८७।

३ हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ४३।

४ व्यताते शिशिरे राजा क्रीडा कुर्याद्वनाश्रयाम्

मानसोल्लास ५।२।१२८।

५ वही ५।२।१२९,४९। ६ वही ५।२।१५२।

७ वही ५।२।१५०,५२। ८ वही ५।२।१५४।

वन क्रीडा के समय राजा सुन्दर अश्व पर चढकर जाता था और सभी जन उसके पीछे रहते थे।[1] वनभूमि मे प्रवेश करने पर राजा प्रेयसियों तथा अन्य जनों को दिव्य वन दिखलाता था। राजा अपनी प्रेयसियों के साथ एक आश्रम मण्डप में बैठता था, जो अत्यन्त रम्य भूमि में बना होता था। उसमें अनेक प्रकार के फल एव पुष्पादि रहते थे।[2] अपनी बहुत सी प्रेयसियों से घिरा हुआ वह राजा निविड तथा गहन गुप्त स्थान मे उन स्त्रियो की दृष्टि छिपाकर इधर उधर वृक्षों के पीछे छिपकर दौडता था।[3] इस प्रकार से परस्पर लुक छिपकर भ्रमण कर राजा आनन्दित होता था। तत्पश्चात् सब प्रेयसियो के साथ राजा तालाब के शीतल जल द्वारा मुख तथा पाद प्रक्षालन करता था। वे सभी स्त्रिया कदली दलों द्वारा राजा का श्रम दूर करने के हेतु व्यजन डुलाती थी—

प्रक्षाल्य वक्त्र पादौ च कदलीदलवीजनै।
वीजयन्ति नृप काता कामिन्य कामवर्धिका॥[4]

श्रम दूर हो जाने पर राजा सभी परिजनों के साथ वन के अत्यन्त रम्यस्थल में प्रवेश कर बैठता था और अनेक प्रकार के मूल फलादि का आस्वादन कर नारिकेल फल के मधुर जल का पान करता था।[5] सोमेश्वर दक्षिण प्रदेश का राजा था। दक्षिण में नारियल के जल का पान अधिकाशत प्रचलित है, क्योकि दक्षिण में नारियल अधिक उत्पन्न होता है। इस प्रसग मे नारियल के जल के पान का प्रसग अपनी स्थानीय विशेषता को प्रगट करता है।

इसके पश्चात् सभी जन यथास्थान पर बैठ जाते थे और राजा पुगीफल से पूर्ण मधुर एव सुस्वादपूर्ण ताम्बूल प्रेयसियों को देकर स्वय ग्रहण करता था—

पुगीफलानि स्वाहृत्य नागवल्लीदलानि च।
दद्याद्यथोचित ताभ्य स्वयमास्वादयेत्तत॥[6]

ताम्बूल चर्वण के पश्चात् राजा चन्दन के गोंद तथा कर्पूर मिश्रित लेप अपने शरीर पर करवाता था।[7] इस प्रकार के शृङ्गार कर लेने पर राजा पुन अपनी प्रेयसियो के साथ इधर उधर वन में पुष्पों के मध्य मे विहार करता था

---

६ वही ५।२।१५५। १ वही ५।२।१५६,५७।
२ वही ५।२।१५८ ६०। ३ वही ५।२।१६२ ६३।
४ वही ५।२।१६५। ५ वही ५।२।१६६।
६ चन्दनद्रुमनिर्यास कर्पूररजमिश्रितै।
आलिप्तांगानि सर्वाणि स्वगात्रे विलेपयेत्॥
वही ५।२।१६७।

और अपनी प्रेयसियों को प्रसन्न करने के लिए वह सिर पर पुष्प निर्मित शेखर धारण करता था।[1] दक्षिण में सिर पर पुष्प तथा जूडा बनाकर उसे पुष्प माला द्वारा बाधना अत्यन्त आवश्यक शृंगार माना जाता है। आज भी गरबा नृत्य म जो स्त्री पुरुष भाग लेते है वे सिर पर पुष्प माला धारण करते है। राजा इस प्रकार से अपनी प्रेयसियों तथा अन्य जनो के साथ वन विहार करके अपने प्रासाद को लौट आता था।

भारतवर्ष विशाल मैदान और हरित उद्यानों से पूर्ण देश है। यहा के निवासी प्रारम्भ से ही प्रकृति के प्रेमी रहे है। अत प्राचीनकाल से ही यह क्रीडा भारत में प्रचलित है। पुराणो म इस क्रीडा के अनेक प्रसग प्राप्त होते हैं। कृष्ण भगवान तथा बल्देव गोपियों के साथ यमुना के समीप स्थित उपवन में रमण किया करते थे। वे सभी परस्पर मिलकर इधर उधर वन में घूमते थे। गोपिकायें गाना गाती थीं। प्रेम से विह्वल होकर इधर उधर घूमती थी। उन गोपियों के साथ वे कन्दमूलादि खाते थे।[2] स्कन्दपुराण के अवन्ती खड म उद्यान यात्रा एव विहार का बडा ही सुन्दर एव विस्तृत वर्णन हुआ है। महाराज शुद्धोदन ने भी कुमार सिद्धार्थ के मन बहलाने के लिए एक रमणीय वाटिका बनवाई थी जिसमे वे जाते थे।[3]

वात्स्यायन के काम सूत्र में भी इस क्रीडा का वर्णन हुआ है किन्तु उन्होंने इसका नाम 'उद्यानयात्रा' दिया है। यह क्रीडा केवल राजा ही नहीं वरन् नगर के अन्य जन भी करते थे। किसी भी निश्चित दिन नागरिकगण सजधज कर घोडों पर चढकर दूर स्थित उद्यान में वनक्रीडा के लिए जाते थे। उनके पीछे स्त्रिया भी पालकियों पर चढकर जाती थीं। वहा पर कुक्कुट मेषादि का युद्ध होता था और सभी परस्पर आनन्दपूर्वक रमण करते थे।

सोमेश्वर ने वनक्रीडा के अन्तर्गत इन पक्षियों के युद्धों का वर्णन नहीं किया। उनके समय में वनक्रीडा करने के लिए राजा अपनी प्रेयसियों के साथ उद्यान में जाकर आनन्दपूर्वक उनके साथ विहार एव खान पान कर लौट आता था। सोमेश्वर ने जो राजा के इधर उधर छिपने का प्रसग दिया है

---

१ वही ५।२।१६८,१७०।

२ श्रीमद्भागवतपुराण १० ६५।१८ २१।

३ ललितविस्तर १४।१८३ १९१।

४ घटानिबन्धन उद्यानगम क्रीडाश्च प्रवर्त्तयत ॥
कामसूत्र, सू० २६।

५ कामसूत्र, पृष्ठ ५३ ५४।

६ मानसोल्लास ५।२।१५९ १६०।

वह सम्भवत 'निल्यन क्रीडा' का ही और रूप है। इस निलयन क्रीडा का प्रसग भी श्रीमद्भागवत पुराण मे प्राप्त होता है[1] किन्तु इस क्रीडा को भगवान ने गोपों के साथ की थी।

सस्कृत के महाकाव्यों म प्राप्त प्रसगो से विदित होता है कि प्राचीन काल मे राजा गण वन क्रीडा के प्रेमी थे। मनोरजन एव आनन्द के साथ ही साथ विरह वेदना से सतप्त होकर भी राजागण अपना मन बहलाने के हेतु उद्यान में जाते थे। नैषध में दमयन्ती के विरह मे सन्तप्त राजा नल का मन बहलाने के लिए वन विहार करने का प्रसग प्राप्त होता है।[2] रघुवश महाकाव्य में कालिदास ने इन्दुमती के मन को बहलाने का एक मात्र साधन क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित उद्यानो को ही बतलाया है—

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिन्मनसो रुचिस्ते।
सिप्रातरंगानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरम्परासु॥[3]

इस प्रकार से वन तथा उद्यान का सुन्दर एव सरस वातावरण शीघ्र ही व्यक्ति के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था।

आन्दोलन क्रीडा

आन्दोलन अथवा प्रेखा क्रीडा भी सोमेश्वरकालीन समाज मे अधिकाशत प्रचलित थी। इस क्रीडा द्वारा वैसे तो सभी जन मनोरञ्जन करते थे, किन्तु विशेष रूप से यह स्त्रियों के मनोरञ्जन का ही साधन थी। यह क्रीडा अत्यन्त मनोहर वसन्तऋतु के आ जाने पर ही खेली जाती थी—

ऋतुराजे परिप्राप्ते वसन्तेति मनोहरे।
आन्दोलनं प्रकुर्वीत पृथुसबद्धयान्विताम्॥[4]

वसन्त ऋतु के आ जाने पर झूले का निमाण कराया जाता था। तत्पश्चात् पौर्णमासी की रात्रि को चन्द्रोदय हो जाने पर राजा पूर्ण रूप से अपना शृगार कर सुन्दर प्रेयसियों के साथ उस झूले पर झूलता था। उसके झूलने के पूर्व तूर्यनाद होता था, वदीगण वन्दना करते थे, ब्राह्मण लोग आशीर्वाद देते थे। तब राजा अपनी प्रेयसियों के साथ झूले पर चढता था—

---

१ चक्रुर्निलयनक्रीडाश्चोरपालापदेशत ॥
श्रीमद० पु० १०।३७।२७।

२ नषधीयचरितम् १।५५। ३ रघुवश ६।३५।

४ मानसोल्लास ५।३।१७५।

५ वही ५।३।१८३।

महता तूर्यघोषेण वदीवदेन वदित ।
गीतवाद्यविनोदेन विप्राशीभिरभिष्टुत ॥
आरोहेच्चतमान्दोल प्रेयमीभि समन्वित ॥[१]

राजा के झूले पर चढ जाने पर सभी जन अजलिबद्ध करों द्वारा उसके जय एव ऐश्वर्य का वर्णन करते थे। उन सबको राजा वस्त्राभूषणादि द्वारा सन्तुष्ट कर तथा विदा कर अपनी प्रेयसियों के साथ आन्दोलन क्रीडा द्वारा अपना मनोरञ्जन करता था। इसी प्रकार से राजा की शोभा बिल्कुल अप्सराओं से घिरे हुए देवराज इन्द्र के सदृश हो जाती थी—

स्तूयमान्वसनदा राजा राजते देवराजवत्।
सतर्प्य प्रियै वस्त्रविभूषणै ॥
ब्राह्मणान्गायकादींश्चैतत् सर्वान्विसर्जित ।
तत कातांजनै सार्धं क्रीडादादोलकैर्नृप ॥[२]

झूले पर राजा अपनी प्रेयसियों के समीप पटरे के मध्य में बैठता था। उसी झूले पर बैठ बैठ राजा कभी कभी अपनी भुजाओं को फैलाकर, कभी हाथों को प्रेयसियों की भुजाओं में फसाकर बैठता था।[3] इस प्रकार वह अनेक प्रकार से झूले पर बैठकर झूलता था। राजा झूलते समय अपनी जघाओं एव हाथों से जोर लगाकर झूले को ऊपर नीचे ले जाता था। उसकी प्रेयसिया कोकिल के सदृश स्वरमें शृगार रस से पूर्ण गीत गाती थीं और राजा के नाम को लेकर गाती हुई उसे धीरे धीरे झुलाती थीं।[४] इस प्रकार से राजा एक

---

१ वही ५।३।१८४ १८५ । २ वही ५।३।१८६ ८७ ।

३ पीठमध्ये स्वय तिष्ठेत् सुखासीन। प्रियान्वित ।
मत्रवारण ससक्त वृत्तायतभुजो नृप ॥

उपगूहनसभूत हृषरोमाचकचुक ।

मानसोल्लास ५।३।१८८ १९०

४ काताश्चतस्रो गायेयुश्चतुर्दिक्षु समाश्रिता ।
काकिलध्वनिसस्पर्द्धि कलनाद समन्वितम् ॥
सुस्वर मधुर गीत शृगाररसगर्जितम ।
नपनामसमोपेत दोलयन्त्या शनै शन ।

वही ५।३।१९४ १९६ ।

दूसरे की ओर मुदित होकर देखता हुआ अपनी प्रेयसियों के साथ आनन्द का अनुभव करता था।

प्राचीन काल मे वर्षा ऋतु का मनमोहक विनोद झूला झूलना रहा है। वर्षा काल के आगमन पर सभी तरुणियों एव पुरुषों का हृदय उल्लास से उमड उठता है और मेघ निरत्तर तथा काली घटाओ से निसृत रिमझिम के साथ वे अपने हृदय के उद्गारों को दोला विलास द्वारा निकालते है। सोमेश्वर ने वसन्त काल में इस दोला विलास की प्रथा का वर्णन किया है। स्कन्द पुराण मे श्रीकृष्ण भगवान् के लिए फाल्गुन मास मे 'दोलारोहण उत्सव' किए जाने का प्रसग प्राप्त होता है। इस उत्सव पर विष्णु की गोविन्द नाम से प्रतिमा तैयार करवाकर मन्दिर के आगे सोलह खभो से युक्त ऊचा मडप तैयार किया जाता था। वह चौकोर होता था। और उसमे चार कपाट होते थे, बीच में ऊची वेदिका होती थी। वही पर झूला डालकर भगवान को उसी मे बैठा कर लीलापूर्वक उन्हें हिडोला झुलाया जाता था और इस प्रकार चार पाच दिन तक फाल्गुनोत्सव मनाया जाता था।[1] श्रीमद्भागवत पुराण मे भी श्रीकृष्ण तथा गोपों की क्रीडा के प्रसग में आन्दोलन क्रिडा ("कदाचित् स्पन्दोलिकया)[2] का वर्णन हुआ है। इससे विदित होता है कि श्रीकृष्ण भगवान गोपों के साथ दोलाविलास क ते थे।

वात्स्यायन के कामसूत्र मे भी दोलाविलास का वर्णन इस प्रकार हुआ है

स्वास्तीर्णा प्रेंखादोला वृक्षवाटिकाया सप्रच्छाया।
स्थडिलपीठिका च सुकुसुमेति भवनविन्यास ॥[3]

अर्थात् वाटिका के वृक्षों की सघन छाया मे प्रेंखादोला अथवा झूला पडता था और छायादार वृक्षों के नीचे बैठने के आसन अथवा स्थडिल बनाए जाते थे जिन पर पुष्प बिछे रहते थे। यह प्रसग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देता है कि वात्स्यायन के समय के नागरक जन दोला विलास के प्रेमी थे।

प्राचीन काल में दोलाविलास का आनन्द स्त्री तथा पुरुष दोनों ही उठाते थे, जैसा जल्हण की निम्नलिखित पक्ति से स्पष्ट है

उन्नम्य दूर मुहुरानमन्त्य कान्ता स्थलीभूतनितम्बबिम्बा।
दोलाविलासेन जितश्रमत्वात्प्रकर्षमापु पुरुषायितेषु ॥[4]

---

१ स्कन्द पु० वष्णव खड उत्कल खड।

२ श्रीमद्० पु० १०।१८।१५।

३ कामसूत्र सू० १५ पृ० ४५।

४ जल्हण सूक्तिमुक्तावली ६५।२९।

स्त्री तथा पुरुष दोनों ही झूले पर चढकर अपने पैरों को प्रसारितकर झूले को खूब बढ़ाते थे उस समय उनके अशुक हवा में उडते थे

प्रसार्य पादौ विहितस्थितीना दोलासु लोलाशुकपल्लवानाम् ।
मनोरथानामपि यन्नगम्य तद्द्रष्टुमापु सुदृशा युवान ॥[1]

सस्कृत के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने भी दोला पर चढी हुई उमग से पूर्ण स्त्रियों के अशुक उडने का वर्णन किया है और उन्होंने इस प्रथा को वर्षा ऋतु का न मानकर विशेष रूप से वसन्त ऋतु का विलास माना है।[2] सोमेश्वर के समय में भी यह प्रथा वसन्त ऋतु के प्रारम्भ होने पर ही अपने विलासमय आकर्षक रूप को धारण करता थी और स्त्री तथा पुरुष दोनों ही दोल विलास करते थे।[3]

यह प्राचीन काल से चली आती हुई क्रीडा आज भी स्त्री पुरुषों के हृदय को चचल कर देती है। वर्षा के आगमन पर स्त्री तथा पुरुष आज भी अपने उल्लास से पूर्ण हृदयों को लेकर झूले पर चढ़ जाते हैं और मेघ के रिमझिम शब्द के साथ स्त्रियाँ अपने मधुर गानों के स्वरों को मिलाती है किन्तु यह प्रथा वर्तमान काल मे विशेष रूप से वर्षा काल में ही प्रचलित है।

सेचन क्रीडा

सोमेश्वर ने वसन्तोत्सव, विवाह, जय आदि के अवसर पर सेचन क्रीडा करने का आदेश दिया है—

वसन्तस्योत्सवे वाद्यविवाहाद्युत्सवेषु च ।
जये चासेचनक्रीडा कुर्याद्राजा मुदान्वित ॥[4]

भोजन करने के पश्चात् दिन को दो प्रहरों को व्यतीत कर राजा प्रतीहार द्वारा कुमार, मडलाधीश, सामन्त, पुरोहित, अमात्य, सचिव, मत्री, भट, कवि गण, गायक, वैतालिक, सूत, मागध तथा श्वेत वस्त्रों एव पुष्प माल्यों से सुशोभित तथा चन्दन के तिलक को धारण किए हुए अन्य आए हुए व्यक्तियों को यथा स्थान बैठाता था। ये सभी व्यक्ति थोडी देर तक एक मडप में बैठते थे।[5] तत्पश्चात् शृगार रस की मूर्त्ति वारि विलासिनिया, तरुणी, चचललोचना, मराल के सदृश गति वाली, सित कचुक धारण किए हुए, हार, तिलक, ताटक,

---

१ शारगधरपद्धति ३८७८० ।
२ विक्रमाक० सर्ग ६ ।
३ मानसोल्लास ५।३।१७१ ।
४ वही ५।४।२०१ २०२ ।
५ वही ५।४।२०३ २०८ ।

नूपुर आदि से सुशोभित स्त्रिया नृप के मदिर मे प्रवेश करती थीं।[1]

नृप मदिर म प्रवेश करने के पश्चात् वे वारिविलासिनिया श्रीखड कल्क, कर्पूर, सोरभ से सुगधित जल को सुवर्ण के गडुओं द्वारा राजा के शरीर पर डालती थीं। वे वारविलासिनिया श्वेत वस्त्र तथा शिर पर मल्लिका पुष्प धारण किए रहती थीं। इस प्रकार से गडुओं द्वारा वे प्रमदाये राजा के शरीर को किचित् क्षीण जलधारा द्वारा आर्द्र करती थीं—

जलयन्त्राणिनड्डुकान्।
सिचन्ति प्रमदा कान्ता राजान प्रति मानसा ॥[3]

तत्पश्चात् राजा कस्तूरी, हरिद्रा, श्रीखड तथा कुकुम से धवलित एव सुगन्धिपूर्ण जल द्वारा अपने सेवकों का सिचन करता था और प्रसन्न होकर उनके मस्तक पर पुष्प डालता था। इस प्रकार वह उदार चरित वाला राजा कल्पवृक्ष की भाति सुशोभित होता था।

इसी समय वारविलासिनिया कटुक वृक्ष की डालों को एक सूत्र द्वारा बाध कर उससे राजा की ओर जल उछालती थीं और इस प्रकार से वे स्त्रिया चारो ओर से पुष्पायुध के सदृश जल प्रहार करती थीं। दिन के कुछ ढल जाने पर और सूर्य के कुछ मद पड जाने पर राजा क्रीडा के आर्द्र वस्त्रो को उतारकर श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण करता था। तब वह रत्नजटित सिंहासन पर बैठता था और अपने सभी सेवको तथा सेविकाओ को विसर्जित कर देता था।[6]

---

१ ततो वारविलासिन्य शृगाररसमूर्त्तय ।
अत पुरपुरन्ध्रीश्च तथा शुद्धा नयोषित ॥

एव वितक्यमाणास्ता प्रविशेयुन पालयम ।
परिवाय नप सर्वास्ता मखालोकनोद्यना ॥
वही ५।४।२०९ २१८ ।

२ सौवणगडकाश्चैव दद्याद्धस्तेन योषिन ।
वही ५।४।२२५ ।

३ वही ५।४।२२९ ।

४ पुष्पाणि विकिरेत्तेषा मस्तके मुदान्वित ।
उदारचरितो राजा राजते कल्पवक्षवत् ॥
वही ५।४।२३२ ।

५ वही ५।४ २३३ २३६ । ६ वही ५।४।२३७ २३९ ।

उपर्युक्त प्रसग से यह विदित होता है यह सेचन क्रीडा स्नान से ही सम्बंधित थी और विशेष रूप से राजा एव धनी पुरुषों से सम्बधित थी। यह एक विशेष प्रकार की क्रीडा थी, जो अधिक समय तक विशेष अवसरो एव उत्सवों के समय की जाती थी।[1] श्रीमद्भागवत पुराण मे भी इस प्रकार की क्रीडा का वर्णन हुआ है जिसमे श्रीकृष्ण तथा ग्वालबाल परस्पर एक दूसरे को घृत, दधि तथा दूध से भिगोते थे—

गोपा परस्पर हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभि ।
आसिचन्तो विलिपन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपु ॥[2]

यह उत्सव गोवर्धन पूजा के उत्सव के समय मनाया जाता था। इस उत्सव पर गायों को तैल तथा हरिद्राचूर्ण का लेप करवाया जाता था और उन्हे सजा कर अलकार पहनाए जाते थे। सभी परस्पर आनन्दपूर्वक क्रीडा करते थे और सुन्दर वस्त्रों को धारण करते थे। अनेक वाद्य बजते थे, वदी मागध आदि राजा नद का यश गान करते थे।[3] सभवत यह सेचन क्रीडा पुराण काल मे इसी प्रकार खेली जाती थी।

वात्स्यायन ने भी अपने कामसूत्र में इस क्रीडा का वर्णन किया है, किन्तु उनके द्वारा वर्णित प्रसग से विदित होता है कि यह क्रीडा उस समय मे राजा एव धनिक नागरिक के स्नान के समय नित्य की जाने वाली क्रिया थी। उस समय मे मध्याह्न के कुछ पूर्व उठकर नागरिक अपने मित्रों के साथ थोडा व्यायाम करता था। तत्पश्चात् स्नान करने के लिए स्नानागार में जाता था। वहा पर साधारणतः सगमरमर की चौकी पर वह बैठता था। उसके परिचारक अथवा परिचारिकायें धीरे धीरे उसके शरीर पर तैलमर्दन तथा सिर पर पिसा हुआ आमलक का चूर्ण मलती थीं। इसके पश्चात् वह जलद्रोणी मे बैठता था और फिर उसमें से निकलने पर वे स्त्रिया उसके सिर पर से जलधाराये डालने लगती थीं।[4]

बाण ने कादम्बरी में राजा शूद्रक को वारिविलासिनियों के द्वारा गडुओं के सुगन्धित जल से नहलाए जाने का वर्णन किया है।[5] अजन्ता की गुफाओं में भी एक गुफा के चित्र में गौतम के स्फटिक की चौकी पर बैठने तथा दो उष्णीष बाधे हुए परिचारकों द्वारा उन्हें स्नान कराए जाने का चित्र बना है। स्नानागार के समीप वाले मार्ग में एक परिचारक सिर पर घट रखे सभवत सुगन्धित जल लिए जा रहा है।

१, ५।४।२०१,२। २ श्रीमद्० पु० १०।५।१४।
३ श्रीमद्० पु० १०।५।७,१७। ४ वात्स्यायन कामसूत्र १७ १८।
५ कादम्बरी कथामुख भाग।

इन सभी प्रसगों से विदित होता है कि सेचन क्रीडा स्नान क्रिया का ही अन्य रूप थी किन्तु सामेश्वर के द्वारा दिए हुए प्रसग से विदित होता है कि सेचन क्रीडा उनके समय में विशेष अवसरों पर खेली जाती थी। और यह एक विशेष प्रकार की क्रीडा थी। उन्होंने यद्यपि इसे स्नान से ही सबधित माना है, किन्तु नित्य के स्नान से सम्बन्धित नहीं बतलाया, क्योंकि इस क्रीडा को उन्होंने भोजन के पश्चात् दिन के दो प्रहरो के व्यतीत हो जाने पर करने का आदेश दिया है। अत यह वस तादि के उत्सव के समय पर खेली जाने वाली क्रीडा थी और इसमें वारिविलासिनिया ही राजा को नहलाती थीं। वर्तमान काल में भी इस क्रीडा का रूप लुप्त नही हुआ। आज कल भी व्यक्ति स्नानागारों में बने हुए जलयन्त्रों अथवा फवारो के नीचे बैठकर स्नान (shower bath) करते है जो सेचन क्रीडा का ही प्रतिरूप है।

सलिल क्रीडा

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के अत्यन्त तीव्र होने पर तथा अत्यन्त प्रचण्ड एव उष्ण वायु के चलने पर राजा जलक्रीडा करता था।[1] इस क्रीडा को राजा नदी, पुष्करिणी अथवा कण्ठ तक के निमल जल से पूर्ण सोपान से सुशोभित जलाशय मे करता था—

नद्या वा पुष्करिण्या वा कण्ठदध्नामलाभसि।
चतुरस्रा सुवृत्ता या रम्या सोपानभूषिता॥[2]

वहीं पर कलश, चर्मभाड आदि मे जल भरकर भराल चक्रवाक आदि बैठाये जाते थे। वह जल क्रीडा का स्थल एक प्रकार के प्राकार द्वारा घिरा रहता था ओर चूने द्वारा साफ किया रहना था।[3]

राजा स्त्रियों के साथ जलक्रीडा करता था। वे तरुणियाँ जलक्रीडा के समय

---

१ निदाघे समनुप्राप्ते चडे मार्त्तडमडले।

कुर्वीत सलिलक्रीडा क्रीडावाप्या महीपति॥
मानसोल्लास ५।५।२४१ ४४

२ वही ५।५।२४५।

३ ५।५।२४६ ४९।

श्वेत वस्त्र धारण करती थीं और कुकुमादि का लेप किए रहता थी।[1] स्त्रियों के साथ जब राजा जलक्रीडा स्थल में आता था उसके पूर्व ही वहाँ पर कर्पूर तथा पुष्पादि फैला दिए जाते थे—

पुष्पाणि विकरेत्तत्र कर्पूरसकलानि च।[2]

जलक्रीडा करते समय सभी की श्वेत वेशभूषा रहता थी और सब सुवर्ण भूषणों

श्वेताम्बर परीधानान् बुधाचारनयान्वितान्।

कृत्वा च मडन शुभ्र हेमभूषणभूषिता ॥[3]

राजा अपनी उन कांताओं मे से किसी को खींचकर, किसी को पकड कर, किसी का कधा पकडकर, किसी का हाथ पकड कर, किसी का प्रेमपूवक तथा किसी के साथ मधुर भाषण करते हुए वापी के शीतल जल म क्रीडा करने के लिए प्रवेश करता था। कर्पूर से सुगन्धित जल मे उतर कर वे सभी एक दूसरे को पकड लेते थे—

ततो वारिस्थित सर्व कर्पूरसकल बहु।
अह पूर्वकयपूवे गृहणानि सलिलस्थिता ॥

राजा जल म शुद्ध सुवर्ण, निष्क अथवा अनेक रत्न उनके समक्ष जल म डालता था और वे बार बार उन्ह पकडने के हेतु जल में डुबकी लगाती थीं। इस प्रकार से उनम उत्सुकता तथा श्रम के लक्षणों को देखकर और उनके रत्नों के प्राप्त कर लेने पर राजा हँस कर उनकी ओर जल उछाल कर प्रसन्न होता था। जिस प्रकार से सिंधु के साथ सरिता, हस्ती के साथ हस्तिनी, शक्र के साथ आप्सरागण, गोपो के साथ कृष्ण, चन्द्रमा के साथ तारागण सुशोभित होते हैं उसी प्रकार वह राजा भी जलक्रीडा के समय अपनी कमल के सदृश

---

१ वही ५।५।२५० ५२। २ वही ५।५।२५४,५५।

३ वही ५।५।२५३ २५४।

४ आकृष्टानायकात्काश्चित्काश्चिदालिंग्य कामिनी।
काश्चित्स्क ध समारोप्य काश्चिदशुक वपणात ॥

प्रवेशये महीपाल क्रीडा वापिषु शीतलाम्।

वही ५।५।२५५ २५८।

५ वही ५।५।२५९। ६ वही ५।५।२५९ २६१।

मुखवाली कांताओं के सहित सुशोभित होता था।[1] राजा अपनी प्रियाओं के साथ कण्ठ तक के जल में जाकर क्रीडा करता था।[2] जल के मध्य में राजा अपनी प्रियाओं को मुक्ता की शका उत्पन्न कर देनेवाले जलकणों तथा पुष्पों द्वारा प्रहार करता था और जल के मध्य में ही उनका गुप्त रूप से आलिंगनादि कर सुख को प्राप्त करता था।[3] इस प्रकार के अनेक हाव भाव एव क्रियाओ द्वारा राजा जल क्रीडा करता था।

थोडा दिवस अवशिष्ट रह जाने पर राजा जल क्रीडा समाप्त कर अपनी प्रियाओं के साथ पुष्करी के जल से निकलता था—

नद्या वा पुष्करिण्या वा जलकेलिप्रवृत्तये।
निर्वृत्य सलिलक्रीडा किंचिदवशिष्टे च वासरे।[4]

तत्पश्चात् राजा श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण कर, शरीर पर कुकुम तथा चन्दनादि का लेप कर स्थूल मुक्ता के हार को कण्ठ मे धारण कर आगन म अपनी प्रियाओं के साथ उत्तम शय्या पर बैठता था।[5] इस श्रृगारपूर्ण जल क्रीडा द्वारा राजा अपना मनोरंजन करता था।

यह सलिल क्रीडा के अनेक प्रसग प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में कृष्ण गोपियों के साथ अनेक स्थलों पर जल क्रीडा करने का प्रसग प्राप्त होता है।[6] वात्स्यायन[7] ने जल क्रीडा को स्पष्ट रूप से ग्रीष्मकाल की ही क्रीडा स्वीकार की है। सस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि कालिदास ने भी ग्रीष्मऋतु में

---

१ राजते सह भूपेन सिधुना सरिता यथा।
करिण्योदिग्गजानैव शक्रेणवाप्सरोगणा॥
गोप्यो वा वसुदेवेन यथा चद्रेण तारकाः।
तोयमध्यस्थिता कांता पद्मि यीव जगम॥
वही ५।५।२६४ २६५।

२ मुखपद्मेनशोभन्ते कटदग्धे जले शुभे।
वही ५ ५।२६७।

३ वही ५।५।२६८ २८०। ४ वही ५।५।२८१।

५ वही ५ ५।२८२२ ८४।

६ श्रीमद्० पु० १०।६५।२०, १०।६९।२७।

७ एतेन रचितोद्ग्रहोदकानाग्रीष्मेजल कीडागमन व्याख्यातम।
कामसूत्र सू० ४१।

दीर्घिकाओं म क्रीडा करती हुई स्त्रियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[1] विलासिनी स्त्रियाँ मुक्ता के सदृश जलबिन्दुओं को उछालती है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके हृदय का हार टूट जाने के कारण उसका मुक्ताय बिखर गई हों—

आसा जलास्फालनतत्पराणा मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाण सलक्ष्यते न च्छिदुरोऽपि हार ॥[2]

विलासिनियों के शिरीष कर्णावतस क्रीडा करते समय जलाशय में गिर जाते थे और वे मछलियों के हृदय में शैवाल जाल का भ्रम उत्पन्न कर देते थे—

असी शिरीषप्रसवावतसा प्रभ्रशिनो वारिविहारिणीनाम्।
पारिप्लवा केलिसरोवरेषु शैवाललोलाश्छलयन्ति मीनान् ॥[3]

महाकवि भारवि ने भी स्त्रियों की जलकेलि का सुन्दर एव स्वाभाविक वर्णन किया है। ग्रीष्म के प्रकोप से पीडित होकर सुन्दरी स्त्रियां जलकेलि करने के लिए क्रीडा सरोवर मे आकर कमलदलों को मलती हे—

प्रशान्तघर्माभिभव शनैर्विवान् विलासिनीभ्य परिमृष्टपकज।
ददौ भुजालम्बमिवात्तशीकरस्तरगमालान्तरगोचरोऽनिल ॥[4]

जल मे स्थित कामिनियों के स्तनयुगल से टकरा कर तरगें भी शब्द करने लगती हैं।[5] शिशुपालवध के रचयिता महाकवि माघ ने भी क्रीडा सरोवरों में जलकेलि करती हुई तरुणियों का स्वाभाविक चित्रण किया है।[6] जल के मध्य में कमल के सदृश मुख वाला सुन्दरी स्त्रियों का मुख सुशोभित होता है—

किं तावत्सरसि सरोजमेतदारादाहोस्विन्मुखमवभासते तरुण्या।
सशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद्बिब्बोकैर्बकसहवासिना परोक्षै ॥

अमरु कवि ने भी अपने अमरुशतक में स्त्रियों की जलकेलि का वर्णन इस प्रकार किया है—

ललितसुरसा तरन्ती तरलतरगौघचालितनितम्बा।
विपरीतरतासक्ता किमदृश्यत सरसि या सख्या ॥[9]

---

१ रघुवश १६।६१ ६७। २ रघुवश १६।६२।
३ वही १६।६१। ४ किरातार्जुनीय ८।२० ५३।
५ किरात ८।३१। ६ वही।
७ शिशुपालवध ८।१८ ५०। ८ वहा ८।२६।
९ अमरुशतक १३१।

शारगधरपद्धति में भी जलकेलि करती हुई स्त्रियों के अगराग के तिलक के जल में धुल जाने का प्रसग प्राप्त होता है—

हृतोऽङ्गरागस्तिलक विमृष्ट लब्धान्तरैरेभिरतीव मत्वा ।
सुसहितेनेति तदा जलानामदायि मध्य न कुचद्वयेन ॥[1]

इन सभी ग्रन्थों में स्त्रियों के ही जलकेलि का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि पूर्व में यह क्रीडा केवल स्त्रियाँ ही परस्पर मिलकर करती थीं। किन्तु शनै शनै इसका रूप और परिष्कृत होता गया और स्त्री तथा पुरुष दोनों मिलकर साथ साथ इस जल क्रीडा को करने लगे। कवि बिल्हण ने विक्रमाकदेवचरित में महाराज विक्रमादित्य के अपनी प्रेयसियों के साथ जलकेलि करने का वर्णन किया। सोमेश्वर के द्वारा कथित प्रसग से विदित होता है कि उनके समय में भी स्त्री तथा पुरुष दोनों साथ मिलकर इस क्रीडा को करते थे। जिस समय एक ओर सम्पूर्ण पृथ्वी का जल ग्रीष्म के प्रकोप से शुष्क हो जाता था उस समय जलकेलि करने के लिए कृत्रिम क्रीडा सरोवरो का निर्माण होता था।

शाद्वल क्रीडा

सुन्दर घास से परिपूर्ण स्थान मे जब राजा अपनी प्रियाओं के साथ मनोरजन करने के लिए जाता था वही शाद्वल क्रीडा कहलाती थी। यह शाद्वल स्थली अजन के सदृश कृष्ण वर्ण वाले हाथियों से, पुष्पों, चित्र विचित्र प्रकार के वृक्षों, केतकी की गध तथा मराल वृन्दों से पूर्ण होती थी। इस प्रकार की सुन्दर शाद्वलस्थली में पश्चिमी वायु के चलने पर राजा क्रीडा करने के लिए अपनी प्रियाओं के साथ जाता था।[3] जिस वन में राजा शाद्वल क्रीडा करने के लिए जाता था उसमे पूर्व ही से कुसुम्भ रग से रजित वस्त्र का काडपट लगा दिया जाता था और स्थान स्थान पर वैणिकों को स्थापित कर दिया जाता था

कौसुम्भरजितैर्वस्त्रै तत्काण्डपटै शुभै ।
वेष्टयेत्स्थण्डिले देशे समन्ताद्दूर्वसस्थितै ॥[4]

इस प्रकार से वन के तैयार हो जाने पर राजा दूसरे दिन प्रात काल उठकर पूर्वाह्न क्रिया को करके अपनी प्रेयसियों समेत श्रृंगार करता था।[5]

---

१ शा० प० ३८४९। २ विक्रमाक० सग ११।
३ मानसोल्लास ५।६।२८८ २९८। ४ वही ५।६।२९८।
५ प्रभाते च समुत्थाय कृतपूर्वाह्णिकक्रिय ।
तत समृतश्रृगार प्रेयसीजनसवृत ॥
वही ५।६।३०१।

और सुवर्णरटाओं से सुशोभित मस्तक पर सिन्दूर तिलक धारण किए हुए हस्तिनियों को तथा मनोहर एव ललित गति वाले हेमपर्याण से युक्त अश्वों को बुलवाता था। हस्तिनी पर राजा स्वय चढता था और अपने समीप उसी हस्तिनी पर अपनी प्रिया को चढाता था। अन्य अन्त पुर की स्त्रिया, वारिविलासनिया, गायिकाये, नर्तकिया तथा वारागनाये अश्वों पर चढती थीं। तब सब लोग शनै शनै एक दूसरे के पीछे हो कर शाद्वल की ओर आते थे और उसी में थोडी देर विश्राम करते थे।

शाद्वल स्थल म सर्वप्रथम राजा उतर कर तब अपनी प्रिया तथा शुद्धान्त योषिताओं को उतारता था। तत्पश्चात् राजा वैणिकों को यथास्थान स्थापित कर विलासिनियों को प्रेयसियों के समीप भेज देता था।[2] इस प्रसग में वार विलासिनियों का दृष्टात इस बात को पूर्णरूपेण स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर के समय मे वारविलासिनियों को राजा के वैनोदिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वे क्रीडा क्षेत्र में राजा के साथ जाती थीं और राजा की प्रेयसियों का विशेष रूप से ध्यान रखती थीं।

उस शाद्वस्थली मे उचित रूप से सबके बैठ जाने पर राजा तथा अन्य सभी जन अनेक प्रकार के आसव, भक्ष्य एव भोज्य पदार्थ तथा ताम्बूलादि का सेवन करते थे। तब राजा अपने प्रेम के अनुसार यथायोग्य सबको वस्त्र, आभूषण, घन भोजन तथा प्रमादादि देकर सबको प्रसन्न करता था।[3] भोजन से निवृत्त होकर पवित्र स्थान में प्रवेश कर राजा अपने शरीर का शृगार करता था, कर्पूर मिश्रित चदन का अपने शरीर पर लेप करता था, श्रेष्ठ वस्त्रों एव मुक्ताभूषणों को पहनकर मस्तक पर कस्तूरी-मिश्रित चदन का तिलक धारण करता था तथा सिर पर केतकी पुष्प का आभूषण धारण करता था।[4] तत्पश्चात् वह अपनी प्रियाओं को बुलवाता था जो मस्तक पर सिंदूर, लाक्षारस से रजित वस्त्र, मुक्ता तथा सुवर्ण के ताटक, मुकुल आदि आभूषण धारण किए तथा शरीर पर कुकुम का लेप किए रहती थीं। उन स्त्रियों को बुलवाकर सम्मानपूर्वक अपने समीप बैठाता था।[5] तत्पश्चात् सबके एकत्र होने पर दूर पर स्थित गायकगण राजा के यश का गान करते थे और मनोहर तूर्यनाद होता था। नृत्य में निपुण नर्तकियाँ वहीं पर नृत्य करती थीं और बाद में राजा उन्हें तथा गायक वृन्दों को वस्त्र, काचनादि देकर सतुष्ट करता था।

---

१ वही ५।६।३०२-३०६।
२ वही ५।६।३०७ ३०९।
३ मानसोल्लास ५।६।३०९ ३१२।
४ वही ५।६।३१३ ३१५।
५ वही ५।६।३१३ ३१९।
६ वही ५।६।३ ५।

इसके बाद राजा उठ कर सुवर्ण की घटियों से युक्त कुसुम्भ वर्ण के छत्र तथा बीर कम्भ से सुशोभित, हरिद्रा मिश्रित शालिपिष्ट से सिंचित किए हुए मुख वाले, मस्तक पर तैल तथा सिंदूर लगाए हुए हाथी पर चढता था और अपनी कांताओं को अन्य हस्तिनियों पर चढ़ाता था। तब राजा हाथी को प्रेरित करता हुआ अपने मन्दिर को लौट आता था।

शाद्वल क्रीडा का इतना विस्तृत वर्णन किसी भी ग्रथ में नहीं प्राप्त होता, किन्तु, फिर भी प्राप्त प्रसगों से यही स्पष्ट होता है कि यह क्रीडा भारतवर्ष मे प्राचीन काल से प्रचलित है। भारतवर्ष की हरित शाद्वल से पूर्ण भूमि को देखकर सभी का हृदय उसमे बैठकर आनन्द प्राप्त करने के लिए उछल उठता है। इसी कारण इस हरित भूमि में क्रीडा करना सदा से ही इस देश मे एक साधारण सी बात रही है। श्रीमद्भागवत पुराण मे एक स्थल पर ऐसा प्रसग प्राप्त होता है—

शाद्वलोपरि सविश्य चर्वतो मीलितेक्षगान्।
तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् गाश्च स्वोधोभरश्रमा ॥[२]

इस हरित शाद्वल पर गाय, बैल तथा गायों के बछडे आदि आनन्द से तृण चर्वण करते थे और उनके साथ गोपादि भी परस्पर क्रीडा करते थे। इस प्रसग मे प्राप्त हुआ शाद्वल शब्द सभवत शाद्वल क्रीडा की ओर ही सकेत करता है। इसका वर्णन मेघागम उत्सव के प्रसग मे हुआ है। अत यह क्रीडा वर्षाकाल में मेघों के छा जाने पर ही की जाती थी। काले काले मेघों के छा जाने पर गो तथा ग्वालों से घिरे हुए कृष्ण इस क्रीडा को करते थे—

एव वन वर्षिष्ठ पक्वखर्जूरजम्बुमत्।
गोगोपालैर्वृतो रन्तु सबल प्राविशद्धरि ॥[४]

सभी प्रसन्न होकर परस्पर दधि, ओदन, कन्द, मूल, फलादि खाकर परस्पर गाना

---

१ भूषणानि विचित्राणि ताम्बूल च मुखस्थितम।
समुत्थाय ततो राजा मदरश्मौ दिवाकरे ॥

आरुह्यांकासन राजा कान्तास्तारोपयेद्वशा ॥
मानसोल्लास ५।६।३२४ ३२८।

२ श्रीमद्भागवत पुराण १०।२०।३०।

३ मेघागमोत्सवा हृष्टा प्रत्यनन्दिछखडिन ॥
श्रीमद्० पु० १०।२०।२०।

४ श्रीमद्० पु० १०।२०।२५।

गाते थे। कभी हरित वनस्पति में बैठते थे, कभी लेटते थे तथा कभी दौड़ते थे। इस प्रकार वे सभी वर्षाकालीन श्री को देखकर प्रफुल्ल मन से क्रीडा कर आनन्द प्राप्त करते थे।[1] सोमेश्वर ने भी इसी प्रकार की क्रीडा को शाद्वल क्रीडा नाम दिया है, किन्तु उनके समय में यह क्रीडा विशेष रूप से खेली जाती थी और उसके लिए विशेष प्रकार का प्रबन्ध पूर्व से ही किया जाता था। इसके अतिरिक्त स्त्री तथा पुरुष दोनों ही इस क्रीडा को करने के लिए जाते थे।

वर्तमान काल में भी यह क्रीडा लुप्त नहीं हुई है। आज भी व्यक्ति किसी भी सुन्दर दिन को अत्यन्त रमणीय स्थान में जाकर परस्पर मनोविनोद खेल कूद तथा वार्तालाप करते हुए आनन्द पूर्वक वहीं पर भोजनादि करते हैं। इस प्रकार से वे सभी उस दिन विशेष प्रकार से अपना मनोरंजन करते हैं, जो पिकनिक (Picnic) के नाम से प्रसिद्ध है।

बालुका क्रीडा

सोमेश्वर के समय में बालुका क्रीडा भी अधिकांशत प्रचलित थी और राजा भी इस क्रीडा द्वारा अपना मनोरंजन करता था। यह क्रीडा घने मेघों के होने पर, हंस मातंग से पूर्ण, मुक्ताजाल के सदृश जल से पूर्ण जलाशय अथवा नदी के तट पर पश्चिमी सुगन्धित वायु के चलने पर की जाती थी।[2] सोमेश्वर ने राजा को चक्रवाक, बकुलादि से पूर्ण तथा नलिनी, तिलक आदि से पूर्ण नदी अथवा तालाब के समीप बालुका क्रीडा करने का आदेश दिया है।[3] इसके अतिरिक्त धूप तथा पिपासा का हरण करने वाले जल के समीप जो बालुका हो और मुक्ता तथा सुवर्ण की भांति चमकती हो, इस प्रकार के बालुका स्थल में क्रीडा करनी चाहिए—

> सलिले सुखसंस्पर्श पिपासाघर्महारिणि।
> सूक्ष्ममुक्ताफला हेमरेणुसमप्रभे ॥
> नानामणिगणप्रख्यसुरलक्षणसिकताचये ।
> मनोहरे समुद्देशे शीतकाले पटावृते ॥[4]

राजा बालुका क्रीडा के लिए जाते समय अपनी कांताओं को भी साथ ले जाता था और वह श्वेत वस्त्रों तथा आभूषणों को धारण कर करिणियों पर चढ़कर उस स्थल को जाता था।[5] उस स्थल पर सबके पहुँच जाने पर सभी चार चार की संख्या में अलग अलग गोला बनाकर बैठती थीं और राजा सभी

---

१ श्रीमद्० पु० १०।२०।२७ ३१। २ मानसोल्लास ५ ७।३३१-३३४।
३ वही ५।७।३३४। ४ वही ५।७।३३६ ३३८।
५ परिधाय सित वस्त्रमन्त पुरजनै सह ॥ वही ५।७।३३९ ३४०।

के समीर जाकर सबको आनन्दित करता था।[1] सर्वप्रथम राजा उस समीप की नदी अथवा जलाशय में जाकर अपनी हस्ताजलि द्वारा जल को उछालता था। यह क्रिया वह तब तक किए जाता था जब तक जल पूर्ण रूप से शुद्ध न हो जाता था—

प्रसृतिक्षेपणात्तोय मृदुवच्च पुन पुन ।
यावन्निर्मलता याति नीरतावद्वहि क्षिपेत् ॥
सजाते निर्मले तोये जलवासस्तत क्षिपेत् ॥[2]

जल के शुद्ध हो जाने पर राजा वहा से हटकर कमल आदि की गन्ध से पूर्ण सोपान युक्त बालुका पुज का देव मदिर की भाति देवागार बनता था। उसके चारों ओर एक परिखा बनाई जाती थी जिसमे जल भर दिया जाता था। उसके पान स्थल पर राजा अपने अधर पल्लव का छुआता था और शीत के व्याज से दांतों को पीसकर अपने हाथों में बालू लेता था। इस प्रकार की प्रेमपूर्ण लीला द्वारा राजा अपनी प्रियाओं को प्रसन्न करता था।[3] तत्पश्चात् बालुका पुज के कन्दुक के आकार के दो बडे गोले बनाकर उन्हें राजा परस्पर एक दूसरे से लडावा था। जिसका गोला टूट जाता था वह पराजित हो जाता था और जीता हुआ व्यक्ति उसकी पीठ पर बैठता था तथा उसके कान खींचता था—

कुर्कुटन्व समारोप्य योधयेयु परस्परम् ।

जितस्य पृष्ठमारोहेत्कर्णौ धृत्वा विकर्षयेत् ॥[4]

इसके अतिरिक्त यदि पराजित हुआ व्यक्ति भागता था तो जीता हुआ व्यक्ति उसका पीछा कर बालुका मे उसे गिराकर उसके मुख पर खूब जल डालता था।[5] राजा भी जीत जाने पर यही सब करता था। यह क्रिया सम्भवत परस्पर पुरुषों में ही की जाती थी।

---

१ वही ५।७।३४१ ३४२।   २ मानसोल्लास ५।७।३४२ ४३।

३ उत्पल कमल चव शतपत्रसुसौरभम ।

प्राकारदेवतागार बालुकापुजनिर्मितम् ।
कुर्याद्रम्य सुसोपान परिखाजलपूरितम् ॥

वही ५।७।३४४ ३४८।

४ वही ५।७।३४९ ३५०।

५. पलायने वानुधावे सूक्ष्मसैकतभूतले ।
पातयेद्वालुकामध्ये

इस प्रकार क्रीडा करने के पश्चात् राजा विचित्र वस्त्र, रत्नादि जटित दिव्य आभूषणो एव लेपों द्वारा अपना श्रृंगार करवा कर हस्तिना पर चढता था और अनेक प्रकार के शब्दों के प्रयोग द्वारा हस्तिनी से बालुका पर चक्रमण करवाता था। इस प्रकार वह अपनी प्रेयसियों के चित्त को प्रसन्न करता था। अन्त में श्रेष्ठ गतिवाले अश्वों एव हस्तिनियों पर सबको चढा कर अपनी प्रेयसियों के साथ अपने मन्दिर को लौट आता था।

यह बालुका क्रीडा वर्तमान काल म विशेषत बालकों के ही मनोरञ्जन का साधन रह गई है, किन्तु सोमेश्वर के समय में यह क्रीडा विशेष महत्त्व रखती थी और यह विशेष रूप से अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनाई जाती थी। यह बालुका-क्रीडा सभी व्यक्तियों के मनोरजन का साधन रही होगी।

श्रीमद्भागवत पुराण में भी बालुका में क्रीडा करने का प्रसग प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण भगवान् अपनी बाल्यावस्था में यमुना नदी के तट पर आकर वहाँ की हिम के सदृश शीतल बालुका म रमण करते थे

नद्या पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमबालुकम्।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥[2]

गोपियों से घिरे हुए कृष्ण उनके साथ नृत्य करते थे। गोपिया मधुर गीत गाती थीं, प्रफुल्लित होकर कृष्ण का वैजयन्ती माला पहनाती थीं और स्वय भी धारण कर हर्षपूर्वक विचरण करती थीं।

सोमेश्वर के समय में इस क्रीडा को खेलने का विभिन्न रूप था। राजा अन्य जनो के साथ बालुका निर्मित कन्दुक एव कुर्कुट लडाकर क्रीडा करता था और जीतने वाला व्यक्ति हारने वाले व्यक्ति के स्कन्ध पर बैठकर चलता था।[3] सोमेश्वर का यह प्रसग स्पष्ट रूप से वाह्यवाहक क्रीडा की और सकेत करता है। इससे विदित होता है कि यह क्रीडा भी सोमेश्वर के समय में प्रचलित थी और बालुका क्रीडा के मध्य मे ही की जाती थी। इस वाह्यवाहक क्रीडा का प्रसग श्रीमद्भागवत पुराण में प्राप्त होता है। इसमें भी पराजित व्यक्ति को अपने ऊपर चढाकर दौडता था

तत किंचित्समाक्रान्तसिंचन्न यो यमम्बुभि ।
एव क्रीडा नृप कृत्वा तत श्रृंगारमाचरेत् ॥
वही ५।७।३५० ३५२।

१ मानसोल्लास ५।७।३५५।
२ श्रीमद० पु० १०।२९।४५। ३ वही १०।२९।४३ ४६।

आचेरुर्विविधा क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणा ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिता ॥[१]

इस क्रीडा को कृष्ण तथा बलराम गोपों के साथ करते थे।

इस क्रीडा का महत्त्व आज भी लुप्त नहीं हुआ है। नदी के किनारे अथवा क्रीडा स्थल में स्थित बालुका में खेलते हुए तथा बालू के घरौंदे बनाते हुए छोटे छोटे बच्चे आज भी उस बालुका क्रीडा की याद दिलाते हैं।

ज्योत्स्ना क्रीडा

यह क्रीडा अत्यन्त हर्षदायिनी है। राजा विशेष रूप से आश्विन, कार्तिक वसन्त अथवा ग्रीष्म ऋतु में ज्योत्स्ना क्रीडा करता था।[२] दुग्ध प्रवाह, शक्ति, चन्दन, कर्पूर रेणु के सदृश, चकोरों के लिए आनन्ददायिनी कुमुदनियों के विकास की हेतु, दिवस की सम्पदा को जीतकर अन्धकार के उत्साह को नष्ट कर देनेवाली ज्योत्स्ना के रात्रि में छिटक जाने पर राजा ज्योत्स्ना क्रीडा करता था।[३] यह ज्योत्स्ना क्रीडा राजा ज्योत्स्ना से पूर्ण अपने विशाल प्रांगण में करता था।[४] इस समय राजा श्वेत, चिकने वस्त्र तथा घुटनों तक लटकनेवाला दृढ़ वीर कच्छा को धारण करता था और अपने सम्पूर्ण शरीर में कस्तूरी आदि का लेप कर मालती पुष्प की माला धारण करता था।[५] इसी प्रकार स्त्रियाँ तथा अन्य जन भी सुन्दर वस्त्र एवं वेशभूषा द्वारा अपने को सुशोभित करते थे। इस क्रीडा में बालक, वृद्ध, स्थूलकाय, रोगी आदि व्यक्ति भाग नहीं ले सकते थे। समवयस्क तथा चतुर व्यक्ति ही क्रीडा में सम्मिलित होते थे।[६] यह ज्योत्स्ना क्रीडा तीन प्रकार से खेली जाती थी।

सर्व प्रथम जितने व्यक्ति होते थे वे दो पक्ष में पाँच, सात, आठ, नौ, तथा दस की संख्या में विभक्त हो जाते थे। दोनों ओर समान संख्या में व्यक्ति

---

१ श्रीमद् पु० १०।१८।२१।

२ मानसोल्लास ५।८।३५७ ५८। ३ वही ५।८।३५८ ३६२।

४ विशाल प्राङ्गणे रम्ये दृषद्गर्त्तविवर्जिता ॥
मानसोल्लास ५।८।३६२।

५ घन श्लक्ष्ण सित वस्त्र जानुमात्रावलम्बितम ।
परिधाय दृढा कच्छा कल्पयेत्तत्प्रमाणिकाम ।

चन्दनालिप्तसर्वाङ्गकस्तूरीतिलकोचितम ।
मानसोल्लास ५।८।३६३ ३६५।

६ मानसोल्लास ५।८।३७१ ३७२।

रहते थे।[१] इन दोनों हा पक्षों के मध्य एक रेखा खींच दी जाती थी और पॉच धनुष के अन्तर पर दो विजय चिह्न बना दिए जाते थे।[२] उस विजय चिह्न को छूने के लिए सभी दौडते थे और जिस पक्ष के अधिक व्यक्ति उसे सर्वप्रथम छू लेते थे वही पक्ष जीत जाता था।[३] इस क्रीडा में पुरुष ही भाग लेते थे। इस क्रीडा नाम हरिशशो था। यह क्राडा पूव में गोप रूप में श्रीकृष्ण भगवान् द्वारा चद्र ज्योत्स्ना मे खेली गया थी इसा कारण इसका नाम हरिशशी क्रीडा है

हरिणा निर्मिता क्रीडा गोपवपभृता पुरा।
शशिप्रभाया या तस्मात्प्रोक्ता हरिशशीत्यसौ॥[५]

दूसरा क्रीडा काष्ठा थी। इसे भी श्रीकृष्ण भगवान् ने पूर्व में खेला था

काष्ठक्रीडेयमाख्याता गोविन्देन पुरा कृता।[६]

इस क्रीडा में पॉच अथवा सात काष्ठ फल के द्वारा चार चार हाथ के कोष्ठ बनाये जाते थे और उनके समीर हा से वर्तिका नाम की एक ऋजु रेखा खींची जाती था। एक पक्ष की ओर की गई रेखा के अन्दर दूसरे पक्ष का व्यक्ति प्रवेश कर सब कोष्ठों को लाघता हुआ मध्य के कोष्ठ में पहुँच कर पुन इस प्रकार से उस कोष्ठ को लाघता था कि वह रेखा छूने न पाती थीं। इस प्रकार से तीन बार लाघकर बाहर आने पर उसको विजय समझी जाती थी। किन्तु रेखा के पैर से छू जाने पर उस व्यक्ति की पराजय समझी जाती थी।[७] यही काष्ठ फलकों द्वारा खेली जाने वाली क्रीडा काष्ठ क्रीडा कहलाती थी।

इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की क्रीडा भी ज्योत्स्ना मे की जाती थी जिसमें विशेष रूप से स्त्रिया ही भाग लेता थीं। इस क्राडा को भी श्रीकृष्ण भगवान ने गोपिकाओ के साथ किया था। समवत यह रास क्रीडा का हा

---

१ वही ५।८।३७० ३७१। २ वही ५।८।३७२ ७४।

३ मानसोल्लाम ५।८।३७५ ३७६।

४ शशिप्रभाया या तस्मात्प्रोक्ता हरिशशीत्यसौ।

मानसोल्लास ५।८।३६८।

५ मानसोल्लास ५।८।३७७ ७८। ६ वही ५।८।३८६।

७ तदाजयोबहिष्ठाना स्पृष्टे तेषा पराजय।

वारत्रय बहिष्ठाश्चेद्विजयं ति निरतरम्॥

मानसोल्लास ५।८।३७८ ३८५।

अन्य रूप था। इसमे सभी स्त्रियाँ एक गोला बनाकर चक्रमण करता थीं। कुछ स्त्रियाँ गोले क बाहर तथा कुछ भीतर रहती थीं। स्त्रियाँ अपने हाथ में केसर का बना हुआ दड लेता थीं और पुष्प निमित कन्दुक को दड द्वारा परस्पर फेकती हुई उसी दड से पुष्प निर्मित शृखला एव माला द्वारा राजा पर प्रहार करती जाती थीं।

> दुर्गं चक्रमण कृत्वा कदैवचप्रमाणकै ।
> भवेयु काश्चिदन्तस्था काश्चित्तत्र बहि स्थिता ।
> कदुकै पुष्पसभूतैं दण्डश्चानग्रणी भवेत् ॥
> तथा सभ्रमसयुक्ता सहरन्त्य परस्पर।
> ताडयन्ति नृप पुष्प कन्दुकाकारदामभि ॥
> मालाभिश्च मनोज्ञाभिर्दण्डैं केशरकल्पितै ॥[1]

इस प्रकार राजा उस चक्र के मध्य में खडा होकर पुष्प कदुक के प्रहार द्वारा आनन्द को प्राप्त करता था।

यह अतिम क्रीडा रास का ही रूप प्रतीत होता है जिसके प्रसग पुराणों में प्राप्त होते हैं। सभी गोपिया परस्पर बाहुओ को बाँध कर मडल बनाती थीं। श्री कृष्ण भगवान् अपनी माया को प्रकट कर दो-दो के मध्य में अपना रूप प्रकट करते थे

> तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतै ।
> स्त्रीरत्नैरन्वित प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभि ॥
> रासोत्सव सप्रवृत्तो गोपीमडलमडित ।
> योगेश्वरेण कृष्णेन तासा मध्ये द्वयोर्द्वयो ॥[2]

वे गोपियाँ नृत्य करती थीं, गाती थीं और कृष्ण पर प्रसन्न होकर पुष्प डालती जाती थीं। रास से परिश्रान्त होकर वे परस्पर एक दूसरे के स्कन्ध का आश्रय लेकर खडी हो जाती थी।[3] इस क्रीडा को कृष्ण शरत् कालीन चद्र ज्योत्स्ना में यमुना तट पर करते थे।[4] सोमेश्वर ने इसी का ज्योत्स्ना क्रीडा नाम दिया है। सोमेश्वर के समय में यद्यपि स्त्री तथा पुरुष दोनों ही मिलकर इस क्रीडा को करते थे किन्तु कन्दुकै पुष्पसभूतै प्रसग से यह विदित होता है कि राजा अपनी प्रियाओं के साथ पुष्पनिर्मित कन्दुक से क्रीडा करता था। प्राचीन काल से ही युवतियों का हेमन्त काल का सुन्दर विनोद कन्दुक क्रीडा रहा है। कन्दुक

---

१ मानसोल्लास ५।८ ३८७-३९०। २ श्रीमद्० पु० १०।३३।२ ३।
३ वही १०।३३।८ १८। ४ वही १०।३२।१२।

उछालने से टकराती हुई चूडियों की झकार तथा चचल मेखला की बजती हुई कडों कडा बा ही सुन्दर वणन हुआ है

> अमन्द मणिनूपुरक्वणनचारुचारिक्रम,
>
> झणज्झणितमेखलातरलतारहारच्छटम् ।
>
> इद तरलककणावलिविशेषवाचालित
>
> मनो हरति सुभ्रुव किमपि कन्दुकक्रीडितम् ॥

वात्स्यायन ने भी कदुक क्रीडा का वर्णन किया है।[१] इसके अतिरिक्त शरद ऋतु के उत्सवों में कौमुदी महोत्सव, रात्रि जागरण तथा द्यूत आदि विशेष प्रकार के उत्सव माने गए हैं। इनमें से सभवत सोमेश्वर से समय में रात्रि जागरण नामक उत्सव को ही ज्योत्स्ना क्रीडा कहते थे।

सुवसन्तक नामक उत्सव का प्रसग सितबेग गुप्त के शिलालेख (Sitabenga Cave Inscriptin) में प्राप्त होता है किन्तु इसका नाम दुले वसतिया (Dule vasamtiya) प्राप्त होता है। यह क्रीडा भी पूर्ण चद्र की चद्र ज्योत्स्ना में रात्रि के समय ही होती थी। वात्स्यायन ने भी कौमुदी जागर, सुवसन्तक तथा अष्टमी चद्रक आदि ऐसे उत्सवों के प्रसग दिए हैं जिसम नगर की अन्य स्त्रिया राजा के प्रासाद मे आकर अन्त पुर की स्त्रियों के साथ क्रीडा करती थीं[३], किन्तु वात्स्यायन ने इसके अतिरिक्त हल्लीसक नाम की एक देसी अन्य क्रीडा का प्रसग दिया है जो रास के ही समान थी और स्त्री पुरुष दोनों करते थे। इसी प्रकार की ज्योत्स्ना में खेली जाने वाली अनेक क्रीडाओं के प्रसग सस्कृत साहित्य में भी मिलते हैं किन्तु उनके नाम विभिन्न प्रकार के हैं। इसका भास ने चारुदत्त में 'कामदेवानुयान' तथा भवभूति ने 'मदनोद्यान यात्रा'[६] नाम दिया है। इन सभी प्रसगों से विदित होता है कि भारतीय सदा से ही स्वच्छ ज्योत्स्ना में क्रीडा करने के प्रेमी रहे है।

---

१ कामसूत्र, सू० १३।

२ Dr T T Bloch, Ramgarh Cave Inscription
Report of the Arch Sur of India (1903–1904),
pp 124–25

३ कामसूत्र सू० ४२ तथा सू० ११।
ईस्ट एण्ड वेस्ट १, पृ० ७४८। मई, १९०२।

५ भास चारुदत्त अक १।

६ मालतीमाधव, अङ्क १।

सस्य क्रीडा

यह क्रीडा सस्य क्षेत्र मे की जाती थी। मातगों को उन्मत्त कर देने वाली, कमरु के उल्लास को नष्ट कर देने वाली, हरिणों को व्याकुल तथा मयूरों को पिच्छशून्य कर देने वाली, व्यक्तियो को व्याकुलता के कारण कपित कर देने वाली, सब अगों मे रोमाच उत्पन्न करने वाली, बिना प्रेम के ही दम्पतियों में रति उत्पन्न कर देने वाली, कर्पूर सुगन्धि से पूर्ण हेमन्त ऋतु के आने पर किसी रमणीय सस्य क्षेत्र मे राजा इस क्रीडा को खेलता था।[१] राजा यह क्रीडा करने के लिए अत्यन्त मनोहर, हरे भरे, पुष्पों से पूर्ण, कीचड से रहित, विचित्र फलों से पूर्ण क्षेत्र में जाता था।[२]

इस प्रकार के रम्य क्षेत्र की राजा अपने विश्वसनीय भृत्यो द्वारा रक्षा करवाता था।[३] राजा जब उस क्षेत्र में क्रीडा करने के लिए जाता था उसके पूर्व ही उस क्षेत्र मे दध्योदन, गोधूमखलक, पुआ, पूडा, शक्कर मिश्रित खीर, मद्य, तक्र, फल, मूल, कद, राजिका, लवण, पुष्ट शूकर, मेष आदि पूर्व से ही पहुँचा दिए जाते थे। इन वस्तुओं द्वारा क्षेत्र में ही नाना प्रकार के भोजन बनते थे, इस कारण सूपकार भी उन वस्तुओं के साथ ही जाता था।[४] सब वस्तुओं के स्थापित हो जाने तथा अन्य सभी व्यक्तियों के पहुँच जाने पर अपनी प्रिया, प्रेयसियों तथा तरुणियों से सेवित राजा ब्राह्मण, विट गायक आदि के साथ उत्सुकता पूर्वक उस क्षेत्र में पहुँचता था। वहा पर पहुँच जाने पर राजा पूर्व से ही कुछ सस्य के पौधों को उखाड कर इधर उधर ऊँचाई से रखकर बनाए

१ मानसोल्लास ५।१।३९१ ३९६।

२ क्षेत्रे हरितशोभाढये रम्ये दृष्टिमनोहरे ॥

निष्पापेन कलापेन कलितेन विचित्रिते ॥

मानसोल्लास ५।१।३९८ ४०५।

३ एवविधानि रम्याणि वीक्ष्य क्षेत्राणि ।

कुर्वीत रक्षण तेषामाप्तै परिजननप ॥

मानसोल्लास ५।१।४०६।

४ मानसोल्लास ५।१।४०७ ४०९। ५ वही ५।१।४१०।

६ तन स्वय प्रियायुक्तम्तरुणीजनसेवितम् ॥

सस्यदेशसमुद्देश सम्प्राप्य पृथिवीश्वर ।

मानसोल्लास ५।१।४१० १२।

हुए प्रवेश द्वारा से क्षेत्र के अन्दर वाद्य बजाते हुए व्यक्तियों के साथ प्रवेश करता था। प्रवेश करते समय अन्य जन उसके साथ नहीं रहते थे।

राजा के क्षेत्र में प्रवेश करने के पश्चात् सभी यथास्थान बैठ जाते थे। तत्पश्चात् राजा चणक फलों (बूट), निष्पाव, गोधूम कणिश, कर्कटिकादि फल तथा सुस्वादु पूर्ण भोजन अपने सभी विप्रो, भृत्या तथा प्रेयसिया को अलग अलग देता था—

अन्यानि बहुभिर्भृत्यै कक्टानि फलानि च।
विप्राणा प्रेयसीना च दद्याद्राजा पृथक पृथक् ॥[२]

सब को भोजन दे चुकने के पश्चात् राजा अपने पुत्र तथा वधुओं के साथ भोजन करता था।

भोजन के साथ ही साथ अन्य प्रकार के हलके भोज्य पदार्था का निर्माण वहीं क्षेत्र मे किया जाता था। चने के वृक्ष के कोमल अग्रभाग के पल्लवों को तोड कर उसमें हीग, सेंधा नमक, जीरा, मिर्च आदि मिला कर उन्हें मलकर थोडा तेल डालकर पत्तो के बनाए हुए थाली के आकार के पत्तल में बन्द कर जलते हुए कडों तथा पत्तों के बीच मे रखकर पकाया जाता था। पक जाने पर उसे खाया जाता था। इसके अतिरिक्त पानी मे नमक डालकर उनको उबाल कर भी खाया जाता था।[५]

चने के पौदे के कोमल अग्रभाग के अतिरिक्त चने के फलपूर्ण पौदों को भी अग्नि में भूनकर फिर अग्नि से निकालकर उनकी भूसी अलग कर चनों को राजा को खाने के लिए दिया जाता था।[६] ये सभी वस्तुये राजा अपने परिजनों के सहिव प्रीतिपूर्वक खाता था--

... ...
भक्षयेन्नृपति प्रीत्या पुत्रमित्रजनैर्वृत ॥[७]

इसको भक्षण करने के पश्चात् राजा मधुर मदिरा का पान करता था।[८]

इन भोजनों के अतिरिक्त दही भात के खलक में ककडी मिलाकर बृहती तथा कपास के कोमल फलों तथा कुसुम्भ के पल्लवों, लाल गाजर तथा कौशीतकी फल में राई, लवण, कन्द मूल फल तथा वराह एव मेष का मास

---

१ मानसोल्लास ५।९।४१२ ४१३।
२ वही ५।९।४१६,४१७।
३ वही ५।९।४१७ १९।
४ वही ५।९।४१९-२२।
५ वही ५।९।४२३-२४।
६ वही ५।९।४२४ २५।
७ वही ५।९।४२६-४२७।
८ वही ५।९।४२८-२९।

मिलाकर उसे भूनकर तैयार किया हुआ भोजन राजा करता था।[१] भोजन से निवृत्त होकर राजा अपने शरीर का वहीं पर श्रृङ्गार कराता था और सुवर्ण के आभूषण तथा घण्टियों को धारण करनेवाले श्रेष्ठ घोडों पर चढ़कर स्त्रियो के साथ अपने मन्दिर को लौट आता था।[२]

उपर्युक्त प्रसग से विदित होता है कि सस्य क्षेत्र क्रीडा करने के लिए राजा किसी ग्राम के खेतों अथवा अपनी राजधानी के समीप में स्थित खेतो में मनोरञ्जन करने के लिए जाता था। इस क्रीडा द्वारा सम्भवत हेमन्त ऋतु (माघ तथा फाल्गुन मास) में ही मनोरञ्जन किया जाता था क्योंकि उस समय खेत चने, मटर की नई फसल से पूर्ण होते थे। सोमेश्वर ने अपनी इस क्रीडा में साग, ककडी तथा फलादि खाने तथा चने की फली (बूट) को भूनने (होरा) का प्रसग दिया है।

इस क्रीडा का विस्तृत एव स्पष्ट प्रसग किसी भी ग्रथ में नहीं प्राप्त होता। हा, कुछ सस्य क्षेत्र में मनोरञ्जन करने से सम्बन्धित प्रसग अवश्य प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में एक स्थल पर ऐसा प्रसग प्राप्त होता है

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भि कर्षकाणा मुद ददु ।[३]

इस पक्ति का प्रयोग कृष्ण, बलराम तथा ग्वाल बालों की क्रीडा के प्रसङ्ग में हुआ है। इससे विदित होता है कि कृष्ण भगवान् ग्वालों के साथ ब्रज में स्थित सस्य से सम्पन्न क्षेत्रों में जाकर आनन्दपूर्वक क्रीडा कर उनके साथ भोजन करते थे।[४]

आजकल भी विशेष रूप से ग्रामों में यह क्रीडा प्रचलित है। नवीन सस्य से क्षेत्रो को पूर्ण होने पर सब लोग किसी दिन जाकर वही भोजन करते हैं तथा उस अन्न तथा शाकादि को खाते हैं।

मधुपान-क्रीड़ा

यह क्रीडा राजा विशेष रूप से अपनी काम प्रवृत्ति को शात करने के लिए करता था। इसी कारण इस क्रीडा में स्त्रिया ही भाग लेती थीं। इस क्रीडा को राजा वन, घास से पूर्ण स्थल, नदी के तट, बालुकास्थल, फल तथा पुष्पों से पूर्ण उद्यान अथवा गृह में स्त्रीजनों को करवाता था

---

१ वही ५।१।४३० ३३। २ वही ५।१।५३५ ३७।

३ श्रीमद्भा० पु० १०।२०।१२।

४ समोजनीयैर्बुभुजे गोपै सकर्षणान्वित ।

श्रीमद्० पु० १०।२०।२९।

अटव्या शाद्वले देशे नद्या वा वालुकास्थले।
उद्याने फलपुष्पाढ्ये गृहे वा सुविचित्रिते।
मधुपानोद्भवा क्रीडा स्त्रीजनै कारयेन्नृप॥[1]

इस क्रीडा द्वारा स्त्रीजन तथा राजा दोनों को ही आनन्द प्राप्त होता था।

इस क्रीडा को करने के लिये गुड तथा गन्ने के रस की बनी हुई मदिरा[2], माध्वी[3], पैष्टी[4] आदि सुराये, द्राक्षारस का बना हुआ द्राक्षासव, मधुकासव[5] पनसासव[6], सिदुनासव[7] आदि आसव तथा ताल मदिरा[8] आदि सुराओं को एकत्र किया जाता था। इन सभी मदिराओं एव आसवों को बनाने की विधि का भी विस्तार पूर्वक उल्लेख सोमेश्वर ने किया है।[9] उदाहरणार्थ गुड तथा गन्ने के साथ धातकी फल के रस को मिलाकर उसे बहुत दिनों तक रखकर गौरी सुरा, शालि तथा गोधूम से पैष्टी आदि सुराओं का निर्माण होता था।[11] इसी प्रकार द्राक्षाफल के रस से द्राक्षासव, नारियल के रस से नारिकेलासव मधूक वृक्ष के पुष्पों को उबालकर मधुकासव, पनसफल से पनसासव तथा आम्र के रस से सिंदुनासव बनाया जाता था।[12] इसके अतिरिक्त ताल वृक्ष के वल्कल को छीलकर उसमें कुभ लटका कर उसे ताल मदिरा निकाली जाती थी।[13] यह आजकल ताडी के नाम से प्रसिद्ध है और उसका निम्नवर्ग के ही व्यक्ति प्रयोग करते हैं।

इस मदिरा के साथ खाने के लिए अनेक प्रकार के खट्टे, चटपटे, नमकीन, पदार्थ बनते थे जिनके बनाने में विशेष रूप से मूला, अदरख, गाजर, नीबू, प्याज, मिर्च, नमक, तेल, हींग, केशर, तथा अनेक प्रकार के रसों का प्रयोग होता था, नाना प्रकार के मासों को को अग्नि में पका कर उससे सुगन्धित रज, राई, लवण, केसर लवग आदि मिलाकर हींग से छौंककर अनेक प्रकार के मास के भक्ष्य पदार्थ बनाए जाते थे।[14] नींबू के रस, अदरख तथा मूली के फलों के कटे हुए टुकडों के साथ मिलाकर खाने का पदार्थ तैयार किया जाता

---

१ मानसोल्लास ५।१०।४४०४-४१। २ वही ५।१०।४४२।
३ वही ५।१०।४४६। ४ वही ५।१०।४५२।
५ वही ५।१०।४५८। ६ वही ५।१०।४६०।
७ वही ५।१०।४६१। ८ वही ५।१०।४६२।
९ वही ५।१०।४६४। १० वही ५।१०।४४२ ४६५।
११ वही ५।१०।४४२ ४५२। १२ वही ५।१०।४५६ ४६२।
१३ वही ५।१०।४६३-४६४। १४ वही ५।१०।४६६-६८।

था ।[१] मूली, अदरख मे नमक, राई तथा नीबू मिलाकर खट्टी आम्लिका (चटनी) बनाई जाती था ।[२] इसके अतिरिक्त चने मे हींग, नीबू आदि मिलाकर पूरण नामक भक्ष्य तैयार किया जाता था

पूरण नाम तद् भक्ष्य मृदमिष्ट सुगन्धि च ॥[३]

इन सभी भक्ष्य पदार्थों एव मदिराओं को पान स्थान में रखा जाता था और साथ ही वहाँ पर इद्रनालमणि की प्रभा, गोमेद की काति तथा स्फटिक मणि के सदृश श्वेत काति वाले अनेक प्रकार के चषक रखे जाते थे ।[४] पान स्थान राजा की आज्ञा द्वारा बालुका स्थल घास पूर्ण मैदान, उपवन अथवा पेड की छाया के नीचे कनाते (काडपट) लगाकर बनाया जाता था

उद्यानेषु द्रुमच्छाये गृहस्योपवनेषु च।
तिरोहिते काडपटै नार्ना वर्णमनोहरे ॥[५]

इन सभी वस्तुओं के तैयार हो जाने पर राजा स्वय शृगार कर, हृदय का हरण करने वाली सुन्दर तरुणी स्त्रियों को बुलवाता था ।[६] तब वे स्त्रियाँ सम्मान पूर्वक उस काडपट के अन्दर लाकर पक्ति मे बैठायी जाती था ।[७] उन सबके बैठ जाने पर राजा स्वय उनके समक्ष सुन्दर पत्र तथा थालियाँ रखता था

तासामग्रे न्यसेद्राजा पत्राणि रुचिराणि च ॥[८]

तत्पश्चात् सब प्रेयसियो के समक्ष, यथायोग्य चषक रखता था और पात्रो मे अनेक प्रकार के उपदश (काट कर खाये जाने वाले) पदार्थो को रखता था

उपदशान् बहुविधान् पात्रेषु परिवेषयेत् ।[९]

कांताओं को परोसते समय राजा के साथ सूपकार भी रहता था और वह प्रत्येक वस्तु की प्रशसा करता हुआ राजा को देता जाता था ।[१०] सब वस्तुये सबको परसवा चुकने के पश्चात् राजा के सभी परिचर चले जाते थे और राजा अपने हाथों से मदिरा उडेल कर चषकों में भरकर सभी स्त्रियो को देता जाता था और स्वय भी पीता जाता था ।[११] सभी स्त्रियाँ

---

१ वही ५।१०।४६८ ।
२ वही ५।१०।४७१ ।
३ वही ५।१०।४७८ ४७९ ।
४ वही ५।१०।४८१ ४८३ ।
५ वही ५।१०।४८७ ८८ ।
६ वही ५।१०।४८५-८६ ।
७ वही ५।१०।४८८ ।
८ वही ५।१०।४८९ ।
९ वही ५।१०।४९१ ।
१० वही ५।१०।४९२ ।
११ वही ५।१०।४९३ ९५ ।

परस्पर सब वस्तुये खा ती जाती था और सभा वस्तुओं के कटु, तिक्त आदि स्वाद का परस्पर प्रशसा करती जाती थीं ।[1] मदिरा पीते समय भी वे परस्पर मदिरा की प्रशसा करती जाती थीं ।

मदिरा के अत्यधिक पान से प्रमत्त होकर कोइ स्त्री गाती था, कोई दूसरे का चषक खींच लेती था, कोई चषक में अपनी मूर्ति देखकर उसका चुम्बन करती थी कोई कविता कहता थी । मदिरा का नशा अधिक बढने पर उनके नेत्र तथा कपोल कुछ लाल हो जाते थे और वे अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण करती थी । कोई एक दूसरे से हाथ मिलाती थीं कोई सम्भाषण करती थीं, कोई गाती थीं कोई आनन्दित होकर कोकिल की भाँति स्वर करती थीं, कोई रोती थीं कोई खिन्न मनवाली होकर, दुखित होती थी, कोई मूच्छित सी हो जाती थी, किसी को आशीर्वाद देती थी, कोई गाली देती थी कोइ मदिरा के मद से विह्वल होकर राजा की ओर देखती थी और आलिंगन करने की चेष्टा करती थी कोई किसी की का अचल पकड कर उसके कपोलों का चुम्बन करती थी । इस प्रकार से उन स्त्रियों की मदावस्था की चेष्टाओं एव कार्यों का सोमेश्वर ने सुन्दरता-पूर्वक वर्णन किया है ।

सभी स्त्रियों की मदावस्था को देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होता था और उसका मनोरजन होता था । स्त्रियो के बीच मे क्रीडा करता हुआ वह राजा उसी प्रकार से सुशोभित होता था जिस प्रकार से अनेक हथिनियों के बीच मे एक हाथी तथा अनेक गोपिकाओं के मध्य में कृष्ण शोभित होते थे—

एक एव स्थितो राजा वशामध्ये यथा द्विप ।
शोभते सुखसस्पर्शाल्लालितो ललनाजनै ॥

---

१ वही ५।१०।४९९ ५०० ।
२ वही ५।१०।५०२ ।
३ वही ५।१०।५०३ ५११ ।
४ काचिद् गायति मानदवर्षाकोकिलनिस्वनि ।
विकलै पदमचारै काचिन्नत्यति हर्षिन ॥

काचिदालोक्य भूपाल मदिरामदविह्वला ॥

समाह्वयति कामेन गालिदान परस्परम ॥
मानसो० ५।१०।५१७ ५२४ ।
५ आकुलीक्रियमाणोथ प्रमोद भजते नृप ।
वही ५।१०।५२६ ।

क्रीडन्नेव कियत्काल कृष्णो गोपिजनैरिव ॥[1]

इस प्रकार से राजा प्रसन्न होता हुआ अपनी प्रेयसियो के साथ मधुपान क्रीडा करता था।

इस प्रकरण के अन्तर्गत सोमेश्वर ने अनेक प्रकार की मदिराओं के स्वाद एव वर्णो का उल्लेख किया है।[2] इसके अतिरिक्त मदिरा पान को विचित्र राग के सागर को उत्पन्न करने वाला, बधु के सदृश शोक का नाश करने वाला मित्र के सदृश प्रेम की वृद्धि करने वाला, मोह के सदृश स्मृति का नाश करने वाला बतलाया है।[3] मदिरा पान करते समय गाना, रोना, हसना आदि क्रियाये नहीं करनी चाहिए। ऐसा सोमेश्वर ने आदेश दिया है।[4]

सुरा पान की प्रथा भारतवर्ष मे प्राचीन काल से ही प्रचलित है। वैदिक काल में आर्य लोग सोम रस की यज्ञ मे आहुति देते थे तथा उसका पान करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की मदिरा का भी सेवन वैदिक युग में होता था।

पुराणो में भी मदिरा पान के अनेक प्रसग प्राप्त होते हैं। कुबेर के पुत्रों ने रुद्र का अनुचर होकर कैलास पर्वत के उपवन में स्त्रियां के साथ वारुणी मदिरा का पान कर रमण किया था—

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ।
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्या मदोत्कटौ॥
वारुणी मदिरा पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ।
स्त्रीजनैरनुगायाद्भिश्चरेतु पुष्पिते वने॥[5]

उन स्त्रियों के मध्य में मदोन्मत्त राजा क्रीडा करता हुआ हस्तिनियों के मध्य गज की भाति सुशोभित होता था—

चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभि ॥[6]

---

१ वही ५।१०।५२७ २८। २ वही ५।१०।४९६ ९७।
३ अहो विचित्र कस्याश्चिद्धर्तितो रागसागर।
तदाभू मदिरापान बधुवत्शोकनाशनम॥
मित्रवत्प्रेमवर्द्धनम्।
मोहवत्स्मतिनाशनम्॥
वही ५।१०।५१२,५१३।
४ वही ५।१०।५०१। ५ श्रीमद्० पु० १०।१०।२ ३।
६ वही १०।१०।४।

इस दृश्य को देखकर नारद जी ने उसे शाप दिया था।[1] यह प्रसग बहुत कुछ सोमेश्वर की मधु पान क्रीडा से मिलता जुलता है, किन्तु उस समय यह कार्य वर्जित माना जाता था। पुराण में वारुणी मदिरापान के अनेक प्रसग प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के साथ एक अन्य स्थल पर बलराम के मधुपान करने का प्रसग प्राप्त होता है—

त गन्ध मधुधाराया वायुनोपहृत बल ।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभि सम पपौ ॥
उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुध ।
वनेषु व्यचरत् क्षीबो मदविह्वललोचन ॥[3]

मनु ने गुड, पिष्ठी तथा महुवे से बनी हुई तीन प्रकार की गौडी, पिष्टी तथा माध्वी सुराओं का वर्णन किया है और इसका पान द्विजों के लिए वर्जित बतलाया है—

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमै ॥[4]

इसके अतिरिक्त अन्न मद्य, सुरा तथा आसव को यक्ष तथा पिशाचों का भक्ष्य माना है।[5] इससे विदित होता है कि समाज में उस समय यह सभी प्रकार की मदिरायें प्रचलित थीं। वात्स्यायन ने मदिरा पान की गोष्ठियों का प्रसग दिया है।[6]

सोमेश्वर का मधुपान क्रीडा का प्रसग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि उनके समय में मदिरा का स्त्री तथा पुरुष दोनों ही अधिक मात्रा में प्रयोग करते थे। अनेक प्रकार की मदिराओं का प्रयोग होता था और राजा सभवत अपनी काम वासना की शान्ति अनेक स्त्रियों के साथ मदिरा पान करके करता था।

प्रहेलिका क्रीडा

प्रहेलिका क्रीडा भी तत्कालीन समाज में मनोरजन का साधन थी। राजा धर्मार्थ के कार्यों से निवृत्त होकर, पुष्ट एव स्वादपूर्ण भोजन कर सतुष्ट हृदय

१ वही १०।१०।६,७।
२ वही १०।१०।१९।
३ वही १०।१०।२०,२१।
४ मनु० ११।९४।
५ मनु० ११।९५।
६ समपानकम् क्रीडाश्च प्रवतयेत ॥
कामसूत्र सू० २६।

वाला होकर तथा निद्रा से उत्थित आलस्य के हट जाने पर प्रहेलिका क्रीडा द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करता था।[1] इस क्रीडा को करने के लिए राजा अनेक चतुर, ज्ञानी, विद्वान् तथा साहित्य के ज्ञाताओं को बुलवाता था और उन्हीं के बीच मे सम्मिलित होकर वह प्रहेलिका क्रीडा करता था।[2] प्रहेलिका क्रीडा में एक व्यक्ति प्रहेलिका पूछता था और दूसरा उसका उत्तर बतलाता था, किन्तु ठीक उत्तर न बता पाने पर उसकी पराजय समझी जाती थी

पृच्छत्येको वन्त्येको तत्राज्ञाने पराजय ।[3]

इसी कारण प्रहेलिका प्रश्न के उत्तर का निर्णय करने के लिए राजा प्रहेलिका के अर्थ को जानने वाले विद्वान् व्यक्ति को नियुक्त करता था।[4] इस प्रकार प्रश्नोत्तरों द्वारा सब व्यक्तियों के हृदय में कुतूहल के साथ ही साथ मनोरजन भी होता था।[5]

ये प्रहेलिकायें अनेक प्रकार की होती है। सोमेश्वर ने स्वरूप प्रश्ना, हेतु प्रश्ना, व्यस्ता, उत्तरत्ता, अनेकार्थपदोत्तरा, अक्षरसार्थका तथा गूढार्थका आदि अनेक प्रकार की प्रहेलिकाओं का बर्णन किया है।[6] स्वरूप प्रश्ना प्रहेलिका के अन्तर्गत किसी के स्वरूप को तथा हेतु प्रश्ना में किसी वस्तु के हेतु को पूछा जाता था। अक्षर सार्थक, पद सार्थक प्रहेलिका का उत्तर अधिकाशत अक्षरो एव पदों के[7] अर्थ द्वारा ही निकाला जाता था। इसमें मध्य, अत तथा प्रारम्भ का अक्षर या पद छोड दिया जाता था। इसी प्रकार अन्य प्रहेलिकाये भी थीं।

इन अनेक प्रकार की प्रहेलिकाओं के अन्तर्गत अनेक के प्रश्न पूछे जाते थे। सोमेश्वर ने प्रहेलिका क्रीडा के अन्तर्गत अनेक प्रकार की प्रहेलिकाओं का वर्णन किया है।[8] उदाहरणार्थ एक डर कर भागता है दूसरा उसको तेज

---

१ मानसोल्लास ५।११।५३१,५३३।

धमकामाथकार्याणि निवृत्य पथिवीपति ॥

कुर्यात् प्रहेलिकाक्रीडा तथा प्रज्ञाविवधये।

२ मानसोल्लास ५।११।५३४। ३ वही ५।११।५३५।

४ वही ५।११।५३४। ५ वही ५।११।५३५ ३६।

६ स्वरूपप्रश्ना काश्चिद्धेतुप्रश्नास्तथापरा ॥

उत्तरोत्तरास्तथाकाश्चित्काश्चिद्गूढाथका ।

मानसोल्लास ५।११।५३६ ५३८।

८ वही ५।११।५३९ ५४८।

से ढके हुए आवर्त की भाँति प्रकाशित कर देता है।' दो पैर वाला चक्र बिना वाहन के चलता है फिर भी वह एक भी पग नहीं जा पाता।

अत्यन्त भारी भार को नित्य वहन करता है और आठ पैरों से चलता है और कभी कभी दो पैरों से चलता है उसका नाम क्या है। जिसके ऊपर की मूल, शाखा, पुष्प फल अथवा पत्र कुछ भी नहीं मिल सकता वहाँ कहाँ रहता है?[४] बिना हाथ का होने पर भी शिलाओं को तोड डालता हैं, बिना पैर के चलती है, बिना मुख के गर्जन करता है बताओ क्या है?

अहस्तोपि शिलामत्ति विना पादैश्च धावति।
गज यास्य विना नारी कासो नाम्नानिरूपिता॥[५]

इसी प्रकार के प्रश्न किए जाने पर अन्य व्यक्ति उत्तर देते थे, जैसे ऊपर की अन्तिम प्रहेलिका का उत्तर वायु है। उत्तर ठीक है या नहीं इसका निर्णय वही राजा द्वारा निश्चित किया हुआ व्यक्ति करता था।

इसके अतिरिक्त इसी प्रहेलिका क्रीडा के समय एक अक्षर पद आदि छोड कर भी प्रहेलिका पूछी जाती थी

क्षिप्यैकमर त्वादो वृत्त वृत्ताभिधीयते।

मध्यक्षिप्तेन वर्णेन सगत सुपडित
प्राणार्थं च त्रपार्थे च रसार्थं सगन कुरु॥[६]

इस प्रकार की प्रहेलिकाये जिनमें मात्रा आदि छुटी होती थी 'च्युतामात्रा' कहलाती थीं।

इस प्रकार से अनेक प्रकार के ज्ञानपूर्ण प्रश्न प्रहेलिका रूप में अन्य

---

१ वही ५।११।५३९।

२ एक चक्र द्विपाद्य वा विनावाहै प्रवततो।
न गच्छति पद चैक किंतद्व्रस्त्वभिधीयताम॥
वही ५।११।५४०।

३ महाभारसहो नित्यमष्टभिश्चरणैव्रजेत्।
द्वाभ्या चलति यो यत्र तस्य नाम निरूपितम्॥
वही ५।११।५४१।

४ वही ५।११।५५०। ५ वही ५।११।५५२।

६ वही ५।११।५८५-५८७।

व्यक्तियों से पूछे जाते थे। राजा भी इनमें सक्रिय भाग लेता था और प्रहेलिकाओं का उत्तर देता हुआ तथा सबका मनोरजन करता हुआ स्वय भी आनन्दित होता था।

प्रहेलिका कहने की प्रथा भारतवर्ष मे अत्य त प्राचीन काल से प्रचलित है। वात्स्यायन के समय में प्रहेलिका का अधिक प्रचार था[१]। प्रहेलिकाओं के अतिरिक्त प्रतिमाला नामक एक ऐसा विनोद होता था जो वर्तमान काल की अन्त्याक्षरी के सदृश था[२]। प्रहेलिका का एक प्रकार मानसी भी था। इसी खेल में कोई श्लोक बिन्दुओं तथा अनुस्वारों के साथ छोड छोड कर लिखा जाता था। वह ऐसा होता था जो दूसरे व्यक्ति को विदित न होता था। लिखने के पश्चात् दूसरे व्यक्ति से वह पूरा कराया जाता था । सोमेश्वर ने इसी प्रकार की प्रहेलिका को च्युतमात्रा कहा है।

कादम्बरी मे भी राजा शूद्रक के दरबार मे विद्वानों द्वारा अनेक प्रकार की प्रहेलिकाये पूछी जाती थीं। कुछ मात्रा से हीन, कुछ अक्षर से हीन तथा कुछ बिन्दुपूर्ण होती थीं। ये क्रमश मात्राच्युतक, अक्षर च्युतक तथा बिन्दुमती कहलाती थीं[४]।

प्रहेलिकाओं के प्रसग अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होते है—

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पडित ।
अमुख स्फुटवक्ता च यो जानाति स पडित ॥[५]

इसी प्रकार से और भी प्रहेलिकाये प्राप्त होती हैं । मात्राच्युतक प्रहेलिकाओं के अन्तर्गत मात्राच्युतक, बिन्दुच्युतक, विसर्गच्युतक, अक्षरच्युतक, स्थानच्युतक, व्यजनच्युतक तथा च्युतदत्ताक्षर आदि अनेक प्रकार की प्रहेलिकाये होती हैं। सस्कृत साहित्य में ये सभी अधिक मात्रा में प्राप्त होती है[७]। समवाय सुत्त में 'अज्जपहेलियम्' का प्रसग प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि उस समय में भी प्रहेलिका कहने की प्रथा थी।

---

१ ए० वेकटसूबिया दि कलाज सूची ३।
वात्स्यायन कामसूत्र, प० ३२ ३३। २ वही।
३ वही, मानसी काव्य क्रिया ।
४ कादम्बरी कथामुखभाग।
५, शा० प० ५१४। ६ शा० प० ५१५ ५१७।
७ सुभाषितरत्नभाडागारम मात्राच्युतकादय, प० १९५ ९६।
८ ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची १।

इन प्रहेलिकाओं का वर्तमान काल म भी प्रयोग होता है जिन्हें Puzzles कहते है।

चतुरग क्रोडा

चतुरग क्रीडा प्रारम्भ ही से राजाओं की प्रिय क्रीडा रही है। सोमेश्वर देव ने चतुरग क्रीडा का मानसोल्लास मे विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। यह प्रकरण इस बात को पूर्णरूप से स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर चतुरग क्रीडा म अधिक रुचि रखते थे। इस प्रकरण के अन्तगत सोमेश्वर ने चतुरग क्रीडा के मुख्य अग, उन अगो की फलक पर स्थापना करने का क्रम, खेलने की विधि, पण, विजय तथा पराजय का वर्णन किया है।

यह क्रीडा आजकल की भाति एक चौकोर फलक पर खेली जाती थी जिसमे अनेक चौकोर कोष्ठ बनाये जाते थे। इस खेल के राजा, मत्री, गज घोडा रथ तथा पैदल यह छ अग थे। आदि के दो कोणों मे दो रथों को तथा उसके पश्चात् अदर के कोष्ठो म दो घोडों को स्थापित किया जाता था। उसी के बाद दो हाथियों को रखा जाता था। हाथियों के मध्य मे राजा तथा मत्री रहते थे। उनके आगे एक पक्ति के कोष्ठों म पदाति सैनिक स्थापित किए जाते थे। इस प्रकार से राजा अपने समक्ष अपने बल को स्थापित करता था। इसी प्रकार से दूसरे पक्ष का व्यक्ति भी अपने आगे के कोष्ठों में इन सभी अगो की स्थापना करता था।

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने इनकी चालों का उल्लेख किया है। रथ कोने से एक एक पद के अन्तर से चलता है। चारों कोनों के समीप से तुरग चलता है। घोडे के चलने के बाद हाथी भी उसी प्रकार चलता है। इन सबके द्वारा प्रेरित होकर मत्री निकट के चारों कोठों में एक अथवा दो पद जाता है[२]। राजा समीप के सब कोठों में होकर चारों ओर जाता है और दो पदों से अकेला चलता हुआ दो कोठों का नाश करता है[३]।

मत्री के समीप चौथे पद पर यदि रथ, राजा, अश्व तथा पैदल द्विकोणस्थ हों और वे सामने आवें तो वह मार डालता है। खेल में वही हाथी बलवान् माना जाता है जिससे सैनिकों की रक्षा होती है। दूसरे कोठे में हाथी के चरण रखने पर परम बलवान् अग भी जघन्य हो जाता है। कोष्ठ का पदान्तर रथ का एक पद कहा जाता है किन्तु तीसरी तथा पाचवीं पक्ति में जाकर लौटने पर दूसरे मार्ग से जाते समय सातवीं पक्ति में दो पद होते हैं। समीप की

---

१ वही ५।१२।६२० ६२२। २ वही ५।१२।६२३ ६२५।
३ वही ५।१२।६२६। ४ वही ५।१२।६२७ ६२९।

पक्ति में प्रवेश करने पर रथ दो पग पहुँचता है। इस प्रकार इस खेल में रथ के पदो का विन्यास होता है।[1]

कोण के समीप में स्थित होने पर घोडे के तीन पद और कोठे के समीप दोनों ओर चार पद होते है। द्वितीय वलय कोण मे घोडे के चार पद अन्यत्र पद षडग कहा जाता है।[2] बीच मे सोलह श्वेत कोठों मे घोडे के स्थित होने पर घोडे का अष्टक पद कहा जाता है। इस प्रकार यत्र तत्र स्वय स्थित चौदह पदों मे घोडो की स्थिति होती है।

खेल मे मत्री का बाहर के कोठे मे स्थित एक पद, प्रान्त भाग में स्थित दो पद तथा अन्यत्र चार पद होते है।[3] तदन्तर बहुत सी पक्तियों मे स्थित राजा के पद कोठे मे तीन पद होते है तथा अन्यत्र आठ पद माने जाते है। इन्हीं को चतुरग के जानने वाले त्रिपद नाम से कहते है। इस प्रकार से सभी अगो के पदों की सख्या खेल मे निधारित की गई है।[4]

जिस प्रकार से युद्ध मे राजा की सेना विजय प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के व्यूहों का सृजन करती है उसी प्रकार चतुरग खेल में भी सीमा, सुमेरु तथा गोमूत्र इन तीन प्रकार के व्यूहो का प्रयोग होता है।[6] ये सभी व्यूह यथा रुचि प्रयोग में लाए जाते है। एक ही पक्ति मे सभी अग स्थित होकर जब व्यूह बनाने के लिए प्रवृत्त होते है उसे सीमाख्य अथवा सीमा निधारण व्यूह कहते हैं। जिस समय खिलाडियों द्वारा सभी अगों का जमघट सुमेरु के शिखर की भाँति ऊचा बना दिया जाता है तब उसे सुमेरु व्यूह कहते हैं।[8] सैनिक लोग जब खेलने मे गोमूत्र के समान प्रवृत्त होते है तब वह व्यूह गोमूत्र व्यूह कहा जाता है। यह व्यूह राजा के समीप रथ, हाथी, मंत्री, घोडे आदि को स्थापित कर दोनों ओर ही विजय प्राप्त करने के हेतु खिलाडियों द्वारा बनाया जाता है। दोनों ओर के खिलाडी राजा द्वारा अपने मत्री, गज आदि की रक्षा करवाते हैं।[9]

इन व्यूहो के साथ ही साथ खिलाडी लोग अपनी चालों से सभी अगों को इस प्रकार चलाते हैं जो बध बन जाते हैं। राजा का, पाचवीं पक्ति में, मत्री का छठी पक्ति में तथा रथ का सातवी पक्ति में पद आने पर वज्र बध

---

१ वही ५।१२।६३० ६३२।
२ वही ५।१२।६३३ ३४।
३ वही ५।१२।६३४ ३५।
४ वही ५।१२।५३६ ३७।
५ वही ५।१२।६३७ ३९।
६ वही ५।१२।६४०।
७ वही ५।१२।६४१।
८ वही ५।१२।६४२।
९ वही ५।१२।६४३ ४४।

होता है।[१] जिस समय परस्पर रक्षा की दृष्टि लिए हुए मत्री तथा योद्धा छठी पक्ति में स्थित हों तब पाचवीं पक्ति का दृढ बन्ध हो जाता है।[२] अर्थात् पीछे के अगों की पूर्ण रूपेण रक्षा रहती है। जिस समय चतुर सैनिक परस्पर एक दूसरे के हितैषी हो और अग रक्षा के निमित्त युद्ध में आवरण स्वरूप हो तब वह आहव बन्ध होता है।[३] इन्हीं तीन बधों का आश्रय ग्रहण कर खिलाडी अपने अंगों की प्रतिपक्षी के अगों से रक्षा करवाता है। चौथी पक्ति में स्थित सैनिकों तथा अन्य अगों द्वारा दूसरे की सेना का निरोध करवाकर उसे नष्ट करवाकर खिलाडी सैनिक को दूसरे के क्षेत्र में विजय की इच्छा से प्रवेश कराता है क्योंकि चार चार पक्तियाँ ही एक एक पक्ष की ओर होती हैं। जब सैनिक दूसरे के क्षेत्र म प्रविष्ट हो जाय तो उनके द्वा। राजोचित स्थान का निर्माण करवा कर राजा को उस सुरक्षित कोठे में बैठा दे और उसकी रक्षा के लिए सम्मुख वाले कोठे में मत्री को बैठा दे और मत्री की रक्षा करने के लिए अश्व तथा रथ को स्थापित कर दे। इस प्रकार से अन्य क्षेत्र में अपने अग भी स्थापना कर देने वाला खिलाडी शीघ्र ही विजय प्राप्त कर लेता है।[४]

इस प्रकार से चाल की स्थापना कर लेने पर खिलाडी को सर्वप्रथम रथ को आगे चलाना चाहिए किन्तु चलाने के पूर्व वह उस मार्ग की भली प्रकार परीक्षा कर ले कि उसमें रथ के लिए कोई भय तो नहीं है। जिस समय अन्य पक्ष के अग आघात के लिए उन्मुख हों उस समय सभी अगों को राजा की रक्षा करनी चाहिए जिससे राजा का कभी भी किसी प्रकार नाश न हो सके।[७] यदि इस समय खिलाडी प्रतिकूल चाल चल देगा तो उसका राजा अन्य पक्ष के द्वारा बँध जायगा। जिस समय अन्य अगों को छोडकर केवल राजा बध्य (मारे अथवा बांधे जाने योग्य हो) वहा पर खेलने वाले को अत्यन्त सावधानी से खेलना चाहिए और उसे राजा तथा हाथी की सर्वप्रथम रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार से राजा तथा अश्व दोनों की रक्षा हो जाती है।[८]

इस प्रकार के दावों के उपस्थित होने पर अन्य खिलाडी अनेक प्रकार के घातों का प्रयोग कर अपने अग की रक्षा करता है। जो तत्पर होकर राजा से युद्ध कर उसे मारने का प्रयत्न करता है वह गज घात है।[९] यत्न के द्वारा

१ वही ५।१२।६४५ ४६।
२ वही ५।१२।६४७।
३ वही ५।१२।६४८।
४ वही ५।१२।६४९।
५ वही ५।१३।६५० ५१।
६ वही ५।१२।६५२।
७ वही ५।१२।६५३ ५४।
८ वही ५।१२।६५५ ५७।
९ वही ५।१२।६५८।

विद्वान् खिलाडी राजा की गति को रोक कर चारों ओर से उसे घेरने का प्रबन्ध कर देता है। पुन किसी के द्वारा बध्य राजा का निदेश करता है और तब उसका गति अवरुद्ध हो जाने पर वही विजयी होता है।[1] इसमें सुरक्षित सैनिक नष्ट हुए रथ, हाथी, अश्व तथा मत्री को राजा का गतिरोध के लिए यथा स्थान नियुक्त रखे।[2] तब किसी दूसरे अग के द्वारा राजा का वध कराये। अन्य के द्वारा वध किए जाने पर राजा की पराजय होती है। यदि बलशाली अगों के द्वारा राजा का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और वह घिर जाता है तब भी उसी की हार होती है। इस प्रकार से तीन प्रकार की चालों के आ जाने से उस राजा की हार हो जाती है।[3]

इसके अतिरिक्त एक जगह बल का विन्यास कर खिलाडी अन्यत्र केवल राजा को रखता है। वह राजा गज रथ, अश्व मत्री तथा भटों के समान अकेले ही अपने पदों को चलाता है और दूसरे के क्षेत्र मे अगो को मारता तथा बाधता है और स्वय भी बाधा तथा मारा जाता है। उसके मार्ग को विद्वान् खिलाडी गज, अश्व, मत्री, रथ तथा भटों के द्वारा रोकना है, किन्तु राजा सदैव सभी प्रकार के पद चला कर अपने अग की रक्षा करे और रथ में सुरक्षित रहे। इस प्रकार अत्यन्त कठिन परिस्थिति हो जाने पर भी विजय प्राप्त हो सकती है।

गोमूत्र व्यूह नियम के द्वारा ही चतुरग का क्रम होता है। राजा की सेना के द्वारा सचालित मत्रि पचक को दाय कहते हैं। इस दाय के अन्तर्गत चौथी पक्ति से गज, तीसरी पक्ति से अश्व, दूसरी पक्ति से रथ चलता है। इस प्रकार यह पक्ति क्रम है जो खेल में प्रयुक्त होता है[4]।

इस खेल में जहा पर चार खिलाडियो द्वारा व्यूह की रचना होती है वहा पर एक एक के अन्तर से पीला तथा लाल वर्ण का कोष्ठ बनाया जाता है। इसमें रथ के कोठे के दक्षिण की ओर अश्व, के दक्षिण पार्श्व मे गज तथा उसके समीप चार राजाओ की स्थापना होती है। ऐसे समय मे राजा बधन्य नहीं होता, क्योंकि उसके मारने का कोई नियम नहीं है। इन चारों के सस्कारों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के पात होते हैं[7]। जिस समय किसी भी पक्ष में एक अग रह जाता है और वह बीच में होता है उस समय सस्थाओं की गणना होती है और विजय होती है।

---

१ वही ५।१२।६५९ ६०। २ वही ५।१२।६६१।
३ वही ५।१२।६६४। ४ वही ५।१२।६६५ ७०।
५ वही ५।१२।६७१ ६७३। ६ वही ५।१२।६७५ ६७७।
७ वही ५।१२।६७८। ८ वही ५।१२।६७९।

खेल में सख्या को लिखने के लिए लेखक रहते है जो दोनों पक्षों की सख्या को लिखते हैं। ये सख्याय विभिन्न अगों के लिये निश्चित है। पैदल सैनिक की एक, रथ की दो, घोडे की तीन, हाथी की चार तथा राजा की छ सख्या गिनी जाती हैं। पूर्व से लगे हुए पण पर इसी प्रकार का सख्याओं की गणना होकर विजय का निर्धारण होता है, क्योंकि अपने बल के अधिक होने पर विजय तथा न्यून होने पर पराजय होती है।[१]

सोमेश्वर ने अत्यन्त विस्तार के साथ चतुरग के दाव पचों, चालों आदि का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि महाराज सोमेश्वर चतुरग क्रीडा के बडे ही प्रेमी थे। सोमेश्वर के समय में खेली जाने वाली क्रीडा का आधार वैदिक काल का चतुरग फलक ही था क्योंकि वैदिक युग मे भी राजा, मत्री, गज, अश्व, रथ तथा पैदल यही छ अग होते थे। इनकी स्थापना भी चतुरग फलक पर उसी प्रकार होती थी।

चतुरग का यह क्रम बहुत समय तक प्रचलित रहा, किन्तु वर्तमान काल में खेले जाने वाले शतरज खेल मे उनके समय से अगों में कुछ परिवर्तन आ गए है और फलक पर उनके स्थापन की विधि भी भिन्न प्रकार की हो गई है। वर्तमान काल मे रथ के स्थान पर ऊँट शतरज खेल का अग बन गया है। और यद्यपि आजकल भी खेल का फलक ६४ कोठों वाला ही होता है किन्तु सबसे कोने के कोठों में हाथी, उसके दक्षिणपार्श्व में घोडा, घोडे के दक्षिण कोठे में ऊट, तब मत्री तथा राजा स्थापित किये जाते है। आगे के दूसरी पक्ति के कोठों में आठ सैनिकों की स्थापना विधि समान ही है। इसी प्रकार खेलने का क्रम भी भिन्न हो गया। सोमेश्वर के समय में फलक के कोठों को लाल तथा पीले रग से रगा जाता था

चतुरग क्रीडा का बडा ही पुरातन इतिहास है। यह क्रीडा वैदिक काल में भी खेली जाती थी और उसे चतुरग कहते थे[२]। यह युद्ध से सम्बन्धित खेल था और प्रत्येक खेल में एक राजा, एक मत्री, दो हाथी, दो घोडे, दो रथ तथा आठ पैदल सैनिक रहते थे। खेल के प्रमुख राजा मत्री आदि अग पीछे तथा उनके आगे पदाति सैनिक रहते थे। यह खेल एक चौकोर फलक पर खेला जाता था जिसमें ६४ चौकोर कोष्ठ होते थे। टेलर[3] महोदय का मत है कि यह खेल किसी हिन्दू का आविष्कार है जो युद्ध के क्षेत्र को ध्यान में रख कर बनाया गया है और अष्टापद (आठ कोष्ठ लम्बाई में आठ कोष्ठ चौडाई

---

१ वही ५।१२।६८० ८२।

२ वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार वार इन ऐशियट इडिया' पृ० १५४।

३ टेलर "एन्थ्रोपौलोजी" १८९२, पृ० ३०७।

में) फलक पर खेला जाता है। इस खेल के ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में अनेक ऐसे प्रसग प्राप्त होते हैं जिसमे विदित होता है कि तत्कालीन समाज का यह प्रिय मनोरजन था[१]। इस खेल मे अपने आगे की दो पक्तियों के कोष्ठों में राजा, मत्री, अश्वों, हाथियों तथा रथो को स्थापित किया जाता था। किनारे के दोनो कोष्ठो में रथ, उसके समीप वाले कोष्ठ मे दोनों ओर अश्व, अश्व के समीप गज तथा बीच के दो कोष्ठो मे राजा तथा मत्री रहते थे। आगे के आठों कोष्ठों मे आठ पैदल सैनिक स्थापित किए जाते थे।

फारसी भाषा में इस क्रीडा का चतुरग तथा अरबी भाषा में शतरज नाम दिया है। जो सस्कृत के चतुरग शब्द के ही रूप है।[3] इससे विदित होता है कि इस चतुरग क्रीडा को उत्पत्ति भारत में ही हुई जिसको अन्य देशवासियों ने सीखा।

बौद्ध साहित्य के समवाय सुत्त म एक 'अट्ठावयम्' नाम की क्रीडा का उल्लेख हुआ है जो ६४ चौकोर कोष्ठों में खेली जाती थी।[४] यह वैदिक काल में खेली जाने वाली चतुरग क्रीडा का ही रूप है। कादम्बरी में एक स्थल पर ऐसा प्रसग प्राप्त होता है

अभ्यस्यता अष्टापद व्यापाराणि ॥[५]

अथात् अष्टापद खेल का अभ्यास करते थे यह अष्टापद वही चतुरग खेल है। हर्षचरित में भी बाण ने क्रोध के कारण तनी हुई भौहों से दुर्वासा के मस्तक पर छायी हुई कालिमा को शतरज के फलक के काले कोष्ठों की भाँति बतलाया है। यह प्रसग तत्कालीन समाज में खेले जाने वाले चतुरग खेल की ओर सकेत करता है। यह चतुरग खेल भारत ही से विदेशों में पहुँचा। पहलवी भाषा की "मादीगान ए शतरज" में दीवासारम् नामक हिन्दू राजा द्वारा खुसेरु नौशेरवॉं की सभा के विद्वानों की परीक्षा करने के लिए बत्तीस मोहरों वाला शतरज का खेल ईरान भेजने का प्रसग प्राप्त होता है।[७] इस प्रकार

---

१ वी० आर० रामचद्र दीक्षितार 'वार इन ऐंशियट इडिया' पृ० १५४।
२ वी० आर० रामचद्र दिक्षितार 'वारइन ऐंशियट इन्डिया', पृ० १५४
३ शूलपाणि 'चतुरग दीपिका" (कलकत्ता सस्कृत सिरीज २१)।
४ ए० वेकटसुब्बिया 'दि कलाज सूची ?।
५ कादम्बरी कथामुख भाग पृ० ८८।
६ अ धकारित ललाटपट्टाष्टपदा ।
हर्षचरित १।९।
७ वासुदेव शरण अग्रवाल हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० १४।

विदेशों के कोने-कोने में फैला हुआ शतरज खेल भारत मे बढ़ता ही गया। मुसलमानों के समय में इस खेल ने बडा जोर बाँधा। उस समय के व्यक्ति अपना कामधाम त्याग कर इस खेल के पीछे पडे थे जैसा कि प्रेमचद का "शतरज के खिलाडी" नामक कहानी से प्रकट होता है। यह खेल आज भी भारत में कुछ अश तक प्रचलित है।

इस खेल में विशेष रूप से दो राजाओं की सेना का पारस्परिक युद्ध होता है और अनेक प्रकार के दाव पेचों एव व्यूहों का प्रयोग जातने लिए किया जाता है। दोनों पक्ष के व्यक्ति अपनी ओर के सर्भा अगों को बचाने की चेष्टा करते रहते है। इस प्रकार युद्ध ही इस खेल का प्रधान विषय है। इसी कारण यह राजओं की प्रिय क्रीडा रही है।

अक्ष अथवा पाशक क्रीडा

इस क्रीडा में २० अगुर के विस्तार का श्रेष्ठ दारु लकडी का फलक बनाया जाता था जो चार विस्तृत दीर्घ तथा बीस अगुल ऊचा होवा था।[१] इसम चार अगुल विस्तार के तथा नव अगुल दीर्घ २४ गृह बनाये जाते थे और दो पदको से सुशोभित दो वृत्ताकार पक्तियाँ बनाई जाती थीं जिसमे एक अगुल का अन्तर रहता था। इसके अतिरिक्त इस क्रीडा में ढाई अगुर विस्तार के हाथी दाँत के तीस पाशकों अथवा सारिकों का प्रयाग होता था जिसमें पन्द्रह श्वेत तथा पन्द्रह चित्रित पासे होते थे

> सार्धंद्वयङ्गुलविस्तारा दतिदतै समुद्भवा ॥
> दशपचसितास्तत्र दश पच विचित्रता।
> त्रिशदेता समाख्याता पाशककेलिषु ॥[3]

इन पाशकों के रखने में सोमेश्वर ने 'चतु सारीक' तथा 'पचसारीक' विधियों का वणन किया है। दो शिर पर, छठे गृह के बाहर के गृह तथा चतुर्थ गृह में चार चार, तथा पाच शीर्ष पर श्वेत सारिकायें रखी जाती थीं। इस विधि को 'चुतुस्सारीक' विधि कहते थे।[४] इसी प्रकार पाँच शिरोभाग पर, पाँच

१ मानसोल्लास ५।१३।७०१। २ वही ५।१३।७०२ ७०३।
३ वही ५।१३।७०४ ७०५।
४ द्वे द्वे शिरसि सयोज्ये ।
दशोभागे षष्ठे गेहे विचित्रिता।
चतस्रस्थापनीयास्ता भूगृहेषु च।
चतुर्थे शीर्षेत्तु पचता।
सिताश्च तत्र कतव्याश्चतु सारीष्ठ य विधि ॥
वही ५।१३।७०६ ७०८।

पुष्कर द्वारा राजा नल को इस क्रीडा द्वारा जीते जाने का उल्लेख किया है।[1] इसके अतिरिक्त अक्ष को वे मन तथा बुद्धि का नाशक बतलाते है और व्यसन का उत्पादन करने के कारण इसमे आसक्ति न रखने का आदेश देते है। राजा को जहाँ तक हो सके प्रयत्नपूर्वक इसका निवारण करना चाहिए।[3] फिर भी यदि राजा को इच्छा हो तो वह अपनी प्रेयसियो के साथ अत्यन्त हास्यप्रद एव विलासपूर्ण पण की स्थापना कर इस पाशक क्रीडा को खेले। यद्यपि यह क्रीडा दुरन्त है फिर भी सोमेश्वर ने इसे क्रीडा के अन्तर्गत मानकर मनोरजन का साधन माना है और साथ ही अपनी प्रेयसियो के साथ खेलने की ऐसी विधि का आदेश दिया है जो वास्तव में इस पाशक के खेल को आनन्दपूर्ण बना देती है। इसी प्रकार खेलने से राजा का मनोरजन भी हो जाता था और उसके ऐश्वर्य को भी धक्का न लगता था। मनु ने हसी मे भी द्यूत को खेलने का निषेध किया है।[4]

यह क्रीडा भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित है। वेदों के समय मे भी यह क्रीडा खेली जाती थी। क्योंकि ऋग्वेद[5] के दसवे मडल में इस क्रीडा के प्रसग प्राप्त होते है। इस प्रसग में बहेरे का फल अक्ष के रूप मे व्यवहृत होता था और जिस फलक पर यह क्रीडा खेली जाती थी उस शारि फलक को 'इरिण' कहते थे और इस क्रीडा का भी 'शारि क्रीडा' नाम था। ऋग्वेद के एक स्थल पर 'त्रिपचाश क्रीडति प्रात प्रमग से प्राप्त होता है इससे विदित होता है कि उस समय में अक्ष के तिरपन सघ थे जो शारिफल पर क्रीडा करते थे। इस प्रकार वैदिक युग में इस क्रीडा का विशेष महत्व था किन्तु इस क्रीडा की प्रशसा कहीं नहीं प्राप्त होती क्योंकि यह दुरन्त व्यसन है।

पुराण कालीन समय में भी इस क्रीडा का विशेष व्यवहार होता था। श्रीमद्भागवत पुराण में एक स्थल पर अक्ष की क्रीडा करने वाली अक्ष सभाओ का प्रसग प्राप्त होता है

अक्षै सभाया क्रीडन्त भगवन्त भयातुरा।[7]

---

१ व्यसने नलो राजा पुष्करेण जित पुरा।
मानसोल्लास ५।१३।७७६

२ वही ५।१३।७७८ ७७८।

३ वही ५।१३।७७८।

४ मनु० ९।२२७।

५ ऋग्वेद १०।३४।१ १०।

६ ऋग्वेद १०।३४।८।

७ श्रीमद्भागवत पु० १०।६६।३६।

इसी प्रकार और न्थलो पर भी अक्ष का प्रसग प्राप्त होता है

नवाक्षकाविदा यूय गोपाला वनगोचरा ।
अक्षर्दीव्यन्ति राजानो भवद्भिश्च न भवादृशा ॥[1]

उस समय भी अक्ष क्रीडा मे पण लगाया जाता था

अनन्तो ह्यय राजन्नपि तद यम्नन महत् ।
इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥
शत सहस्त्रमयुत रामस्तत्राददे पणम् ।
त तु रुक्म्यजयत् तत्र कालिङ्ग प्राहसन् बलम् ॥[2]

महाभारत[3] मे इस क्रीडा के दुष्परिणाम का वर्णन हुआ है। शकुनि ने कपट पूर्वक पाडवों को हराकर उनका राज्य छीनकर उन्हे निर्वासित कर दिया।

मनु ने दस प्रकार के कामज तथा आठ प्रकार के क्रोधज व्यसनों का वर्णन किया है और अक्ष क्रीडा को कामज व्यसनो के अन्तर्गत माना है। मनु ने इस द्यूत को राजा के लिए निषिद्ध माना है। याज्ञवल्क्य ने भी निर्जीव पाशादि से खेली जाने वाली क्रीडा को द्यूत कहा है और उस द्यूत के द्वारा जीते हुए धन मे राजा का भी भाग होता था

स सम्यक् पालितो दद्याद्राज्ञे भाग यथा कृतम् ।[6]

याज्ञवल्क्य के समय में सभिक (फडवाला) पाँच रूपए प्रतिशत लेता था और अधिक जीतने पर धन का दसवाँ भाग लिया जाता था।[7] उस समय में इस द्यूत क्रीडा का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था और जो कपटपूर्वक, धोखा देकर अथवा औषधि की सहायता से द्यूत खेलते थे उन्हें राजा श्वपद चिह्नों से दगवा कर राज्य से निकलवा देता था

प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्ध धूर्तमण्डले ।
जित ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥
द्रष्टारो व्यवहाराणा साक्षिणश्च त एव हि ।
राज्ञा सचिह्न निर्वास्या कूटाक्षोपधिदेविन ॥[8]

वात्स्यायन ने इस क्रीडा का 'आकर्ष' नाम दिया है और फलक को आकर्षफलक कहते थे—

---

१ वही १०।६१।३५ ।
२ वही १०।६१।२८-२९ ।
३ महाभारत सभापर्व ।
४ मनु० ७।४५-४७ ।
५ मनु० ९।२२१ ।
६ याज्ञ० २।२०४ ।
७ वही २।२०३ ।
८ वही २।२०५,२०६ ।

आकर्षफलक द्यूतफलक च ॥

विश्वभारती पत्रिका में भी श्री हरि चरण वन्द्योपाध्याय ने इस अक्ष क्रीडा के विषय में एक अच्छा लेख लिखा है।[२]

ललितविस्तर में भी अक्ष क्रीडा का प्रसग प्राप्त होता है। कादम्बरी में एक स्थान पर 'सर्वा द्यूतकला' का प्रयोग हुआ है।[४] इससे विदित होता है कि उस समय मे व्यक्ति सभी प्रकार के द्यूतो मे निपुण थे। अत उन्हे अवश्य ही अक्ष क्रीडा का ज्ञान होगा। समवाय सुत्त में 'जूयम्' (द्यूतम्) का प्रयोग हुआ है।[५] यह जूयम् शब्द सभवत अक्ष क्रीडा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। दीर्घ निकाय में भी अक्ष (अक्ख) क्रीडा का उल्लेख हुआ है और द्यूत को प्रमाद (जूत पमाद) माना है।[६] आजकल जो अनेक प्रकार के खेल प्रचलित हैं वे पासे द्वारा ही खेले जाते हैं। सभवत ये खेल अक्ष क्रीडा के ही अन्य रूप हैं।

वराटक क्रीडा

वराटिका क्रीडा द्वारा राजा विशेष रूप से आश्विन मास मे कृष्ण पक्ष की अमावस्या तथा चतुर्दशी को मनोरजन करता था—

अमावस्या चतुर्दश्या कृष्णपक्षे विनोदयेत् ॥[७]

इस क्रीडा को चतुर्दशी से लेकर शुक्ल पक्ष की पचमी तक खेलने का आदेश सोमेश्वर ने दिया है—

आरभेत् ततो द्यूत यावदायाति पचमी ॥[८]

चतुर्दशी के दिन राजा स्नान कर देव की पूजा करके, दीर्घ तूर्य नाद से पूर्ण ब्राह्मणों के अभिनन्दन से अभिनन्दित होकर, अत पुर की स्त्रियो द्वारा नीराजना करवा चुकने पर अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, बाधवों, मित्रो तथा भृत्यों को बुलवा कर सबके साथ आनन्द पूर्वक भोजन करता था।[९] भोजनादि से निवृत्त हो

---

१ कामसूत्र सू० १३, पृ० ४५।

२ विश्वभारती पत्रिका खड, ३, अक २।

३ ए० वेकटसूबिया दि कलाज सूची २।

४ वही सूची ४, कादम्बरी पैरा ७५।

५ ए० वे० दि कलाज सूची १।

६ दीर्घनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त, सू० १४।

७ मानसो० ५।१४।७८१। ८ वही ५।१४।७८५।

९ स्नात्वा च देवमभ्यर्च्य कृत्वा चणवतपणम ।

चुकने पर राजा द्यूत को जानने वाले चतुर व्यक्तियों को बुलाकर द्यूत क्रीडा प्रारम्भ करता था।

कौडियों द्वारा खेला जाने वाला द्यूत अनेक प्रकार का होता था जिनमें अलग अलग संख्या में कौडियों की आवश्यकता पड़ती थी। यह पाँच कौडियों द्वारा, चार कौडियों द्वारा तथा तीन कौडियों द्वारा खेल होता था। इसमें चार कौडियों द्वारा खेले जाने वाले खेल को पुजिका कहते थे।[३] यह खेल एक गोलाकार मंडल में खेला जाता था। इसे नंदि रेखा कहते थे और यह तीन अंगुल विस्तार का वृत्ताकार बनाया जाता था।[४]

कौडी के द्यूत में नंदि, द्विक, त्रिक तथा पूर्ण यह चार प्रकार के दाय होते थे जो एक, दो, तीन तथा चार वराटिकाओं द्वारा ही निश्चित किए जाते थे। इस दाय को स्वीकार करने वाले चार लेखक रहते थे।[५] तथा एक गणितज्ञ होता था जो अत्यन्त सावधानी से वराटिकाओं की गणना करता था। लेखक मध्य में बैठता था और जो जय तथा पराजय को लिखते थे, यही चार लेखक थे।[७] ये चारों अत्यन्त सावधानी से द्यूत का निरीक्षण करते थे। पूर्ण दाय के हो जाने पर मुट्ठी में वराटिका भर कर फेंकी जाती थी।[८] इन कौडियों के फेंके जाने पर प्रत्येक चाल को ध्यानपूर्वक देखा जाता था और प्रत्येक के भाग में चार चार के हिसाब के कौडियों की गणना होती थी। जिसके भाग में चार चार की गणना से अधिक कौडी बचती थी वही विजयी समझा जाता था। यह कार्य गणक करता था।[९]

द्यूत खेलने में दोनों ओर के पक्षों द्वारा पण की स्थापना होती थी। दोनों पक्ष के व्यक्ति एक दूसरे के पण को शिथिल कर अपने पण को पुष्ट करने का प्रयत्न करते थे।[१०] जिसके दाय के उत्पन्न होने पर पण की प्राप्ति न होती थी उसको पण की प्राप्ति न होती थी अर्थात् उसकी संख्या की गणना नहीं

तत पुत्रप्रपौत्राश्च समाहूयाथ बान्धवान् ॥
मित्रैभृत्यैं समायुक्त कृताहारो यथोचितम्।
वही ५।१४।७८२ ७८४

१ वही ५।१४।७८४।
२ वही ५।१४।७८६ ७८८।
३ वही ५।१४।७८७।
४ वही ५।१४।७९० ९१।
५ वही ५।१४।७८८ ९०।
६ वही ५ १४ ७९४,९५।
७ वही ५।१४।७९७ ९८।
८ वही ५।१४।७९९।
९ वही ५।१४।८०० ८०२।
१० वही ५।१४।८०४ ८०८।

होती थी।[१] दूसरे के पण के समान कर देने पर पण मे एक सख्या को छोड कर उसे दो भाग की प्राप्ति होती थी।

वराटिका की चाले चलने पर अनेक प्रकार के हस्तलाघव द्वारा कार्य किया जाता था। यदि खिलाडी प्रवीण होता था तो अपनी विजय की इच्छा से कौडियों को छिपा भी लेता था और पण प्राप्ति के बाद मिला देता था। इस प्रकार अपनी ओर अधिक पण की सख्या बढाने की चेष्टा प्रत्येक खिलाडी करता था।[२] दूसरे के द्वारा अधिक पण ले लेने पर उसे लग्न कहते थे।

खेल मे विजयी होने पर व्यक्ति द्यूत छोड देने का प्रयत्न करता था किन्तु हारा हुआ व्यक्ति विजय की इच्छा से द्यूत के व्यसन को नही त्यागता था और और यत्नपूर्वक अपनी हार तथा जीत देखता था।[३]

इसके अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार से भी खेल खेला जाता था जिसमें अनेक प्रकार के वर्णो की वराटिकाये होती थीं और उनके वर्णों के आधार पर ही नाम रखे जाते थे। यह भी वराटिकाओ को फेक फेक कर अनेक चाले चलकर खेला जाता था जिसे पातन कहते थे।[७] वर्ण के आधार पर ही विजय का निर्धारण होता था। इसका सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[८] इसके अन्तर्गत भी खेलने के क्रम[९] अनेक प्रकार की चालो द्वारा हार जीत का निरूपण किया गया है।[११] इस प्रकार तत्कालीन समाज मे वराटिका क्रीडा अधिकाश समाज के व्यक्तियों को प्रिय थी और खेलने वालो के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति जो इसका प्रबन्ध करते थे वे भी द्यूतकारक ही होते थे।

भारत में कौडा द्वारा खेले जाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। मनु ने निजाव वस्तुओं, पाशा तथा कौडी द्वारा खेले जाने वाले खेल को द्यूत माना जाता है

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते[१२]

मनु ने इस प्रकार के द्यूत को वैर बढाने वाला तथा नाश का कारण माना है इसी कारण उन्होंने हास्यार्थ भी द्यूत खेलने का विधान नहीं दिया है।[१३]

---

१ वही ५।१४।८०९ १० ।
२ वही ५।१४।८११,८१२ ।
३ वही ५।१४।८१४ १६ ।
४ वही ५।१४।८१७ १९ ।
५ वही ५।१४।८२१-२६ ।
६ वही ५।१४।८२९-३१ ।
७ वही ५।१४।८३३ ३५ ।
८ वही ५।१४।८,६ ६३ ।
९ वही ५।१४।८३७ ४७ ।
१० वही ५।१४।८४८ ५८ ।
११ वही ५।१४।८५९ ६२ ।
१२ मनु० ९।२२३ ।
१३ द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्ट वैरकर महत ।
तस्माद् द्यूत न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ मनु० ९।२२७ ।

याज्ञवल्क्य ने इसका बिल्कुल निषेध नहीं बतलाया है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है उनके समय में द्यूत में जीते गए धन का दसवाँ भाग राजा ग्रहण करता था।[1]

बौद्ध साहित्य में द्यूत का अक्ष से भिन्न प्रसंग प्राप्त होता है और द्यूत को 'जूतपमादट्ठान' (द्यूतप्रमादस्थान) माना है।[2] इससे विदित होता है कि अक्ष के साथ ही साथ अन्य प्रकार के द्यूत भी समाज में प्रचलित थे, जिनमें सम्भवतः कौड़ी द्वारा भी द्यूत होता होगा। इसी प्रकार का द्यूत का प्रसंग समवाय सुत्त में भी प्राप्त होता है।[3]

वात्स्यायन ने भी आकर्ष क्रीडा के अतिरिक्त अन्य प्रकार के द्यूतों का भी उल्लेख किया है। सम्भवतः उनके समय में भी इस प्रकार की क्रीडा द्वारा द्यूत होता था।[4]

इस प्रकार उपर्युक्त प्रसंगों से ऐसी झलक प्राप्त होती है कि वराटिका द्वारा भी द्यूत खेला जाता था, यद्यपि इसका प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख नहीं हुआ है। वर्तमान काल में भी कौडी का द्यूत समाज में प्रचलित है किन्तु दीपावली के अवसर पर यह द्यूत अपना उग्र रूप धारण कर लेता है, जो कातिक मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तथा अमावस्या को होती है किन्तु सोमेश्वर के समय में यह द्यूत आश्विन मास कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी से लेकर पञ्चमी तक होता था, यद्यपि तिथि दोनों की ही समान है किन्तु आश्विन मास का यह प्रसङ्ग कुछ न्यायसंगत नहीं विदित होता। इससे यह विदित होता है कि या तो इस मास में उनके समय में विशेष कोई उत्सव होता था जिसमें राजा स्नान-पूजा से निवृत्त होकर चतुर्दशी आदि तिथियों को द्यूत का प्रारम्भ करता होगा अथवा 'आश्विन' के स्थान पर 'कार्तिक' होगा जो अशुद्ध हस्तलिपि की त्रुटि हो सकती है।

फणीन्द्र क्रीडा

फणीन्द्र क्रीडा को प्रदर्शित कर राजा सबके हृदय में कुतूहल उत्पन्न करता था। राजा एकाग्र मन में अपना सब कार्य समाप्त कर, भोजनादि से निवृत्त होकर अपना शृङ्गार कर, अपनी प्रेयसियों, प्रसाद करने वाले विटों, गीत वाद्य विशारदों, सेवा को जानने वाले सेवकों, विद्वानों, मल्लों, वदियों, द्यूतज्ञों,

१ याज्ञ० २।२०३ २०४।

२ दीघनिकाय, ब्रह्मजालसुत्त सू० १४, पृ० ७।

३ ए० वेंकटसुबिया, दि कलाज सूची १।

४ ए० वेंकटसुबिया दि कलाज सूची ३।

वात्स्यायन कामसूत्र, पृ० ३२,३३।

फणिदों के आ जाने पर उनसे घिरा हुआ अपने दृढ मुष्टि बल की शिक्षा तथा हस्त लाघव के प्रयोगों को अस्त्र शस्त्रों द्वारा बहाने से प्रदर्शित करता था।[१] कितवादियों के कौशल को, हस्तलाघव को देखने के लिए तथा अपना मनोरजन करने के लिए यह फणीन्द्र क्रीडा करता था।[२] इस क्रीडा द्वारा बन्दियों का मनोरञ्जन होता था तथा स्त्रियों के हृदय में राजा के प्रति अनुराग की वृद्धि होती थी। इस क्रीडा में अनेक फणिद रहते थे और उनकी अनेक प्रकार की गुण आदि से सम्बन्धित परीक्षायें होती थीं।[५]

इस क्रीडा को करते समय सर्वप्रथम सभी दिशाओं मे काडकबाध दिए जाते थे जिसके अन्दर खेलने के लिए बीस, तीस चालीस अथवा पचास वरडक होते थे—

विशत्या त्रिशतावापि स्याच्चत्वारिंशतापि वा।
पञ्चाशतापि वा काडे क्रीडनेऽसौ वरडक ॥

यह वरडक तलवार, खड्ग अथवा असिधेनु द्वारा बनाये जाते थे।[७] इनके द्वारा राजा एक ही प्रहार करके अपने बल को प्रदर्शित करता था।[८] इसी प्रकार छुरिका की धारा को पृथ्वी पर रखकर निश्छल होकर राजा अपना हस्तलाघव प्रदर्शित करता था।[९] कभी वामहस्त मे छुरिका को लेकर उसे दक्षिण हाथ में बदल कर, मुष्टिका से उसे पकड कर वेग से उसे चलाता था। इस प्रकार से राजा अनेक प्रकार से अपने बल एव शौर्य को प्रदर्शित करता था।

फणीन्द्र क्रीडा का प्रसग अन्य किसी भी स्थल पर नहीं प्राप्त होता, किन्तु उपर्युक्त प्रसग से ऐसा प्रकट होता है कि जिस प्रकार से सर्प अत्यन्त शीघ्रता एव कौशल के साथ अपने फण को हिलाता है उसी प्रकार अपने हस्तलाघव को अन्य व्यक्तियों को दिखलाकर उन्हें प्रसन्न करना यही इस क्रीडा का प्रधान

---

१ मानसोल्लास ५।१५।८६५-६८।

२ मुदमथमात्मनश्चापि क्रीडामेता समाचरेत् ॥

वही ५।१५।८६८।

३ वही ५।१५।८६९।

४ वही ५।१५।८७० फणिदा बहवोत्र स्यु ।

५ वही ५।१५।८७०,८७१। ६ वही ५।१५।८७२।

७ असिना असिधेन्वा च तत्र कुर्याद्वरण्डक । वही ५।१५।८७३।

८ एकेनैव प्रहारेण स्वबल दर्शये नृप । वही ५।१५।८७४।

९ वही ५।१५।८७५,८७६।

उद्देश्य था। हाथों की क्रिया से सम्बन्धित प्रत्येक हाव भाव हस्तलाघव के अन्तर्गत आ जाता है। ललितविस्तर में मुष्टि बन्ध, बाहुव्यायाम तथा स्फालन आदि अनेक कलाओं का उल्लेख हुआ है, जिनके द्वारा व्यक्ति उस समय में अपने हस्तलाघव को प्रदर्शित करता था।[1]

वात्स्यायन ने हस्तलाघव को भी एक कला मानी है और इस हस्त लाघव को प्रदशित करने एव सीखने के लिए अनेक प्रकार की गोष्ठी एव सभाये होती थीं।[2] इसी प्रकार से प्राचीन काल में खेली जानेवाली गदा क्रीडा तथा धनु क्रीडा आदि के प्रसग प्राप्त होते हैं। इनमें हाथों के हावभावों को प्रदशित कर दिखावटी युद्ध होता था। आजकल भी नगरों म अनेक ऐसी सस्थाये है जहा व्यक्तियों एव बालकों को हस्त सम्बन्धी अनेक प्रकार की कलाओं की शिक्षा दी जाती है।

पञ्जिका क्रीडा

फणीन्द्र क्रीडा के पश्चात् राजा के द्वारा की जाने वाली पञ्जिका क्रीडा का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है। इस क्रीडा मे राजा को चाहिए कि पुरुषों के साथ ही साथ स्त्रियो को भी लगावे।

स्त्रिया योज्या विशेषेण न योज्या केवल नरा[4]

इस कारण स्त्रिया विशेष रूप से इस क्रीडा में भाग लेती थीं। राजा रूप सपन्न प्रेम भाव से पूर्ण, विलास विभ्रम से युक्त, परिहास रस को प्रसारित करने वाली चतुर तरुणियों को बुलाकर उन स्त्रियों के साथ पजिका क्रीडा करता था।

तरुणी रूपसपन्ना प्रेमभावसमन्विता।
विलासविभ्रमे युक्ता परिहासरसप्रिया॥
आहूय चतुरा काता पञ्जीक्रीडाविशारदा।
ताभि सह महीपाल पञ्जिक्रीडा समाचरेत्॥[5]

इस क्रीडा में सात, छ, आठ अथवा दस व्यक्ति लगाए जाते थे। पूर्व में इस क्रीडा को श्रीकृष्ण भगवान् ने गोपिकाओं के साथ की थी इसी कारण

१ ए० वेंकटसूबिया, दि कलाज सूची २ ललितविस्तर, पृ० १७८।

२ ए० वेंकटसूबिया, दि कलाज सूची ३ वात्स्यायन कामसूत्र पृ० ३२ ३३।

३ हिंदू सस्कृति अक, पृ० ७२५।

४ मानसोल्लास ५।१६।८८६। ५ वही ५।१६।८८५ ८८६।

६ खेलकार्ये च सप्तापि षडष्टौ दश नियोज्या।
पजिकाया तु स्त्रियो वापि यद्वापि च मानवा॥
वही ५।१६।८८७।

राजा को भी चाहिए कि वह विशेष रूप से स्त्रियों के साथ ही उनके मन को आनन्दित करने के लिए क्रीडा करे । इस क्रीडा को करते समय राजा को स्त्रियों के हाव भाव को विशेष रूप से देखना चाहिए[२] ।

इस क्रीडा को खेलने के लिए विशेष प्रकार के पञ्जिका मडल का सायकाल के समय निर्माण होता था ।

पञ्जिकालेखन कुर्यात्साय काले निशामुखे ।

अठारह अगुल का एक चौकोर मडल बनाकर उसके चारों ओर भित्तिका बनाई जाती थी और तीन अगुल के अन्तर से एक एक रेखा चारों ओर खींची जाती थी इस प्रकार सभी रेखाओं का विस्तार प्रमाण में तीन अगुल हो जाता था । तब अर्धचन्द्राकार के पञ्जिका के कोष्ठ बनाए जाते थे । ये कोष्ठ मिल कर कमल पत्र के आकार के हो जाते थे[४] । इस प्रकार के मडल के तैयार हो जाने पर उसके कोष्ठों में पीत, हरित, लाल, पाटल, कर्बुर, पाडु, सारग व्याघ्र के समान वर्ण, कुकुम, रासभ के सदृश वर्ण, सर्प के उदर के सदृश वर्ण, घृत क्षीर, तथा भल्लातक फल के समान वर्ण भरे जाते थे[५] । श्वेत वर्ण से पूर्ण कोष्ठ को नकुल के सदृश वर्ण वाले कोष्ठ को गोमायु, कलाय बीज की शका को उत्पन्न करने वाले वर्ण से पूर्ण कोष्ठ को तडुल कहते थे । इसी प्रकार से वर्णों के अनुसार इन सख्यों (इन्हीं कोष्ठों को सख्य कहते थे) इनके अनेक सुन्दर नाम रखे जाते थे[६] । इन सभी में समान वर्ण एव आकार वाले पाच-पाच कोष्ठों को मिलाकर धामा, सात समान वर्ण एव आकार वाले सप्तक को वराटका आदि के नाम से विभूषित करते थे[७] । जो पञ्जिका के सख्य अधोमुखी बनाए जाते थे इन्हें सप्तक तथा जो गोमुख के आकार के ऊर्ध्व मुख वाले सख्य वराट कहलाते थे । इसी प्रकार ऊर्ध्व तथा अधोमुख वाले सख्य बनाकर दायों का निर्माण होता था ।

इन सख्याओं के चार प्रकार के दायों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है जो

---

१ कृष्णनेय कृता क्रीडा गोपीचित्तप्रमोदिना ।
तस्मादत्र स्त्रिया मुख्यास्ताभि क्रीडेत्मम नप ।
वही ५।१६।८८९ ।

२ वही ५।१६।८८९ ८९४ । ३ वही ५।१६।८९४ ।

४ वही ५।१६ ८९५ ८९८ । ५ वही ५।१६।८९९ ९०१ ।

६ वही ५।१६।९०१ ९०२ । ७ वही ५।१६।९०४-९०५ ।

८ वही ५।१६।९०७ ९०८ ।

क्रमश चतुख्य (जिसमे तीन ऊर्ध्व मुखी तथा चार अधोमुखी हो), त्रिक (जब चार सख्य ऊर्ध्वमुखी तथा तीन अधोमुखी हो) द्विक (जब पाच ऊर्ध्व मुखी तथा दो अधोमुखी हों), तथा बिदु (जिसमें छ ऊर्ध्वमुखी तथा एक अधोमुखी हो) है । इसी प्रकार से अन्य दायों का भी निमाण होता था। पजिका क्रीडा मे जब सख्य का निमाण होता था तो दो सख्यों का ऊर्ध्वमुखी तथा पाच सख्यों को अधोमुखी बनाया जाता था। पाच सख्यो के अधोमुखी होने के कारण ही इस क्रीडा का नाम पजिका पडा[१] ।

इस क्रीडा का अन्यत्र प्रसग नहीं प्राप्त होता और न इस प्रकार की खेली जाने वाली किसी क्रीडा का ही प्रसग प्राप्त होता है। सभवत यह उनके समय की खेली जाने वाली विशेष प्रकार की क्रीडा थी।

तिमिर क्रीडा

तिमिर क्रीडा को राजा मनोरजन राग की वृद्धि तथा स्त्रियों के चित्त को मुग्ध करने के लिए करता था। इस क्रीडा को राजा केवल अपनी प्रेयसियों के साथ ही करता था। इसे वह भू गृह अथवा गर्भ गृहों के अन्दर करता था। सर्वप्रथम गृह अथवा भू गृह के रध्रों तथा गवाक्षों को यत्नपूर्वक ढक दिया जाता था। द्वारों को बद करके बाहर से उसमें परदा डाल दिया जाता था जिससे सूर्य की रश्मिया एव प्रकाश किसी ओर से भी भू-गृह के अन्दर प्रवेश न कर सके। इस प्रकार से उनके अन्दर ऐसा अधेरा कर दिया जाता था कि कुछ भी दिखाई नही पड़े—

तथाविध तम कुर्याद्यत्र किंचिन्न लक्ष्यते।[७]

इस भू गृह को चारों ओर से ढककर कोयल पिच्छ, तमाल पत्र, भ्रमर, कोयला, कस्तूरी अथवा कौए के वर्ण के समान अथवा चद्र हीन रात्रि के समान अन्धकार पूर्ण बनाया जाता था[८] जिससे राजा के मत्री आदि कोई भी उसमें होने वाली क्रीडा को किसी प्रकार न देख सके।[९]

---

१ वही ५।१६।९१० ९१४। २ वही ५।१६।९१०।
३ वही ५।१७।९३२। ४ वही ५।१७।९३३।
५ भूगृहेणाद्यगेहे वा भमत्या गभवेश्मसनि। वही ५।१७।९३३।
६ वही ५।१७।१३४ ३५। ७ वही ५।१७।९३५।
८ कोकिलापिच्छसकाश तमालदलमन्निभम्।

च द्रहीना निशा कात कस्तूरीकाकमेचकम्।
वही ५।१७।९३९-४३।

९ वही ५।१७।९३६।

इस प्रकार भू गृह के तैयार हो जाने पर राजा सब को हटा कर, चरण चापों को छिपाता हुआ तथा पदस्खलन को रोकता हुआ उस गृह मे चला जाता था और तब उसकी आज्ञा से अठारह वर्षाया, हृदय को आनन्द देने वाली सुन्दर श्यामा तरुणिया उस गृह में अलक्षित रूप मे प्रवेश कराई जाती थीं।[1] उनके उस तिमिर गृह में प्रवेश कर लेने पर राजा चुपचाप शनै शनै उन बालाओं के समीप जाकर किसी को पकड लेता था, किसी के केश खींचता था, किसी के शिर पर ताडन करता था, किसी की टाग खींचता था, किसी के अग पर खुजली करता था। इस प्रकार से सर्वप्रथम वह चुपचाप चतुरता से सभी बालाओं को तग करता था।

इसके अतिरिक्त उस तिमिर गृह म पूर्व से ही राजा कुछ रमणियों को स्थापित कर देता था जो राजा के कथन एव शिक्षा के अनुसार कहीं पर शब्द करती थी तथा क्रीडा के लिए आई हुई बालाओं में से किसी को अंधेरे मे मारती थी, किसी को धक्का देती थीं, किसी को बिना नाम से गाली देती थीं जिससे वे क्रुद्ध हो जाती थीं, कोई गाली देती थीं तथा कोई एक दूसरे के केश तथा कठ पकड कर लडने लगती थीं। इस प्रकार से उस तिमिर गृह में उत्पन्न हुए कोलाहल को सुनकर शृगार तथा हास्य रस का पोषक राजा उनके समीप आकर उन्हें हटाता था और प्रसन्न होकर हास्य करता था।[२] उसको हँसता हुआ देखकर वे स्त्रिया अत्यन्त क्रुद्ध होकर व्याकुल हो उठती थीं और राजा को गालीं देने लगती थीं।[७] तब राजा हठ पूर्वक उन कान्ताओं में से किसी के बालों को खींचता था, किसी के पयोधरों का स्पर्श करता था, किसी को दृढता से पकड कर हँसता था।[८] इस प्रकार की क्रिया द्वारा स्मर मन्त्रों का प्रयोग उन्हें प्रसन्न करने के हेतु करता था।[९] किन्तु उसके इस हास्य को सुनकर वे स्त्रिया

---

१ अपसाय ततस्सर्वान पदस्खलनवारणम।
रामा श्यामा इव श्यामा समाहूय महीपति॥

वही ५।१७ ९४४।

२ कासाञ्चित्कुन्तलाकष कासाचिन्मूर्ध्नि ताडन॥

कासाचिद्गण्डकण्डूय कासाचिदपि तर्जनम्॥ वही ५।१७।९४६ ९४८।

३ वही ५।१७।९५०। ४ वही ५।१७।९५० ५२।

५ वही ५।१७।९५३ ५५। ६ वही ५।१७।९५६ ९५७।

७ वही ५।१७।९५८। ८ वही ५।१७।९५८ ५९।

९ वही ५।१७।९६०।

को पकड कर मुख को स्पर्श करता था। इस प्रकार क्रीडा समाप्त कर राजा निकलता था।

अन्य किसी ग्रन्थ में इस तिमिर क्रीडा का प्रसग नहीं प्राप्त होता है, कि तु इस क्रीडा म किए जाने वाले कृत्य प्राचीन भारत में खेली जाने वाली दृड् मीलन तथा निलयन क्रीडा से मिलते जुलते है। निलयन क्रीडा मे सब बालक छुपते थे और एक बालक चोर बनता था वह सबको ढूढता था। यह क्रीडा कृष्ण भगवान सब ग्वाल वालों के साथ मिलकर करते थे। इसका प्रसग पुराणों मे प्राप्त होता है

एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुपु।
चक्रु निल्यनक्रीडाश्चोरपालापदेशत ॥[2]

इस क्रीडा मे ढूढने (निल्यन) का कार्य ही विशेष रूप से होता था।

इसी प्रकार दृड् मीलन क्रीडा मे भी स्त्रिया परस्पर अचानक एक दूसरे के नेत्रों को बन्द कर क्रीडा करती थीं। इसके अनेक सुन्दर प्रसग प्राप्त होते हैं। शारगधर पद्धति मे इस क्रीडा का सुन्दर वर्णन हुआ है

नैतस्या प्रसृतिद्वयेन सरले शक्ये पिधातु दृशौ
सर्वत्रैव विलोक्यते मुखशशिज्योत्स्नावितानैरितम्।
इत्थ बालतया सखीभिरसकृद्दृड्मीलनाकेलिषु
व्यापिद्धा रजनीमुखे च नयने स्वे गर्हते कन्यका॥[3]

सूक्तिमुक्तावली मे उस दृड् मीलन क्रीडा का ही निमील क्रीडा नाम दिया है

न पाणिप्रच्छाद्य नयनयुगमत्यायतमिद
नितम्बस्यौदार्यंत्वरितगतियोगोऽप्यसुलभ।
अतिस्वल्पौ पाणी स्तनभरनिरोधान्नमिलितौ
निमीलक्रीडाया कलुषयसि मुग्धे किमिति न ॥[4]

सोमेश्वर के समय में खेली जाने वाली क्रीडा राजा स्त्रियों के साथ एक स्थान में करता था।

दृड्मीलन क्रीडा में आँख बन्द की जाती थी, किन्तु तिमिर क्रीडा अन्धकार पूर्ण स्थान में की जाती थी जहाँ दृड्मीलन की आवश्यकता न होती थी। इस प्रकार तिमिर क्रीडा दृड् मीलन, निलयन आदि क्रीडाओं का मिश्रित रूप

---

१ वही ५।१७।९८०। २ श्रीमद्० पु० १०।३८।२७।
३ शा० प० ३६४२। ४ सूक्ति० ६६।१०।

प्रतीत होता है जिसे राजा अपनी इच्छानुसार स्त्रियों के साथ करता था।

वीर क्रीड़ा

वीर क्रीडा का सम्बन्ध विशेषत प्रेत विद्या एव सिद्धादि से सम्बन्धित है क्योंकि इस क्रीडा के प्रारम्भ में ही सिद्धि प्राप्ति का वर्णन किया है

सिद्धिकार्ये नरै पूर्वं क्रीडयन् प्रकटीकृता[1]

जैसा कि क्रीडा के नाम से ही स्पष्ट है, यह क्रीडा वीर पुरुषों के लिए ही उचित बताई गई है।

तेनासौ वीरपुरुषे कर्तव्या नेतरैर्नृपै।[2]

इस क्रीडा मे बडे साहस की आवश्यकता है क्योंकि बिना साहस के व्यक्ति की मृत्यु का भी भय इस क्रीडा में रहता है। सोमेश्वर एक वीर राजा था और इस कारण वह इतने भयानक कृत्यों में भी मनोरजन का अनुभव करता था इसी कारण सोमेश्वर ने इन कृत्यों को भी क्रीडा के अन्तर्गत बताया है इसी क्रीडा को पूर्व मे अत्यन्त साहसी विक्रमादित्य शालिवाहन आदि राजाओ तथा कालिदास आदि कवियो ने किया है।[3]

इस क्रीडा को करने वाले सभी व्यक्तियों ने महती सिद्धि की प्राप्ति की है

सिद्धि च महतीं प्राप्तास्ते सर्वे क्रीडयानया[4]

सोमेश्वर ने इस वीर क्रीडा द्वारा प्राप्त हुई अठारह प्रकार की सिद्धियों[5] का वर्णन किया है जो इस प्रकार है

---

१ मानसोल्लास ५।१८।९८३। २ वही ५।१८।९८४।

३ विक्रमादित्यरूपेण महासाहसिकेन सा।
कृता मुदगेन कविना वीराणा प्रवरेण च।
दर्शिता वीरनाथेन शालिवाहनभूभना॥
कालिदासेन सेविता।
अन्यश्च बहुभिर्वीरै खेलिता पृथिवीतल॥
वही ५।१८।९८४ ८६।

४ वही ५।१८।९८७।

५ खड्गो बाणो गदा पात्र यष्टिमुष्टि पटखटी॥
योजनेपादुके रक्त वेतालो मणिग्स
निधिवराटिकाक्षो वागित्यष्टादश सिद्धय॥
मानसोल्लास ५।१८।९८७ ९८८

१ खड्ग—आस्तेय के कर का खड्ग जिसको प्राप्त करने के पश्चात् सग्राम म स्वय विजय प्राप्त हो जाती है।

२ बाणल—लक्ष्य को बेधकर बाण पुन हाथ मे लौट आवे।

३ हस्तिग अथवा गदा—गदा हाथ मे स्थित होते हुए ही वार कर दे।

४ पात्र—हाथ में पात्र लेकर वाछित वस्तु की इच्छा करने पर ही उस वस्तु मे पात्र तुरन्त भर जाय।

५ यष्टि—हाथ में छडी लेकर किसी वस्तु मे छुआ कर मनोवाछित वस्तु बना देना।

६ मुष्टि—जिस वस्तु को मुट्ठी मे रखे वही सोना हो जाय।

७ पट—पट द्वारा व्यक्ति को ढक कर उसे लुप्त कर देना।

८ खटी—किसी प्राणी का नाम भूमि पर लिख कर उसी के समान रूप बना देना।

९ योजन—आँखों में अञ्जन लगाकर जिसकी ओर जहाँ तक देखे वही भस्म हो जाय।

१० पादुका—पैरों मे पादुका पहन कर जहाँ चाहे चला जाय।

११ रक्त—हाथ मे जो वस्तु पकडे वही लाल हो जाय।

१२ वेताल—जिसका कार्य बेताल सेवक की भाति करे।

१३ मणि—अपने आप मणि हाथ में आ जाय।

१४ रस—जिससे वृद्धावस्था के चिह्न पके बाल झुरिया आदि दूर हो जायँ।

१५ निधि—भूमि के अन्दर के द्रव्य को देख ले।

१६ वराटिका—जिससे सदैव द्यूत में विजय प्राप्त हो

१७ अक्ष—जिससे द्यूत में वाछित दाव को जान ले।

१८ वाक्—जो निश्चितपूर्वक कह दे वही हो जाय।[१]

इन अनेक प्रकार की सिद्धियों में जो व्यक्ति जिस वस्तु की इच्छा करता था उसीसे सम्बन्धित सिद्धि को प्राप्त करने का प्रयत्न करता था।

इन सिद्धियों को प्राप्त करने का उपाय अत्यन्त कठिन है। इसी कारण सोमेश्वर ने सिद्धि प्राप्ति के उपायों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सिद्धि को प्राप्त करने के लिए साहसी व्यक्ति को शस्त्र, मन्त्र धारण कर धीर एव पवित्र मन से भूतों के नायक भूतनाथ शकर का ध्यान कर तथा चण्डीदेवी को अपने हृदय में स्थापित कर डेढ प्रहर रात्रि के व्यतीन हो जाने पर तथा नगर

---

१ मानसोल्लास ५।१८।९८९ १००७।

मे च रों ओर व्यक्तियों के सचार के रुक जान पर प्रस्थान करना चाहिए।[1] अपने घर से निकलने पर सावधानी से चौराहों, तिराहा, मन्दिर, विशाल वट तथा पीपल के वृक्ष के नीचे, पुष्करी, सरिता के मध्य होकर जाय।

चत्वर त्रिपथ वापि तथा जिनसुरालयम्।
विशाल वटवृक्ष च पिप्पल च सुविस्तृनम्॥
यथा पुष्करिणीतीर
सरितश्च प्रान्तमध्ये च गच्छेन्महामना॥[2]

मार्ग म जाते हुए उसे पिशाच, यक्ष, वेताल, राक्षस, प्रेत आदि मिलते थे।[3] उनमे से कोई महाकाय वाला, कोई अगार के सदृश नेत्र वाला, कोई मुडा, कोई जटिल केश वाला, कोई वक्र, ह्रस्व अथवा दीर्घ मुखवाला, कोई अस्थि, मास मज्जा से पूर्ण भयकर मुखवाला, कोई दीर्घ दाँतों वाला, कोई बडे उदरवाला, कोई तीन पैरवाला, कोई एक पैरवाला, कोई धूल से पूर्ण, कोई लाल रक्त से सना हुआ, कोई कीचड से लिपटा, कोई आतों की माला धारण किए हुए, कोई लम्बे दात, कान तथा नाकवाला तथा कोई अत्यन्त विकराल आकृतिवाला होता था।[4] इन सभी को देखकर वह व्यक्ति अत्यन्त प्रसन्न होता था और उनमे से लोभी को दान, द्वारा भूखों को मास द्वारा, भीषण जीवों को गर्जन द्वारा, दीनों को आश्वासन द्वारा वह उदार व्यक्ति तृप्त करता था।[5] मास से तृप्त हुआ कोई उसका किंकर बन जाता था, आश्वासन दिया

---

१ शस्त्रमन्त्रविदा कार्या धीरेण शुचिना मना।
साद्धयामे गते रात्रे परे सचारवर्जिते॥
स्मरन स्मरहर देव निशेषग्रहघातक।
चडिका हृदये धृत्वा सवपापविनाशिनीम॥
मानसोल्लास ५।१८।१००८ १०१०।

२ वही ५।१८।१०१२ १०१३। ३ वही ५।१८।१०१४ १०१५।

४ जालामुखान्महाकायानगाराकारलोचनान्॥
..
दीघदंष्ट्रान्करालाक्षा महाजिह्वा महोदरान्॥
त्रिपादानेकपादाश्च तथा दीघशिरोधरान।
... ..
ईदृग्विधान्विरूपास्तान्दृष्ट्वा नरो मुदान्वित॥
मानसोल्लास ५।१८।१०१५-१०२१।

५ वही ५।१८।१०२१ १०२२।

हुआ उसकी भृत्यता को स्वीकार कर लेता था।[१] इस प्रकार राजा अपने शौर्य एव साहस द्वारा उन प्रेत, बैतालादिकों को वश में करता था।

इसके पश्चात् वह साहसपूर्वक और आगे बढता था। मार्ग में उसे योगिनिया मिलती थीं। उनकी भी वह आराधना करता था।[२] सोमेश्वर ने क्षेत्रजा, सहजा, समयोद्भूता आदि योगिनियों के अनेक प्रकारो का उल्लेख किया है।[३] ये सभी योगिनियाँ गुप्त तथा प्रकट के भेद से दो प्रकार की होती हैं —

पिटला क्षेत्रजा वापि सहजा समयोद्भवा ।
गुप्तप्रकटभेदेन द्विविधास्ता निरूपिता ॥[४]

गुप्ता योगिनिया पाच प्रकार की होती है भार्या, दासी, वेश्या, विधवा तथा तपस्विनी। यह पाचों अपने अपने कर्मों के कारण इस अलक्षित योनि को प्राप्त करती हैं[५]। इनका अस्तित्व सदैव अलक्षित रहता है किन्तु प्रकटा योगिनिया अपने प्रभाव को प्रदर्शित करती हुई चारों ओर घूमती है और यह योगमाताये कहलाती हैं[६]। ये योगमाताये डाकिना, पूतना, शाकिनी तथा रूपिका आदि अनेक प्रकार की होती हैं और अन्य योगिनियों से घिरी हुई अपना अमानुषी रूप प्रदर्शित करता हैं[७]। ये सुवण के सदृश शोभा वाली देवता योगिनिया छत्र चामर से सुशोभित होती हुई सिहासन पर बैठी हुई राजा को दिखलाई पडती थीं[८]। तब राजा उनको अत्यधिक मास तथा रुधिरादि प्रदान कर उन्हे भक्ति से प्रणाम कर निर्भर होकर मत्रों द्वारा उनकी स्तुति करता था।

---

१ वही ५।१८।१०२३ १०२४।

२ वही ५।१८।१०२४ १०२५।

३ योगिन्यस्तत्र बहुधा स्यानिजाक्षेत्रजाभवा ॥
सहजा समयोद्भूता गुप्ताश्च प्रगटाऽपि वा ।
वही ५।१८।१०२५ १०२६।

४ वही ५।१८।१०३३।

५ भार्या दासी च वेश्या च विधवा च तपस्विनी ।
स्वकर्मभिरलक्ष्यास्ता गुप्ता पचविधा स्मता ॥
वही ५।१८।१०३४।

६ योगिन्यो योगमातर । वही ५।१८।१०३५।

७ डाकिन्य पूतनाश्चैव शाकिन्यो रूपिकास्तथा ।
वही ५।१८।१०३६।

८ वही ५।१८।१०३७ १०३९।

पिशित रुधिर भूरि दत्तीना प्रकल्पयत्।
भक्त्या प्रणम्य निर्भीनस्तत्त्मत्रैप्रपूजयेत्॥[1]

इस प्रकार की भक्ति एव श्रद्धा को देखकर और उसके शौर्य से प्रसन्न होकर देवियां मनोवाञ्छित सिद्धि प्रदान करती थी । इस प्रकार से योगमाताओं द्वारा अत्यन्त कठिनाई से ईप्सित सिद्धि को प्राप्त कर राजा अपने मन्दिर को लौट आता था और प्रात काल उठकर सब कार्यो से निवृत्त होकर अपना प्राप्त सिद्धि के चमत्कार को अन्य व्यक्तियों के समक्ष दिखाकर प्रसन्न होता था[3]।

सोमेश्वर की वीर क्रीडा प्रेत विद्या से सम्बन्धित है। इस क्रीडा मे राजा ने योगिनियों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने का वर्णन किया है। प्राचीन काल से ही यह सिद्धि प्राप्ति की विद्या भारतवर्ष में प्रचलित है और शालिवाहन, विक्रमादित्य आदि राजाओं तथा कालिदास आदि कवियो ने इस सिद्धि को प्राप्त किया था। कालिदास ने काली देवी की उपासना कर विद्या सम्बन्धी सिद्धि अर्थात् वाक् सिद्धि को प्राप्त किया था। विक्रमादित्य तथा बेतालों के सम्बन्ध में बहुत सी किंवदन्तियां प्रसिद्ध है। उन्हें बेताल सिद्ध प्राप्त थी। इन विक्रमादित्य का अस्तित्व, काल, आदि विवादास्पद है।

यह सिद्धि प्राप्ति की विधि यद्यपि अत्यन्त भयकर है फिर भी सोमेश्वर ने इसे क्रीडा मानकर इसे वीर क्रीडा नाम दिया है और इसे साहसी व्यक्ति द्वारा किए जाने का आदेश दिया है क्योंकि निर्बल एव डरपोक व्यक्ति के करने पर उसके प्राणों के चले जाने का भय रहता था। सोमेश्वर ने इस क्रीडा का इतना स्वाभाविक चित्रण किया है, इससे विदित होता है कि उन्हें इन भयभीत एव घृणित कृत्यों को करने में भी क्रीडा करने से उत्पन्न आनन्द के समान ही आनन्द प्राप्त होता था। इसी कारण सभवत उन्होंने इसे क्रीडा के अन्तर्गत माना है।

प्रेम क्रीडा

इस क्रीडा को राजा शुद्धान्त करण वाली स्त्री के साथ करता था। प्रेम

---

१ वही ५।१८।१०४०।

२ वितरन्ति ततो देव्य सिद्धि शौर्येण तोषिता।
वही ५।१८।१०४१।

३ एव सिद्धि समासाद्य नृपो यायात्स्वमदिरम्।
जनाना दर्शयेत्प्रात सिद्धिलाभ मुदान्वित॥
वही ५।१८।१०४२।

को सोमेश्वर ने पूर्व जन्म के किए गए पुण्यो का फल माना है[1]। इस विषय मे सोमेश्वर ने अनेक प्रसग दिए है। उदाहरणार्थ अभ्यास से विद्या, योग से ज्ञान, पराक्रम से ओज, साहस से सिद्धि, रसायन से आयु, क्षमा से सेवा, मित्र से प्रियवाक्य, विवाह से स्त्री, स्त्री से पुत्र, दीप से प्रकाश, आभूषण से शोभा, अग्नि से भोजन, खान से मणि, सस्य से धान्य तथा उद्यान से फलों की प्राप्ति होती है किन्तु किसी का शुद्ध प्रेम किसी भी उपाय द्वारा नही प्राप्त हो सकता।[2] इसी कारण पुण्यहीन व्यक्ति शुद्ध प्रेम को नहीं प्राप्त कर सकते

पुण्यहीना नरा ये तु प्रेम कि प्राप्नुवन्ति ते।
विना सुकृतसबध निधान केन लभ्यते॥[3]

इसी प्रकरण मे सोमेश्वर ने आभिमानिका, अभ्यासिका, पालिका तथा वैषयिका प्रीतियों का वर्णन किया है।[4] पुत्र, मित्र भृत्यादि के साथ होनेवाली प्रीति अभिमानिका, कलत्र की प्रीति को अभ्यासिका, स्त्रियों से एकदेशीया प्रीति को प्रत्यपालिका तथा रूप दर्शन मात्र से ही उत्पन्न हो जाने वाली प्रीति को वैषयिकी प्रीति कहते है। प्रीति के उत्पन्न हो जाने पर जब रस का प्रादुर्भाव होता है तो ऐसी प्रीति वास्तविक प्रेम कहलाता है

प्रीतौ विषयजाताया कि रसा यत्र जायते।
सर्वोत्कर्षवती तस्मात्सा प्रीति प्रेम कथ्यते॥[6]

अन्य श्रेष्ठ स्त्रियो से शुद्ध प्रेम महापुण्य एव पूर्व जन्म के किए गए शुभ सचित कर्मों के द्वारा होता है।[7]

---

१ विना पुराकृतै पुण्यै प्रेमा यत्नेन लभ्यते।
वही ५।१९।१०५४।

२ अभ्यासाल्लभते विद्या ज्ञान योगेन लभ्यते।
व्यवसायेन धन लभ्य क्षमा लभ्यो दयादिषु॥

वही ५।१८।१०४४ १०५४।

३ वही ५।१९।१०८९।

४ वही ५।१६।१०५५।

५ वही ५।१९।१०५६ १०६२।

६ वही ५।१९।१०६३।

७ वही ५।१६।१०६५।

यह प्रसग इस बात को पूर्ण रूप स स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर कर्म सिद्धान्त के पक्षपाती हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने कर्म सिद्धान्त के विषय में ऐसा कहा है

दुर्निवार कर्मविपाकस्तत्संयोगी वित्तज ।
अयोगेपि यदादत्ते प्रेमाण दग्धमन्मथ ॥

इस स्वाभाविक प्रेम के विषय म सोमेश्वर ने अनेक प्रसग देकर प्रेम को पूर्व-जन्म का पुण्य माना है सर्प यद्यपि अत्यन्त भयकर होता है किन्तु उसके मस्तक पर मणि रहता है। मन को सुख देने वाली ज्योत्स्ना कमल को नहीं रुचती उसी प्रकार प्रेम भी पूर्व जन्म के अनुसार सबके साथ नहीं होता।[2] चिर परिचिता स्त्री जो किसी व्यक्ति को नहीं अच्छी लगती वह पूर्व के कर्मों के अनुसार किसी लग्न के योग से प्राणवल्लभा बन जाती है।[3] यह उत्पन्न हुआ प्रेम ईर्ष्या तथा मुक्ति इन दो प्रकार के उपायों से प्राप्त होता है।

प्रेम उत्पन्न हो जाने पर वह निर्मल चद्र, दक्षिण मलयानिल, भूषण, रत्न चित्र विचित्र वस्त्र, माल्यों की सुगन्धि, दिव्य गध विलेपन, कर्पूर मिश्रित ताम्बूल, उद्यान, क्रीडा, मनोहर वाद्य, सुन्दर स्वच्छ पुता हुआ श्वेत गृह, सुखदायिनी शय्या, रम्य भोजन, मधुर गीत, वीणा, वेणु विनोद, शृगार पूर्ण काव्य, सतोष एव काम को उत्पन्न करने वाली इष्ट कथा, नाना हास्यों से पूर्ण करने वाली गोष्ठी, विशाल तथा सुन्दर भ्रू वाली तथा रूपसपन्ना तरुणी तथा कौशल आदि उपकरणों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है।[5] सोमेश्वर ईर्ष्या काम,

---

१ वही ५।१९।१०६६।

२ वही ५।१९।१०६७ १०७३।

३ चिरा परिचिता का ना यस्य पूर्व न राचते ।
कनापि लग्नयागन सव स्यात्प्राणवल्लभा ॥ वही ५।१९।१०७४।

४ वही ५।१९।१०७६ १०७७।

५ वसते निर्मलश्चद्रो दक्षिणो मलयानिल ।
भूषणानि सुरत्नानि विचित्रा यम्बराणि च ॥

एते सुखावहा सर्वे पदार्था परमार्थत ।
प्रेमप्रकरणार्यैव निर्मिता परमेष्ठिना ॥
मानसोल्लास १०७९ १०८६।

अभिलाषा आदि प्रेम प्राप्ति के उपाय बतलाए है। इन्ही मे से किसी आधार पर प्रेम उत्पन्न होता है।[१]

जिस प्रकार से भूखे को भोजन, तृषित को जल, ग्रीष्म मे शीतल तथा शीत में उष्ण जल रुचिकर होता है और व्यक्ति को सन्तोष प्रदान करता है उसी प्रकार प्रेम से भूखे व्यक्ति को तृप्त करने के लिए शृगार एव प्रेम के अनेक वाक्य, उपकरण तथा उपायादि की शिक्षा लेनी चाहिए।[२] अन्त पुर की जिते न्द्रिय अध्यक्षा को बुलाकर राजा उससे प्रेम वृद्धि के उपाय पूछता था

दक्षात पुराध्यक्षा सावधाना जितेन्द्रिया।
आहूय शिक्षयेद्भूभृदुपाया प्रेमवृद्धय ॥[३]

प्रेम वर्धक उपायों की शिक्षा ग्रहण करने पर राजा अपनी प्रेयसी के गृह जाता था प्रेयसी के द्वार पर स्थिति अवरोधनाध्यक्ष को राजा अनेक भूषण वस्त्र आदि देकर अत्यधिक धन देता था और अनेक चाटु वाक्य करता था। इस प्रकार राजा पिशुन की शिक्षा प्राप्त करता था।[४]

अपनी प्रेयसी के समक्ष पहुँच कर राजा उससे अनेक प्रेम भरे चाटु वाक्य कहने का अभ्यास करता था उदाहरणार्थ तुम्हारे ऐसी सुन्दरी एव गुणसपन्ना स्त्री को पाकर मुझे कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह गया। तुम सदैव मेरे हृदय मे विद्यमान रहती हो। तुम्हें यदि कुछ हो जायेगा तो मै जीवित नहीं रह सकता आदि।[५]

अन्त मे राजा ताम्बूलधारिका तथा अन्य स्त्रियों के साथ अन्त पुर मे जाता था और स्त्रियों को प्रिय लगने वाले अनेक प्रकार के वचनो द्वारा वहाँ की स्त्रियों को सतुष्ट कर[६] राजा अपनी वल्लभा के घर जाता था

एवमादिभिरन्यैश्च चारुवाक्यैर्मनोहरै।
कामिनीं सात्वयित्वा ता वल्लभाया गृह व्रजेत्॥[७]

---

१ वही ५।१९।१०९०-९२।
२ वही ५।१९।१०९३ १०९५।
३ वही ५।१९।१०९६ १०९७।
४ पिशुन शिक्षयेदेव यदत्रतु महीभुजा।
वही ५।१९।११००।
५ वही ५।१९।११०७ १११०।
६ वही ५।१९।११११-११२२।
७ वही ५।१९।११२४-११२५।

वहा पर वल्लभा की दूती उस स्त्री के विरह का दु खद वर्णन करती थी जिसको सुनकर राजा शीघ्र ही अपनी वल्लभा से मिल कर उसके साथ मनोवाछित क्रीडा कर उसे सतुष्ट करता था[१]। अपनी वल्लभा को सतुष्ट करके उसको वही स्थापित कर राजा पुन अपना प्रिया के घर जाता था

ता प्रस्थाप्य ततो गेह प्रियासद्म समाविशेत्।[२]

वह प्रिया आखो म अश्रु भरे राजा के आने की प्रतीक्षा गवाक्ष के समीप बैठकर करती रहती थी । अपने नेत्रो से मुक्ता के सदृश अश्रु बहाती थी जिससे उसका कज्जल कपोलो पर आ जाता था।

मुचति बाष्पसलिल मुक्ताफलसमप्रभम्।[४]

विरह व्यथा से सतत होने के कारण कदली दल का पखा उसके ऊपर ताप नाश करने के लिए चलाया जाता था । इस प्रकार की उसकी सताप पूर्ण दशा को सुनकर उसकी सखी उससे कारण पूछती थी तब वह इस प्रकार कहती थी

न मेपराधलेशास्ति वल्लभ कुपितो मृषा।

अर्थात् मेरा तो कुछ भी अपराध नही फिर भी देव अप्रसन्न हो गए। अपनी देवी को दु खी देखकर सखी अथवा दूती राजा के समक्ष जाकर उसकी अवस्था का वर्णन करती थी[७]। उसको सुनकर राजा शीघ्र ही आने का वचन देता था। वहा से आकर प्रसन्न मन वाली होकर वह अपनी देवी को समझाती थी कि तुम मत रो तुम्हारे प्राणवल्लभ शीघ्र ही आवेंगे[८]। राजा भी शीघ्र ही अपने विरह से व्याकुल प्रिया से, मिलने जाता था और उसके सामने पहुँच कर राजा अपनी प्रिया से प्रेम पूर्वक मिलता था[९]। अपनी प्रिया के नेत्र जल से सिंचित राजा राज्यभिषेक के समय के जल से सिंचित हुए के सदृश उस काम-साम्राज्य में सुशोभित होता था।

---

१ वही ५।१९।११२५-३६।

२ वही ५।१९।११३९।

३ वही ५।१९।११३९,११४०।

४ वही ५।१९।११४१।

५ वही ५।१९।११४७।

६ वही ५।१९।११५०।

७ वही ५।१९।११५१ ११८९।

८ वही ५।१९।११९०।

९ वही ५।१९।११९९,१२००।

प्रेयसीनेत्रतोयेन सिक्ताङ्गो महीपति ॥
अभिषिक्त इवाभाति कामसाम्राज्यससदि ।
भुजाभ्या पीडनाद्राजा प्रेयसीचित्तरजक ॥[1]

तत्पश्चात् वह अपनी प्रिया के साथ प्र म-पूर्ण वार्तालाप तथा क्रीडा करके दिव्य वस्त्राभूषण से, उसे सुसज्जित करवाकर अपने मदिर को आ जाता था।

इस प्रेम क्रीडा के अन्तर्गत सोमेश्वर ने राजा का अपनी प्रेयसी के प्रति प्रेम का प्रदर्शन किया है। किस प्रकार से राजा की प्रेयसी प्रेमी मे विह्वल रहती है, उसकी दूती आकर राजा से उसकी विरह व्यथा का वर्णन करती है। तब राजा उसके समीप प्रेम क्रीडा के निमित्त जाता है।

नायक के प्रति नायिका की सखी तथा दूती के वचनो के कथन का वर्णन भारतीय साहित्य मे अधिकाशत प्राप्त होता है। जलदावली को घिरा हुआ देखकर नायिका अपनी सखी से कहती है

आयाता जलदावली सरभस विद्युत्समालिगिता
शैलाना परित सशब्दमहियुवश्रेणी नरीनृत्यति ।
एव सत्यपि हत सप्रति पतिर्देशान्तर प्रस्थित
स्तद्दु ख विनिवेद्यता सखि कथ कस्याधुनाग्रे मया ॥[2]

इसके अतिरिक्त नायक के विरह से व्याकुल होकर नायिका अपनी सखी को नायक के प्रति निम्न प्रकार के वचनो को कहलाकर भेजती है

मा याहीत्यपमगल व्रज किल स्नेहेन शून्य वच
स्तिष्ठेति प्रभुता यथारुचिकुरुष्वैषाप्युदासीनता ।
नो जीवामि विना त्वयेति वचन सभाव्यते वा न वा
तन्मा शिक्षय नाथ यत्समुचित वक्तुत्वयि प्रस्थिते ॥[3]

रति क्रीडा

रति क्रीडा के अन्तर्गत सोमेश्वर ने विशेष रूप से राजा की गणिका सम्बन्धी रति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। राजा नगर की श्रेष्ठ वेश्याओं द्वारा भी अपने हृदय के कामोद्गार को शान्त करता था।[4] इस प्रकरण मे राजा

---

१ वही ५।१९।१२०१ १२०२ ।
२ सुभाषितरत्नभाडारम् ३३०।२ ।
३ सुभाषितावलि १०४९ ।
४ मानसोल्लास ५।२०।१२०६ १२१३ ।

के द्वारा गणिका पसन्द किये जाने, उसके गृह जाने तथा उसके साथ रति करने आदि विषयो का वर्णन हुआ है।

जब राजा रति की इच्छा करता था तो दिन में श्रेष्ठ हाथी पर चढकर वेश्याओ के स्थान मे जाता था। उस समय राजा के साथ अनेक शस्त्रों को के धारण करने वाले सेवक, मार्ग के व्यक्तियों से 'हटो हटो' कहने वाले अनेक व्यक्ति तथा अनेक वाद्यों को धारण किए हुए व्यक्ति रहते थे। इसके साथ ही साथ अनेक व्यक्ति राजा के पाछे तथा आगे चलते थे। राजा का प्रतिहारी भी जनवारण कर्म करता हुआ आगे चलता था।[1] वेश्याओ के निश्चित स्थान पर राजा के पहुँचने पर उन सब व्यक्तियो तथा प्रतिहारियो के कोलाहल तथा गज घटा, शख, काहल आदि वाद्यों को सुनकर कुबेर से भी स्पधा करने वाले ऐश्वर्यवान् राजा के दर्शन करने के लिए विकसित पद्म के सदृश मुख, नीले कमल के सदृश नेत्र, शिरीष पुष्प के सदृश मृदु बाहु वाली सुन्दर शृगार से सुशोभित वारिविलासिनिया बाहर निकलती थीं और राजा को देखकर स्मरातुर हो जाती थी।[2] उन वारिविलासिनियों मे कोइ अर्धचद्र के सदृश तिलक, कोई चरणों मे काचन नूपुर, कोई वाम हस्त में पाश तथा दक्षिण हाथ में माला धारण किए रहती थी। इन सभी स्वागत के चिह्नो को धारण किए हुए निर्निमेष लोचनो द्वारा वे राजा का ध्यान अपनो ओर आकृष्ट करती थीं।[२]

राजा उन सुधा-रश्मि के सदृश मुख काति, दाडिम बीज के सदृश दत पक्ति, मृग के सदृश चचल नेत्रों, कामदेव के बाण के सदृश भ्रूलता, रभा स्तम्भ के सदृश जघनस्थल, कोकनद की छाया के सदृश सुन्दर पदयुग्म से सुशोभित अनेक युवतियों को देखता था।[3] उन वारिविलासियों में राजा जिसको चाहता था उसके समीप अपने सचिवों को भेज देता था और स्वय अपने राज मदिर में लौट आता था।[4] उसी दिन सूर्य के अस्त हो जाने पर सध्या समय राजा प्रफुल्ल मन होकर अपने प्रकृत जनों को बुलाकर सुगन्धिपूर्ण जल द्वारा

---

१ वही ५।२०।१२१४ १२१९।

२ वही ६।२०।१२२० १२२५।

३ काचित्पूर्णसुधारश्मिबिबकातिमुखद्युति ।
दाडिमबीजसकाशदतपक्तिविराजिता ॥

काचित्कोकनदाभासशोभमाना पदद्वया ॥
वही ५।२० १२२६ १२२९।

४ वही ५।२०।१२३०।

अपना शरीर धुलवा कर अनेक प्रकार के सुगन्धित चूर्ण से बने हुए लेपों को अपने शरीर पर मलवाता था।[१] तत्पश्चात् वह माष चूर्ण का बना हुआ पदार्थ[२], सैंधव नमक इलायची आदि से युक्त गोधूम चूर्ण की रोटी, घृत, लवणादि मिश्रित पकाया हुआ मत्स्य, वराह आदि का मास, दुग्ध मे बना हुआ कूष्माड फल का मीठा शर्करा युक्त पदार्थ (हलुवा) तथा दुग्ध में पकाया हुआ धात्री फल, आदि पौष्टिक पदार्थों का भक्षण करता था। भोजन के पश्चात् स्वाद युक्त स्निग्ध तथा मधुर भैंस के दुग्ध को घृत तथा शक्कर मिला कर काम की वृद्धि करने के हेतु पीता था[३] और शुडी चूर्ण से अपने दातो को साफ करता था और सुगन्धित जल से हाथ धोकर हाथों मे चन्दन का लेप करता था।[४]

अपने इन कृत्यो को समाप्त कर लेने पर राजा अपने उन मत्रियो को बुलाकर पूछता था जिनको उसने वेश्या के पास भेजा था।[५] वे आकर बतलाते थे कि वह राजा की प्रतीक्षा मे रत है[६] अपने मत्रियों के 'तथापि मन्मथाक्रान्ता श्रृगार कर्तुमुद्यता'[७] इन वचनों को सुनकर राजा भाडागारिक को बुलवा कर श्रृगार सम्बन्धी प्रसाधनों को उपस्थित करने का आदेश देता था। राजा अपने सभी अगों मे कस्तूरी चदन आदि का सुगन्धित लेप कर ललाट, बाहुशिखर, स्कन्ध तथा वक्षस्थल पर नाना प्रकार के सुन्दर तिलकों को बना कर विचित्र दिव्य वस्त्रो को पहनकर, सुन्दर चमकते हुए सोने के आभूषणों को धारण कर ताम्बूल चर्बण कर, कर्पूर से शरीर को सुगन्धित कर, पुष्प मालाओ को धारण कर यत्न पूर्वक अपना श्रृगार करता था।[८] श्रृगार करने के पश्चात राजा काल के उपयुक्त भृत्यों, खड्गचर्मधारी, स्वामिभक्त, कृतज्ञ, विश्वासपात्र भट, वस्त्र

---

१ वहा ५।२०।१२३० १२३२।

२ वही ५।२०।१२३६ १६४१।

३ माहिष च तथा दुग्ध शकराघतसयुतम।
आनुपान पिबेद्राजा काम वीयविवृद्धये ॥
वही ५।२०।१२४५।

४ वही ५।२०।१२४६ १३४८।

५ प्रेषिता नमसचिवा पृच्छदाहूयभुपति ॥
वही ५।२०।१२४९।

६ मया सभाविना काना नपागमनमिच्छति।
वही ५।२०।१२५१।

७ वही ५।२०।१२५३।

८ वही ५।२०।१२५५ १२६०।

ग्राहिक (जो पीछे राजा का वस्त्र पकड कर चलता था), स्वर्णग्राही, ताम्बूल धारक, परिहास में चतुर व्यक्तियो को साथ लेकर वेश्या के गृह की ओर जाता था और अपने अनेक रक्षकों को यत्र तत्र नियुक्त कर देता था।[1]

तत्पश्चात् राजा अत्यन्त सुसज्जित, गोपुर तथा अटारियों से युक्त धुले हुए धूप से सुगंधित, नाना प्रकार के भव्य तुग श्रृगों से युक्त गृह की ओर देखता हुआ लीलापूर्वक जाता था[2] और अनेक प्रकार के हाव भाव, नृत्य, गीत आदि गाती हुई, तिल्क लगाती हुई, राजा की प्रतीक्षा करती हुई राजा के नाम से अकित गाथा को पुन पुन गाती हुई 'मनोवाछित नायिका के गृह के समीप पहुँचता था[3] और शशि प्रभा के समान उज्जवल तोरण युक्त, सुन्दर वेश्या के बाट मे राजा प्रवेश करता था[4]। वेश्या बाट के आगे वेश्या के अनेक सेवक, क्षुरिका, असिधेनु, बाण, भाला दड, शख आदि धारण किए हुए रक्षा के लिए नियुक्त रहते थे[5]। इसके अतिरिक्त कोई सुभट हेम की श्रृखला धारण किए, कोई तलवार बाधे, कोई घोडे पर चढकर, कोई आभूषणों से सुसज्जित होकर घूमते थे। इस प्रकार से वेश्या के बाट में सात आठ सेवक उसके गृह की रक्षा के हेतु घूमते थे[7]।

इन सेवकों के अतिरिक्त ऊँची ग्रीवा वाले, दर्पयुक्त कर्णाट देश के युवा, श्रीखड का तिलक लगाए द्रविड देश का विट, सुन्दर असिधेनु को धारण किये, कुकुम तिलक लगाए लाट देश का, आजानुलम्बी कुचुक को धारण किए हुए महाराष्ट्र देश का विट, मजिष्ठ वसन पहने हुए गुर्जर देश के विट वेश्या के गृह के द्वार पर नियुक्त रहते थे। इन सभी देशों के विटों की सुन्दर वेश भूषा का विस्तारपूर्वक वर्णन सोमेश्वर ने किया है। इसके अतिरिक्त, परिवाट[9] ब्राह्मण,[10] विशग,[11] प्रागण,[12] चाटक[13] आदि विभिन्न प्रकार के विटों का उल्लेख किया है और उनकी वेशभूषा एव कार्यों पर भी प्रकाश डाला है।

---

१ वही ५।२०।१२६१-१२६९। २ वही ५।२०।१२७० १२७३।
३ वही ५।२०।१२७६ १२८५।
४ वही ५।२०।१२८६-१२९३।
५ वही ५।२०।१२९५ १३००। ६ वही ५।२०।१३०१-१३०६।
७ वही ५।२०।१३०७।
८ वही ५।२०।१३०८ १३३०। ९ वही ५।२०।१३३१ १३३३।
१० वही ५।२०।१३३३ १३३५।
११ वही ५।२०।१३३५-१३३६।
१३ वही ५।२०।१३३७-१३३८। १४ वही ५।२०।१३३८ १३४०।

इन विटों के अतिरिक्त कुछ कुट्टिनिया भी वेश्या के गृह के द्वार पर उपस्थित रहती थीं, जो अपनी नाट्यमयी गति तथा अनेक प्रकार के तीक्ष्ण वाक्यो द्वारा राजा को अदर जाने से रोकती थीं। ये कुट्टिनिया बडी ही स्वार्थिनी होती थीं और सदेव आए हुए व्यक्ति से अधिकाधिक द्रव्य मागता थी।

सर्वदा स्वार्थनिरता सर्वदा वचनोद्यता ॥[1]

यह द्रव्य के लोभ मे सब कुछ कर सकती थी[2]। राजा के समक्ष ये अनेक प्रकार के हाव भाव दिखाती थी और निश्चित धन लेकर तब उसे अन्दर जाने देती थी[3]। उस धन के अतिरिक्त राजा और भी धन देने का वचन देता था।

ततोपि प्रचुर वित्त दास्यामि तव वाछितम् ॥[4]

द्वार के सभी लोगों को सतुष्ट कर देने पर वेश्या के सेवक राजा के समक्ष आकर उसके अग प्रत्यगों की प्रशसा करते थे[5] जिसको सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होता था,[6] वे सेवक राजा को ताम्बूलादि देकर उसे सुन्दर तोरण से सुशोभित वाट द्वारा अदर लाते थे और राजा दतिदत निर्मित पल्ग पर बैठ जाता था। राजा के उचित रूप से बैठ जाने पर वेश्या सम्पूर्ण शृगार से सुसज्जित होकर राजा के समक्ष आती थी

ततोपविष्टपर्यंके दतिदतविनिर्मिते ।
तत पण्यागना काता समायाति नृपान्तिकम् ॥[7]

राजा का श्रम दूर करने के हेतु सुगन्धित जल लेकर अपने अशोक पल्लव के सदृश सुन्दर हाथों से उसका पाद प्रक्षालन करती थी[8] और लज्जापूर्वक राजा

---

१ वही ५।२०।१३८० १३९० ।

२ द्रव्याहरणलोभेन किं किं न कुरुते हि सा ।
वही ५।२०।१३९२

३ वही ५।२०।१३९३ १३९५ ।

४ वही ५।२०।१३९६ ।

५ वही ५।२०।१३९९ १४०४ ।

६ इति विज्ञापितो भृत्य भूमिपाल पृथक् पथक ।
भृत्याना वचन श्रुत्वा प्रमाद परमाप्नुयात् ॥
वही ५।२०।१४०५ १४०६ ।

७ वही ५।२०।१४१० ।

८ वही ५।२०।१४११ ।

के समीप ही रुचिर एवं रम्य आसन पर बैठकर राजा को सुगन्धित कर्पूर मिश्रित ताम्बूल प्रदान करती थी।[1] राजा प्रसन्नता से उस ताम्बूल को ग्रहण कर उसके सस्पर्श से प्रसन्न होकर उसमे काम की वृद्धि के लिए उसका हाथ छूता था। कर पीडन करते समय राजा चाटु वाक्यों का प्रयोग करता हुआ धीरे धीरे उसके समीप जाता था और उसके बिबाफल के सदृश रक्त ओष्ठों का स्पर्श कर आलिगन द्वारा उसके कुचद्वय को पीडित करता था। इसके अतिरिक्त राजा उसके जघा स्थलों का भी शनै शनै स्पर्श करता था और उसके लज्जा निवारण के हेतु उसकी नीवीका स्पर्श कर नीवीमोचन करता था और अपने हस्त पल्लवों से उसके पृष्ठ भाग पर सरल प्रहार करता था।[2] इस प्रकार उसमे सभोग की लालसा उत्पन्न कर उसके हृदय को आनन्दित करने के लिए राजा सुखपूर्वक सभोग करता था।[3] रति क्रीडा समाप्त कर चुकने के पश्चात् राजा उससे अत्यन्त मधुर वार्तालाप करता था। तत्पश्चात् उसे पर्याप्त मात्रा में काचन, भूषण, तथा वस्त्रादि देकर उसका स्पर्श कर प्रसन्न होकर राजमन्दिर को चला आता था। लौटते समय भृत्य वर्ग को भी खूब धन देता था।[4] सोमेश्वर ने राजा के लिए वेश्याओं की जाति तथा स्वभाव को जान कर देश काल के अनुसार रति करने का आदेश दिया है।

विज्ञाय देश कालो च रतिं कुर्वीत भूपति ॥[5]

सोमेश्वर ने अबला, कामनी, मुग्धा, तथा विदग्धा इन चार प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख किया है। राजा को उन्हें भली भाँति जानकर उसी के अनुसार रति क्रीडा करनी चाहिए

अबला कामिनी मुग्धा विदग्धा चेति नायिका ।
ज्ञात्वा तदनुसारेण सभोग समुपाचरेत् ॥[6]

---

१ वही ५।२०।१४१३ ।
२ वही ५।२०।१४१४ १४२३ ।
३ सभोगलालसा कृत्वा तस्याश्चित्तानुरजनम ।
कुर्वीत सुखसभोग नानाकारणबधुरम् ॥
वही ५।२०।१४२४ ।
४ वही ५।२०।१४२५ १४३३ ।
५ वही ५।२०।१४३४ ।
६ वही ५।२०।१४३५ ।

इन चारों ही नायिकाओं की कफ, पित्त तथा वात के अनुसार द्रुत, मध्यम तथा विलम्बित प्रकृति को समझकर राजा को रति क्रीडा करनी चाहिए।[1] इन सभी के साथ विभिन्न विभिन्न प्रकार से सभोग करने का वर्णन सोमेश्वर ने किया है।[2] इस रति क्राडा को सोमेश्वर ने उद्यान, शाद्वलस्थान, जन रहित प्रागण, कदली पत्र की छाया, कुसुम से पूर्ण स्थान तथा हर्म्य मे करने का आदेश दिया है।[3]

रति क्रीडा को करने के लिए सोमेश्वर ने स्त्रियों की जातियों के अनुसार राजा के लिए अनेक प्रकार की रति सम्बन्धी चेष्टाओं का वर्णन किया है। राजा रति क्रीडा करते समय प्रिय वाक्य पीडन, रदच्छेद आदि का प्रयोग करता था[4], किन्तु पद्मिनी स्त्री के साथ रति करते समय राजा नखच्छेद, दश, नखक्षत चेष्टाओ का प्रयोग न करता था

पद्मिन्या सुरत कुर्याज्जले वा तापसन्निधौ ।
गृहे वा मणिदीपाद्यै धनकाचनमचके ॥

नखच्छेदविनिर्मुक्त दशनक्षतवर्जितम् ॥[5]

मृगी स्त्री के साथ राजा कुचाकर्पण, ताडन, नखछेदन, तर्जन चाटुवाक्य तथा दशनच्छेद का प्रयोग करता था। चित्रिणी स्त्री के साथ राजा विविध शय्या का सेवन कर उपभोग करता था

---

१ ५।२०।१४३६।
२ वही ५।२०।१४४३ १४४५।
३ उद्याने शाद्वलस्थाने प्रागण जनवर्जिते।

वही ५।२०।१४४६ १४४८।
४ वही ५।२०।१४४८,१४४९।
५ मानमोल्लास ५।२०।१५०,१४५१।
६ कुरगजातियुक्तायामगनाम्वारति चरेत्।
कुचाकषणसयुक्त गुरु श्लेषसमन्वित ॥
उपेत ताडन क्वापि क्वापि नखरलक्ष्मणो।
तर्जनैश्चाटुभि क्वापि काचिद्दशनखडनै ॥
वही ५।२०।१४५२ १४५~ ।

चित्रिण्या चित्तहारिण्या चित्र रतमाचरेत्।
चित्रगेहेषु रम्येषु तस्याश्चित्तानुरजनम्॥
भूगृहे प्रासते रम्ये तथा च पवकातरे
विशाले मुखशाले वा शय्यासु विविधासु च ॥[1]

सकीर्ण जाति वाली स्त्रियो के साथ राजा उन्हीं के अनुरूप रति क्रीडा करे।

इन सभी जाति की स्त्रियों की प्रकृतियों के अनुसार रति क्रीडा करते समय राजा समय का भी ध्यान रखता था। कफ प्रधान स्त्रियो के साथ रात्रि मे, पित्त प्रधान स्त्रियों के साथ अधिक रात्रि जाने पर तथा वात प्रधान स्त्रियों के साथ रात्रि में रति क्रीडा करता था।[3]

रति के समय के पश्चात् सोमेश्वर ने सत्त्व के अनुसार देव, गधर्व तथा यक्ष इन तीन प्रकार के सत्त्व वाली स्त्रियो के साथ रति करने के स्थान का वर्णन किया है। देवसत्व वाली स्त्रियों के साथ राजा, पवित्र सुन्दर एव मनोहर स्थान मे, गधर्व सत्त्व वाला स्त्रियों के साथ गध युक्त, सुगन्धित, गति वाद्य से गुजित स्थान में तथा यक्ष सत्त्व वाली स्त्रियों के साथ विलेपनादि करके गृह, भूगृह अथवा वृक्षादि के नीचे राजा रति क्रीडा करे।

इस प्रकार से राजा स्त्रियों की प्रकृति, जाति, स्वभाव, लक्षण तथा सत्व का विचार करके उसी के अनुसार स्त्रियो के साथ रति क्रीडा करता था।

सोमेश्वर के रति सम्बन्धी प्रसग से यह स्पष्ट होता है कि यह क्रीडा विशेष रूप से राजा वेश्या के साथ ही करता था। वेश्याओं का प्राचीन भारतीय समाज मे एक विशेष स्थान रहा है। प्रत्येक प्रकार की गीत नृत्यादि सम्बन्धी गोष्ठियों में इनको बुलाना एक आकर्षक एव प्रधान कार्य समझा जाता था। नाट्यशास्त्र मे ऐसा प्रसग प्राप्त होता है कि वेश्याओ में जो सबसे अधिक गुणवती एव सभी कलाओं मे निपुण होती थी उसी को गणिका के नाम से सबोधित किया जाता था। नाट्य शास्त्र में गणिका के गुणो पर निम्न प्रकार से प्रकाश डाला गया है—

---

१ वही ५।२०।१४५४,१४५५।

२ वही ५।२०।१४५६।

३ रजन्यादि कफाढयाया सपित्तायामहर्निशि।

वही ५।२०।१४५७।

४ वही ५।२०।१४५८ १४६१।

आभिरभ्युद्यिच्छ्रुता वेश्या शीलरूपगुणान्विता ।
लभते गणिका शब्द स्थान च जनससदि ॥
पूजिता च सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च सस्तुता ।
प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते ॥[1]

राजा इन गणिकाओ का बडा आदर करता था । पुराणों मे भी गणिकाओं के प्रसग प्राप्त होते है । उस समय की गणिकाये भी अत्यन्त योग्य, चतुर, एव सभी कलाओं मे दक्ष तथा अत्यन्त सु दर होती थी, किन्तु उनका वेश्या ही नाम दिया गया है । श्रीमद्भागवत पुराण मे पिंगला नामकी एक वेश्या का प्रसग प्राप्त होता है—

पिंगला नाम वेश्याऽऽसीद् विदेहनगरे पुरा ।
तस्या मे शिक्षित किंचिन्निबोध नृपनन्दन ॥[2]

बुद्ध कालीन समय मे गणिका को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । कुमारी गोपा को गणिका के समान ही निपुण वतलाया गया है—

शास्त्रेग विधिज्ञकुशलता यथैव[3]

अत बुद्ध काल मे गणिका 'गण' अथवा 'राष्ट्र' की सम्पत्ति मानी जाती थी । बौद्ध साहित्य में बिम्बसार द्वारा अपनी राजधानी मे हो गणिकाओं की सस्था बनवाने का प्रसग प्राप्त होता है ।[4]

वात्स्यायन के समय मे गणिका का समाज में बडा सम्मान होता था । राजा के दरबार में भी गणिका का बडा आदर था ।[5] वात्स्यायन ने एक परिग्रहा, अनेक परिग्रहा तथा अपरिग्रहा इन तोन प्रकार की वेश्याओं का वर्णन किया है ।[6]

मृच्छकटिक में वसन्तसेना नामक गणिका के प्रेम की गाथा का वर्णन है । उसका समाज में सम्मान था । चारुदत्त की वृद्ध माता उसे 'आर्या' कहकर सबोधित करती थी, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह सदैव ही समाज में उच्च स्थान पाती रही है । मनु ने गणिका के अन्न को भी दूषित बतलाया है—

गणान्न गणिकान्नञ्च विदुषाच जुगुप्सितम् ।[7]

---

१ नाटयशास्त्र, गणिका के गुण, पृ० ३६७ ।

२ श्रीमद्० पु० ११।८।२२ । ३ ललितविस्तर १२।१३९ ।

४ महावग्ग ६।३०,८।१ । ५ कामसूत्र, सू० २१ २२ ।

६ कामसूत्र । लाभविशेष वणनीय प्र० ५७ अ० ५ ।

७ मनु० ४।२०९ ।

सोमेश्वर के समय मे भी सभवत उनकी राजधानी में गणिकाओं की सस्थाये होती थी और राजा स्वय पहले उनके समक्ष जाता था। इसके अतिरिक्त गणिका के स्थान तक जाने तथा मत्री को भेज कर मत्री द्वारा प्रत्येक बात का पता लगाने का प्रसग इस बात की ओर सकेत करता है कि वेश्या के यहा जाकर उसके साथ रति क्रीडा करना उस समय के समाज में निंदा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। उनके समय मे वेश्याओं को बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

गणिकायें तथा वेश्याये वास्तव में नारीत्व के अपमान का प्रतीक है। यद्यपि समाज उन्हें उच्च स्थान ही देता था। अजता की गुफा[1] म राजा शस्त्रपाणि द्वारा एक नर्तकी को दड दिए जाने का चित्र चित्रित है। पाच स्त्रिया उसके आस पास खडी हुई दिखाइ गई है और वह लज्जित होकर दीनता पूर्वक खडी है। सभवत यह राजा के प्रेम प्रस्ताव को ठुकराने का ही फल हो सकता है। अत इन गणिकाओं के जीवन का इतिहास सदैव ही ज्योतिर्मान दीपक से उत्पन्न होने वाले कालिख की भाति रहा है।



---

१ अजता गुफा न० २।

परिशिष्ट

MANUSCRIPTS SEEN

1 **Visva Bharatī Santiniketan, Calcutta**

Two Manuscripts —

A Title–Abhilasitārtha–Chintāmani, Pages 42
No 1736 (a)
Size $12\frac{1}{7}$ × 6 , lines per page 14
Script–Devanāgarī
Incomplete
No date

B Title–Abhilasitārtha–Chintāmani
No 1736 (b)
Pages 26
Size $12\frac{1}{8}$ × 5 lines per page 9
Script–Devanāgarī
Incomplete

2 **Asiatic Society of Bengal—1, Park Street, Calcutta**

Two Manuscripts

A Title–Mānasollāsa
No 3991–73–D–2
Script–Devanāgarī
Pages–1 to 30
Size–30 × 2 × 9 × 1[1]=800
No date
Incomplete

B Title–Mānasollāsa
No 1 G 50
Script–Bengali
Pages 1–25
No date
Incomplete

3 **Government Oriental Manuscripts Library Madras**

Title–Mānasollāsa
D No 18552 (Palm leaf Manuscript)
Very old and damaged
No date
Only third Prakarana,

4 **Government Oriental Institute, Mysore**

Three Manuscripts

A Title–Abhilasitārtha–Chintāmani
No B 948
Script–Devanāgarī
Pages–10 to 291
Date–30 11 1918
Incomplete
Copied from Tanjore Sarasvati Mahāvidyālaya Manuscript

B Title-Abhilasitārtha-Chintāmani
No A 200
Folios 1 to 110
Script-Devanāgarī
Incomplete

C Title-Mānasollāsa
Script-Canarese
No A 626
Last Portion Complete

5 T M S S M Library, Tanjore

Four Manuscripts

A Title-Abhilasitārtha-Chintāmani
No 659
Material-paper
Incomplete

B Title-Abhilasitārtha-Chintāmani
No 660
Material-paper
Incomplete

C Title-Abhilasitārtha-Chintāmani
No 9362
Palm-leaf Manuscript
Incomplete
Nandināgarī Script

Title-Abhilasitārtha Chintāmani
No 10779
Palm-leaf Manuscript
Incomplete
Grantha script

6 Government Sanskrit College, Banaras

Title-Mānasollāsa
Pages-1 to 44
Size-10 5×4 5
Script-Devanāgarī
Lines per page 8
Incomplete

7 Bhandarkar Oriental Research Institute Poona

Two Manuscripts

A Title-Abhilasitārtha-Chintāmani
Script Devanāgarī
Incomplete

B Title-Abhilasitārtha-Chintāmani
Script-Devanāgarī
Last portion complete

सहायक ग्रन्थ सूची

१ मानसोल्लास खण्ड १	गायकवाड ओरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा—१९२५ ई०
२ मानसोल्लास ,, २	,, ,, ,, ,, —१९३९ ई०
३ अभिलषितार्थचिन्तामणि	ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन्स, मैसूर—१९२६ ई०
४ ऋग्वेदसंहिता	सायणाचार्य भाष्य सहिता—द्वितीय संस्करण—मैक्स मूलर द्वारा सम्पादित
५ यजुर्वेदसंहिता	महीधर भाष्य सहित—वेबर द्वारा सम्पादित
६ अथर्ववेदसंहिता	सायणाचार्य भाष्य सहित, बम्बई
७ ऐतरेय ब्राह्मण	,, भाष्य (आनन्दाश्रम प्रेस, पूना)
८ शतपथ ब्राह्मण	,, भाष्य सहित, रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।
९ तैत्तिरीय आरण्यक	सायणाचार्य भाष्य सहित, आनन्दाश्रम प्रेस, पूना।
१० बृहदारण्यकोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर।
११ छान्दोग्य उपनिषद्	आनन्दाश्रम प्रेस पूना।
१२ पारस्कर गृह्यसूत्र	श्रीधरशास्त्री पाठक द्वारा सम्पादित।
१३ बौधायन गृह्यशेषसूत्र	ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन, मैसूर—१९२० ई०।
१४ आश्वलायन गृह्यसूत्र	निर्णयसागर प्रेस।
१५ आपस्तम्ब गृह्यसूत्र	ओरियण्टल लाइब्रेरी सीरीज़, मैसूर।
१६ शांखायन गृह्यसूत्र	बनारस संस्कृत सीरीज़।
१७ भारद्वाज गृह्यसूत्र	डॉ० सैलोमोन्स द्वारा सम्पादित, १९१३ ई०।
१८ गोभिल गृह्यसूत्र	बी० आई० सीरीज़।
१९ काठक गृह्यसूत्र	डॉ० कैलेन्ड द्वारा सम्पादित, १९२५ ई०।
२० मानव गृह्यसूत्र	गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा।
२१ खादिर गृह्यसूत्र	मैसूर ओरियण्टल लाइब्रेरी सीरीज़।
२२ हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र	डॉ० किस्ते द्वारा सम्पादित, वियना १८८९ ई०।
२३ आपस्तम्ब धर्मसूत्र	हरदत्त की टीका सहित, चौखम्बा प्रकाशन।
२४ बौधायन धर्मसूत्र	चौखम्बा प्रकाशन।
२५ विष्णुधर्मोत्तर	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
२६ गौतम धर्मसूत्र	आनन्दाश्रम प्रेस।
२७ विष्णु धर्मसूत्र	डॉ० जौली द्वारा सम्पादित।

२८ वैखानस स्मार्तसूत्र — कल्कत्ता, १९२७ ई० ।
२९ कौशिक सूत्र — प्रो० ब्लूमफील्ड द्वारा सम्पादित, १८९० ।
३० वैशेषिकदर्शनम् — विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित, चौखम्बा प्रकाशन बनारस, १९१९ ।
३१ मित्रमिश्र — वीरमित्रोदय, चौखम्बा प्रकाशन, बनारस ।
३२ मनुस्मृति — प० तुलसी राम शर्मा द्वारा सम्पादित, दिल्ली ।
३३ मनुस्मृति — कुल्लूकभट्ट की टीका सहित (निर्णयसागर सस्करण)
३४ मनुस्मृति — मेधातिथि भाष्यसहित, अंग्रेजी अनुवाद, गगानाथ झा।
३५ याज्ञवल्क्य स्मृति — मिताक्षरा टीका सहित–निर्णयसागर सकरण ।
३६ ,, ,, — (वीरमित्रोदय टीका) चौखम्बा प्रकाशन, बनारस ।
३७ ,, ,, — अपरार्क की टीका–आनन्दाश्रम प्रेस ।
३८ ,, ,, — नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२९ ।
३९ हारीतसहिता — दी धर्मशास्त्र–एम० एन० दत्त, कलकत्ता १९०८–जिल्द १ ।
४० उशनस् सहिता — वही
४१ अङ्गिरस सहिता — ,,
४२ यम सहिता — ,,
४३ अत्रि सहिता — ,,
४४ समवर्त सहिता — दी धर्मशास्त्र–एम० एन० दत्त०, कलकत्ता, १९०८, जिल्द १ ।
४५ कात्यायन सहिता — वही
४६ बृहस्पति सहिता — ,,
४७ दक्ष सहिता — ,,
४८ शातातप सहिता — ,,
४९ लिखित सहिता — ,,
५० शख शहिता — ,,
५१ गौतम सहिता — ,,
५२ आपस्तम्ब सहिता — ,,
५३ वशिष्ठ सहिता — ,,
५४ विष्णु सहिता — ,, जिल्द २ ।
५५ व्यास सहिता — ,,
५६ पराशर संहिता — ,,
५७ शुक्रनीति — श्री वेकटेश्वर प्रेस ।

५९ श्रीमद्भागवत पुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर।
६० ब्रह्माण्ड पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
६१ ब्रह्मपुराण	आनन्दाश्रम प्रेस।
६२ गरुड पुराण	वेंकटेश्वर प्रेस।
६३ लिंग पुराण	"
६४ नारदीय पुराण	" "
६५ कालिका पुराण	" "
६६ कूर्म पुराण	
६७ मार्कण्डेय पुराण	बी० आई० सीरीज़, कलकत्ता।
६८ मत्स्य पुराण	आनन्दाश्रम प्रेस।
६९ वायु पुराण	" "
७० विष्णु पुराण	गोपाल नारायण ऐन्ड को०, बम्बई।
७१ मनु का राजधर्म	डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।
७२ शुक्र की राजनीति	"
७३ भीष्म का राजधर्म	"
७४ दीघनिकाय	एन० के० भगत द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९४२।
७५ ललितविस्तर	डॉ० लेफमैन द्वारा सम्पादित, १९०२।
७६ सोलंकियों का प्राचीन इतिहास—जिल्द प्र०	पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९०७।
७७ चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशंकर व्यास—भारतीयज्ञानपीठ, काशी, १९५४।
७८ मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्बा प्रकाशन, बनारस।
७९ मातंगलीला	त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज़, १९१० ई०।
८० नकुलकृत अश्वशास्त्रम्	तंजौर सरस्वती महल सरीज, १९५२ ई०।
८१ भारत की चित्रकला	रायकृष्णदास—भारती भंडार, प्रयाग, २००७ वि०।
८२ हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन	वासुदेव शरण अग्रवाल—पटना, १९५३।
८३ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद	डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९५२।
८४ कौटिल्य-अर्थशास्त्र	चौखम्बा प्रकाशन, बनारस।
८५ अश्ववैद्यकम्	जयदत्तसूरि।
८६ हस्त्यायुर्वेद	पालकाप्य मुनि।

८७ प्रबन्धकोष	सिन्धी जैन ग्रन्थमाला ।
८८ मेघदूत	डॉ० के० एन० काटजू सीरीज़, कलकत्ता १९५१ ।
८९ रघुवश	चौखम्बा प्रकाशन, बनारस ।
९० हरिहरचतुरगम्	मद्रास गवर्नमेन्ट ओरियण्टल सीरीज़, १९५० ।
९१ वेदधरातल	प० गिरीशचन्द्र अवस्थी–काशी स० २०१० ।
९२ वीरमित्रोदय	मित्रमिश्र–चौखम्बा सस्कृत सीरीज़ ।
93 Early History of the Dekkan	R G Bhandarkar
94 Antiquities of India	L D Barnett–London 1913
95 The Dharma Śāstra	English Translation of the Hindu Smrtis–M N Dutta Calcutta–1906
96 The Smrtichandrikā Anhika Kanda	An English Translation–J R Gharpure–Poona, 1946
97 The Kalās	A Venkatasubbiah–The Vasanta Press, Adyar, Banaras, 1911
98 Contribution to a Bibliography of Indian Art and Aesthetics	Haridas Mitra–Viśva-Bhārati, Shāntiniketan, 1915
99 Hindu Social Institutions	Valavalkar–Longmans, Green & Co Ltd , 1939
100 Social Life in Ancient India–Studies in Vātsyāyana's Kāmasūtra	H C Chakladar–Greater India Society, Calcutta, 1929
101 History of Dharmaśāstra	P V Khne–Vol I
102 do	do Vol II Part I
103 do	do Vol II Part II
104 do	do Vol III
105 do	do Vol IV
106 Rāgas and Rāginis	O C Gangoly–Nalanda Publications, Bombay, 1935
107 India in Kalidasa	B S Upadhyaya–Kitabistan, Allahabad, 1947

108 The Mahabharata-As it was, and ever shall be-A critical study	P N Mullick-Calcutta, 1934
109 The Civilization of Ancient India	Louis Renou-English Trans Spratt-Calcutta, 1954
110 Studies in Kautilya	M V Krishna Rao-Kautilya Mandali Publications, Mysore
111 Hindu Civiliz^tion	Dr Radha Kumud Mookerji-Longmans, Green & Co , London, 1936
112 A History of Indian Civilization	Dr Radha Kamal Mukerji, 1956
13 War in Ancient India	Dikshitar-Macmillan & Co Ltd , 1948
14 Alberuni's India Vol I English Edition	Sachau-London, 1910
115 Alberuni's India Vol. II	-do-

